विषय--सूची

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख पत्र *

वर्ष १६ | माघ १९९८ फरवरी १६४२ ई०] [दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क १२

आप्नुहि श्रेयासमति सम क्राम । अ० १ । ११ । २

अपने समान लोगों से आगे बढ और श्रेय को प्राप्त कर ।

Excel thy equals and go ahead on the path of Glory !

* * *

रमन्ता पुण्या लक्ष्मीर्या पापीस्ता अनीनशम् । अ० ७ । ११५ । १

पुण्य की कमाई मेरे घर की शोभा बढावे, पाप की कमाई को मै नष्ट कर देता हूँ ।

May we live and prosper on righteous earnings and may sc vil gains !

अध्यात्म-सुधा

(१)

कर्म के रूप

शास्त्रों ने ४ प्रकार के कर्म बतलाएँ हैं :—

(१) वे कर्म जो न शुक्ल हों और न कृष्ण। ऐसे कर्म मोक्ष का कारण होते हैं और सन्यास अवस्था मे ही हो सकते हैं।

(२) वे शुक्ल कर्म जो दुर्व्यसनों के मर्दन के लिये किये जाते हैं, वे ब्रह्मचर्य की अवस्था मे ही हो सकते है और गुरुकुल इनका केन्द्रस्थान है जहाँ गुरु के पास रहते हुए पाप का लेश भी ब्रह्मचारी के पास नहीं आ सकता।

(३) कृष्ण और शुक्ल कर्म गृहस्थियों के हैं जिनमें पुण्य और पाप मिला हुआ है।

(४) जिनके कर्म न कृष्ण हैं और न शुल्क, वे कर्म तो करते हैं परन्तु उनकी इच्छा फल की नहीं होती। ऐसे कर्म भी मुक्ति के देने वाले होते हैं।

आजकल के वेदान्ती निष्काम कर्म की बड़ी दुर्दशा करते हैं परन्तु बुरे कर्म निष्काम कर्म नहीं हो सकते।

इस समय संसार में कर्म और विज्ञान भिन्न २ काम कर रहे हैं। विज्ञान-वेत्ता बड़े २ अन्वेषण कर रहे है; परन्तु वे अन्वेषण चोरी और दुराचार के काम आते हैं। इसका क्या कारण है ? केवल यह कि इस विज्ञान में वैदिक धर्म का अश नहीं है। जिस समय कर्म के साथ वैदिक ज्ञान मिलेगा उस दिन न पुलिस की आवश्यकता होगी न न्यायालयों की।

प्राचीन काल की एक कथा उपनिषदों में आती है। इसमें एक राजा यहाँ तक दावा करता है कि मेरे राज्य मे न कोई दुराचारी है और न व्यभिचारी और न कोई ऐसा पुरुष है जो हवन न करता हो।

जहाँ भी परमात्मा के भक्त हों वहाँ उपद्रव नहीं हो सकते, परन्तु यह तब ही हो सकता है जब धर्म के साथ विज्ञान मिला हुआ हो।

(२)

काम, क्रोध, लोभ, मोह

बार २ हम कहते हैं कि हमारे भाई ईसाई और मुसल्मान हो रहे हैं परन्तु हम उनकी रक्षा का प्रबन्ध नहीं कर सकते और करें भी कैसे ? जो स्वयं सुरक्षित नहीं वह दूसरों की रक्षा क्या करेगा ? जिसने अपना सुधार तो किया नहीं परन्तु दूसरों के सुधार का यत्न करता है उसका यत्न कैसे सफल हो सकता है ? इसका नाम अन्ध परम्परा है।

लोग कहते हैं कि उपदेश का अधिकार सबको है परन्तु शास्त्र की कुछ और ही सम्मति है। शास्त्र लिखते हैं—"जीवन् मुक्त निष्ठः उपदेश" अर्थात उपदेश का अधिकार जीवन मुक्त पुरुष को ही है। जो स्वयं मार्ग भूल गया है वह दूसरों का पथ पदर्शक नहीं हो सकता।

एक पण्डित बड़े प्रभावयुक्त शब्दों में मद्यपान के विरुद्ध उपदेश करता था। एक पुरुष ने उसके उपदेश से प्रभावित होकर मद्यपान का त्याग कर दिया। उसके २-३ दिन पश्चात् वह पुरुष पंडित जी को धन्यवाद देने के लिये उसके घर पर गया। वहाँ क्या देखता है कि वह पंडित स्वयं मद्य का सेवन करता है। वह बड़ा चकित हुआ।

अतः जिनका कथन कुछ और है, मन्तव्य कुछ और, कर्त्तव्य कुछ और; उन्होंने संसार में कभी कोई काम नहीं किया।

आप प्रतिदिन देखते हैं कि यदि भोजन में जरा-सा बाल आ जाए तो भोजन खाया नहीं जाता, परन्तु शिर पर असंख्य बाल हैं। कफ और रुधिर को देखकर अत्यन्त घृणा होती है परन्तु शरीर के भीतर यह सब कुछ विद्यमान है। शरीर के समस्त अंगों से मैल निकलता है फिर इसमें कौनसी वस्तु है जिससे यह पवित्र समझा जाता है ? शास्त्र बतलाते हैं कि आत्मा का संयोग ही शरीर की पवित्रता का कारण है। यदि अन्तःकरण को शुद्ध रखा जाय तो शरीर और आत्मा दोनों शुद्ध रह सकते हैं। इसलिये सबसे बड़ी आवश्यकता अन्तःकरण के मार्जन की है। अन्तःकरण की शुद्धि कैसे हो ? अन्तःकरण को शुद्ध करने वाली सबसे पहली शक्ति काम है। यदि अशुभ संकल्प दब गए तो आपने काम को जीत लिया।

दुष्कर्मों से घृणा सच्चा 'क्रोध' है। अपने भीतर ऐसा बल पैदा करो जिससे कोई दुष्ट भाव अन्तःकरण को मैला न कर सके।

लोभ का अर्थ यह नहीं जो हमने समझ रखा है कि जिस प्रकार भी बने धन मिल जाए। शास्त्रकार बतलाते हैं "आत्मरक्षाणाम् सदैव लोभः" ऐसी वस्तु का

लोभ करना जिससे आत्मा की रक्षा हो। परमात्मा ने धन दिया परन्तु ऐसे कृपण बने कि एक कौड़ी भी भले कामों में व्यय नहीं करते। आत्मा का कल्याण कैसे हो? हमारी अवस्था आजकल बहुत पतित होरही है। धर्म के कामों में समय इसलिये नहीं देते कि यहां से कुछ लाभ प्राप्त नहीं होता दिखाई देता। धन इसलिये नहीं देते कि लोभ है और यदि किसी के अत्यन्त प्रेरणा करने पर एक रुपया दे भी दिया तो फिर समाचार-पत्रों में देखते हैं कि हमारा नाम छपा है या नहीं।

हमारे पूर्वज गुप्तदान करना पुण्य समझते थे परन्तु हमारा देश पश्चिमीय तरङ्ग में बहकर दान को भी अपने व्यवसाय की ख्याति का कारण समझता है।

काम, क्रोध, लोभ को जीत लिया परन्तु यदि आत्मा में सत्य नहीं है तब भी कुछ न बनेगा। 'सत्य' क्या है? शास्त्र बतलाते हैं "आत्मानम् सत्यम् रक्षेत्" जिससे आत्मा की रक्षा होती है वह सत्य है। आत्मा की रक्षा तो होती है सत्य से परन्तु हम चाहते हैं कि रात-दिन ठग विद्या और अधर्मयुक्त कार्यों के करने पर भी धर्मात्मा कहलाएँ और हमारी आत्मा का कल्याण हो। यह कदापि न होगा। पहले इन दोषों को दूर करो।

मोह क्या है? "मोहस्तु अविद्या" अविद्या ही मोह है। जो अविद्या का आश्रयलेते हैं उनका कुछ नहीं बनता। अविद्या का कारण दुख है सबसे पहले अहंकार को दूर करो, परन्तु हम क्या करते हैं? तर्क के रण में हमने संसार को जीत लिया है परन्तु कर्तव्यपरायण नहीं है।

(३)

बल

बल धर्म में है। ईश्वरपरायण चने की रोटी खाएगा परन्तु पाप नहीं करेगा। हम दूध मक्खन खाकर भी दुर्बल होते जाते हैं। बल दूध-मक्खन में नहीं है प्रत्युत ईश्वर भक्ति और कर्तव्य पालन में है। जो लोग अपने धर्म पालन में सिंह की तरह सीधे तैरते हैं वे यदि मृत्यु भी सामने खड़ी हो आगे जाने से नहीं झिझकते। धर्म सहायता करता है परन्तु केवल धर्म २ पुकारने से नहीं। धर्म उस समय हमारी सहायता करेगा जब पुत्र, धन, राज और महलों से आपको धर्म प्यारा होगा। धर्म से मजाक़ मत करो। मनुष्य कहलाते हुए मन में गिरावट और पग २ पर बुराई को छोड़ दो। अपने परिवार में बैठ कर प्रति दिन धर्म का चिन्तन करो। प्रति दिन एक आध घंटा प्रभु का चिन्तन करो। इससे अपने को और संसार को सुखी कर दोगे। उस समय तुम्हारा धन अपनी क्षुधा निवारण के लिए और शेष धर्म कार्यों के लिए होगा और तुम्हारी विद्या तुम्हें सीधे मार्ग पर ले जायेगी और औरों को पथ दिखायेगी।

ज्ञेय मीमांसा

(ले०—श्री पूज्य नारायण स्वामी जी महाराज)

संसार में हम जिन वस्तुओं के जानने की इच्छा करते हैं उन्हीं को ज्ञेय कहते हैं। ऐसी चीजें तीन ही हो सकती हैं। जैसा कि ऋग्वेद में कहा गया है:—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।

तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नयो अभिचाकशीति ।। ऋ० १। १६४। २०

अर्थात् ईश्वर, जीव और प्रकृति—इनमें जब हम प्रकृति विषय पर दृष्टि-पात करते हुए जीव का विचार करते हैं तो उसे ज्ञेय का ज्ञाता समझ कर ज्ञेय की सीमा से पृथक् कर देना पड़ता है। शेष ईश्वर और प्रकृति, दोनों में से ईश्वर जीव की अन्तर्मुखी वृत्ति और प्रकृति उसकी वहिर्मुखी वृत्ति का विषय है। जगत् का सम्बन्ध वहिर्मुखी वृत्ति है, इसलिये यदि ज्ञेय को जगत् तक सीमित रखें तो केवल एक प्रकृति ही जानने योग्य वस्तु रह जाती है।

संसार के उन्नत और अवनत काल मे तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार इस पर विचार होता चला आया है। पूर्वीय और पश्चिमीय सभी दर्शनों में इन ज्ञेय पदार्थों की मीमांसा की गई है। विचार के परिणाम में अवश्य विभिन्न मत हुए और रहेंगे परन्तु विचारशील विषय सबने इन्हीं को समझा। सेमुएललेंग ने एक बार कुछेक प्रश्न वैज्ञानिकों से किये थे और स्वयं भी उनके उत्तर दिये थे। उनमें एक प्रश्न इन्हीं ज्ञेय से सम्बन्धित था† अस्तु जब हम इस ज्ञेय जगत् (प्रकृति) की मीमांसा करना चाहते हैं तो हमारी दृष्टि वेदों के देवताओं पर जाती है।

वेद के ३३ देवता

वेदों के ३३ देवता संख्या की दृष्टि से जगत् प्रसिद्ध हैं परन्तु वे हैं क्या? इसे बहुत थोड़े लोग जानते हैं। अथर्ववेद मे एक जगह इन देवताओं की संख्या ३३ वर्णित है:—

यस्य त्रयस्त्रिंशद्देवा अङ्गे सर्वे समाहिता।

स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।। अथर्व० १०। ७। १

इसके सिवा निम्न मन्त्रों में भी देवताओं की संख्या ३३ वर्णित है:—

† Problems of the future by S. Laing.

ऋग्वेद मण्डल एक सूक्त ३४, ११—४५, २—१३९, ११ मण्डल तीन सूक्त ६ मन्त्र ९ तथा मण्डल आठ सूक्त २८ मन्त्र १, सूक्त ३० मन्त्र २, सूक्त ३५, इत्यादि— परन्तु निम्न मन्त्रों में जो ऋग्वेद का ३, ९, ९ तथा यजुर्वेद का ३३.७ है देवताओं की संख्या ३३३९ वर्णित है:—त्रीणिशतात्री सहस्राण्यग्नि त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्। औक्षन्घृतैरस्तृणान्वर्हिरस्मू आदिद्धोतारंन्यसादयन्त ।। इस अन्तर को समझना चाहिए।

३३३९ देवता क्या हैं ?

बृहदारण्यकोपनिषद् में (देखो ३, ९, २) जनक की सभा में शाकल्य विदग्ध ने याज्ञवल्क्य से पूछा कि देवता कितने हैं और उत्तर पाने पर जब उसने ३३३९ के नाम पूछे तो याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि देवता तो ३३ ही हैं, ३३०६ तो उनकी महिमा हैं और इन ३३ देवताओं का प्रसिद्ध विवरण भी दिया (८ वसु + ११ रुद्र + १२ आदित्य + १ इन्द्र + १ प्रजापति)।

महिमा का भाव

इस महिमा का वर्णन करते हुये याज्ञवलक्य ने कहा कि "वैश्वदेवस्य निविद्धियावन्तः उच्यते।" (देखो ३।९।१) अर्थात् विश्वेदेव‡ सम्बन्धी जो मन्त्र उसके पद* में जितने देव कहे गये हैं वह पद या निविदा यह है—त्रयश्चत्रीच राता त्रयश्चत्रीच सहस्रा अर्थात ३०३+३००३ = ३३०६ यही संख्या महिमा की है।

देवता किसे कहते हैं ?

यास्काचार्य ने लिखा है कि "प्राधान्यस्तुतिर्देवता"। अर्थात् प्रधानता से जिस का वर्णन हो वह देवता है। (They are all that conform the subject of human knowledge).

विज्ञान और संसार का ज्ञान

संसार को समझने के लिये उसे दो भागों में विभक्त किया गया है। (१) मनुष्य शरीर के भीतर का ज्ञान, (२) मनुष्य शरीर के बाहर का ज्ञान। शरीर के बाहर जो कुछ है, उसका हमें जो ज्ञान होता या हो सकता है वह केवल ३ वस्तुओं का ज्ञान है:- (१) देश = Space, (२) काल = Time, (३) शक्ति = Force.

‡ जिन मन्त्रों में देवों का वर्णन है उन मन्त्रों को 'वैश्वदेव' मन्त्र कहते हैं।
* इसी पद या मन्त्र के टुकड़े को निविदा कहते हैं।

प्रकृति को प्रकृति के रूप में हम नहीं देख सकते। उसमें विकार होकर वस्तुएँ बनती हैं। जिस शक्ति से उनमें विकार हुआ करता है उसका भी केवल कार्य की दृष्टि से हमें ज्ञान हुआ करता है। इसलिये जगत् का हमारा ज्ञान केवल शक्ति का ज्ञान है। जगत् में कांट के मतानुसार हम केवल वस्तुओं के रूप और आकार (नामरूप = Appearance) को ही देखा करते हैं, असली चीज (वस्तुतत्त्व = Thing in itself) का हमें कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

शरीर के भीतर का जो कुछ हमें ज्ञान होता है वह निम्न वस्तुओं का ज्ञान है:- (१) आत्मा = Consciousness = Soul, (२) इच्छित कार्य = Delebeiate activities of mind, (३) अनिच्छित कार्य सञ्चालन शक्ति = Vital activities of mind. शरीर के भीतर दो ही प्रकार के कार्य होते हैं—(१) इन्द्रियों द्वारा कार्य, (२) हृदय, फेफड़े आदि द्वारा अनिच्छित कार्य। इसलिये शरीर के भीतर का जो ज्ञान हमें हुआ करता है वह उपर्युक्त तीन बातों ही का ज्ञान है। इस प्रकार शरीर के भीतर और बाहर अथवा समस्त संसार का जिसमें जीव और प्रकृति दोनों शामिल हैं, जितना ज्ञान होना संभव है वह केवल उपर्युक्त ६ बातों का ही ज्ञान है। इसलिये यही ६ बातें हैं जिन्हें हम जाना करते हैं ‡ अब इन ६ वैज्ञानिक देवताओं का वेद के ३३ देवताओं से मुक़ाबला करो।

संख्या	वैज्ञानिक देवता = ज्ञेय	३३ देवताओं का विवरण
(१)	Time = समय	१२ आदित्य (मास)
(२)	Space = दिशा	८ वसु
(३)	Force = शक्ति	१० रुद्र
(४)	Soul = आत्मा	११ वां रुद्र जीव
(५)	इच्छित कार्य	प्रजापति = यज्ञ = समस्त शुभ कर्म
(६)	अनिच्छित कार्य	= इन्द्र = विद्युत
	६	= ३३ देवता

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि ३३ देवता जिन्हें कहते हैं वे समस्त ज्ञेय का दूसरा नाम है जिन्हें मनुष्य इस संसार में जाना करता है।

---

‡ Vedic Terminology of Vedas by Pt. Guru Dutta Vidyarthi.

श्री० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, प्रधान
श्रीमती आर्य्य प्रतिनिधिसभा संयुक्तप्रान्त तथा चाँसलर
गुरुकुल वृन्दावन का गुरुकुल वृन्दावन के
३७वें महोत्सव पर

दीक्षान्त-भाषण

❀

शंनः सत्यस्य पतयो भवन्तु ।

सर्वाङ्गपूर्ण उन्नति के प्रेमी देवियो और सज्जनो,

गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन के इस दीक्षान्त संस्कार के सुअवसर पर मैं गुरुकुल के संचालकों तथा अन्य सभी सम्बन्धियों को बधाई देता हूँ। किसी विद्यालय में दीक्षान्त संस्कार एक महत्व की चीज है। और विशेषकर विद्यार्थी के जीवन में जिसको परिश्रमी कृपक की भांति अथक परिश्रम के पश्चात् निर्विघ्न फसल काटने का सौभाग्य प्राप्त हो सके।

कुछ दिनों से विश्वविद्यालयों में यह परिपाटी चल पड़ी है कि दीक्षान्त संस्कारों के अवसर पर किसी अनुभवी पुरुष का दीक्षान्त भाषण (Convocation Addiess) भी हो। इस वष जैसा कि घोषित किया जा चुका है बम्बई के सुप्रसिद्ध नेता श्री महाशय के० एम० मुन्शी जी को इस महान् कार्य के लिये चुना गया था। परन्तु कई कारणों से वह न पधार सके। और हम सब उनके महत्व-पूर्ण विचारों के श्रवण करने से वंचित रहे। यह मेरे और आपके दोनों के लिये दुर्भाग्य का विषय है। इस क्षति की पूर्ति असम्भव है। परन्तु रस्म तो पूरी करनी ही है।

सभ्य जगत् में शिक्षा का विषय अन्यसभी विषयों से अधिक महत्व रखता है क्योंकि इसी के ऊपर मानवी ऐहिक और पारलौकिक सफलता का आधार है। जो कार्य किसी विशाल भवन में नींव या बुनियाद का है वही काम मानवी उन्नति में बच्चों की शिक्षा का है। इसीलिये सभी सभ्य जातियाँ विशेष धन तथा विशेष ध्यान अपने बच्चों की शिक्षा पर व्यय करती हैं। बुनियाद की खुदाई, भराई और सुदृढ़ता विश्वकर्मा (इञ्जीनियर) की दूरदर्शिता को सूचित करती है। इञ्जीनियर फावड़ा मारने से पहले समस्त भवन का चित्र अपने हृदय पटल पर

खींच लेता है और उसी के अनुसार चलता है। बिना निश्चित विधान के भवन निर्माण और बिना जातीय पुरोगम के निश्चित किये हुए शिक्षा का संचालन भविष्य के लिये बड़ा हानिकारक होता है।

इस समय विश्वव्यापी युद्ध हो रहा है और लोगों का ध्यान बच्चों की शिक्षा से हट कर उनकी रक्षा की ओर आकर्षित हो गया है। परन्तु विचक्षण लोग समझते हैं कि शिक्षा ही रक्षण का साधन है। बच्चे सोने चांदी का भूषण नहीं हैं जिनको बक्स में बन्द करके भूमि में गहरा गाड़ दिया जाय कि शत्रु का हाथ उन तक न पहुँच सके। यह तो जीती जागती विभूतियां हैं। इनको तो विपत्तियों का सामना करना है। अतः यदि इनकी शिक्षा बन्द हो गई तो रक्षा भी कैसे हो सकेगी ? युद्ध के समय तो शिक्षा का प्रश्न और भी महत्व का हो जाता है क्योंकि नेताओं को यह चिन्ता होती है कि रणस्थली में रिक्त हुये स्थानों की पूर्ति कैसे हो ?

यह यन्त्र युग है। विज्ञान की उन्नति ने महत्वपूर्ण यन्त्रों का आविष्कार किया है जिनके द्वारा जल, थल तथा अन्तरिक्ष तीनों ओर से आक्रमण किये और बचाये जा रहे हैं। परन्तु इन यन्त्रों के पीछे महत्वपूर्ण विद्यमानता है मानवीयता की। इसको छिपाया तो जा सकता है परन्तु सर्वथा हटाया नहीं जा सकता। यन्त्र कितने ही जटिल और आश्चर्यजनक क्यों न हों वह हैं तो अन्ततोगत्वा मानवी प्रवृत्ति के ही सूचक। जड़ यन्त्रों को क्रूर या दयावान, सभ्य या असभ्य सहचारी या अनाचारी नहीं कह सकते। इसलिए जो प्रगतियां मानवी दृष्टिकोण को बदलने वाली हैं वह टैंक, पैराशूट, बम्ब आदि सभी से अधिक आवश्यक है। शिक्षा का स्थान यही है। इसलिए युद्ध और घोर युद्ध के समय भी शिक्षा के प्रश्नों को भुलाया नहीं जा सकता।

ऋषि दयानन्द ने आर्य्यसमाज की स्थापना करते समय एक बात पर बल दिया था अर्थात् समाज का कर्तव्य है मनुष्य की सर्वांगी उन्नति करना। एकाँगी वृद्धि को वृद्धि तो कह सकते हैं उन्नति नहीं। कभी-कभी तो वह तिल्ली या जिगर के बढ़ने के समान अवनति और अस्वास्थ्य का सूचक हो जाती है। आर्य्यसमाज का पुरोगम सर्वांगी उन्नति का पुरोगम है। अतः ऋषि दयानन्द की बताई हुई गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में भी यह बात होनी चाहिये। इसी को वैदिक साहित्य में 'ब्रह्मचर्य' के नाम से पुकारा गया है। ब्रह्मचर्य से लोग केवल भौतिक वीर्य रक्षा का ही अर्थ लेते हैं। परन्तु यह बात नहीं है। 'ब्रह्म' में चलने (To walk

in God) का अर्थ है ब्रह्म के सदृश पूर्णता की प्राप्ति। 'वीर्य' शब्द भी 'वीर' से निकला है अर्थात् वीरस्य भावः वीर्यः। अर्थात वीर उसी पुरुष को कह सकते हैं जो सर्वांगपूर्ण है। अथर्व वेद में कहा है:—

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति।
(अथर्ववेद ११।५।४)

ब्रह्मचारी अपनी समिधा, मेखला, श्रम तथा तप से लोकों को पूर्ण कर देता है और

ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः॥
(अथर्ववेद ११।५।१२)

ब्रह्मचारी कठोर पृथ्वी में बीज बोता है जिससे चारों दिशाओं को जीवन मिलता है।

शिक्षा के विषय में आजकल बहुत कुछ उहापोह हो रही है। कुछ लोग शिक्षा के सांस्कृतिक (Cultural) उद्देश्य पर बल देते हैं। कुछ उसको औद्योगिक रूप देना चाहते हैं। परन्तु हैं यह सब गर्म दल वाले एकान्तिक और एकांगी। वह भूल जाते है कि शिक्षा पूर्ण मनुष्य बनाने के लिये है। पूर्ण मनुष्य न तो मांस हाड़ का पुञ्ज है न शरीर रहित जीव है। पूर्ण मनुष्य मे तो हाड़ मांस से लेकर अहङ्कार युक्त आत्मा तक सभी सम्मिलित हैं। जो शिक्षा रोटी के प्रश्न को त्याग देती है वह तो आरम्भिक भूल करती है। परन्तु जो शिक्षा रोटी के प्रश्न तक ही सीमित रहती है वह भी न केवल अधूरी किन्तु भयानक है। आधुनिक पाश्चात्य भाषा का प्रयोग किया जाय तो हम कह सकते हैं कि मनुष्य में स्थूल शरीर है, फिर इसके पश्चात् नर्वस सिस्टम (Nervous system) या वात संस्थान है। फिर इसके पश्चात् मस्तिष्क या ब्रेन (brain) है। और इसके पीछे मन या माइण्ड (mind) है। मस्तिष्क या माइण्ड के बीच में कोई बड़ी दीवार नहीं है। अत जो शिक्षा हड्डियों और मांस पिण्डों का विकास तो करती है परन्तु नर्वस सिस्टम या मस्तिष्क के विकास पर बल नहीं देती वह अधूरी क्या निरर्थक है। पाश्चात्य शिक्षा माइण्ड तक समाप्त हो जाती है। वे आगे बढ़ना नहीं चाहते। neoro analysis और psycho-analysis) उनकी अन्तिम मंजिल है। इस मनोवृत्ति ने पाश्चात्य देशों की उन्नति को एक विचित्र अधूरा रंग दे रखा है और संसार का वर्तमान अशान्तिपूर्ण वातावरण उसी का फलस्वरूप है। वे शरीर को

पालते समय शरीरी को भूल जाते हैं। उनको देशों के बचाने की चिन्ता है देश वासियों को बचाने की नहीं। कारखानों की अधिक परवाह है कारखानों वालों की नहीं। इसी को तो भौतिक दृष्टिकोण कहते हैं। असली भौतिकवाद (materialism) यही है। आज से सैंतालीस वर्ष पूर्व ड्रमंड ने क्या अच्छा कहा था:—

The whole mistake of naturalism has been to interpret nature from the standpoint of the atom—to study the machinery which drives this great moving world simply as machinery, forgetting that the ship has any passengers or the passengers any captain or the captain any course. ("The Ascent of man' by Henry Drummond, page 12.)

"भौतिकवादियों का एक मात्र दोष यह है कि उन्होंने संसार को परमाणु की दृष्टि से देखा है। जो मशीन इस विशाल जगत को चला रही है उसका उन्होंने केवल मशीन के रूप में अवलोकन किया है। वे भूल जाते हैं कि जहाज में कोई यात्री भी हैं। या यात्रियों में कोई कप्तान भी है और उस कप्तान के सामने एक उद्देश्य भी है" (हेनरी ड्रमण्ड कृत "मनुष्योत्थान" पृ० १२)

वैदिक भाषा में हम मनुष्य को अन्नमय कोष का एक समिश्रित पुंज कह सकते हैं। इसलिये वैदिक शिक्षा का आरम्भ अन्नमय कोष से होकर आनन्दमय कोष पर उसका अन्त होता है। हम रोटी को भूलते नहीं परन्तु उसको किसी बड़े उद्देश्य का साधन मानते है। जो साधन साध्य की प्राप्ति नहीं कराता वह दूषित और त्याज्य साधन है। उस मार्ग से क्या लाभ जो निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा न सके ? जो लोग रोटी के पीछे रोटी के खाने वाले आत्मा की अवहेलना करते हैं उनको याद रखना चाहिये कि रोटी केवल खाई नहीं जाती, वह खाने वाले को भी खा जाती है। इसीलिये तो भर्तृहरि ने कहा था:—

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः।

"हमने रोटी नहीं खाई। रोटी ने हमको खा लिया।"

आज पाश्चात्य देशों की ओर गम्भीर दृष्टि डालो। वहां रोटी पर इतना बल दिया जा रहा है कि रोटी देशों को खाये जा रही है। हमारे देश में भी रोटी ने हमको खाना आरम्भ कर दिया है। हमने लोगों में रोटी रोटी की दुहाई देकर उन पाशविक प्रवृत्तियों को उत्तेजित कर दिया है जिनके कारण न रोटी वालों

को चैन है न बिना रोटी वालों को। शिक्षा-विशारदों को इस बात पर अवश्य ही विचारना चाहिये। ऐसा न हो कि रोग-नाश के उपाय रोगी का भी नाश कर दें।

परन्तु सांस्कृतिक शिक्षा के गर्म दल वालों को भी एक बात नोट कर लेनी चाहिये। यह आवश्यक नहीं है कि जो नंगा है वह पहुँचा हुआ योगी ही हो। वर्तमान भारतवर्ष में जहाँ रोटी नहीं वहाँ आत्मिक ज्ञान भी नहीं। मै यह नहीं मानता कि वेदों और उपनिषदों जैसी पुस्तकों के स्वामी हम भारतवर्षी आत्मिकोन्नति से सम्पन्न हैं। उनसे प्राचीन ऋषियों के आत्मिक बल का तो पता चलता है परन्तु प्राचीन इतिहास वर्तमान परिस्थिति का स्थानापन्न तो नहीं हो सकता। बृहदारण्यक उपनिषत् हमको उस समय तक लाभ नहीं पहुँचा सकती जब तक हममें मैत्रैयी की वह स्पिरिट न हो जिससे प्रेरित होकर उसने कहा थाः—

येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्।

"जिससे मुझे अमृत की प्राप्ति नहीं होती उसका मै क्या करूँगी।"

आर्य समाज ने जब गुरुकुलों के विषय में सोचा तो उसका विचार ऐसी ही शिक्षा से था जिसमें अन्नमय कोष से लेकर आनन्दमय कोष तक सभी का समावेश हो और गुरुकुलों के सामने यही उद्देश्य होना चाहिये।

प्रश्न यह है कि इस उद्देश्य की पूर्ति किस प्रकार हो। केवल इच्छा मात्र से तो फल की सिद्धि नहीं हो सकती। आर्य समाज मनुष्य के जीवन को सर्वाङ्ग पूर्ण बनाना चाहता है और उसकी पूर्ति के लिये वह वैदिक आदर्श को सामने रखता है। परन्तु उसके मार्ग मे बहुत सी रुकावटें हैं जिनके कारण उसे सफलता का सौभाग्य प्राप्त नहीं हो रहा। मुझे यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिये कि आर्यों में गुरुकुलों के लिए जो उत्साह ४० वर्ष पूर्व था वह आज नहीं है। यद्यपि आज भारतवर्ष में गुरुकुलों की संख्या दर्जनों तक पहुँचती है। यह मै अपनी ओर से नहीं कह रहा। जनता के अव्यक्त विचारों को व्यक्त कर रहा हूँ। हमको सोचना चाहिए कि इसका कारण क्या है?

व्यक्ति और विश्व

उपनिषदों की शिक्षा का सार

(ले०—श्री स्व० रवीन्द्रनाथ टैगोर)

पश्चिम को यह अभिमान देख पड़ता है कि मैंने प्रकृति को अपने वश में कर लिया है। पश्चिम के निवासियों का यह विचार है कि हम अपने से विरोधी जगत् में निवास करते हैं जहां हमें अपनी इच्छा की प्रत्येक वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रकृति के साथ संघर्ष करना होता है। इस प्रकार की भावना नागरिक जीवन में बनी हुई आदत और मस्तिष्क के शिक्षण का ही परिणाम है। क्योंकि नागरिक जीवन में मनुष्य स्वभावतया अपने मानसिक दृष्टिकोण के संकुचित प्रकाश को अपने जीवन और कार्यों पर केन्द्रित करता है और इससे उसके तथा व्यापक प्रकृति के मध्य जिसकी गोद में वह पलता है कृत्रिम विरोध उत्पन्न हो जाता है।

परन्तु भारतवर्ष में दृष्टिकोण भिन्न था। इस दृष्टिकोण में संसार समवेष्टित था और मनुष्य एक बड़ी सचाई थी। व्यक्ति और विश्व में जो साधर्म और सामञ्जस्य है, भारतवर्ष इस पर विशेष बल देता रहा है। उसका अनुभव था कि यदि हमारा वातावरण जिसमें हम रहते हैं हमारे लिए एकदम नया और अपरिचित हो तो उससे हम किसी भी प्रकार की प्रेरणा ग्रहण नहीं कर सकते। प्रकृति के विरुद्ध मनुष्य की सबसे बड़ी शिकायत यह है कि अपनी आवश्यकता की अधिकांश वस्तुएँ उसे अपने ही प्रयत्न से उपलब्ध करनी होती हैं। यह शिकायत ठीक ही है, परन्तु उसका प्रयास व्यर्थ नहीं होता। वह प्रतिदिन सफलता प्राप्त करता है। इससे प्रगट है कि मनुष्य और प्रकृति के मध्य बुद्धि-सङ्गत सम्बन्ध है क्योंकि यदि किसी वस्तु से हमारा सच्चा सम्पर्क न हो तो हम कभी भी किसी वस्तु को अपना नहीं बना सकते।

हम दो भिन्न दृष्टि बिन्दुओं से एक मार्ग को देख सकते हैं। एक व्यक्ति यह समझता है कि वह मार्ग हमें हमारी मनचाही वस्तुओं से पृथक् कर रहा है। इस दशा में हम अपनी यात्रा के प्रत्येक पग को विघ्न बाधाओं और विरोध के मध्य बलात प्राप्त होनेवाली वस्तु के समान समझते हैं। दूसरा व्यक्ति उस मार्ग को निर्दिष्ट स्थान तक पहुँचाने वाला राज-मार्ग समझता है और यह इस मार्ग को अपने अन्तिम लक्ष्य का भाग मानता है। यहाँ पर हमारी सफलता का प्रारम्भ होता है और इस

मार्ग पर चलने से हमें वह मिल जाता है जो यह स्वयं हमें देता है। प्रकृति के सम्बन्ध में भारतवर्ष का यही दृष्टिकोण है। भारतवर्ष के लिए महान् सत्य यह है कि प्रकृति के साथ हमारी घनिष्ठता है। मनुष्य विचार कर सकता है क्योंकि उसके विचारों और प्रकृति में सामञ्जस्य है। वह प्रकृति की शक्तियों को अपने प्रयोग में ला सकता है केवल इसलिए कि उसकी शक्ति में और विश्व व्यापक शक्ति में साधर्म्य है और अन्त तो गत्वा उसके उद्देश्य में और उस उद्देश्य में जो प्रकृति के भीतर काम करता है कभी टक्कर नहीं हो सकती।

पश्चिम में प्रचलित भावना यह है कि प्रकृति का सम्बन्ध अचेतन वस्तुओं और पशुओं से ही है और जहाँ मानव स्वभाव का प्रारम्भ होता है वहाँ ही तात्कालिक बाधा उपस्थित होती है जिसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। इस भावना के अनुसार प्राणी जगत् की प्रत्येक छोटी वस्तु प्रकृति समझी जाती है और इस पर पूर्णता की कोई भी मुहर हो चाहे वह बौद्धिक हो वा नैतिक वह मानव-स्वभाव समझा जाता है। यह तो कली और उसके पराग को दो पृथक् कोटियों में विभाजित करने और उनके सौंदर्य का श्रेय दो भिन्न भिन्न सिद्धान्तों को देने के सी बात है। प्रकृति को अपनी प्यारी वस्तु स्वीकार करने में भारत-वासियों को संकोच नहीं रहा है।

भारतवर्ष के लिए सृष्टि की मूल भूत एकता केवल मात्र दार्शनिक ऊहा-पोह नहीं है। मनसा वाचा कर्मणा इस महान् एकता की प्राप्ति उसका जीवनोद्देश्य रहा है। ध्यान, धारणा और सेवा से जीवन को सुन्दर और व्यवस्थित बनाने और व्यतीत करने से भारत ने अपनी चेतना शक्ति का इस रीति से विकास किया है कि उसके लिए संसार का प्रत्येक पदार्थ आध्यात्मिक महत्व रखने वाला बन गया है। पृथ्वी, जल, प्रकाश, फूल और फल उसके लिए केवल मात्र भौतिक चमत्कार नहीं है जिनका जब चाहो प्रयोग कर लो और बाद में एक तरफ फेर दो। पूर्णता के आदर्श की पूर्ति के लिए ये सब उसके लिए आवश्यक थे। भारत-वर्ष तो सहज बुद्धि से ही यह अनुभव करता है कि संसार का प्रत्येक आवश्यक तत्त्व हमारे लिए विशेष अर्थ रखता है। हमें उसका सम्यक् ज्ञान होना चाहिये और उसके साथ बुद्धि सगत सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। केवल मात्र वैज्ञा-निक कौतूहल वा भौतिक लाभ के लोभ से प्रेरित होकर नहीं वरन् आनन्द और शान्ति के उदात्तभाव से सहानुभूति की भावना से उसके तथ्य को प्राप्त करते हुए।

भारत का प्रसिद्ध संस्कृति-केन्द्र, मोहन-जो-दड़ो

(श्री सी. आर. राय., एम. ए., बी. एल., क्यूरेटर, विक्टोरिया म्यूजियम, कराची)

पाठकों ने पाँच हजार वर्ष पुराने शहर मोहन जो दड़ो का नाम सुना ही होगा। कुछ वर्ष हुए यह जमीन से खोदकर निकाला गया है। सिन्ध के लरकाना जिले के डोकरी नामक स्टेशन से यह शहर आठ मील दूर है। प्रसिद्ध भारतीय पुरातत्ववेत्ता स्वर्गीय राखादास बैनर्जी ने सबसे पहले पहले सन् १६२२ में इस मोहन जो दड़ो का पता लगाया था। तब से सरकारी पुरातत्व विभाग ने यहा काफी खुदाई की है। स्वर्गीय बैनर्जी की इस आश्चर्यजनक खोज ने एक इतनी प्राचीन किन्तु उन्नततर सभ्यता को प्रकाश मे ला दिया जिस सभ्यता से वर्त्तमान ससार बिल्कुल अनभिज्ञ था।

हम म से हर एक के लिये यह सम्भव नहीं है कि हम केवल खण्डहरों और वहाँ से प्राप्त पुरातन अवशेषों को देखकर मोहन-जो-दड़ो के निवासियों की संस्कृति और सभ्यता के वास्तविक महत्व को ठीक ठीक समझ सके। इसका असली महत्व तो तभी हमारी समझ मे आ सकेगा जब हम प्राग ऐतिहासिक काल की पट भूमिका म मोहन जो दड़ो की सभ्यता को समझें, और इन खुदाई से निकली हुई पुरातन छिन्न भिन्न वस्तुओं का सम्बन्ध मोहन-जो-दड़ो के भूले हुए लोगो के साथ जोड़ें। अक्षर अक्षर जोड़कर मोहन-जो दड़ो के इतिहास के पुनर्निर्माण की अनेक चेष्टाएँ की जा रही हैं और हर रोज हमे अतीत की इस झांकी पर नया प्रकाश मिलता है।

मुझे मोहन-जो दड़ो को खोदने और उसके खण्डहरों का अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने व्यक्तिगत अनुभव और खोज से और अपने दूसरे साथियो के परिश्रम के परिणामों से इस सम्बन्ध मे अब तक जो कुछ मालूम हो सका है उसकी रूप रेखा को पेश करने का मैं यहाँ प्रयत्न करूंगा, ताकि पाठक भारत की इस पुरातन सभ्यता का वास्तविक महत्व ठीक ठीक समझ सकें।

सिन्धु नदी के पश्चिमी किनारे पर मोहन जो दड़ो के निवासियों ने अपने नगर की बुनियाद डाली। समानान्तर में बिछी हुई नगर की सीधी चौड़ी सड़को, गलियों और कूचों को देखकर यह मालूम होता है कि बहुत ही दक्ष इञ्जीनियरों ने इसका नक्शा तय्यार किया होगा। ये सड़कें और गलियें नगर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक फैली हुई थीं और इनके दोनों किनारों पर पकी हुई ईंटों की इमारतें, महल और आलीशान मन्दिर थे। मानव सभ्यता को मोहन-जो-दड़ो की जो सब मे बड़ी देन है वह है उसकी सफाई के लिये जमीन के नीचे

पटो हुई नालियों की पद्धति। उनकी यह नालियों की पद्धति बेहद पेचीदा किन्तु सम्पूर्ण थी और स्वच्छता के दृष्टिकोण से उसमें किसी तरह की कोई कमी न थी।

यहां यह बता देना उपयुक्त होगा कि आजकल भी ऐसे अनेक शहर हैं जहाँ इतनी अधिक सफाई और नालियों की यह पद्धति नहीं मिलेगी। यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि आज से ५ हजार वर्ष पहले नालियों की इतनी निर्दोष पद्धति मौजूद थी। इससे यह स्पष्ट है कि मोहन जो दड़ो के लोग कितने सभ्य रहे होंगे और उन्हें स्वच्छता का कितना अधिक ज्ञान रहा होगा।

सीधा राज्य शासन के अथवा म्युनिसिपैल्टी के मातहत शहर का प्रबन्ध होता था। लोगों में आपस मे प्रेमपूर्ण सामाजिक सम्बन्ध था। हर नागरिक अपनी संस्कृति को उन्नत बनाने में अपना अपना कर्तव्य निभाता था। अलग अलग काम और अलग अलग धन्धे बटे हुए थे। व्यापारी, किसान, कसेरे, सुनार, चाँदी का काम करने वाले, पत्थर का काम करने वाले, बसोड़, कुम्हार, जुलाहे, कुजड़े, बढ़ई, मैमार, इमारत बनाने वाले, हाथीदात और हड्डी का काम करने वाले, शख और मोती का काम करने वाले, मछिहारे, शिकारी, पुरोहित, शिक्षक, सैनिक, तेली, नाई, भगी आाद आदि मोहन-जो दड़ो के कुछ पेशेवर लोग थे। वेश्याएँ गाने और नाचने का पेशा करती थीं। मोहन-जो-दड़ो म एक नर्तकी की कांसे की मूर्ति मिली है जो नृत्य-अभिनय दिखा रही है।

हर परिवार अलग-अलग घरों मे रहता था। हर घर मे बहुत से कमरे, ऊँचे चौड़े दरवाजे और खिड़किया होती थीं। हर घर का सदर दरवाजा सड़क पर खुलता था। सदर दरवाजे के पास एक चौड़ा सा कमरा होता था, जहाँ चौकीदार, दरबान या कुली रहते थे। उसके बाद बैठक खाना होता था। बैठकखाने के बाद स्त्रियों के लिये अन्त:पुर होता था। घरों मे अन्तःपुर में सोने का कमरा, रसोईघर आदि होते थे। हर घर में एक कुँआ होता था, जिसका पानी पीने के लिए और दूसरे कामों मे इस्तेमाल होता था। दो मंजिले मकान भी होते थे। खुदाई से उनकी सीढ़ियों के अवशेष मिले हैं, और ये सीढ़ियाँ हमारी आजकल की सीढ़ियों से बिलकुल मिलती-जुलती हैं। जैसे ही हम उन मकानों के अन्दर घुसते है, हमारे सामने पाच हजार वर्ष के अतीत के चित्र आ जाते हैं और हम सोचने लगते हैं कि मोहन-जो दड़ो के वे प्राचीन निवासी किस प्रकार अपना जीवन बिताते होंगे? इसी खण्डहर के अन्दर जनता के सुख दुख, प्रेम और वियोग की कितनी ही कहानियाँ बिखरी पड़ी होंगी। छोटे छोटे बच्चों का रोना और मुस्कराना भी यहाँ छाया होगा! प्रेमियों का प्रेम-सम्भाषण भी यहां मूक मौन पड़ा होगा। उस अतीत के इतिहास की साक्षी केवल ईंटे और दीवारें रह गई हैं।

एक बड़ा मकान खोदकर निकाला गया है जो समझा जाता है कि राजमहल है। महल के बीच में एक बड़ा सा ऊँचा कमरा है, जिसमें खूब ऊँचे ऊँचे खम्भे हैं। इस बड़े कमरे के चारों तरफ पचासों छोटे-छोटे कमरे हैं। बड़े कमरे के पास एक पक्का तालाब है, जिसके चारों तरफ बारादरी और कमरे हैं। दो तरफ से सीढ़ियाँ तालाब में उतरती हैं। एक बड़े कमरे से दूसरी बारादरी से। तालाब स्वच्छ और ताजे जल से भरा रहता था। जब उसका पानी गन्दा हो जाता था तो एक बड़ी नाली से बाहर निकाल दिया जाता था। जिस तरह रोम की शाही महिलायें अन्तःपुर के तालाब में स्नान किया करती थीं उसी तरह मालूम होता है कि इस महल की महिलाएँ भी इसी तालाब में नहाया करती होंगी। इस महल की सबसे अधिक आश्चर्यजनक बात इसके बड़े बड़े स्नानागार हैं, जिनकी बहुत सी दीवारें, फर्श और नालियाँ अब तक ज्यों की त्यों सुरक्षित हैं। यह कितनी हैरत की बात है कि जब प्राचीन काल में दुनिया के अधिकाश लोगों में असभ्यता का अन्धकार छाया हुआ था और उस समय जब कि आजकल की सभ्य जातियाँ जंगली हालत में थीं, मोहन-जो-दड़ो के निवासी इतने सभ्य और इतने शीलवान थे कि उन्हें स्नानागार बनाने की बात सूझी। हमने स्वयम् हज़ारों वर्ष बाद स्नानागार में नहाना सीखा है।

हालांकि उस ज़माने के लोगों की पोशाक नष्ट हो गयी है फिर भी थोड़े बहुत जो अवशेष यहाँ पाये गये हैं, उससे हम उस ज़माने के लोगों की पोशाक का अन्दाज़ा लगा सकते हैं। मिट्टी के खिलौने और मिट्टी के बरतनों पर बनी हुई चित्रकारी से हमें उस ज़माने के लोगों का रहन सहन मालूम हो सकता है। पुरुष कमर से नीचे धोती पहना करते थे, सिरों पर पगड़ी बाधते थे, स्त्रियाँ ज़रीदार और कामदार साड़िया, जाकेट और लबादों का इस्तेमाल करती थीं।

इसमें ज़रा भर भी संदेह नहीं कि मोहन-जो-दड़ो की स्त्रिया बेहद फैशनेबुल थीं। उनके विविधि प्रकार के गहनों और शृङ्गार की वस्तुओं के जो अवशेष पाये गये हैं, वे सब इस बात को साबित करते हैं कि वे तरह-तरह के जेवर कर्णफूल, झूमर, नथ, बाजूबन्द, चूड़ियां और बुन्दे आदि पहनती थीं। ये आभूषण सोने, चाँदी, कासे, हाथीदांत और दूसरे क़ीमती जवाहिरातों के बने होते थे। वे कलाई से लेकर कोहनी तक चूड़िया पहनती थीं। सिन्ध की स्त्रियों में अब तक वही रिवाज पाया जाता है। उनकी जड़ाऊ मेखला सहज ही में दर्शकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती थीं। नाकों में जो नथ पहनती थीं वह एक बारीक सोने की जजीर से कानों में बँधी रहती थी। इसी तरह की नथ का रिवाज अब तक सिन्ध और बंगाल की स्त्रियों में पाया जाता है। स्त्रिया अपने बालों को वेणियों में सवांरती थीं और इन सब वेणियों का एक जूड़ा बनाती थीं। वे जूड़ों को फूलों, सोने, चादी और दूसरी क़ीमती धातुओं के

हेयर पिनों से सजाया करती थीं वे अपनी आँखों में सुरमा या काजल लगाती थीं। वे शीशे का दर्पण और लकड़ी और हाथी दात की कंघियाँ इस्तेमाल करती थीं। इस तरह के दर्पण बंगाल में शादियों की रस्म में अब भी इस्तेमाल किये जाते हैं और इस तरह की कंघियां सिन्ध और बंगाल में अब भी पायी जाती हैं।

आज से पाच हज़ार वर्ष पहले के बच्चे हमारे आजकल के बच्चों की तरह ही खिलौने पसन्द करते थे। हम आजकल जिस तरह अपने बच्चों को गुड़ियाँ और खिलौने देकर प्रसन्न होते हैं वैसे ही मोहन-जो-दड़ो के लोग भी होते थे। खुदाई से जो अवशेष मिले हैं उसमें हमें अनगिनती मिट्टी के खिलौने, गुड़िया, और तरह-तरह के पशु, पक्षी, सांप, स्त्री, पुरुष आदि की मूर्तियाँ मिली हैं। लड़कियों के लिये छोटे छोटे खाना पकाने के बरतन, जिनसे वे खेल सकें, आदि भी वहाँ मिले हैं। उस ज़माने में भी कलदार खिलौने बनाने का रिवाज था। एक सींग वाला सांड मिला है जिसमें चाबी भर देने से वह सिर हिलाने लगता है। पक्षियों के हाके जाने वाले रथ भी मिले है। जिसमें चाबी भर देने से रथ अपने आप चलने लगता है। छोटे-छोटे बच्चों के इस्तेमाल के लिये मिट्टी के बने हुए चमकदार रंगो की चूसनी पाई गई हैं। हमारे आजकल के खिलौनों से ये खिलौने इतने मिलते-जुलते हैं कि जब तक किसी को यह न बताया जाय कि ये पाच हज़ार वर्ष पुराने हैं, तब तक कोई अपने आप इस बात का विश्वास नहीं कर सकता, क्योंकि बिल्कुल उस तरह के खिलौने अब भी बंगाल के गांवों में बनाये जाते हैं। मोहन-जो-दड़ो में पाये गये खिलौनों में एक सीटी है, जो पाच हज़ार वर्ष बीत जाने पर भी वैसी की वैसी ही बनी हुई है। वह मिट्टी की बनी हुई एक मुर्गी की शक्ल की है। पांच हजार साल बाद जब मैंने उसे बजाया तो उसकी आवाज़ में वही पुराना सुरीलापन मौजूद था।

मोहन-जो-दड़ो में जो बरतन इस्तेमाल किए जाते थे, वे सब कुम्हारों के चाक पर बने होते थे। उनके प्रमुख बरतन मर्तबान, प्याले, सुराहिया, गिलास और घड़े आदि थे। ये एक रंग बहुधा कई रंगों से रंगे जाते थे और उनके ऊपर तरह तरह की चित्रकारी बनाई जाती थी। जिस तरह आज चाक पर मिट्टी के बरतन बनाकर भट्टी में पकाने का रिवाज है ठीक उसी तरीके से पाच हजार साल पहले भी था। सिन्ध और भारत के दूसरे हिस्सों के कुम्हारों में और मोहन-जो-दड़ो के कुम्हारों में इस दृष्टि से कोई अन्तर नहीं। वे तांबे के बरतनों का भी इस्तेमाल करते थे जिनमें घड़े, लोटे, प्याले, खाना पकाने के बरतन, गिलास, कटोरे आदि थे। तांबे के दूसरे औजारों का भी प्रयोग होता था जैसे कुल्हाड़ी, बल्लम, छुरे, हथोड़े, उस्तरे, चाकू और हाथियों के चलाने के लिए अंकुश आदि। सुइयां और मछली पकड़नेके कांटे हूबहू इसी तरह के होते थे जिस तरह कि आजकल इस्तेमाल किए जाते हैं। एक

कामदार लम्बे मुँह का घड़ा पाया गया है, जो कारीगर की कला और लोगों की सुन्दर रुचि का परिचायक है। शख की बनी हुई चीजे भी बहुधा इस्तेमाल की जाती थी, जैसे चूड़िया, अंगूठिया, नाक की कीलें और सजावट के सामान। और भी अनेक चीजे शख की बनाई जाती थीं। ढाका और बगाल में बहुत से शख का काम करने वाले ठीक उसी प्रकार की शख की चीजें बनाते हैं और ठीक उसी तरह की चीजे बनती हैं जिस तरह आज से पाँच हजार वर्ष पहले मोहन-जो दड़ो के कारीगर बनाते थे।

मोहन-जो-दड़ो से जो पुराने अवशेष खोदकर निकाले गये हैं उनमे बहुत सी चीजे देखने मे नगण्य और बेकार सी लगती हैं। लेकिन यदि हम उन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तब हमें उनकी वास्तविक कीमत का पता चलता है। इस बात का अनुमान करना और सही तखमीना लगाना कि पाच हजार बष पहिले पुराने लोगों की सस्कृति कैसी थी, आसान काम नहीं है। इस बात को ध्यान म रखना चाहिये कि किस वातावरण और किस परिस्थिति में उन्होंने अपनी भौतिक सस्कृति की उन्नति की। यह आज हमारे लिए बहुत सहज है कि हम कहीं अधिक पैने औजारो से तरह तरह की चीजे बना ले। लेकिन क्या हम इस बात की कल्पना भी कर सकत हैं कि उस जमाने म पत्थर के बेडोल हथियारों और ताबे के औजारों से कलापूर्ण वस्तुएँ बनाने का काम कितना मुश्किल रहा होगा। हमारी देह और प्राणों को एक साथ रखने के लिए जीवन की जो आवश्यक वस्तुएँ हैं उनका आविष्कार भी उसी जमाने मे हुआ है और आज हम अपने उन पूर्वजो के आविष्कारों के फल का उपभोग कर रहे हैं। हम यह सोच भी नही सकत कि इन आविष्कारों मे कितनी परेशानी उठानी पड़ी होगी। उनकी सस्कृति की छाप ज्यो की त्यों आज तक चली आती है। हम मुश्किल से समझ सकते हैं कि हमारे ऊपर उनका कितना ऋण है।

मोहन-जो दड़ो के लोग गाय, बैल, भैस, भेड, सुअर, हाथी और ऊँट आदि पालते थे। गेहू, बाजरा और कपास की खेती करते थ। सिन्ध आज भी भारतवर्ष में रुई का प्रमुख केन्द्र है। सिन्ध के बैल गाय अब तक मशहूर हैं। क्या आजकल के रुई उपजाने वाले किसान और रुई के व्यापारी यह कल्पना कर सकते हैं कि अपने रुई के धन्धे के लिए मोहन-जो-दड़ो के लोगों के कितने ऋणी हैं? हम अब तक ठीक उसी तरह की बैलगाड़ी, ठीक वैसे ही कुम्हारों के चाक और मिट्टी के बरतन, उसी तरह की नावे, गहना और कपड़ा इस्तेमाल करते हैं कि जिनका प्रारम्भ उस जमाने के लोगों ने किया था।

मोहन-जो दड़ो के लोगों के भोजन मे खास चीज गेहू, बाजरा, चावल, तरकारिया, फल, मूल थे। गाय और भैंस का दूध और दूध की बनी हुई अन्य चीजे भी बनाई जाती थीं। स्त्रिया खाना पकाने की कला से खूब परिचित थी। मसाला आजकल की तरह ही सिल

पर पीसा जाता था।

मोहन-जो दड़ो के लोगों की आमदनी का प्रमुख जरिया खेती तथा जल और थल के रास्ते व्यापार था। दुनिया के विविध देशों के साथ उनका वाणिज्य सम्बन्ध कायम था। आजकल के सिन्धी व्यापारी अपनी उसी विशेषता को बनाये हुए हैं। ये लोग आजकल की तरह के व्यापारी जहाज बनाते थे। ताम्रपत्र के चित्र मिले हैं जिनको देखने से पता चलता है कि आजकल सिन्ध नदी की कोटरी और हैदराबाद में जो नावे चलती हैं ठीक उसी तरह की नावें उस जमाने में भी इस्तेमाल की जाती थीं।

बैलगाड़ी ही यातायात का मुख्य साधन था लेकिन लोग रथ, हाथी, भैंसे, बैल और नावों को भी आने जाने के लिए काम में लाते थे।

मोहन-जो-दड़ो के लोगों की सील मुहरें (दस्तखत की मोहरें) देखकर पता चलता है कि वे पढ़े लिखे थे। चूंकि हर घर में इस तरह की सील मुहरे पायी गई हैं, इससे पता चलता है कि पढ़े-लिखे लोगों की तादाद बहुत ज्यादा थी। इन सील मुहरों मे तरह तरह की तस्वीरें बनी हुई हैं, जैसे ब्राह्मणों के नन्दी, हाथी, गैंडे, भैंस और एक सींग के जानवर आदि। मोहन-जो-दड़ो की लिपि चित्र लिपि थी, जिसे पढ़ने मे दुर्भाग्य से आज तक सफलता नहीं मिली। इस तरह की मुहरें समकालीन मैसोपोटामिया में भी इस्तेमाल की जाती था। समझा जाता है कि यह हुण्डियों के काम आती थीं क्योंकि अब तक उनके निश्चित इस्तेमाल की बात मालूम नहीं हो सकी हैं।

मोहन-जो-दड़ो के लोगों का धर्म, जहां तक जाना जा सकता है, एक ईश्वर की उपासना था। यह अब तक नहीं मालूम हुआ कि मोहन-जो दड़ो के लोग मृतक व्यक्ति को गाड़ते थे या जलाते थे। खुदाई से खोपड़े और अस्थि पिंजर मिले हैं, लेकिन वे श्मशान या कब्रिस्तान मे नहीं मिले। ये सड़कों पर और मकानो मे पाये गये हैं। मैंने एक कमरे से स्त्री-पुरुष और बच्चों के एक दर्जन अस्थि पंजर खोदकर निकाले हैं। एक लड़की के हाथ का ढांचा अब तक है। उसमें तांबे की चूड़ियां पड़ी हुई हैं और उसके सिर के पास हाथी दांत की कंघी पड़ी हुई थी। हड्डियां थोड़ी थोड़ी जली हुई थीं, इससे मालूम होता है कि मकान मे आग लग गई होगी और पूरा परिवार जल कर नष्ट हो गया होगा। इन लोगों के अस्थि पंजरों को देखकर यह कहा जा सकता है कि मोहन जो-दड़ो के लोग वर्तमान भारत के लोगों से भिन्न नहीं थे। उनकी आकृति आजकल के सिन्धियों, गुजरातियों, मराठों और बंगालियों से मिलती जुलती थी।

अब सवाल उठता है मोहन जो दड़ो के लोग आखिर गये कहां और उन्होंने अपना नगर

छोड़ क्यों दिया ? कुछ लोगों का ख्याल है कि आर्यों ने उन्हें लड़ाई में हरा दिया और वे अपना नगर छोड़कर कहीं और रहने चले गये। लेकिन यह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। मोहन-जो-दड़ो के निवासियों ने सिन्धु नदी की भयानक बाढ़ से परेशान होकर अपना नगर छोड़ दिया। हमें इस बात के निश्चित सबूत मिले हैं कि कई बार वे इस भयानक बाढ़ों के बाद मोहन-जो-दड़ो वापस लौट कर आये और उन्होंने पुराने खण्डहरों पर नयी इमारतों की नींव डाली। किन्तु जब वह बाढ़ से तङ्ग होकर अन्तिम बार भागकर गये तो उसके बाद फिर कभी नहीं लौटे। मालूम होता है कि उन्होंने कोई दूसरा शहर आबाद कर लिया और फिर धीरे धीरे स्वय सिन्ध से लेकर बगाल तक फैल गये और अपनी सस्कृति को फैलाया।

आधुनिक इतिहासज्ञों का यह कहना है कि आर्य लोगों की दो जातिया भारत में आकर बसी। एक तो लम्बे सिर वाले आर्य, जिनके नमूने हमें पञ्जाबियो, जाटों और अफगानों मे मिलते हैं और जिस श्रेणी में भारत के ऋषि लोग भी थे। दूसरे वे ऊँचे मस्तक वाले लोग हैं जिनके नमूने हमे सिन्धी, गुजरातियों, मराठों और बगालियों में मिलते हैं। यही लोग भारतवर्ष मे पहले आये और इन्होंने ही सिन्ध की उपत्यका को आबाद किया। सम्भवतः यही लोग मोहन-जो-दड़ो की सभ्यता के सस्थापक थे।

मोहन जो दड़ो की सस्कृति और भारत की आजकल की सस्कृति पर एक दृष्टि डालते हुए हम इस आश्चर्यजनक नतीजे पर पहुँचते हैं कि न तो मोहन जो दड़ो के लोग ही नष्ट हुए हैं और न उनकी सस्कृति ही नष्ट हुई है। मोहन जो-दड़ो निवासी और उनकी पुरातन सस्कृति हमे आज भी भारत के विविध भागो मे दिखाई देती है। आर्यों और पुरातन आर्यों के सम्बन्ध से एक नयी सभ्यता का जन्म हुआ। जिसे हम हिन्दू सभ्यता कहते हैं।

(विश्ववाणी से)

नोट—इस लेख की कतिपय बाते हमारे वास्तविक इतिहास के विरुद्ध जाती हैं फिर भी लेख पठनीय है।

श्रद्धा

(ले०—श्री वेदराज जी वेदालकार)

श्रद्धा में वह असीम शक्ति निहित है जिसके बल पर आदमी सात भुवनों का भार भी उठा लेता है। श्रद्धा की एक छोटी सी चिनगारी आशकाओं के पहाडों को भस्मसात् करती हुई चली जाती है, श्रद्धा का सूर्य उदय होते ही सन्देह के बादल फट जाते हैं। यह श्रद्धा का ही जहाज है जो तूफान की थपेडों मे भी अपनी मन्जिल तै करता हुआ आगे बढता जाता है—इसीलिए श्रद्धा की इतनी महिमा गाई गई है।

श्रद्धा वह सुनहली उषा है जिसका उदय पूर्ण ज्ञान के दिन से पहले होता है। श्रद्धा के बिना शक्ति की प्राप्ति और हृदय का पूर्ण सरक्षण असम्भव है। श्रद्धावान् पुरुष आफतों की घनघोर घटा मे भी विद्युत् की तरह मुस्कराता है। उसका मार्ग कितना ही दुर्गम और बीहड क्यों न हो, उसे अपने प्यारे प्रभु से सीधी प्रकाश की रेखा आती हुई नजर आती है।

ऐ भोले मानव ! जब तक तेरे हृदय का कोना २ श्रद्धा के दीप के प्रकाश से जगमगा नहीं जाता तब तक पूर्ण शान्ति असम्भव है। अपने भगवान् मे अखण्ड विश्वास रखता हुआ श्रद्धावान पुरुष, भगवान् के प्रति अपने को समर्पित कर देता है। मानवीय जीवन और विश्व की प्रत्येक घटना मे वह अपने प्यारे की लीला देखता है इसीलिए दु खी नहीं होता।

जब तक आत्मा का फूल श्रद्धा के जल से अभिषिक्त न हो, वह मुरझा जाता है, उसकी पखुडिया टूट जाती हैं।

सारे विश्व के घटनाचक्र के पीछे कार्य करता हुआ एक अदृश्य हाथ है जिसे केवल श्रद्धावान् पुरुष ही देख सकता है। जीवन मे श्रद्धा का उदय होते ही जीवन की धारा बिलकुल बदल जाती है और पुरुष परमात्मा मे अपना अस्तित्व खो देता है—

मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे।
बाक़ी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे॥

साहित्य समालोचना तथा प्राप्ति स्वीकार

१—'श्री वीर गीता' (हिन्दी)

लेखक व प्रकाशक—श्री० पं० रामचन्द्र शर्म्मा भारद्वाज, एम०ए० एल०एल०बी०, रामचन्द्र भवन, मुलतानी ढाडा, नई देहली। मूल्य ॥)

२—सत्ययुग मीमांसा अर्थात् चेतावनी खंडन (हिन्दी)

लेखक व प्रकाशक—श्री चन्दूलाल वर्मा 'चन्द्र', चन्द्र कार्यालय भिवानी।

मूल्य ।–)

३—स्वदेश दर्शन (हिन्दी)

लेखक व प्रकाशक—श्री रामप्रताप उपनाम 'राम', ग्राम व पो० झोझू कला रियासत झींद (पंजाब) मूल्य ॥–)

4—The Menace of Pakistan and How to fight it

By—G. V. Ketkar Editor Mahratta Poona,
Price As 2 only.

5—Abdulla Ismail Kajee

By—Bhawani Dayal Sanyasi, Pravasi Bhawan, Adarsh Nagar, Ajmere. Price 1 Shilling.

६—संध्या विनय अथवा पूजा के पुष्प

लेखक—श्री नित्यानन्द वेदालङ्कार बी० ए० (आनर्स), प्रकाशक श्री गोविन्दराम हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, नई सड़क, देहली। मूल्य ।=)

७—महर्षि दयानन्द सरस्वती

लेखक व प्रकाशक—श्री महेश प्रसाद मौलवी, आलिम फाज़िल, आलिम फाज़िल बुक डिपो, इलाहाबाद सिटी। मूल्य १)

पुस्तक बहुत उपयोगी है। आर्यसमाज के इतिहास के लिये इससे बहुत सहायता ली जा सकती है। प्रत्येक घटना का तिथि क्रम तथा तत्सम्बन्धी सामयिक ऐतिहासिक घटना को लिखकर उस समय की परिस्थिति पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला है। श्री स्वामी दयानन्दजी महाराज ने जिन पुस्तकों को पढ़कर मतमतान्तर के सिद्धांतों तथा सिद्धांत ग्रन्थों की समालोचना की है उनका अन्वेषण तथा वर्णन करके ग्रन्थकार ने श्री स्वामी जी कृत समालोचनाओं के समझने के लिये बहुत सुविधा कर दी है। पुस्तक गवेषणापूर्ण और बहुत परिश्रम से लिखी गई है।

आर्य समाज का भक्त

श्री हाजी अल्ला रखीया रहीम तुल्ला जी मुंबई

हाजी साहिब कच्छ के रहने वाले थे और मुम्बई में सोने का व्यापार किया करते थे। आप धार्मिक दृष्टि से आर्यसमाजी थे और सर्वदा कहा करते थे कि संसार में धर्म वैदिक धर्म ही है। वह आर्यसमाज के सत्संग में नियमपूर्वक आया करते थे और आर्यसमाज के सिद्धान्तों से अभिज्ञ थे।

मुझे श्री नन्दकिशोर चौबे ने बतलाया कि एक बार एक स्नातक ने कहा किसी ने कुछ पूछना हो तो पूछ ले। तब हाजी जी ने एक प्रश्न किया स्नातक जी ने उसका उत्तर दिया। तब आपने कहा यह उत्तर ठीक नहीं है। स्नातक जी ने कहा ठीक है। हाजी जी ने सत्यार्थ प्रकाश मँगवाया और दिखाया जो कुछ वह कहते हैं वह ठीक है। पुस्तक देख कर उनका मत ठीक होने पर आर्यसमाजी लज्जित हुए। हाजी जी ने कहा आपने तप किया है जंगल में रहे हैं और गुरुओं के पास रहे हैं परन्तु आपने ऋषि दयानन्द लिखित वैदिक सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त नहीं किया।

आप सर्वदा विद्यार्थियों को पुस्तकें और छात्रवृत्ति दिया करते थे। निर्धनों को सहायता आपसे प्राप्त होती थी।

कोई कहता था कि आप शुद्ध क्यों नहीं होते तो आप उत्तर दिया करते थे मैं अशुद्ध नहीं हूँ।

आप आर्यसमाज में कई बार अपने पुत्रों को भी लाया करते थे। आपने मरते समय पुत्रों को धन देकर लाखों का ट्रस्ट बनाया जिससे छात्रों को सहायता और रोगियों की चिकित्सा की जायगी।

आर्यसमाज ने जब मन्दिर के पिछले भाग में मकान बनवाया और वह बन कर तैयार हो गया तब श्री विजयशंकर जी प्रधान ने साप्ताहिक सत्संग में कहा कि इस मकान के बनवाने में आर्यसमाज पर ऋण हो गया है। अब अन्य कार्यों के साथ २ आर्यसमाज को यह ऋण भी उतारना होगा। आपने उठ कर पूछा कि आर्यसमाज पर ऋण कितना है तो प्रधान जी ने कहा ५०००) है। आपने कहा मेरी दुकान से आकर ले लो। वह गए। आपने प्रधान जी को ५०००) का चैक दे दिया। उस मकान पर जो शिला लगाई गई है जिस पर दानियों के नाम हैं उसमें सब से प्रथम हाजी जी का ही नाम है।

आपके नाम से प्रत्येक उनको वैदिक धर्मी नहीं समझ सकता है। परन्तु हाजी अल्लारखीया रहीमतुल्ला जी उतने ही वैदिक धर्मी थे जितना कि कोई वैदिक धर्मी हो सकता है।

—स्वतन्त्रानन्द

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद्

परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक

कुछ महत्वपूर्ण प्रस्ताव

अखिल भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक ता० २६-१२-४१ को डा० परमात्माशरण एम० ए०, पी० एच० डी० के सभापतित्व में हुई। जिसमें निम्न प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुआ:—

"यह सभा सिनेमा फिल्मों के वासनामय दृश्यों को देश के नवयुवकों के चरित्र निर्माण के लिये अत्यन्त हानिकारक समझती है और नवयुवकों से अनुरोध करती है कि वे ऐसी फिल्मों का बहिष्कार करें। साथ ही यह सभा फिल्म-कम्पनियों से साग्रह अनुरोध करती है कि विदेशी कम्पनियों की तरह से वे भी भारतीय नवयुवकों और बच्चों के लिये साहसपूर्ण, निर्दोष, मनोरंजक और शिक्षाप्रद फिल्में तैयार करें।"

भारतीय विद्यार्थियों में, भारतीय संस्कृति की भावना भरने और देशाटन और पर्यटन द्वारा शिक्षा देने, तथा नियमित और साहसी जीवन की आदत डालने के लिये १५ मई से १५ जून तक एक कैम्प रामगढ़ (नैनीताल) में करने का निश्चय किया है और इस सारे कार्यक्रम को बनाने का भार श्री मन्त्री जी आर्यकुमार परिषद् श्री परमेश्वरदयाल विद्यार्थी को सौंपा गया। इस केन्द्र में बड़े २ विद्वान भी निमन्त्रित किये जावेंगे जो कि कुछ चुने हुए विषयों पर विद्यार्थियों को सरल सारगर्भित एवं रोचक व्याख्यान देंगे। बनारस विश्वविद्यालय के इतिहासोपाध्याय डा० परमात्माशरण जी, हिन्दू कालिज के मनोविज्ञान उपाध्याय डा० इन्द्रसेन जी, पं० ज्ञानचन्द जी, आर्य्य सेवक तथा अन्य विद्वान केन्द्र

का संचालन करेंगे। इसके सम्बन्ध में नियमादि शीघ्र तैयार हो रहे हैं, वे मन्त्री परिषद् से प्राप्त हो सकते हैं।

कार्यकारिणी ने यह अनुभव किया कि इस समय आर्यकुमार सभा के अधिवेशनों का जो कार्यक्रम है, वह अपूर्ण है। अधिकतर देखा जाता है कि छोटे कुमारों की समझ में कुमार सभा में होने वाले अधिकांश व्याख्यान नहीं आते। इसी प्रकार कालिज में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को वादविवाद आदि व्यर्थ मे रटने पड़ते हैं क्योंकि अधिकतर कालिजों तथा होस्टलों में वादविवाद और पार्लियामेंट वगैरा होते रहते हैं और आर्यकुमार सभाओं में भी यही कार्यक्रम होने से उनके लिये यह अतिरिक्त काम हो जाता है। तीसरी समस्या उन कुमारों की है जो किसी न किसी धन्धे में लगे हुए हैं। इन सबके लिये अलग २ कार्यक्रम की आवश्यकता को अनुभव करते हुए कार्यकारिणी ने निम्न सज्जनों की एक उप-समिति एक विस्तृत कार्यक्रम बनाने के लिये नियुक्त की है:—

१. श्री प्रो० सुधाकर जी, २. श्री डा० इन्द्रसेन जी, ३. श्री रामकृष्ण खद्दर जी, ४. श्री परमेश्वर दयाल जी (संयोजक)।

कार्यकारिणी की दूसरी बैठक

कार्यकारिणी की दूसरी बैठक ता० २१-१-५२ को श्री डा० युद्धवीरसिंह जी के सभापतित्व में हुई, इसमें श्री इन्द्रनारायण जी के उप-मन्त्री पद से त्यागपत्र दे देने के कारण श्री देवीदयाल जी का नाम इस पद के लिये अन्तरङ्ग सभा में स्वीकारार्थ पेश करने का निश्चय किया गया।

मुरादाबाद की कुमारसभा के पदाधिकारियों और सदस्यों में परस्पर मत-भेद हो गया है, उनका मामला सुलझाने के लिये श्री परमेश्वरदयाल मन्त्री को पूर्ण अधिकार देकर वहां भेजने का निश्चय हुआ।

परिषद की परीक्षाएं

श्रीयुत चांदकरण जी शारदा का वक्तव्य

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् द्वारा संचालित वैदिकधर्म परीक्षाओं के सम्बन्ध में, आर्य प्रतिनिधि सभा राजपूताने के सभापति श्रीयुत् चान्दकरण शारदा ने निम्न वक्तव्य दिया है:—

"भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् द्वारा जो परीक्षाएं प्रचलित हैं, उनके द्वारा महर्षि दयानन्द सरस्वती के मिशन का और परम प्रिय वैदिकधर्म का

प्रचार होरहा है। प्रत्येक भाई बहन का यह परम कर्तव्य है कि वे इन परीक्षाओं में अधिक से अधिक सम्मिलित हों। इनकी पाठविधि अब नये रूप से बन गई है। पहिले से परीक्षाओं के नाम भी सुन्दर रख लिये हैं। श्रीमान् परीक्षा मत्री पं० देवव्रत जी धर्मेन्दु बड़े ही उत्साह से कार्य कर रहे हैं। गत वर्ष ३ सहस्र आर्य भाई-बहिनों ने इन परीक्षाओं में भाग लिया था। आशा है इस वर्ष और भी अधिक संख्या में परीक्षार्थी बैठेंगे।"

परीक्षा सम्बन्धी कुछ आवश्यक सूचनाएं

अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् द्वारा संचालित परीक्षाएं १८ जनवरी व २५ जनवरी को भारत के भिन्न २ केन्द्रों में हो गईं। इन परीक्षाओं में इस वर्ष लगभग २००० विद्यार्थी बैठे हैं। परीक्षाफल अप्रैल के मास में दैनिक हिन्दुस्तान देहली, दैनिक विश्वमित्र देहली, सैनिक आगरा, दैनिक वीर अर्जुन देहली, आर्य मित्र लखनऊ, तथा सार्वदेशिक में प्रकाशित करा दिया जावेगा। परीक्षाफल में परीक्षार्थियों के नाम न देकर केवल रोल नं० ही लिखा जावेगा। अतः सभी परीक्षार्थी अपना २ रोल नं० याद रखें। इसके साथ २ प्रत्येक केन्द्र व्यवस्थापक के पास उस केन्द्र का परीक्षाफल भेज दिया जावेगा। अतः कोई सज्जन इस सम्बन्ध में व्यर्थ का पत्र व्यवहार न करें।

परीक्षा पुस्तकें

आर्य कुमार परिषद् की कार्यकारिणी ने परीक्षार्थियों की सुविधा के लिये अपनी परीक्षाओं की सब पुस्तकें स्वयं रखने का निश्चय किया है। भविष्य में सभी परीक्षार्थी परीक्षा सम्बन्धी सभी पुस्तकें सीधे परिषद् कार्यालय से मँगा सकते हैं। लेखक या प्रकाशक नवीन पाठ्यक्रम में अपनी अपनी पुस्तकों की २-२ प्रतियां परिषद् के कार्यालय मे शीघ्र भेजने की कृपा करें। नवीन पाठ-विधि मार्च के मध्य तक तैयार हो जावेगी। पुस्तकें फरवरी के प्रथम सप्ताह तक मंत्री के पास पहुँच जानी चाहियें।

चारु बलिदान†

(ले०—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक)

महाराज अशोक कलिंग के युद्ध में व्यस्त थे। कलिंग के ४ लाख नर पुङ्गवों की आहुति से भी उनकी क्रोधाग्नि शान्त न हुई थी। कलिंग का केवलमात्र अपराध यह था कि वह अपनी स्वतन्त्रता अक्षुण्य बनाए हुए था। सुख, सम्पदा, ऐश्वर्य्य और वैभव की उस पर विशेष कृपा थी। जावा और सुमात्रा में अपने उपनिवेश स्थापित करके उसने अपने राज-विस्तार और वैभव का परिचय दिया हुआ था। वह अपने को आर्य्यावर्त का सम्राट् मानता और मगध की अधीनता स्वीकार नहीं करता था।

महाराज अशोक की नसों मे पितामह चन्द्रगुप्त का रक्त बहता था जिन्होंने निकेटार सिल्यूकस की प्रचण्ड सेना का नाश किया था और सिकन्दर के राज्य की दिशा बदल दी थी, ऐसे महाप्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त के योग्य पौत्र बनने का आदर्श अशोक के सामने था।

इस युद्ध की भयानकता से मनुष्य ही नहीं वरन् पशु-पक्षी और तृण-पल्लव भी त्रस्त और व्याकुल हो गए थे। पाटलिपुत्र की शक्ति से प्रलय उत्पन्न हो गया था, जो कलिंग को रक्त के सागर में डुबा रहा था।

महाराज अशोक की प्रिय रानी तिष्यरक्षिता भी अपनी दासियो सहित इस युद्ध में उनके साथ रहती थी। चारुमित्रा नाम की एक दासी महारानी की बड़ी प्रिय पात्र थी। यह दासी कलिंग की अधिवासिनी थी और युद्ध प्रारम्भ होने से बहुत पूर्व बाल्यावस्था में महाराज अशोक की सेवा में आई थी। महारानी तिष्यरक्षिता को चित्रकला से बड़ा प्रेम था। वे युद्ध की अशान्त घड़ियों में चित्र बना कर इसी दासी के साथ अपना मन बहलाया करती थीं। उन्हें आशा थी कि यह युद्ध शीघ्र समाप्त हो जायगा और वे पाटलिपुत्र जाकर सुख और शान्ति का जीवन व्यतीत करेंगी। परन्तु उनकी आशाओं के विरुद्ध युद्ध लम्बा होता गया और पूरे २ वर्ष होने पर भी युद्ध की समाप्ति के चिन्ह दिखलाई न पड़े।

एक दिन महारानी युद्ध की अनिश्चितता और भयंकरता से दुखी और व्याकुल बैठी हुई नाना प्रकार के विचार तरंगों में निमग्न थीं। वे कभी महाराज की क्रूरता पर खिन्न होतीं, कभी घायलों और असहायों के करुण चीत्कार का स्मरण कर रो पड़तीं। कभी उन्हें अपनी

† एक ऐतिहासिक कहानी के आधार पर।

असहायावस्था पर झुंझला आती। वे सोचतीं कि महाराज अशोक इतने क्रूर क्यों हो गए हैं ? वे मेरी एक भी नहीं सुनते। मैं रानी न होकर एक साधारण स्त्री होती तो किसी प्रकार आत्म-बलिदान कर महाराज के मन की दशा बदल देती। स्त्री होकर पति के मार्ग की बाधिका बनने का भी मुझ में साहस नहीं है। यदि मैं और कोई उपाय करू तो राजवंश की मर्यादा नष्ट होगी। हमारे पूज्य पितामह सम्राट् चन्द्रगुप्त ने तक्षशिला म शिक्षा पाई थी। आर्य पुत्र भी उसी विद्यालय के विद्यार्थी हैं। अवश्य ही महाराज की क्रूरता और निर्ममता का कारण यही विद्यालय है। मेरा वश चले तो मै इस विद्यालय के भवनों को पृथ्वी में मिलाकर अपने हृदय को शान्त करू । कलिंग म रक्त की नदिया बह निकली हैं। कलिंग के घर फूल की पखड़ियों की तरह गिर रहे हैं। हमारे सुख और शान्ति के जीवन में जहा हँसी का फूल खिलना चाहिए वहा आहें हमारे हृदय को बींध रही हैं। कैसा बीभत्स व्यापार है ? जब मैं महाराज से युद्ध रोकने के लिए अनुरोध करती हू तो वे सदैव यह कहकर मेरे कोमल हृदय को ठेस पहुचाते हैं कि युद्ध का रुकना पाटलिपुत्र की उन्नति का रुक जाना है। किसी राज्य की सीमा तलवार से खिचती है और सीमा को स्थायी रखने के लिए उस रेखा म रक्त का रग भरा जाता है। बौद्ध नेता महात्मा उपगुप्त ठीक कहते हैं कि रणक्षेत्र हृदय को शान्ति नहीं दे सकता। अहकार और ईर्ष्या के नाश से ही मन को शान्ति होगी। ज्ञान अमर है, राज्य क्षण भगुर है। फिर यह युद्ध तो साम्राज्य विस्तार के लिए लड़ा जा रहा है। पितामह चन्द्रगुप्त ने भी तो इसी मार्ग का अनुसरण किया था। फिर महाराज उनके योग्य उत्तराधिकारी बनने का यत्न क्यों न करें। क्योंकि वे भी तो योग्य पितामह के योग्य पौत्र बनना चाहते हैं। पितामह ने भी सम्राट् सिकन्दर से टक्कर लेकर उसके राज्य की दिशा बदल दी थी और उन्होंने कधार और सीमाप्रान्त लेकर आर्य्यावर्त के मुकुट मे कुछ रत्न और जड़ दिये थे।

इसी प्रकार के विचारों में डूबी हुई रानी तिष्यरक्षिता ने मन बहलाने के लिए चारु मित्रा को अपने पास बुलाया और कहा —

"चारु, महाराज ने जब से तेरे देश कलिंग पर चढ़ाई की है तब से उन्होंने सारा राज्य महामात्रों पर छोड़ दिया है। आज २ वर्ष पूरे होने जा रहे हैं परन्तु कलिंग पर उनका क्रोध वैसा ही बना हुआ है। चारु, मैं चाहती हू यह लड़ाई शीघ्र ही समाप्त हो जाय। मैं महाराज से आज लड़ू गी। क्या तू लड़ना जानती है ?"

चारु ने मुस्करा कर कहा—नहीं महारानी जी।

तिष्यरक्षिता ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "पगली, विवाह होने से पहले इसका अभ्यास अवश्य करले। मुझे यह युद्ध अच्छा नहीं लगता। कितने वीरों का रोज खून

होता है । आज जिन वीरों से देश की उन्नति होती वे ही व्यर्थ मर रहे हैं । जो वीर मिट्टी छूकर सोना बनाते वही आज मिट्टी हो रहे हैं ।"

यह सुनते ही चारुमित्रा की आँखों में आसू आ गए । उसने हाथ जोड़कर कहा, "महारानी जी, यह मेरे देश का दुर्भाग्य है ।"

महारानी तिष्यरक्षिता चारुमित्रा को साधारण दासी समझती थीं । दासी के हृदय में भी अपने देश के प्रति ऐसी ममता हो सकती है, इसकी उन्हें कल्पना न थी । उसके हृदय की टोह लेने के लिये उन्होंने पूछा, "तो कलिंग नरेश सन्धि करके युद्ध बन्द क्यों नहीं कर देते ? व्यर्थ ही अपने वीरों को कटवा रहे हैं। मगध की सेना के सामने कौन टिक सकता है ?"

चारुमित्रा ने उत्तर दिया, "महारानी, अभी लड़ाई बहुत वर्षों तक चलेगी । मेरे कलिंग के लोग वीर हैं । वे माता की तरह अपनी भूमि का आदर करते हैं । जब तक एक भी वीर है तब तक तो कलिंग की जयघोष वायु को सहन करता ही रहेगा । महारानी जी, मैं विद्रोह की बातें नहीं कर रही हूँ । मैं अपने देश के गौरव की बातें कह रही हूँ ।"

चारुमित्रा की इन बातों से रानी को आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता हुई । उन्होंने अपना भाव छिपा कर कहा, "तू महाराज की शक्ति का अपमान करती है । तू तो महाराज के साथ विश्वासघात कर सकती है ।"

यह सुनकर चारुमित्रा चुप हो गई । वह सोचने लगी राजनीति की चालें बड़ी बुरी वस्तु हैं । यह अपनों को भी पराया बना सकती हैं । पिता, पुत्र, गुरु, शिष्य, भाई भाई और आत्मीय में भी फूट डालकर एक दूसरे का खून का प्यासा बना सकती हैं । फिर हम तो गुलाम ठहरे । हम पर तो सहज ही अविश्वास और विद्रोह का कलंक लगाया जा सकता है ।

सचमुच गुलाम का कोई धर्म नहीं होता । सच है राजमद मनुष्य को अन्धा बना देता है । उसने विनीत भाव से कहा:—

"महारानी जी, मैंने महाराज अशोक की सेवा उस समय की है जब उनका राज्याभिषेक भी नहीं हुआ था । आपके चरणों की छाया में मैं बड़ी हुई हूँ । जब मैं महाराज की सेवा में कलिंग से आई थी तब तो युद्ध की बात न थी। आज मेरा देश कलिंग संकट में है तो महारानी जी मुझे उसके सम्बन्ध में कुछ कहने की आज्ञा भी नहीं मिलेगी ?"

रानी तिष्यरक्षिता ने उत्तर दिया, "चारु, तुझे पूरी स्वतन्त्रता है परन्तु मैं महाराज का अपमान सहन नहीं कर सकती "

चारुमित्रा ने अपराधी की नाई कहा—संसार में उनका अपमान करने की क्षमता किसमें है ? और मैं तो उनकी आजन्म सेविका हूँ । मैं सेवक के धर्म को जानती हूँ ।"

तिष्यरक्षिता चारुमित्रा के हृदय की उज्ज्वलता से परिचित थीं परन्तु वह हृदय इतना उज्ज्वल होगा यह उन्हें आज तक ज्ञात न था। उन्होंने उसकी परख के लिए इस प्रसंग को बढ़ाना ही उचित समझा। उन्होंने कहा, "चारु' जबसे कलिंग का युद्ध हुआ है तबसे मैं महारानी होकर भी तुझसे डरती हूँ।"

चारुमित्रा ने समझा कि महारानी के हृदय मे मेरे प्रति सदेह और अविश्वास उत्पन्न हो गया है। मेरे लिए यह स्थिति चिन्तनीय है। दासी के प्रति स्वामी के हृदय में और वह भी ऐसी स्थिति में सदेह का उत्पन्न होना साधारण बात नही है, ऐसे जीवन से मर जाना अच्छा है। हठात् उसके मुह से निकल पड़ा—महारानी जी, आप मुझे आत्म-हत्या के लिए प्रेरित कर रही हैं।"

यह उत्तर सुनकर तिष्यरक्षिता एकदम सहम गईं। यह प्रसङ्ग यह रूप लेगा इसकी उन्हें आशा न थी। आज ही उन्हें यह विदित हुआ कि चारुमित्रा के हृदय में देशा-नुराग के साथ २ आत्म सम्मान भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है जो उसकी रक्षा के लिए मनुष्य को भीषण से भीषण कार्य के लिए सन्नद्ध कर देता है। उसने कहा 'चारु, तू तो बुरा मान गई। तू तो मेरे हृदय की सूनी घड़ियों का उल्लास है। तू भी हमसे कभी विश्वासघात कर सकती है? आज मैं महाराज से अनुरोध करू गी कि वे कलिग का युद्ध बद करदें। वीरों को स्वतन्त्र सास लेने देना भी तो दया की क्रूरता पर विजय है, मुझे तो इस विजय पर ही सतोष है।"

चारुमित्रा ने प्रसन्न होकर कहा "महारानी आप देवी हैं।" तिष्यरक्षिता को इस प्रसग में चारुमित्रा से एक प्रश्न का उत्तर लेना शेष रह गया था। उन्होंने पूछा।

"चारु, तू महाराज की तारीफ क्यों नहीं करती। जिन्होंने कलिंग से युद्ध होने पर भी कलिंग देश की सेविका को अपने देश से नही निकाला।"

चारुमित्रा ने उत्तर दिया—"महारानी जी, महाराज अशोक सम्राट् हैं। मेरे यहा रहने से उनका क्या बनता बिगड़ता है।"

इस उत्तर से रानी बड़ी खुश हुईं और चारुमित्रा को अपनी छाती से लगाकर प्रेम करने लगी। इस स्नेहालिंगन से मानो सूखी खेती में जल पड़ गया। उसके नेत्र प्रेमाश्रुओं से प्लावित हो गए। महारानी ने उसे प्रसन्न देखकर कहा—

"चारु, मुझे भी प्रसन्न करो। आओ गोदावरी के इस मूक रम्य वातावरण को अपने नृत्य से संगीतमय बनादो।"

उस दिन चारुमित्रा का नृत्य के लिए मन नहीं करता था। वह सोचती थी कि इस युद्ध भूमि में नृत्य वाद्य से हमें आनन्द मनाने का कोई अधिकार नहीं है। ऐसा करना मयङ्क

और कलिङ्ग के राजाओं और दोनों ओर के वीर गति को प्राप्त होने वाले वीरों का तिरस्कार है। ऐसा करना उन लोगों जैसा हेय काम है जो पड़ोसियों के घर में आग लगने पर आनन्द मनाते हैं। परन्तु सेवक का धर्म बड़ा कठोर है। स्वामी की आज्ञा के सामने सेवक की इच्छा और अनिच्छा कोई अर्थ नहीं रखती। यह सोचकर चारुमित्रा उठी और पैरों में नूपुर बाध कर नृत्य करने लगी।

इधर नृत्य हो रहा था और उधर रानी तिष्यरक्षिता अपना चित्र लिये बैठी थी। बीच २ में यह पद गाती थी

'रे मन, अद्भुत तेरे खेल'।

इस गाने और बजाने का यह समा अधिक देर तक न रह सका। महारानी के कक्ष के बाहर शख ध्वनि हुई और उसने इस आनन्द को भङ्ग कर दिया।

प्रहरी ने आकर सूचना दी कि महाराज महारानी के कक्ष म आ रहे हैं। महाराज के आगमन की सूचना पाकर महारानी चित्र छोड़ कर उठ खड़ी हुई। चारुमित्रा ने भी नृत्य बन्द कर दिया और अपने पैरों में से नूपुर निकालने लगी। एक पैर का नूपुर किसी वस्तु मे अटक गया और जल्दी में वह निकाला न जा सका। इतने में ही महाराज अशोक महारानी के कक्ष में आ गये। महारानी और दासी ने उन्हें सादर अभिनन्दन किया। महाराज आज की विजय से बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने चारुमित्रा को महारानी के ऊपर पुष्पवर्षा करने की आज्ञा दी। चारुमित्रा ज्यों ही आगे बढ़ी त्यों ही उसके पैर में बँधे हुए नूपुर से शब्दध्वनि हुई। महाराज एकदम चौक गये। सग्रामभूमि म रगभूमि। यह कभी नहीं हो सकता। चारुमित्रा ने पृथ्वी पर बैठ कर कहा—"महाराज, क्षमा चाहती हूँ?"

इस क्षमा याचना का अशोक जैसे निष्ठुर राजा पर कोई प्रभाव न पड़ा। उन्होंने समझा कि चारुमित्रा मेरे युद्ध के उत्साह मे कोमलता भरना चाहती है। उन्होंने कहा, "मेरी युद्ध भूमि में केवल भैरवी का नृत्य हो सकता है। चारुमित्रा का नहीं?"

चारुमित्रा ने कहा, "महाराज? मुझे कुछ निवेदन करने की आज्ञा हो।"

अशोक ने कहा, "मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। उस भैरवी नृत्य में तलवारों का सगीत होगा।"

चारुमित्रा ने विनम्र भाव से कहा, "तो महाराज मुझे दण्ड दीजिए?"

चारुमित्रा के इन शब्दों को महाराज अशोक ने ढिठाई समझा। उनके हृदय में चारुमित्रा के प्रति अविश्वास का जो अकुर उत्पन्न हो गया था वह इस व्यवहार से और भी दृढ़ हो गया। उन्हों ने कहा—

"तू इस नीति से मुझे युद्ध करने से रोकना चाहती है। कलिंग से उत्पन्न शरीर कलिंग का ही साथ देगा। विश्वासघातिनी ! चारुमित्रा !!"

चारुमित्रा ने इस भर्त्सना का कोई उत्तर न दिया। वह नतमस्तक हो बैठ गई। महाराज अशोक ने प्रहरी को बुलाकर कहा, "चारुमित्रा जलते हुए अंगारों पर नाचना चाहती है। आग तय्यार है।"

तिष्यरक्षिता महाराज के क्रोध को जानती थी। अशोक अपराधी को क्षमा करना नही जानते थे। अनिष्ट की आशका से उनकी आत्मा काप गई। उन्होंने स्नेहस्निग्ध स्वर मे कहा, 'महाराज चारु, निर्दोष है। मेरी ही आज्ञा से उसने नृत्य किया था।'

अशोक ने कहा, 'यह मैं नही मान सकता। यह तुम्हारे द्वारा मुझमें कोमलता का संचार करना चाहती है। मै देख रहा हूँ तुम्हारे स्वभाव को उसने दया से भर दिया है।

तिष्यरक्षिता ने ठंडी सास लेकर कहा, "महाराज दया करना तो स्त्री का स्वाभाविक गुण हैं। चारु मुझे दया से क्या भर सकती है। यह निरपराध है। उसने मेरी आज्ञा का पालन ही तो किया है। उसे क्षमा करे।"

अशोक ने चारु को सबोधन करके कहा, "चारु, मैंने किसी को भी अपराध करने पर क्षमा नहीं किया। किन्तु इस समय क्षमा करता हूँ। अच्छा तो तुम्हारा नृत्य भैरवी नृत्य बन कर मगध की विजय के लिए युद्ध में हो। और यदि ऐसा न कर सको तो फिर यह नृत्य अपने कलिंग के कटते हुए वीरों के रुण्डों और मुण्डो के लिए रहने दो।"

इस व्यग से चारुमित्रा के कोमल हृदय को ठेस लगी। उसने रोकर कहा—"जो आज्ञा महाराज की।"

यह कहकर वह अपने कक्ष में चली गई।

तिष्यरक्षिता ने महाराज को सादर बिठाकर अपना चित्र दिखाया। महाराज का मन खिन्न था। महारानी के कोमल हाथो से बनाया हुआ चित्र भी उन्हें शान्ति न दे सका। महारानी को इसका कारण समझते हुए देर न लगी। उसने कहा—

"महाराज! चारु सचमुच निरपराध था। चारु के सम्बन्ध मे अविश्वास को मन मे स्थान देना ठीक नहीं है। वह आपकी सेविका है। आपके ही चरणों की छाया मे वह आपकी कृपा के जल से बढ़ी हुई है।"

महाराज अशोक को इससे भी शान्ति न हुई। उन्होंने कहा—

"देवी मैं अपने शिविर मे शत्रु पक्ष के किसी व्यक्ति को अब रहने की आज्ञा नहीं दे सकता। आज युद्ध से लौटते समय कुछ व्यक्ति मुझे प्रणाम कर रहे थे। मुझे उनके प्रणाम में चारु का प्रणाम देख पड़ा है। यदि इस समय चारु नृत्य न भी करती तो भी मैं उसे दण्डित करता ही।"

तिष्यरक्षिता ने रोकर कहा—"वह बेचारी कहा जायगी ?"

राजनीति तिष्यरक्षिता नहीं है जो दया से तरल हो जाय। परन्तु आज तुम्हारे कहने से मैंने राजनीति को स्त्री का हृदय बना दिया।"

तिष्यरक्षिता ने महाराज के चरण छूकर कहा 'आपकी कृपा! अब विश्राम कीजिए।'

* * *

महाराज अशोक विश्राम के लिए अपने कमरे म चले गये। रानी तिष्यरक्षिता की आँखों से मानों नींद उचट गई थी। वह कई पहर रात तक अकेली बैठी कुछ सोचती रही। इतने में ही महात्मा उपगुप्त ने महारानी के कमरे में प्रवेश किया। महात्मा को देखकर तिष्यरक्षिता उठी और अभिवादन करके कहा—

"महाराज! अब शीघ्र चले आइये। आप से एक प्रार्थना है कि आज मेरी दासी चारु मित्रा बड़ी दुखी है। महाराज का उस पर से विश्वास उठ गया है इसलिए कि वह कलिंग से उत्पन्न है।"

आचार्य ने कहा—"तब तो उसके लिए उचित है कि वह महाराज की सेवा और भी संलग्नता के साथ करे। सन्देह को सेवा से नष्ट करदे। वह इस समय कहाँ होगी ?"

तिष्यरक्षिता ने कागज पर कुछ लिखकर आचार्य को दिया। उसे पढ़कर आचार्य ने कहा—

"महाराज के बाहरी शिविर में मैं उससे मिलता जाऊँगा। यदि अवसर हुआ तो महाराज से भी भेंट करूँगा। उसे सन्तोष और शान्ति देकर सब को चला जाऊँगा।"

तिष्यरक्षिता ने चरण छूकर कहा—"महाराज बड़ी कृपा होगी।"

यह सुनकर आचार्य उपगुप्त वहाँ से बाहरी शिविर को चले गये।

* * *

चारुमित्रा हृदय के बोझ को हल्का करने के लिए गोदावरी के तट की ओर बढ़ी चली जा रही है। उसका हृदय दुखी है। गोदावरी की उत्ताल तरङ्गों मे अपने हृदय को निमग्न करके वह उसे शान्ति देना चाहती है। वह सोचती थी कि महाराज अशोक मनुष्यों के हृदयों को पहचानना भूल गये हैं। राजमद है ही ऐसा अन्धा। यह मनुष्य को अन्धा बनाकर उसकी सद्वृत्तियों को भी अन्धा बना देता है। इन्हीं विचारों में डूबी हुई चारुमित्रा अशोक से आज्ञा लेने के लिए बाहिरी शिविर में गई जहाँ महाराज अशोक मीठी नींद ले रहे थे। उसने देखा कि कलिंग के कुछ सैनिक मगध के सैनिकों के वेश में घूम रहे हैं। चारुमित्रा को उनपर सन्देह हुआ। उसने उनसे बातें करके जान लिया कि ये कलिंग के सिपाही हैं। चारुमित्रा ने उन्हें धिक्कारते हुए कहा 'कायरो तुम मेरे देश कलिंग को कलंकित

करने वाले हो। यदि महाराज अशोक को मारना है तो युद्ध मे तलवार लेकर क्यों नहीं आते। यहा चोरों की तरह घुसकर एक वीर पुरुष से छल करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती।"

उन सैनिकों ने कहा—"देवी तू कलिंग की निवासिनी है? क्या कलिंग के प्रति तेरा कोई कर्तव्य नहीं है? यदि महाराज अशोक आज ससार से विदा कर दिये जाते हैं तो विजय श्री हमारी ही है। आज कलिंग की अनेक माताओं के हृदय के टुकड़े उनसे बलात् छीन लिये गये हैं। आज कलिंग की असख्य पत्नियों के सुख सुहाग लुट गये हैं। क्या तुम्हें उन पर दया नही आती। क्या कलिंग क प्रति तेरा कोई कर्तव्य नहीं है? एक सैनिक ने अशर्फियों की एक थैली देकर चारु से कहा, "लो मौज करो।"

चारुमित्रा ने कहा—"मैं अपना कर्तव्य जानती हू। मै अपने स्वामी से विश्वासघात नही कर सकती। मैं जितना आदर देशभक्ति को देती हू उतना ही स्वामी भक्ति को।"

यह कहकर उसने उन सैनिको को हट जाने के लिए ललकारा। जब वे नहीं हटे तो कक्ष में टॅगी हुई महाराज अशोक की तलवार लेकर उसने उन सैनिकों पर आक्रमण कर दिया। दो सैनिक तो घायल होकर भाग गए परन्तु एक सैनिक की तलवार चारु के कन्धे पर लगी और वह गिर पड़ी।

उसी समय आचार्य उपगुप्त वहाँ पहुंच गए। चारु ने अचेत होने से पहले यह सारी कथा आचार्य को सुनादी और फिर अचेत हो गई। आचार्य उपगुप्त ने चारु मित्रा के मृत शरीर को अपने हाथों से उठाया। इतने म ही आहट पाकर द्वार रक्षक अनेक सैनिक वहा पहुच गये और चारुमित्रा को उस अवस्था म देखकर शिविर में कोलाहल मच गया। महाराज अशोक एक दम उठ बैठे। कोलाहल का सुनकर महारानी भी बाहरी शिविर की ओर दौड़ीं और पूछा यह कैसा कोलाहल है। चारु, चारु, क्या हुआ? अभी प्राण शेष हैं, कहा चोट लगी है। यह कैसे हुआ? शान्त, शान्त, यह कोलाहल और भी जोर पकड़ने लगा।

महाराज अशोक ने आगे बढ़कर देखा कि आचार्य उपगुप्त चारुमित्रा के शव को हाथ में लिए आ रहे हैं। यह एकदम स्तभित रह गए। रानी तिष्यरक्षिता यह दृश्य न देख सकी और 'हाय शब्द' करके चारुमित्रा से चिपट गई। महाराज अशोक के पूछने पर महाराज उपगुप्त ने चारुमित्रा के बलिदान की समस्त कहानी सुनादी। उसके बलिदान की कथा सुनकर महाराज अशोक की आँखों से आसुओं की धारा बहने लगी और उनके मुँह से 'धन्य' शब्द निकल पड़ा।

आचार्य उपगुप्त के हाथों में कलिंग नरेश ने सन्धि पत्र देकर सन्धि का पूर्ण अधिकार दे दिया था। उन्होंने सन्धि पत्र अशोक को देकर कहा—

महान क्रान्तिकारी ऋषि दयानन्द

(ले०—श्री ला० दीवानचन्द्र जी बी. ए. एल. एल. बी. वकील उपमन्त्री सार्वदेशिक सभा)

ऋषि दयानन्द की मेधा बुद्धि अपूर्व थी। भारत मे शिवरात्रि को सैकड़ों बालक शिव की पूजा करते हैं। असख्य हिन्दू नर-नारी रात को शिव मन्दिरों मे जागरण करते हैं। परन्तु न्यूटन (Newton) की तरह (जिसने पेड़ पर से एक सेव गिरने पर भूमि की आकर्षण शक्ति के अटल सिद्धान्त पर अपने गूढ़ विचार प्रकट किये) आपने कैसे मूर्त्ति पूजा को ऐसी बाल अवस्था में केवल शिव लिंग पर मूसे को देख कर एक ढकोसला जान लिया, यह आपके पूर्व जन्म का ही आविष्कार था। इसके पीछे आपके चचा तथा भगिनी के स्वर्गारोहण पर आपके कोमल हृदय पर ऐसी ठेस लगी कि आपने इस असार संसार के सारे

"यह सन्धि-पत्र लो, जिसके लिए तुमने कलिंग की भूमि को रक्त से रंजित किया है। बोलो अब प्रसन्न हो। परन्तु इस सन्धि पत्र से अधिक मूल्यवान चारु का बलिदान है।"

महाराज अशोक ने गर्दन नीची करके कहा—"निश्चय ही चारु अमर हो गई है। इस बलिदान ने मेरी आखें भी खोल दी हैं। अत्याचारी अशोक ने युद्ध को सदैव के लिए छोड़ दिया है।"

जिस प्रकार एक कलाकार अपनी कला की सफलता पर प्रसन्न होता है उसी प्रकार आचार्य उपगुप्त अपने प्रयत्नों की सफलता पर प्रसन्न हुए। उन्होंने महाराज अशोक को आशीर्वाद देकर उनकी जय का शब्द किया।

इसी क्षण चारुमित्रा ने बेहोशी दूर होने पर करवट बदली और महाराज अशोक की ओर देखकर हाथ जोड़कर कहा—

"महाराज क्षमा करें। आपकी आज्ञा थी कि मगध की ओर से तलवारों के साथ भैरवी नृत्य सीखूँ। पूरी तरह नहीं सीख सकी।"

अशोक ने रोते हुए कहा—"चारुमित्रा, तू पाटलिपुत्र की शोभा है, उसके गौरव की विभूति है।"

चारुमित्रा ने उत्तर दिया—"महाराज आग के अंगारों पर नाचने का अवसर तो आपने नहीं दिया, अब मैंने अंगारों पर अपनी देह रखने का अवसर आपसे मांग लिया। देवी तिष्यरक्षिता! आप क्षमा करना।"

तिष्यरक्षिता ने चारुमित्रा के हाथ को पकड़ कर चूमा और कहा—"मेरी चारु तू अच्छी हो जायगी।" उसी समय चारुमित्रा का श्वास अत्यन्त तीव्रगति से चलने लगा।

उसने कहा—"नहीं देवी! आप और महाराज सुख से रहें।"

यह कहकर चारुमित्रा अनन्त की गोद में विलीन हो गई। अशोक और तिष्यरक्षिता अवाक हो चारुमित्रा की ओर देखते रह गये।

प्रलोभनों पर लात मार कर आजीवन ब्रह्मचारी रहने का दृढ़ संकल्प किया, जिससे कि आप मृत्यु के कारण और अमृतमय प्रभु की खोज में सफल हुए।

संसार के इतिहास में ऐसे दृढ़ व्रत धारी बहुत कम मिलते हैं, परन्तु जो हैं वह संसार में एक असीम क्रान्ति लाने में समर्थ होते हैं। स्वामी शंकराचार्य, महात्मा बुद्ध तथा ईसा जैसे देवता कितने हुए जिनके पीछे आज भी संसार चलते हुए गर्व करता है।

जब स्वामी जी का जन्म हुआ उस समय दक्षिण में मरहठों का साम्राज्य शनैः शनैः ईस्ट इण्डिया कम्पनी के नीतिज्ञ अधिकारियों के हाथों में जा रहा था। हिन्दू जाति, ईसाइयों तथा मुसलमानों का ग्रास बन चुकी थी। बड़े बड़े लार्ड पादरी सारे हिन्दुओं को तीन सौ वर्षों में अपने अनुयायी बनाने के स्वप्न देख रहे थे। हिन्दू धर्म का गौरव और हिन्दू साम्राज्य की भावना मिट चुकी थी। इस्लाम के अनुयायी कुम्भकरण की नींद में सोये हुए थे। ऐसे ही संकट के समय में स्वामी जी ने मृत प्रायः हिन्दू जाति में एक क्रान्तिकारी आन्दोलन आरम्भ किया। यदि आप गूढ़ दृष्टि से देखें तो आपको प्रतीत होगा कि ऋषिवर क्रान्ति के देवता थे।

आपने सोये हुए भारत में मानसिक, सामाजिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता समानता और भ्रातृभाव का ऐसा विचित्र रीति से प्रचार किया जिससे इस जाति के शत्रुओं की आंखें चकाचौंध हो गईं और संसार के बड़े बड़े विद्वान् और गम्भीर विचारवान् प्रभावित हुए।

अमरीका के योगी ऐण्ड्रो डेविड जैकसन (Andrew David Jackson) ने आपके आन्दोलन पर लिखा था कि ऋषि दयानन्द ने भारत में एक ऐसा अग्निकुण्ड प्रज्वलित किया है, जिसे ईसाई, मुसलमान और दूसरे धर्मावलम्बी बुझाने का यत्न करते हैं। परन्तु इनके विपरीत प्रयत्नों से वह अग्निकुण्ड अधिकाधिक प्रचण्ड होता जाता है।

स्वामी जी के प्रादुर्भाव से पूर्व हिन्दू ब्राह्मणों के दास थे। "ब्रह्मवाक्यं जनार्दनं" यही उनका धर्म था। ब्राह्मणों ने अपने आपको 'अहं ब्रह्म' का पाठ करते हुए अपने दूसरे भाइयों को शूद्रातिशूद्र अछूत और चाण्डाल बना कर इस जाति के टुकड़े टुकड़े करके सदैव के लिये दूसरों का दास बना दिया।

भारत की जनता शायद पिछले युगों में कभी ३० करोड़ न हुई हो, परन्तु उसके लिये ३३ करोड़ देवता बना दिए। संस्कृत पुस्तक का हरएक श्लोक हिन्दुओं का धर्म बन गया। परिणाम यह हुआ कि इस जाति में मूर्त्ति पूजा, सर्प पूजा, पशु पूजा,

धन पूजा और पीर पूजा प्रारम्भ हो गई। सवर्णों के अत्याचार ने तथा सामाजिक कुरीतियों ने असख्य नर-नारियों को ईसाई और मुसलमान बनने पर बाधित किया।

वेद के एक मन्त्र मे 'योनिमग्रे' को 'योनिमग्ने' बना कर सती की कुप्रथा को चलाया गया। ऐसी अन्धेरी रात्रि मे दयानन्द ने चन्द्रमा की तरह दर्शन देकर स्वतन्त्रता, समानता तथा प्रेम का सिहनाद बजाया।

आर्य जाति मे वेदामृत से एक नया जीवन सचार किया। जाति में नया जीवन लाने के लिये आपकी योजना सक्षेप मे निम्नलिखित है।

(१) देवी देवताओं को त्याग कर वेदानुसार एक परमात्मा की पूजा समष्टि भाव से मिल कर जाति को एक केन्द्र मे सगठित तथा सुरक्षित कर सकती है।

(२) जन्म जाति के अभिमान को दूर कर केवल मात्र गुण कम स्वभावानुकूल वर्णाश्रम मर्यादा से सब भेद-भाव मिट कर समानता व भ्रातृभाव से संगठन दृढ़ होगा।

(३) बाल विवाह, वृद्ध विवाह और अनमेल विवाह तथा दूसरी कुरीतियों को दूर करके जाति के नवयुवक ब्रह्मचारी तथा दृढ़व्रती बनेंगे। ५० साल से ऊपर विद्वान् सदाचारी यदि घर से बाहर निकल कर वानप्रस्थी और सन्यासी बने तो जैसे पतझड़ के पीछे वसन्त अपने आप आजाता है ठीक उसी तरह श्रेष्ठ विद्वानों के तपोबल से जातीय जीवन में एक नयी लहर नया रस पैदा होगा। जिससे भारत ससार मे पहिले की भांति संसार का गुरु बनेगा।

(४) इस जाति की दासता मुसलमानों के आक्रमणों से आरम्भ हुई थी। हिन्दू मुसलिम एकता पर जितना जोर महात्मा गांधी ने दिया है उसी गति से वे हम से दूर जारहे है। स्वामी दयानन्द एकता का रूप केवल मात्र शुद्धि ही में मानते थे। हिन्दू मुसलिम एकता के स्वप्न को छोड़कर वे समथ रामदास और महाराजा शिवाजी की तरह आर्य जाति मे केन्द्रीय संगठन पर जोर देते थे। इसी वास्ते आपने अपना जीवन राजपूताना के राजपूत वीरों के अर्पण किया। महाराजा जोधपुर को वैदिक राजनीति सिखाते हुये हलाहल विषपान किया। स्वामीजी का वैदिक अमृत का योग आर्य जाति, देश तथा धर्म के सारे रोगों के निवारण के लिए एक ही सर्वौषधि है। किसी दूसरी औषधि की आवश्यकता नहीं।

आर्य समाज के नेताओं का कतव्य है कि वे आय हिन्दू जनता को सीधे और सरल मार्ग पर ले आवे। इस मार्ग से भटकने से आर्य समाज की हानि है।

आज तो जंग भारत के दरवाजे पर आगया है इस समय आर्य समाज की सारी शक्ति को केन्द्रित करके आर्य हिन्दू जनता को सिविल डिफेन्स के लिए तैयार करना चाहिए और वेद प्रचार का काय ग्रामों में वीर राजपूत, जाट, अहीर, गूजर आदि जातियों में करना चाहिये।

हैदराबाद में हमारा काम

श्री म० कृष्ण जी बी० ए० ने उपर्युक्त शीर्षक मे 'प्रकाश' मे एक लेख लिखा है उसका सार 'सार्वदेशिक' के पाठकों के लाभार्थ यहाँ दिया जाता है:—

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी अभी अभी हैदराबाद का भ्रमण करके लौटे हैं। सत्याग्रह के पश्चात् से हैदराबाद राज्य मे आर्य्य समाज का बहुत काम हो रहा है। कई सौ नई आर्य समाजे बन गई हैं। परन्तु सब समाजों के अपने मन्दिर नहीं हैं। उनमें अधिक सख्या ऐसी है जो अपने सत्सङ्ग किराए के मकानों में लगाती हैं और मैं अपने भाईयों को यह बताने की जरूरत नहीं समझता कि कोई आर्य्य समाज उस समय तक स्थिर और सुरक्षित नही समझा जाता जब तक कि उसका अपना मन्दिर न हो।

हैदराबाद राज्य में आर्य समाज के मन्दिर इतने कम क्यों हैं? बड़ा कारण तो निर्धनता है। वह हैदराबाद सत्याग्रह से पूर्व थी और अब भी है। इसीलिये सार्वदेशिक सभा ने आर्य्य पुरुषों से अपील की थी कि वह हैदराबाद के आर्य्य मन्दिरों के लिए धन दें। वहां ३ प्रकार के मन्दिरों के बनाए जाने की तजवीज है। छोटे मन्दिरों पर ५००) रु० व्यय किया जायगा। और बड़े मन्दिरों पर २०००) रु० तथा तीसरी श्रेणी के मन्दिरों पर १०००) व्यय किया जायगा। बहुत से सज्जनों ने वचन दे रखे हैं। उसमे से कई सज्जन अपना वचन पूरा कर चुके हैं। और उनके धन से राज्य मे समाज मन्दिर बन भी चुके है। परन्तु ज्यों २ नई आर्य्य समाजें कायम होती जाती है त्यों २ मन्दिरों की आवश्यकता बढ़ती जाती है। अतः जहाँ यह आवश्यकता है कि जिन सज्जनों ने अपने वायदे का धन नहीं दिया वे शीघ्र से शीघ्र देने की कृपा करें, वहां नए वायदे भी इतने चाहिएँ जिससे हैदराबाद स्टेट में अधिक से अधिक समाज मन्दिर बन सकें। सत्याग्रह से पूर्व समाज मन्दिरों के निर्माण मे एक और रुकावट थी और वह यह कि जहां अँग्रेजी इलाके में मन्दिरों के नक्शे म्यूनिसिपैलिटियां स्वीकार या रद्द करती हैं वहाँ रियासत में नक्शे मन्जूर करने का काम सीगए अमूरे दीनी के सुपुर्द था। यह महकमा एक प्रकार से २-३ मौलवियों का एक महकमा था जो यथासम्भव मन्दिर न बनने देता था। वैसे तो गिरजों और मस्जिदों की स्वीकृति भी इसी के हाथ थी परन्तु इसकी क्या मजाल कि वह किसी गिरजे की स्वीकृति न दे। मस्जिदों की स्वीकृति न देने का प्रश्न ही नहीं उठता। यदि किसी मस्जिद के निर्माण की स्वीकृति न दें तो कुफ

का फ़तवा अपने ऊपर लें। इसलिए नज़ला गिरता था तो आर्य्य और हिन्दू मन्दिरों पर। आर्य्य समाज सुल्तान बाजार हैदराबाद के मन्दिर को छोड़कर जितने भी आर्य्य मन्दिर राज्य मे खड़े किए गए वे बगैर महकमे दीनयात की मजूरी के। परन्तु आर्य्य समाज ने जिन शर्तों पर सत्याग्रह बद किया उनमें से एक यह थी कि हिन्दुओं के नक्शे मन्जूर करना सीगए अमूरे दीनी के अधीन न होगा बल्कि जिस प्रकार ब्रिटिश भारत में म्यूनिसिपल कमेटियों के पास नक्शे आते हैं उसी प्रकार वहा भी म्यूनिसिपल कमेटियों के पास जाया करें और कमेटी का काम भी केवल यह देखना होगा कि नक्शे को बनाते हुए कमेटी के नियमों का पालन हुआ या नहीं। दूसरे शब्दों मे केवल एक ही आधार पर नक्शा अस्वीकृत हो सकेगा कि किसी नियम की पूर्ति हुई या नहीं। नक्शे की स्वीकृति में कोई राजनैतिक या धार्मिक कारण बाधक न होगा। अत अब समाज मन्दिरों के निर्माण में पुरानी बाधाएँ बाधक न होनी चाहिएँ।

साधारणतया रियासत उन शर्तों का पालन कर रही है जो सत्याग्रह को बन्द करते हुए तय हुई थीं, और आर्य समाज को इस दृष्टि से शिकायत पैदा नहीं हुई। मेरा विचार है कि नए समाज मन्दिरों के सम्बन्ध मे भी तय शुदा शर्तें का पालन हो रहा होगा।

हैदराबाद का आर्यसमाज अभी अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य नहीं हुआ। वहाँ की सबसे बड़ी विशेषता मेरी दृष्टि मे यह है कि वहाँ आर्यसमाज मे नवयुवक भरती हो रहे हैं। जहा पजाब के आर्य समाज मे बहुत कम नवयुवक नजर आते हैं वहाँ हैदराबाद के आर्यसमाज में अधिकतर नवयुवक ही हैं और नवयुवक कमाई के लिहाज से बड़ी उम्र के लोगों का मुकाबला नहीं कर सकते, इसलिए कम से कम कुछ समय तक हैदराबाद मे हमें आर्य समाज का हाथ बटाने के लिए तैयार रहना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि वह खुद कुछ न करें और अपने व्यय की सारी उत्तरदायिता हम पर डाल दें बल्कि यह जितना हो सकता है वह करें और जो कमी रह जाय उसे हम पूरा करें।

हैदराबाद में आर्यसमाज की दूसरी आवश्यकता प्रचार है। यह आवश्यकता इस समय सार्वदेशिक सभा पूरी कर रही है। उसके उपदेशक वहा प्रचार कर रहे हैं और जब तक उसके पास धन है वह पूरी करती रहेगी। परन्तु हम इस बात की उपेक्षा नहीं कर सकते कि हैदराबाद प्रचार के लिए नया धन सार्वदेशिक सभा के पास नहीं आ रहा है। सत्याग्रह फण्ड से जो कुछ बचा था (तथा श्री सेठ

जुगलकिशोर जी बिड़ला की सहायता से—सार्वदेशिक सम्पादक) प्रचार कराया जा रहा है और जब तक इसमें वृद्धि न हो यह धन बहुत समय तक नहीं चल सकता।

सत्याग्रह के पश्चात् राज्य में जो प्रचार हुआ है वह अत्यन्त सन्तोषजनक है, और उसके लिए सार्वदेशिक सभा की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करनी पड़ती है।

प्रचार के अतिरिक्त समाज मन्दिरों को मैं प्रचार का एक साधन मानता हूँ। और भी कई साधन हैं जिनसे आर्य समाज का प्रचार हो सकता है। आखिर हमने पंजाब में भी तो आर्य समाज के प्रचार के लिए कई साधनों का प्रयोग किया। जहाँ हमने उपदेशक रखे वहाँ हमने संस्थाएँ भी स्थापित कीं। वैदिक धर्म के प्रचार के लिए हमें हैदराबाद राज्य में संस्थाएँ खोलनी होंगीं। खास हैदराबाद में केशव आर्य हाई स्कूल के नाम से एक स्कूल खोल भी दिया गया है। इस समय यह केवल मिडिल तक है और ३५० के लगभग विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। इस वर्ष इसे हाई स्कूल बना दिया गया है और हैदराबाद के आर्य पुरुषों की इच्छा है कि यह अति उन्नति करके डिग्री कालेज बन जाय।

राज्य में भाषा की बड़ी समस्या है। वहाँ की ९० प्रतिशत आबादी की भाषा तिलगू, कनाड़ी, मराठी और हिन्दी है फिर भी उसे उर्दू पढ़ने पर विवश किया जाता है। अदालतों की सरकारी भाषा उर्दू है और स्कूलों और कालिजों मे शिक्षा का माध्यम उर्दू है। इसका फल यह है कि वहाँ के हिन्दू विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए या तो नागपुर जाना पड़ता है या मद्रास। हैदराबाद में आर्य हाई स्कूल या कालेज के खुलने से यह समस्या किसी सीमा तक हल हो सकती है। वहाँ लड़के अपनी किसी भाषा में शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। मै मानता हूँ कि उर्दू की शिक्षा हासिल न करके उनके लिए वही मुश्किल होगी जो पजाब में हिन्दू विद्यार्थियों के लिए है परन्तु अपनी मर्जी से कोई जबान सीखना एक बात है और मजबूरी से किसी दूसरी भाषा का पढ़ना दूसरी बात है।

दरबार की इस अनुचित पाबन्दी से तंग आकर वहाँ की हिन्दू प्रजा ने वायसराय से फरियाद की है कि वे उनको सुनें और निज़ाम सरकार से कहें कि वह उन्हें उनकी मातृ भाषा मे शिक्षा ग्रहण करने का आज्ञा दें। इस निवेदन पर हैदराबाद के मुसलमान और मुस्लिम अखबार बहुत चिल्ला रहे हैं और हिन्दुओं को गद्दार इत्यादि बता रहे हैं। वे यह नही सोचते कि हिन्दुओं को इस बात पर विवश करना कि अपनी मातृ भाषा मे नहो वरन् विदेशी मे शिक्षा ग्रहण करें कितना अन्याय है।

—❀—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरङ्ग सभा (१-२-४२) का निश्चय

आर्य जनता का मार्ग प्रदर्शन

युद्ध की परिस्थिति के कारण जनता मे आत्म-रक्षा व शान्ति रक्षा के समस्त साधनों के साथ सहयोग की उत्सुकता के चिन्ह पाए जाते हैं इसलिए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अपने से सम्बद्ध आर्य प्रतिनिधि सभाओं को, आर्य समाजों को और साधारण आर्य जनता को आदेश देती है कि:—

(१) सब आर्य ऐसी असत्य या अत्युक्ति पूर्ण अफवाहों की जिनसे अशान्ति फैलने की संभावना हो यथा समय यथोचित प्रसग आने पर प्रतिवाद करें।

(२) प्रत्येक आर्य समाज एक शान्ति रक्षा उपसमिति बनाये जिसका विशेष कार्य यह हो कि जनता में अशान्ति और आतन्क को फैलने से रोके।

(३) प्रत्येक आर्य समाज अपने सभासदों तथा अन्य अनुकूल व्यक्तियों का एक सेवा संघ तय्यार करे जो आवश्यकता होने पर आत्म-रक्षा और शान्ति रक्षा मे सहायता दे सके।

(४) जिन स्थानों मे आर्य समाज से सम्बन्ध रखने वाले स्कूल, कालेज आदि संस्था हों, उनके अध्यापकों, संचालकों तथा बड़ी श्रेणी के विद्यार्थियों को प्रारम्भिक चिकित्सा की शिक्षा देने का यत्न करें।

(५) आर्य समाज और उसकी शान्ति रक्षा उपसमिति शान्ति रक्षा की हिमायती स्थानिक सस्थाओं को यथोचित सहयोग देवें।

यह भी निश्चय हुआ कि इस कार्य के लिए सार्वदेशिक सभा निम्न सज्जनों की एक उपसमिति बनाती है:—

(१) श्री माननीय घनश्यामसिंह जी गुप्त
(२) ,, म० कृष्ण ,, बी० ए०
(३) ,, प० गगाप्रसाद ,, एम० ए०, रिटायर्ड चीफजज
(४) ,, ला० देशबन्धु ,, एम० एल० ए० (पंजाब) संयोजक
(५) ,, प्रो० सुधाकर ,, एम० ए०

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज, कार्यकर्ता प्रधान,
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
सतनाली रेलवे स्टेशन (बीकानेर) से लोहारु के
निकटवर्ती बेरला ग्राम के उत्सव मे
सम्मिलित होने जा रहे हैं।

पाकिस्तान

(१)

अखण्ड भारत कान्फ्रेंस का अधिवेशन हाल में देहली में हुआ। उसमें महत्वपूर्ण विचार और भाषण हुए। अखण्ड भारत को खण्डित करने का बीज कहाँ बोया गया इस सम्बन्ध में कुछ वक्ताओं ने जिक्र किया, परन्तु हमारी समझ में किसी ने उसके तत्व पर पहुँचने का यत्न नहीं किया और जैसा प्रायः होता है नारों के पीछे बह गए। इस विषय पर विचार करते हुए हमें भारतवर्ष की दशा को देखना चाहिए और दूसरे देशों की दशाओं से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। कुछ वक्ताओं का मत था कि फेडरेशन को स्वीकार न करने में कॉंग्रेस ने भूल की और उसका परिणाम 'पाकिस्तान' हुआ। हम इस पर बहस नहीं करना चाहते कि इसमें कॉंग्रेस की भूल हुई वा नहीं। हमारी समझ में तो भारतवर्ष की परिस्थिति में फेडरेशन कहना भ्रमात्मक है Misnomer है। वह तो वास्तव में फेडरेशन नहीं वरन् अकेन्द्री भूत करना Disintegiation) है। इसके लिए हमें उस देश का विधान देखना है जो फेडरेशन का नमूना है। हमारा भारतवर्ष तो एक अखंड बना हुआ था। एक अखण्ड शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार कायम थी। सन् १९३५ के ऐक्ट (भारत विधान कानून) ने इसका खण्ड प्रारम्भ किया जबकि प्रान्तों को स्वतन्त्र (autonomous) बनाने की योजना की गई। हमारी समझ में तो प्रान्तों को शक्तिशाली बनाने की योजना ही से तो अखण्ड भारत पर कुठाराघात करने का बीज बोया गया।

परिस्थिति यह है कि अखण्ड भारत के टुकड़े करके प्रान्तों को स्वतन्त्र बनाकर उन प्रान्तों को फिर जोड़ने का यत्न फेडरेशन के रूप में हो रहा था ठीक उसी तरह से जैसे कि किसी जीवित अखण्ड प्राणी के अवयवों को काट कर पहले तो पृथक् करना और फिर उन सबको मिलाना। इसलिए हमें तो इसका

दुख नहीं कि फेडरेशन न बन सका। हमें तो दुख इस बात का है कि अखण्ड शक्तिशाली केन्द्री भूत भारत का खंड किया गया और प्रान्तें या तो स्वतन्त्र बनाई गई या बनाने की योजना स्वीकार की गई। हमें इस बात का आश्चर्य है कि अखण्ड भारत सम्मेलन के माननीय वक्ताओं की दृष्टि में यह बात न आई और उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि 'पाकिस्तान' को दूर करने के निमित्त और भारत को अखण्ड करने के निमित्त यदि केन्द्रीय शक्ति कम करदी जाय और प्रांतों को शेष Residuary अधिकार दे दिए जायें तो उन्हें अधिक आपत्ति न होगी। हमें तो इस बात का निश्चय है कि इस विधान से नाम में चाहे भारतवर्ष अखण्ड रहे, कागजों में चाहे पाकिस्तान न लिखा हुआ हो, परन्तु भारत वर्ष को खंडित करने और पाकिस्तान का असली स्वरूप लाने का यह कारण सिद्ध होगा।

हमें देखना चाहिए कि फेडरेशन क्या चीज है और जिन मुल्कों में फेडरेशन हुआ उनका इतिहास और उनकी परिस्थिति क्या थी ? उदाहरण केलिए हम अमेरिका को लेंगे। वह संघ Federal गवर्नमेंट का सबसे बड़ा नमूना है। वहाँ का इतिहास बतलाता है कि पहले वहां कई स्वतन्त्र राज्य थे जो स्वतन्त्र थे और किसी प्रकार एक दूसरे के आधीन न थे और न यह कि किसी केन्द्रीय सरकार के मातहत थे। वास्तव में तब तक कोई केन्द्रीय सरकार बनी ही न थी। इन रियासतों ने बाह्य आक्रमण में अपनी रक्षा का भय देखा और इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया कि हम सबको मिलना चाहिए तभी हमारी रक्षा हो सकती है। रियासतो में यह इरादा होते हुए भी एक दूसरे के प्रति अविश्वास की मात्रा थी। इसलिए सम्मिलित केन्द्रीय सरकार बनाने की तीव्र इच्छा होते हुए भी कई वर्षों तक फेडरेशन पूर्ण रूप से न बन सका और प्रारम्भ मे जब बना तब रियासतें अपनी सत्ता का थोड़ा सा हिस्सा फेडरेशन को देने के लिए तय्यार हुए और बहुत सा हिस्सा अपने पास ही सुरक्षित रखा। परिणाम यह हुआ कि फेडरेशन तो बना और केन्द्रीय सरकार भी बनी परन्तु उस सरकार की ताकत बहुत कमजोर रही और रियासतों की ताकत अधिक रही। इससे जो हानियां हुई उनका अनुभव जब अमेरिका वालों को होता गया तब उनको ऐसे कानून एक के बाद दूसरा बनाना पड़ा कि जिससें केन्द्रका अधिकार बढ़ता गया और रियासतों का घटता गया और आज हम यह पाते हैं कि केन्द्रीय सरकार की ताक़त का अधिकार संसार के किसी केन्द्रीभूत (Centralized unitary Government) सरकारसे कम नहीं और इस युद्ध के समय में जो लीज़ ऐंड लेंड ऐक्ट पास हुआ है उसने तो केन्द्र

के अधिकार को अनियन्त्रित सीमा तक पहुँचा दिया है। इस उदाहरण से हम पाठकों को यह बताना चाहते हैं कि फेडरेशन तो वहां संगत है और इतिहास में वहां ही हुआ है जहां कि पहले भिन्न २ स्वतन्त्र रियासतें क़ायम रही हों और जो किसी एक विशाल साम्राज्य के अधीन न रही हों। इससे पृथक् जहां पर एक साम्राज्य रहा हो, जो प्रबन्ध के सुभीते के लिए प्रांतों में चाहे विभक्त ही रहा हो वहां पर इतिहास में कहीं भी फेडरेशन की बात नहीं मिलती और न इसकी आवश्यकता है। परन्तु इसके विपरीत हम भारत में यह देखते हैं कि अखंड भारत जहां एकतंत्र साम्राज्य था और जहां प्रांतें केन्द्र के अधीन थीं वहां प्रांतों को केन्द्र से पृथक् स्वतन्त्र बनाकर और फिर उनको जोड़ने का नाम लिया जारहा है। खेद तो हमें इस बात का है कि किसी विचारवान् व्यक्ति की दृष्टि अभी तक इधर नहीं गई।

भारतवर्ष में चिरकाल से केन्द्रीय भूत सरकार में ही साम्राज्य की सारी शक्तियां, सारे अधिकार रहते चले आरहे हैं और सूबों को जितना अधिकार प्रबन्ध आदि की सहूलियत के लिए भारत की केन्द्रीय सरकार देती थी उतना अधिकार सूबों को मिलता था और जब कभी केन्द्रीय सरकार को इस बात की आवश्यकता होती थी कि सूबों के अधिकार कम ज्यादा किए जांय तो वह करती तथा कर सकती थी। क्यों कि भारतवर्ष की सार्वभौम सत्ता एक जगह थी और वह केन्द्रीय थी और आजतक वैसी चली आई है। आज ठीक इसके विपरीत हो रहा है। भारत की सार्वभौम सत्ता को विभाजित करके हम सूबों को स्वतन्त्र बनाना चाहते हैं और फिर सूबों से उस सत्ता का कुछ दान केन्द्र के लिए मांगना चाहते हैं इससे तो भारतवर्ष अखंड कदापि नहीं रह सकता।

इस अखंड भारत को यदि हम अखंड रखना चाहते हैं तो पहला आन्दोलन जो होना चाहिए वह यह हो कि प्रान्तें स्वतन्त्र न हों। सूबों के अधिकार का स्वामी केन्द्र हो। जितना अधिकार सूबों को देना चाहें उतना केन्द्र दे। यह नहीं कि केन्द्र को जितना अधिकार प्राप्त हो वह सूबों से प्राप्त हो। मालिक केन्द्र रहे और सूबे उसके एजेण्ट हों।

स्पेशल मैरिज ऐक्ट का संशोधन

श्रीयुत डा० देशमुख ने १८७२ के स्पेशल मैरिज ऐक्ट के संशोधनार्थ केन्द्रीय धारा सभा में एक बिल प्रस्तुत किया हुआ है। धारा सभा के गत अधिवेशन के निश्चयानुसार

यह बिल सम्मति के लिए प्रचारित हुआ था। सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा ने इसके सम्बन्ध में अपनी निम्न सम्मति भेजी है:—

"The bill in question is impracticable in its present form and is open to all the objections that apply to piece meal legislation It encourages registered rather than ceremonial marriages which the Arya Samaj as such should oppose. It is proposed that ceremonial marriages will become void on registration but what happens to the children born before registration. Another effect will be the disruption of the joint Hindu families... ... .

अर्थात् वर्तमान रूप में यह बिल अव्यवहार्य है और कई दृष्टियों से आपत्ति जनक है। यह बिल विवाह विधि के धार्मिक स्वरूप को निरुत्साहित और रजिस्टर्ड विवाहों को प्रोत्साहित करता है और आर्य समाज इसका विरोध करता है। यह प्रस्ताव किया गया है कि रजिस्ट्री होने पर हवन यज्ञ द्वारा होने वाले विवाह रद्द हो जायेंगे परन्तु रजिस्ट्री से पूर्व आपके होने वाले बच्चों का क्या बनेगा। इसका दूसरा दुष्प्रभाव यह होगा कि हिन्दुओं के सम्मिलित परिवार छिन्न भिन्न हो जायेंगे। क्योंकि बिल में यह आता है कि विवाह की रजिस्ट्री हो जाने पर सम्बन्धित व्यक्ति सम्मिलित परिवार के सदस्य नहीं रहेंगे। हिन्दू कानून में 'तलाक' को स्थान दिए जाने पर वास्तविक आपत्ति है। 'तलाक' विशुद्ध अच्छाई नहीं है और आर्य समाज इसका समर्थन नहीं करता है। हमारी सम्मति में समस्त हिन्दू कानून को पुनः देखना चाहिए और इस प्रकार टुकड़ों में कानून पास नहीं होने चाहिएँ। और यह कार्य हमें विदित हुआ है, एक समिति द्वारा हो रहा है जिसके प्रधान श्री बी. एन. राव हैं।

बंगाल की आर्यों की जन गणना

बंगाल प्रान्त की १९४२ की जनगणना के आर्यों के अंक हमारे सामने हैं और वे बहुत उत्साह वर्द्धक हैं। १९३१ में बंगाल प्रान्त में आर्यों की संख्या २०१ थी और १९४१ में यह संख्या ६८०३० है।

जहाँ तक जनगणना में आर्यों की संख्या के ठीक २ लिखे जाने का सम्बन्ध है, आर्यसमाज के साथ प्रायः न्याय नहीं होता और जो संख्याएँ अंकित होती हैं उन्हीं को निश्चित संख्या नहीं माना जा सकता। फिर भी उपर्युक्त सरकारी संख्याओं के आधार पर भी यह सिद्ध हो जाता है कि आर्य समाज के प्रचार की दृष्टि से बंगाल जैसे पिछड़े हुए प्रान्त में आर्य समाज पर्याप्त रूप में लोक प्रिय हो रहा है।

मिदनापुर जिले में आर्यों की सबसे अधिक संख्या अंकित हुई है। वहाँ ११११९ आर्य पुरुष और ११६०८ आर्य स्त्रियें अंकित हुई हैं। कलकत्ता में केवल ४०२३ आर्य नर नारी अंकित हुए हैं।

ऐसे कई जिले हैं जहाँ पुरुषों की अपेक्षा देवियों की संख्या अधिक है। आर्य समाज के नारी शिक्षण और रक्षण के प्रोग्राम को गुण्डों से पीड़ित बंगाल का नारी समाज बड़ी आशा और श्रद्धा से देखता है, इस विचित्रता का कारण यह श्रद्धा भी हो सकता है। कारण कोई भी क्यों न हो, बंगाल के नारी समाज में आर्य समाज की लोक प्रियता की यह गति उत्साह वर्द्धक है।

पांचवा कालम

यद्यपि इन दिनों 'पाचवे कालम' शब्द का प्रचुरता से प्रयोग हो रहा है तथापि बहुत से सज्जन इस शब्द के मूल और पूर्ण भाव से परिचित नहीं हैं। उनकी सूचना के लिए The Penguin Political Dictionary से निम्न उद्धरण उद्धृत किया जाता है:—

"पाचवा कालम—इस शब्द की उत्पत्ति स्पेन के १६३६-१६३६ के युद्ध से हुई है। जब स्पेन की नेशनलिस्ट पार्टी ने जनरल फ्रैंको के अधीन चार टुकड़ियों में विभक्त होकर प्रजातन्त्र वादियों पर बाहर से आक्रमण किया था. और जब नेशनलिस्ट पार्टी के अनुयायियों ने प्रजातन्त्र वादियों में भीतर से उपद्रव इत्यादि कराए ये गुप्त रीति से इन लड़ने वालों को पाचवी सेना के नाम से सम्बोधित किया गया था।

जर्मन वासियों द्वारा नार्वे- हालैंड और बेलजियम मे नाजी दूतों का प्रयोग होने से इस शब्द का बहुत प्रयोग हुआ है और इस शब्द के अन्तर्गत किसी देश के वे व्यक्तियां और संस्थाएँ समझी जाती हैं जो भीतर से शत्रु को क्रियात्मक सहायता देने को तैयार होती हैं।"

आर्य्य समाज नैनीताल का मन्दिर

नैनीताल एक सुप्रसिद्ध पर्वतीय स्थान है जहाँ संयुक्त प्रान्त की सरकार ग्रीष्म ऋतु में निवास किया करती है। इस स्थान पर आर्य्य समाज का अपना भवन नहीं है और यह एक बड़ी खटकने वाली कमी है। आर्य्य समाज के उत्साही कार्यकर्ता इस त्रुटि के निराकरण के लिए प्रयत्न शील हैं। उन्हें बिना मूल्य पर्य्याप्त भूमि मिल गई है। उन्होंने समाज मन्दिर के निर्माण के व्यय का ४००००) का अनुमान लगाया है। यह राशि अकेले उनसे पूरी होनी

कठिन है अतः वे इस कार्य में आर्य्य जनता की सहायता चाहते हैं।

पहाड़ी स्थानों मे आर्य्य समाज का प्रचार बहुत कम है और अज्ञान अन्धकार बहुत है। ऐसी अवस्था में आर्य्य समाज के प्रचार का प्रत्येक उपाय हम सब की सहायता और सहानुभूति का अधिकारी है। इसके अतिरिक्त नैनीताल में ग्रीष्म ऋतु मे प्रात के ऊँचे वर्गों के लोग और सरकारी कर्मचारी बहुसंख्या में आते हैं। उस समाज पर उनमें प्रचार की एक बड़ी जिम्मेवारी भी होती है। इन दृष्टियों से हम उस समाज की अपील का समर्थन करते हैं।

❀ ❀ ❀ ❀
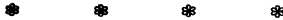
सूचना

"मैं ३ दिसम्बर को फैजाबाद जेल से छूटकर घर पर आगया हूँ मेरी बनाई हुई कोई भी पुस्तक या लेख जो पहले समाचार पत्रों मे निकल चुके हैं, उनको किसी प्रकार से भी बिना मेरी हस्तलिखित आज्ञा के न छापे। यदि कोई छापेगा तो वही उसका उत्तरदाता होगा।

मैंने श्रीमती सभा के पास अपना त्याग-पत्र भेज दिया है। अतः उत्सवादि पर यदि किसी को बुलाना हो तो घर के पते से मुझे सूचित करें।"

शिवशर्मा
सम्भल मुरादाबाद

श्री प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित।

मार्च
१९५२ ई०
चैत्र

सम्पादक—प्रा० सुधाकर एम० ए०
सह सम्पादक श्री रघुनाथप्रसादजी पाठक

वार्षिक मूल्य
विदेश ५ शि०

विषय-सूची

सार्वदेशिक पत्र का नमूना मँगाने के लिये ।) का टिकट भेजना जरूरी है।

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १७ | चैत्र १९९८ | मार्च, १९५२ ई०] [दयानन्दाब्द १२८ | अङ्क १

स्वस्ति पन्थामनुचरेम । ऋ० ५ । ५१ । १५

हम कल्याण मार्ग के पथिक हों ।

May we follow the path that leads to Peace and Prosperity!

* * *

आरैक्ष तमसो ज्योतिः । अ० ८ । १ । ८

अन्धकार से निकल कर प्रकाश की ओर आओ ।

Come out of the darkness of Ignorance and march unto the light of Knowledge.

श्रद्धा को अपनाओ

(लेखक—श्री सोमदत्त जी विद्यालकार)

आर्यसमाज को स्थापित हुए अभी लगभग आधी सदी ही व्यतीत हुई है। इस थोडे से समय मे इसने जो उन्नति की है वह आशातीत है। आधी सदी के कार्यकाल में ही इसके जितने अनुयायी बने हैं उतने शायद ही किसी अन्य नवीन धर्म के बने हों। देश की सामाजिक तथा राजनैतिक उन्नति में इसके अनुयाइयों का एक बडा और प्रमुख भाग है। पर यह सब कुछ होते हुए भी अब आर्य समाज सन्तोषजनक उन्नति नहीं कर रहा यद्यपि इसके अनुयायियों की संख्या बढ़ रही है पर प्रयत्न के अनुसार फल नहीं दिखाई देता। स्त्री जाति के हृदय पर आर्य समाज का प्रभाव नगण्य ही कहा जा सकता है चतुर माली का लगाया हुआ पौदा जो अपने बचपन के प्रारम्भिक दिनों में बड़ी अच्छी रफ्तार से उन्नति कर रहा था अब कुछ कम बढता दिखलाई दे रहा है इसके पत्तों पर जो चमक और हरियाली पहले दृष्टिगोचर होती थी आज वह नहीं दिखलाई देती। ऐसा मालूम होता है कि या तो इसको पर्याप्त जल नहीं मिल रहा या इसकी जड़ में दीमक लग रहा है। माली फिकर मे है वे इस रोग का कारण ढूँढ निकालना चाहते हैं।

हमारी तुच्छ सम्मति मे इस रोग का मूल कारण आर्यसमाजियों मे तर्क की प्रधानता तथा श्रद्धा का अभाव है। सामान्यतया देखा जाता है कि मनुष्य स्वभाव से तार्किक तथा स्त्रिया स्वभाव से श्रद्धालु होती हैं। आर्यसमाज में तर्क की प्रधानता होने के कारण पुरुषों का झुकाव इस तरफ पर्याप्त देखा जाता है परन्तु स्त्रियों का झुकाव इस तरफ बहुत कम तथा न के बराबर दिखाई देता है क्योंकि स्त्रिया स्वभाव से श्रद्धालु होती हैं। जब तक स्त्रियों के हृदय में परिवर्तन नहीं होगा आर्य समाज के कार्य की रफ्तार धीमी ही रहेगी।

आर्यसमाजियों में तर्क की प्रधानता होने के कई मुख्य कारण हैं। जिस समय आर्य समाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने कार्य क्षेत्र में पदार्पण किया उस समय देश मे मत मतान्तरों के बीहड़ जंगल खड़े थे। ऋषि उस बीहड़ जंगल के स्थान पर प्राचीन वैदिक धर्म की रम्य वाटिका लगाना चाहता था। उस बीहड़ जंगल को साफ करने के लिये यह आवश्यक था कि जो ऊबड़ खाबड़ पेड़ खड़े हैं

उनका समूलोन्मूलन किया जाय। ऋषि ने तर्क का कुल्हाड़ा लेकर उन अवांछित वृक्षों को काटना शुरू किया, शास्त्रार्थ के फावडे से उनकी जड़ें निकालनी शुरू की। उस समय यह परम आवश्यक था। उस समय ऋषि का कार्य खण्डनात्मक ही मुख्यतया रहा। किसी भी बिगडे काय को ठीक करने के लिये पहले यही मार्ग अवलम्बन करना पड़ता है।

गले सडे मवाद से भरे जख्म को डाक्टर पहले चीरा देकर मवाद को तथा खराब मास को काट फेंकता है पर बाद मे (Soothing) आरम पहुँचाने वाली मरहम आदि लगाकर जख्म को भरने का प्रयत्न करता है।

नाई पहले उस्तरा लेकर ठोड़ी पर उगे हुए जगल को साफ करता है और साफ हो चुकने पर क्रीम वगैरह लगाकर उसे ठीक बनाता है। कुम्हार पहले मट्टी के ढेलों को मोगरी से फोडता है पर बाद मे उसी से घडे वगैरह बनाता है। दर्जी पहले कैंची से कपडे को काटता है पर बाद मे उसे सीता है बढई पहले आरी से लकडी को काटता है पर बाद मे फट्टे जोडकर चीजें बनाता है।

जैसे नाई, बढई, डाक्टर दर्जी आदि पहले उस्तरा, आरी चाकू, कैंची आदि से काम लेते हैं, ऋषि को पहले तर्क के कुल्हाडे को हाथ में लेना पड़ा।

ऋषि के कार्यक्षेत्र मे पदार्पण करने के समय जो अवस्था थी अब उसमें पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। अब मैदान काफी साफ हो चुका है अब तो इस बात की आवश्यकता है कि बगीचा लगाने के लिये सुन्दर २ वृक्ष इसमे लगाये जायें। विध्वंसात्मक कार्य को कम करके रचनात्मक काय पर अधिक शक्ति लगाई जाय। जिस जगह कुल्हाडे की आवश्यकता दिखाई दे वहा वह भी चलाया जाय। पर सर्वत्र उसका प्रयोग करने से बाग के फलदार वृक्ष भी कट कर गिरने लग जायेंगे।

क्या तर्क बुरा है ?

शास्त्रों में जहाँ "आप्त धर्मोपदेश च वेद शास्त्राविरोधिना, यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नापर:" इस प्रकार तर्क का धर्म ज्ञान के लिये जरूरी बताने वाले वाक्य पाये जाते हैं वहाँ साथ ही 'तर्काप्रतिष्ठानात्' आदि के द्वारा तर्क को बुरा भी बतलाया है। वास्तविक बात तो यह है कि तर्क अपने स्थान पर अच्छा है और जहाँ उसकी जरूरत नहीं है और क्षेत्र नहीं है वहाँ उसे घुसेड़ना, अनुचित एवं हानिकारक है

तर्क एक मोटर की तरह है जो मैदान में, समतल भूमि में खूब दौड़ती है, परन्तु पानी में वह प्रयुक्त नहीं हो सकती वहाँ तो श्रद्धा की नाव ही काम देगी। शास्त्रकारों ने परमात्मा को अतर्क्य कहा है अर्थात् वहाँ तर्क से काम नहीं चल सकता। जो पानी में भी मोटर ले जायगा वह गोते खायेगा। संसार यात्री को स्थल में सैर करने के लिये मोटर तथा जल में सैर करने के लिये नाव का सहारा लेना होता है।

अकेले तर्क से काम नहीं चल सकता। पहले मुर्गी पैदा हुई थी या अण्डा? इसका उत्तर तार्किक के पास नहीं मिल सकता। मेरे माता पिता अमुक हैं। इस पर तार्किक कैसे ठहर सकता है क्योंकि माता पिता से जन्म लेते समय उसे होश न थी। यहाँ उसे विश्वास और श्रद्धा से काम लेना पड़ता है।

इसलिये प्रत्यक्ष या अनुमान आदि के प्रमाणों के साथ शब्द प्रमाण भी आवश्यक माना गया है।

हम आर्यसमाजी, तर्क का ही सहारा मुख्य लेते हैं। इसका बुरा परिणाम यह हो रहा है कि कुल्हाड़ा बहुत से वांछित वृक्षों को भी काट रहा है। जिस ढंग के तर्क से हम पहले गंगा नहाने, भस्म रमाने, माथे पर टीका लगाने आदि का खण्डन करते थे आज उसी प्रक र का तर्क करके हम संध्या, हवन, चोटी, जनेऊ आदि से छुट्टी पा लेते हैं। हम कहते थे हुक्का, सिगरट मत पियो, इससे घर को आग लगती है। आज कहा जाता है कि हवन करने से भी आग लगती है। आज हमारा पाला हुआ तर्क हमें ही खा रहा है। एक कूए के मेंढक की अपने सजातीयों से शत्रुता हो गई। वह कूए से बाहर जाकर एक सांप को निमंत्रण देकर कूए में ले गया शर्त यह थी कि तुम्हें एक मेंढक रोज खाने को दिया जायगा। धीरे २ जब सब मेंढक खतम हो गये तो मियाँ की बारी भी आ गई। इसी प्रकार अनावश्यक रूप से किया हुआ तर्क आज हमारा ही नाश करने में लग रहा है।

एक आदमी पर कतल का मुकदमा था वकील ने उसे पागल बना कर अदालत से पूछे गये हरेक सवाल के जवाब में बकरी की तरह में में करने की सलाह दी। अदालत ने पूछा तुम्हारा नाम उत्तर मिला में में। क्या तुमने फलां आदमी को कत्ल किया उत्तर मिला में में। कहते हैं अदालत ने पागल कह कर बरी कर दिया। अपराधी फांसी की सजा से बच गया। अदालत से बाहर आकर वकील ने ५००) तै हुवा मेहनताना मांगा, कातिल ने जवाब दिया में में और

बोझा जो मैं में फाँसी की सजा से बचा सकती है क्या वह ५००) जैसी मामूली तकलीफ से नहीं बचा देगी।

बिलकुल यही हालत आज हमारी हो रही है। तर्क से दूसरों का खण्डन करते करते आज हमारे धर्म कर्म पूजा पाठ, सन्ध्या हवन, चोटी, जनेऊ का भी खण्डन हो रहा है। आज हमारा तर्क हमारा ही नाश कर रहा है।

उचित मार्ग

तर्क और श्रद्धा का समन्वय

वेद में एक मन्त्र आया है "मूर्धान मस्य ससीव्याथर्वा हृदयं च यत्। मस्तिष्का दूर्ध्वः प्रैरयत् पवमानो ऽध शीर्षे" अर्थात् हमे १—मस्तिष्क (brain) और हृदय (heart) को एक बना कर सम उन्नत करना चाहिये २—और पवित्र बन कर मस्तिष्क से परे अर्थात् तर्क की भूमि से दूर कूदना चाहिये।

मस्तिष्क का काम तर्क वितर्क करना है इससे नास्तिकता आ सकती है। इसी प्रकार हृदय का काम भक्ति करना है इसका उल्टा परिणाम अन्ध विश्वास हो सकता है। पर यदि तर्क और भक्ति दोनों का संयोग हो जायगा तो तर्क से भक्ति-जन्य दोष अन्ध विश्वास, और भक्ति से तर्क जन्य दोष नास्तिकता हट जायगी। इस प्रकार दोनों निर्दोष हो जायेंगे।

हम पहले कह चुके हैं कि जहां अकेला तर्क बुरा है वहां अकेली श्रद्धा भी ठीक नहीं। हम आर्यसमाजी लोग जहाँ तर्क का अधिक आश्रय लेते हैं वहाँ ईसाई लोग श्रद्धा का ही अधिक आश्रय लेने को कहते हैं।

तर्क कैंची या नश्तर है तो श्रद्धा मलहम है। अकेली मलहम से तो फोड़े ठीक भी हो सकते हैं पर अकेले नश्तर से नहीं। हाँ यदि नश्तर से गले सड़े मांस को काट कर फिर मलहम से भरने का यत्न किया जाय तो जख्म जल्दी भरता है।

इसलिये वेद में जहाँ

"मेधां सायं मेधां प्रात. मेधां मध्यन्दिन परि मेधां सूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे।"

ऐसी प्रार्थना आती है वहाँ साथ ही

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धांमध्यन्दिनं परि। श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापये हनः॥" ऐसी प्रार्थना भी आई है। अर्थात् हमें प्रातः सायं तर्क और श्रद्धा

लौकिक सुख

[ले०—श्री धर्मवीर जी मन्त्री आर्यकुमार सभा नगीना (गुड़गावा)]

उषा की लाली में, संध्या की धुंधलेपन में, कोयल की कूक में, विरहनी की हूक में, उसकी मौनता में और मेरे अट्टाहास में, क्या छिपा है—प्राणेश ? सुख ! सुख ! सुख ! कैसी विलक्षण वस्तु है यह और कितना लालित्य भरा हुआ है इसके रजकणों में समस्त जनता भावुक हृदय से जिसके पीछे आँख मूँदे चली जा रही है।

× × ×

संसार के इस नीरव रात्रि में वह कौनसा ज्योति स्तम्भ है जिसके प्रकाश में मैं अपने अन्तरंग भावों को अभिव्यक्त कर सकूं। क्या संसार के प्रतिभाशाली नगरों की उच्च अट्टालिकाओं की वैभव सम्पन्न अतुलित धन राशि की अनुपम छटा वा मूक हृदय की करुणा वाणी। बस देख ली, संसार की दृढ़ता का परिचय, लक्ष्मी रानी की किञ्चित कृपा कटाक्ष ही मानस हृदय को विचलित करने में पर्याप्त है।

× × ×

संसार के विश्व व्यापी समराङ्गण के इतिहास में वह कौनसा वीर है जिसके अभाषित मुख मण्डल को देखकर मैं अपने तप्त हृदय को शान्त कर

दोनों को प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये।

यदि आर्यसमाज तर्क के साथ साथ श्रद्धा को काम में नहीं लायगा तो यही परिणाम होगा कि आगे उन्नति बन्द हो जायगी। हमने गुमराह भटके लोगों को यह तो बता दिया कि तुम्हारा मार्ग गलत है, पर सही मार्ग पर उन्हें नहीं डाला। परिणाम यह होगा कि कुछ समय बाद वे फिर दूसरे गलत रास्ते पर चल पड़ेंगे। यही कारण है कि कुछ शिक्षित लोग राधा स्वामी मत में जा रहे हैं। इसलिये अब यह आवश्यक हो गया है कि हम ऐसा कार्य करें जिससे आर्य लोगों के मन में अधिक से अधिक श्रद्धा जागृत हो। तभी स्त्रियों में वैदिक धर्म मजबूती से जड़ जमा सकेगा।

सकूं। वह कौनसा मूकादेश है जो घूम २ कर मेरे हृदय को विभाजित कर रहा है। वह मेवाड़ का भामाशाह या प्रभुता के लोह पर मर मिटने वाले मदान्ध पुजारी।

× × ×

कुछ कहो तो ऐ भारत के सपूत ! कैसी प्रभञ्जना है यह। सुख ! सुख ! सुख ! कहाँ है इसका आभाव। मातृ स्वतन्त्रता छित लोहे के पिंजड़े में बेड़ियों से जकड़ा हुआ बन्दी हृदय या भारत को परतन्त्रता के हाथों में सौंपने वाला जयचन्द का मनोहारी महल। कैसे सुन्दर पात्र थे वे जिसमें भारत के वीरों का गाना भी रोना हो जावे।

× × ×

संसार की इस अद्भुत नाटयशाला में भोज मानधाता और युधिष्ठिर सरीखे सम्राट् ने अपने अपने कर्तव्य का परिचय देते हुए सृष्टि के अन्तिम आगर्त में अपने मुख को छिपा लिया, पर पृथिवी किसी के साथ न गई। बस मैंने समझ लिया संसार की इन परिवर्तन शील वस्तुओं में सुख का लवलेश नहीं। सुख तो अपने मन और मन की एकाग्रता में है जिसका अनुभव तो बिरला कोई मनस्वी ही कर सकता है।

संसार की नव व्यवस्था

(ले०—श्री शंकर गणपतराव कोकने)

पिछले दिनों न्यूयार्क में जो अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सम्मेलन हुआ, उसमें संसार की आगामी नव-व्यवस्था, सामाजिक न्याय और युद्ध के बाद के निर्माण को लेकर काफ़ी चरचा हुई। वहां जो विचार व्यक्त किये गये, उनमें हमें गत महायुद्ध के जमाने के बुलन्द नारों और राष्ट्रपति विलसन की १४ शर्तों की याद आ गई। पिछले महायुद्ध के जनतन्त्र के लिये लड़ा जाने वाला युद्ध कहा गया था और हमें बताया गया था कि वह युद्ध स्वतन्त्रता का युद्ध था। किन्तु बीस वर्ष का शान्तिमय जीवन भी हमें उस उद्देश्य के एक इंच निकट नहीं ले गया। इसके विपरीत आज सारा का सारा संसार एक महान भयानक युद्ध में—ऐसे युद्ध में जो पिछले युद्ध से दस गुना भयंकर है, फंसा है। गत महायुद्ध के बाद का इतिहास मित्र राष्ट्रों द्वारा घोषित सुन्दर भावनाओं का काला इतिहास है। नरक का मार्ग इसी तरह की घोषणाओं से जुड़ा हुआ है। महज इन भावनाओं के दुहराने से ही संसार का कल्याण नहीं हो सकता। जब तक लड़ाई के बाद किसी अन्य उद्देश्य को जहां तक सम्भव हो शीघ्र व्यावहारिक रूप नहीं दिया जाता, तब तक अटलांटिक की इस सुन्दर घोषणा का भी विलसन की १४ शर्तों की तरह ही अन्त होने की सम्भावना है। वार्साई के सन्धि-गृह में बैठकर विलसन जबरदस्त प्रयत्न करने पर भी मित्रराष्ट्रों के बदले की भावना और उनके लोभ को दबाने में असफल रहा। विलसन हारा हुआ, धोखा खाया हुआ और निराश होकर अमरीका लौटा था। शान्ति और समृद्धि से भरे हुए संसार के नव-निर्माण का उसका सुनहला स्वप्न टुकड़े-टुकड़े हो गया था। आज हमारी आंखों के सामने जो दूसरा दुखान्त नाटक हो रहा है, उसके भी पिछले ही नाटक की तरह अन्त होने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। सिर्फ अन्तर यही है कि राष्ट्रपति विलसन की जगह राष्ट्रपति रूजवेल्ट लड़ाई के बाद के नव-निर्माण के सम्बन्ध में अपने पूर्वाधिकारी की अपेक्षा कहीं अधिक दृढ़ निश्चयी दिखाई देते हैं। मुमकिन है उनके इस दृढ़ निश्चय में दुनिया की स्वतन्त्रता और शान्ति की नव-व्यवस्था तथा सामाजिक न्याय की सम्भावना निहित हो।

नव-व्यवस्था को लेकर अनेक तरह की बहसें चल रही हैं। धुरी राष्ट्र यूरोप में नव व्यवस्था कायम करना चाहते हैं। जापान सुदूर पूर्व में नव-व्यवस्था

कायम करना चाहता है और मित्र राष्ट्र हिटलरवाद के नाश के बाद एक उत्तमतर संसार बनाने की कल्पना कर रहे हैं। सारा संसार इस समय शान्ति और समृद्धि के नव युग के जन्म की वेदना के बीच से निकल रहा है।

यह शान्ति और समृद्धि कैसे प्राप्त हो ?

जब तक हम दुनिया के पिछले दो तीन सौ वर्षों के इतिहास पर नजर न डालें तब तक इस प्रश्न का समुचित उत्तर नहीं दे सकते। मशीनों के आविष्कार ने संसार के अन्दर एक नई समस्या पैदा करदी है। यातायात के साधन बढ़ गये हैं और मशीनों के द्वारा बड़ी मिक़दार में चीजों की पैदावार बढ़ गई है। परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पूँजीवाद के विकास और आर्थिक तथा राजनैतिक साम्राज्यवाद की अवहेलना कर हम संसार की नव-व्यवस्था पर उचित राय कायम नहीं कर सकते।

ब्रिटेन और फ्रांस औपनिवेशिक क्षेत्र कायम करने की दौड़ में सबसे पहले मैदान में आये और १९ वीं सदी के अन्त तक अफ्रीका, एशिया और प्रशान्त महासागर के द्वीपों में ये बड़े-बड़े साम्राज्य के स्वामी बन गये। पिछली सदी का इतिहास पूर्वी राष्ट्रों के ऊपर यूरोप के प्रभुत्व का इतिहास है। वह पश्चिमी शक्तियों के औपनिवेशिक सत्ता कायम करने का कलुषित इतिहास है। फ्रांस और ब्रिटेन को अपने औपनिवेशिक साम्राज्य के ऊपर नाज है। उन पर शासन करना वे अपना जन्मसिद्ध अधिकार मानते हैं। उनके ये साम्राज्य अफ्रीका और आस्ट्रेलिया निवासियों के खून से तर हैं। ब्रिटेन की साम्राज्य लिप्सा ने भारत के ४० करोड़ निवासियों को गुलाम बनाया है। जब ब्रिटेन और फ्रांस के राजनीतिज्ञ हिटलर पर गुस्सा उतारते हुए कहते हैं कि नाजी अत्याचार की चक्की एक के बाद एक यूरोप के राष्ट्रों की स्वाधीनता को पीस रही है, तब एक निष्पक्ष दर्शक को यह बात दिखाई देती है कि जिन तरीकों से यूरोप के साम्राज्य वादी राष्ट्रों ने अपने उपनिवेशों को कायम किया था, वही तरीके अब भस्मासुर के वरदान की तरह उनके ऊपर उलट पड़े हैं। श्री नार्मन लीज के शब्दों में—"जर्मनी के कलुषित कुकृत्य की तुलना में हम अंग्रेज और फ्रांसीसी दूध के धुले हुए मालूम देते हैं, किन्तु बारीकी से देखने पर, मिसाल के तौर पर, लेओनर्ड की पुस्तक बताती है कि हमारी चादर में भी धब्बा है और उसमें यहाँ वहां खून के निशान हैं।

महायुद्ध के पहले जनरल वान ग्रप के अनुसार ब्रिटिश साम्राज्य ब्रिटेन का

१०५ गुना बड़ा, बेलजियम साम्राज्य बेलजियम का ८० गुना बड़ा, हालैंड का साम्राज्य हालैण्ड से ६० गुना बड़ा और फ्रांस का साम्राज्य फ्रांस से २२ गुना बड़ा था। किसी तरह का भी प्रचार इस बात को नहीं छिपा सकता कि इन लम्बे चौड़े साम्राज्यों का ये राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिये शोषण नहीं करते। ये बड़े-बड़े साम्राज्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और दुनियाँ की शांति के लिये जबरदस्त खतरा साबित हो रहे हैं। ये साम्राज्य हिंसा या हिंसा की धमकी से कायम किए गए हैं। वान एप द्वारा बताए हुए आंकड़े स्वयं ही अपनी कहानी कहते हैं। अब बताइये इस कैफियत के होते हुए ब्रिटेन अन्य राष्ट्रों पर कैसे नैतिक असर डाल सकता है? जिन मुल्कों के पास इस तरह के साम्राज्य नहीं हैं और जो एक शताब्दी बाद ही सही, अपने लिए इस तरह के साम्राज्य गढ़ने निकले हैं, उन पर ब्रिटेन का कैसे असर पड़ सकता है? साम्राज्य की लालसा ने आज यूरोप को अपने पाश में जकड़ रखा है। साम्राज्य की इसी प्रतिस्पर्द्धा ने दो युद्धों को जन्म दिया। एक पिछला महायुद्ध और दूसरा पिछले महायुद्ध से भी अधिक भयकर वर्तमान महायुद्ध। जब तक साम्राज्यवाद की भावना यूरोप में बनी रहेगी, तब तक इस तरह के युद्ध की ज्वालामुखी साम्राज्यवादी और साम्राज्यहीन राष्ट्रों के बीच फूटती रहेंगी।

किन्तु क्या किसी मुल्क की समृद्धि के लिये उपनिवेशों और साम्राज्य की जरूरत है? बहुत से ईमानदार अंग्रेज मुमकिन है यह सोचते हों कि साम्राज्य द्वारा प्राप्त सुविधाओं पर ही उनका सुख और समृद्धि निर्भर है। फर्ज करिए इसमें सचाई है, किन्तु आज ऐसे अंग्रेज के सामने दो बातें चुनने का प्रश्न खड़ा हो गया है। वे या तो अपने साम्राज्य पर दखल बनाये रहें और हर पीढ़ी के बाद अपने यहां के सपूत युवकों को युद्ध क्षेत्र में तोपों के सामने बलि देते रहें, या फिर दुनियां में शान्ति और स्वतन्त्रता कायम करें, और हर राष्ट्र के अन्दर यह भावना पैदा करें कि वह खुद भी जिन्दा रहे और दूसरों को भी जिन्दा रहने दे। यदि दुनियां में शान्ति और नव-व्यवस्था कायम करनी है, तो इसके लिए बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। सारे साम्राज्य भंग करने पड़ेंगे और गुलाम राष्ट्रों को आजाद करना होगा। मुमकिन है कि यह कीमत बड़ी मालूम होती हो, किन्तु इससे जो लाभ होगा, उसे देखते हुए यह कीमत हरगिज बड़ी नहीं है। साम्राज्यवाद व्यक्तिगत पूंजीवाद को जन्म देता है और पूंजीवाद व्यक्तिगत मुनाफे की भावना को जन्म देता है। साम्राज्यों को भङ्ग होने से रोकने के लिये पूंजीपति जमीन आसमान एक कर देंगे। उनके निकट साम्राज्यों को भङ्ग करने का अर्थ

होगा अपने माल की बिक्री के बाजारों को, कच्चा माल प्राप्त करने की सुविधा को और बड़े बड़े मुनाफ़ों को खो देना। दुर्भाग्य से हर साम्राज्यवादी मुल्क पर पूंजीवादियों की टोली हुकूमत करती है और ये लोग शान्ति के हर प्रयत्न की जड़ काट देते हैं किन्तु मजदूरों का इसी में हित है कि वे देश के लाभ को व्यक्तिगत लाभ की जगह दें। सुख और शान्ति हर मुल्क के कदमों पर है, यदि पैदावार को समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार संगठित कर लिया जाय; तो शान्ति और समृद्धि हर मुल्क की मुट्ठी में है। यदि विज्ञान ने इन्सानों की हत्या करके आश्चर्य जनक सफलता पाई है, तो उसे मानवता के लाभ के लिये भी इस्तैमाल किया जा सकता है। साम्राज्यवादी राष्ट्र अपने साम्राज्य को खोकर भी नुकसान में नहीं रहेंगे। मुमकिन है लोग यह कहें कि इतना बड़ा परिवर्तन जिन्दगी और मौत में लगे हुए इस युद्ध के समाप्त हुए बगैर न हो सकेगा और बीच धार में नाव बदलना मूर्खता है। किन्तु जब हम देख रहे हैं कि नाव हमें उस पार नहीं पहुंचा सकती; क्योंकि उसके पेंदे में एक बड़ा सा छेद हो गया है इस स्थिति में भी दूसरी नाव न बदलना बड़ी भारी हिमाकत है। जरा कल्पना तो कीजिये यदि सारे यूरोप में समाजवादी सिद्धान्तों के अनुसार व्यवस्था की घोषणा करके फिर जर्मनी के मजदूरों से हिटलरी व्यवस्था को तोड़ फेंकने की अपील की जाय, तो सारे यूरोप के मजदूरों के दिलों में किस तरह उत्साह की बिजली दौड़ जायेगी! क्या हिटलर ने स्वयं एक बार नहीं कहा था कि यदि ब्रिटेन भारत को स्वराज्य दे दे, तो वह ब्रिटेन के कदमों पर सिर रख देगा। क्या हिटलर की इस घोषणा का ब्रिटिश सरकार ने अब तक कोई जवाब दिया है? हिटलर के इस वक्तव्य के साथ अंग्रेजों के सारे बयान और उनकी लफ्फाजी, चेम्बरलेन, अमेरी और चर्चिल की सारी घोषणायें फीकी पड़ गई। यदि ब्रिटिश सरकार समाजवादी व्यवस्था की घोषणा करते हुए भारत को स्वतन्त्र होने का अधिकार दे देती, जिस तरह कि उसने अपने दूसरे उपनिवेशों को दिया है; यदि दक्षिण अफ्रीका में एक सच्चा जनतन्त्र कायम हो जाता, जिसमें वहां के ४०-५० लाख बाण्टुओं को भी यूरोपियनों के मुकाबले में बराबरी का दर्जा मिल जाता, तो दुनियां के दृष्टिकोण में कितना आश्चर्यजनक परिवर्तन हो जाता? क्या हम इस बात की कल्पना नहीं कर सकते कि ऐसा होने पर इस महायुद्ध में मानव शक्ति की बरबादी और वह हत्याकांड रुक जाता। शासन की नीति से यदि शोषण प्रणाली अलग कर दी जाय, तब क्या सारा संसार एक ही कुटुम्ब की तरह न हो जाय? असली जरूरत इस बात की है कि हमारे दिल और हमारे सोचने के तरीके बदलें।

किन्तु क्या साम्राज्यवादी जनतन्त्र इस परिवर्तन के लिये तैयार हैं?

शहीद लेखराम

(लेखक—एक आर्य युवक)

जातियों और आदर्शों का उत्थान शहीदों के खून से हुआ करता है। जो जाति अपने आदर्श पर मर मिटने वाले जितने ही अधिक शहीद उत्पन्न कर सकती है, वह उतनी ही दृढ़ता के साथ जीवित रह सकती है, तथा जब तक इस प्रकार अपना खून बहाने वाले वीर उस जाति के अन्दर पैदा होते रहते हैं, उस समय तक उसमें जीवन, साहस, तथा दृढ़ता रहती है। वर्तमान हिन्दू धर्म को सब से अधिक जीवन, शक्ति और दृढ़ता आर्य समाज ने दी है और उसका सब से बड़ा कारण यही है इस संस्था ने आर्यत्व के आदर्श पर कुरबानी करने वाले एक से एक बढ़कर शहीद उत्पन्न किये हैं।

१९वीं शताब्दी में हिन्दू-धर्म सुधार आदर्श को लेकर कितने ही आन्दोलनों का जन्म हुआ, जैसे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, देव समाज, आर्य समाज, थ्योसोफीकल सुसाइटी आदि, परन्तु हिन्दू-धर्म को सब से अधिक दृढ़ता प्राप्त हुई तो केवल आर्य समाज से और इसका एकमात्र कारण आर्य वीरों का अपनी सभ्यता और संस्कृति के हित हँस २ कर बलिदान होना ही है।

वास्तव में आर्य समाज का जन्म ही एक शहीद के द्वारा हुआ था। ऋषि दयानन्द ने अपने आर्य समाज की नींव को अपने रुधिर से दृढ़ किया था। उनके शहीद हो जाने के पश्चात् शहीदों का जो सिलसिला प्रारम्भ हुआ वह निरन्तर चला आरहा है और हमें पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में भी चलता रहेगा, तथा यह भी एक निश्चित सत्य है कि आर्य समाज या ऋषि दयानन्द के भक्तों में जब तक सरफ़रोशी की यह भावना रहेगी, तब तक अनेक विघ्न और बाधाएँ होते हुए भी आर्य समाज उन्नति करता रहेगा, और यदि मिट भी गया तो भी अपने पीछे बलिदानों की अनुपम कहानी छोड़ जायगा—जो हजारों वर्ष तक आने वाली वीर सन्तानों को बलिदान का पवित्र सन्देश देती रहेगी। लेखक का पूर्ण विश्वास है कि यदि आर्य समाज के समस्त कार्य को भुला भी दिया जाय, तो भी इतने थोड़े जीवन में इतने शहीदों का उत्पन्न कर देना ही इस संस्था के नाम तथा अस्तित्व को सार्थक करने के लिए पर्याप्त है।

शहीदे धर्म लेखरामजी हर प्रकार से एक महान् पुरुष थे। संसार की परिमित परिस्थितियों में रहकर भी किसी भी महापुरुष में जो २ गुण हो सकते हैं, उनका अनुपम समिश्रण उनके जीवन में पाया जाता है। चाहे आप उनको व्याख्याता के रूप में देखें, चाहे जिज्ञासु, पत्रकार, लेखक, धुरन्धरवादी, पर्यटक, Rese ırch scholar, नेता किसी भी दृष्टि से देखें उनका जीवन हर प्रकार से असाधारण प्रतीत होता है। अदम्य उत्साह, अद्भुत क्रिया शीलता तथा अगाध आत्मविश्वास में तो सर्वथा अद्वितीय थे। उनमें एक विचित्र बिजली की सी शक्ति थी जो भारत के अन्य किसी भी पुरुष में दिखाई नहीं देती।

वे एक सच्चे कर्मयोगी थे, कठिनाइयां उनके उत्साह को दुगुना कर देती थीं। विरोधियों के झुण्ड में भी निर्भय शेर की तरह दहाड़ते थे। थकने का नाम न जानते थे और जहां गये कोई विरोधी उनके सामने खड़ा न रह सका। उनके सम्बन्ध में अंग्रेजी के ये शब्द पूर्ण रूप से चरितार्थ होते हैं कि (He came, he saw, he won) इस दृष्टि से भारत के तीन हजार वर्ष के इतिहास में केवल दो ही और महापुरुष उत्पन्न हुए हैं। एक स्वामी शंकराचार्य तथा दूसरे वर्तमान भारत के आचार्य ऋषि दयानन्द।

वे जहां गये जागो २, मारो २ का सन्देश लेकर गये। वास्तव में सदियों से सोई हुई तथा शत्रुओं से घिरी हुई जाति को इसी सन्देश की आवश्यकता थी। नवयुवकों को उन्होंने आत्मविश्वास और शक्ति का सन्देश दिया। कठमुल्लाओं तथा पोपों से टक्कर लेते हुए भी कभी उन्होंने नौजवानों को नहीं भुलाया। उनका जीवन एक सच्चे युवक का था। नवयुवकों को सम्बोधित करके उन्होंने मेरठ आर्य समाज में जो महत्वपूर्ण व्याख्यान दिया था, उसके एक २ शब्द से वीरता तथा जाग्रति की भावना टपकती है। एक २ शब्द सुनहरी अक्षरों मे लिखे जाने योग्य है—

"जो कमजोर है पतन और गुलामी उसके भाग्य में लिखी है।"

यदि तुम्हारे अन्दर बल नहीं है तो तुम्हारी सभ्यता और संस्कृति तुम्हें कुचले जाने से नहीं रोक सकती।

शरीर को बलवान बनाना ईश्वर की सच्ची उपासना है।

ईश्वर बल तथा शक्ति का पुंज है, वह उसी की सहायता करता है जो उसके इन गुणों को धारण करता है।

संसार बल और शक्ति की उपासना करता है।

बलवान आत्मा बलवान शरीर में ही निवास कर सकता है, कमजोर शरीर बलवान आत्मा को धारण नहीं कर सकता।"

दुख है कि आर्य समाज ने इन शब्दों को ध्यान से नहीं सुना। हमने कठमुल्लों तथा पोपों को परास्त करने के लिये धुरन्धरवादी उत्पन्न किये, आश्चर्य है कि गत अर्द्ध शताब्दी के काल में अनेक उतार चढ़ाव तथा परिवर्तनों के बीच से गुजरने पर भी हमारे देश मे तथा विशेष कर हिन्दू जाति की शारीरिक दशा सुधारने तथा युवकों का संगठन करने के लिये हमारे नेताओं की ओर से कोई देशव्यापी आन्दोलन नहीं किया गया। शहीद लेखराम जी का आत्मा हमारी इस असहाय अवस्था पर आँसू बहा रही होगी। आज भी समय है कि हम उनके इस आदर्श को पूरा करने में लग जांय।

स्वर्गीय लेखरामजी अपने आदर्श जीवन तथा आदर्श बलिदान की विरासत समस्त हिन्दू जाति पर छोड़ गये हैं। उनकी आत्मा आज भी पुकार २ कर हमसे पूछ रही है कि "बताओ तुमने उस आदर्श की पूर्ति कहां तक की, जिसके लिये मैंने अपना रुधिर बहाया था।" यदि इस प्रश्न का उत्तर हम "हाँ" में दे सके; तो उस महान् वीर की यही सच्ची पूजा होगी।

— —

शिक्षा के दृष्टिकोण से

प्लेटो, व्हाइटमैन और हिटलर

महान् व्यक्तियाँ उत्पन्न करो—वर्तमान जगत के कवि वाल्ट-व्हाइट मैन अपनी कविता में इस प्रकार गाते हैं:—"शरीर में बलशाली और चरित्रवान् व्यक्ति ही किसी राष्ट्र को महान् बनाते हैं। किसी स्थान पर चाहे कितने ही ऊँचे और मूल्यवान भवन हो, कालेज और उपहारगृह हों वह स्थान वास्तव में महान् नहीं हो सकता। ऐसे स्थान पर दुर्बल स्त्री और पुरुष होंगे जिनकी आत्माएं चारित्रिक सौन्दर्य से शून्य होगी। कोई देश धन धान्य, मनुष्यों और विद्वानों से परिपूर्ण हो सकता है परन्तु यदि उसमें चरित्रहीन गुलाम बसते होंगे जिन्हें मृत्यु के भय ने दया का पात्र बना रखा होगा तो वह अपना सम्मान कराने में अकृतकार्य रहेगा। इसी कारण से व्हाइटमैन अपनी कविता में निर्देश देते हैं:—

"बड़ा नगर वही है जिसमें महानतम स्त्री और पुरुष बसते हों। यदि ऐसे ही स्त्री पुरुषों से परिपूर्ण स्थान थोड़े से झोंपड़ों से परिपूर्ण हो तो वह स्थान संसार के महानतम नगरों में होगा।"

यह पद हमें प्लेटो की इस युक्ति का स्मरण कराता है:—

"राज्य का इससे अधिक सौभाग्य क्या हो सकता है कि उसमें श्रेष्ठ स्त्री और पुरुष बसते हैं।"

यूनानियों के अनुसार पूर्णता का अभिप्राय: शारीरिक सौन्दर्य से युक्त आत्मिक भव्यता थी। प्लेटो की 'रिपब्लिक' में हम इस प्रकार पढ़ते हैं:—

निस्सन्देह शैशव काल से ही बच्चे को व्यायाम और संगीत का शिक्षण देना चाहिए और यह शिक्षण जीवन पर्यन्त जारी रहना चाहिए।"

यूनान की भावना ह्वाइटमैन की कविता में आश्चर्यजनक रीति से ओतप्रोत है। मध्यकालीन धर्मोपदेशकों ने आध्यात्मिक जीवन को उच्च बनाने के लिए शरीर को त्याग कर देने की शिक्षा दी। उन्हें शरीर और आत्मा की मांगों में निरन्तर विरोध का आभास हुआ। व्हाइटमैन और संसार के अन्य सुधारकों ने आत्मा और शरीर दोनों की प्रेरणाओं को स्वीकृत किया। मानव-शरीर ने पुनः अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त की। वाल्ट की प्रभावशाली वाणी में यूनान की प्राचीन भावना पुनः विजयी हुई। उसने घोषणा की:—

"शरीर और आत्मा दोनों अपनी अपनी बारी से उच्च हैं।"

व्हाइटमैन ससार को एक देन है और इनका कार्य पुरानी रूढियों को छिन्न भिन्न करके नव जीवन सचार करना होता है ।

हिटलर की राजनीति से हम घृणा करते हैं। परन्तु उसने जर्मनी के नवयुवकों को किस प्रकार प्राणों पर खेलने वाले योद्धा बनाया, इसका हमें ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। हिटलर मानव शरीर के पूर्ण विकास मे बड़ी आस्था रखता है। प्लेटो के सदृश वह भी व्यायाम को शिक्षा का आवश्यक अग मानता है। मेरा सघर्ष (My Struggle) नामक अपनी पुस्तक में इस प्रकार लिखता है -

"इस बात को दृष्टि में रख कर राष्ट्रीय सरकार को सब से पहले केवल ज्ञान की अपेक्षा शारीरिक शिक्षा पर अधिक बल देना चाहिये। उसके पश्चात् मानसिक योग्यता का विकास होना चाहिए।"

फिर एक जगह हिटलर लिखता है—

"राष्ट्रीय सरकार को इस धारणा को सन्मुख रख कर कार्य करना चाहिए कि जाति को दुर्बल शरीर वाले विद्वानों की अपेक्षा ऐसे व्यक्तियों की नितान्त आवश्यकता है जिनकी शिक्षा भले ही कम हो परन्तु वे पूर्ण स्वस्थ हों, पूर्ण सदाचारी हों और जिनमे आत्म विश्वास हो और जिनकी इच्छा शक्ति दृढ़ हो।"

स्त्री शिक्षा के विषय में भी हिटलर शारीरिक शिक्षण पर वही बल देता है। वह लिखता है.—

"स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध मे भी शारीरिक शिक्षण पर सब से अधिक ध्यान दिया जाना चाहिए और इसके पश्चात् चरित्र के विकास पर और सब से अन्त में बुद्धि पर।"

हिटलर के आदर्श राज्य में स्वस्थ और सुडौल शरीर के स्त्री और पुरुष होने चाहिएँ। दुर्बलों को वह अपने आदर्श राज्य मे सहन नहीं कर सकता। अस्वस्थ और रोगी रहना दुर्भाग्य है परन्तु दुर्बल व्यक्ति को विवाह करके संसार पर दुर्बलों का भार डालना ईश्वर और मनुष्य दोनों के प्रति अपराध है। हिटलर के लिए विवाह एक सस्था है जिसका उद्देश्य परमात्मा की प्रति मूर्ति उत्पन्न करना है न कि आधे मनुष्य और आधे बन्दर जैसी भयावनी मूर्तियों की भरमार करना।"

उसकी यह धारणा हमें नित्शे का स्मरण कराती है जिसका कथन है — "प्रेमी! आपकी दृष्टि के मनुष्य न केवल बहुत होने चाहिए वरन् उच्च भी होने चाहिएं।" जाति के कर्तव्यों की अवहेलना पूर्वक कोई विवाह नहीं होना चाहिए। जिस प्रकार प्रेमियों को अपने को पूर्ण बनाना चाहिए उसी प्रकार प्रेम को भी जाति को उन्नत, पूर्ण और दृढ़

बनाना चाहिए। हिटलर चाहता है कि स्वस्थ सन्तानों की उत्पत्ति के लिए माता पिता दोनों को बलिष्ठ होना चाहिए।

सोवियट रूस में भी स्वास्थ्य रक्षा एक सामाजिक कर्तव्य ठहराया गया है। श्रीयुत सिडनी कृत 'सोवियत कम्यूनिज्म' की दूसरी ग्रन्थावली मे हम निम्न प्रकार पढ़ते हैं:—

"व्यक्तिगत स्वच्छता, दैनिक स्नान, प्रत्येक प्रकार की गन्दगी को पृथक् रखना, पर्याप्त शारीरिक व्यायाम, दिन और रात दोनों में घरों में वायु संचार की व्यवस्था, भूख से कम भोजन करना, ये सब व्यक्तिगत कर्तव्यों के स्थान में सामाजिक कर्तव्य बन गये हैं। प्रत्येक प्रकार के आमोद-प्रमोद में भी विवेक पूर्ण आत्म संयम की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। इसी से स्त्री सहवास आदि में भी संयम से काम लेने की आवश्यकता अनुभव की जाती है। स्त्रियों और पुरुषों को अपने शरीर और मस्तिष्क मजबूत बनाने चाहिएँ इसी भावना के आधार पर व्यवहार का प्रकार निर्धारित किया जा रहा है। यह आचारिक व्यवहार पूर्ण सयम की माँग नहीं करता परन्तु प्रलोभनों के वशीभूत हो जाने को यह व्यवहार दुर्बलता समझता है और चूंकि एक त्रुटि अन्य कई त्रुटियों को उत्पन्न करती है अतः प्रारम्भ से ही विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है। असंयम स्पष्ट दुराचरण होता है।"

भारतवर्ष की भावना मे विशेष वैचित्र्य और सार है। भारत के प्रायः सभी सुधारकों ने मनुष्य के आत्मिक विकास पर विशेष बल दिया है, परन्तु उन्होंने शारीरिक गठन की भी उपेक्षा नहीं की है। आधुनिक काल के सब से बड़े नेता महात्मा गांधी ने अपने आत्म-चरित्र मे लिखा है:—

"मेरा तब भी विश्वास था और अब भी विश्वास है कि जिस प्रकार खाने के लिए मनुष्य समय निकालता है उसी प्रकार शारीरिक व्यायाम के लिए भी समय निकालना चाहिये।"

प्लेटो ने माता पिताओं की मादक द्रव्यों के सेवन, भीरुता और आलस्य की आदतों की बहुत निन्दा की है।

हिटलर और व्हाइटमैन केवल मात्र बुद्धि वादियों का निरादर नहीं करते। मनुष्य के परीक्षण का हिटलर का पैमाना मनुष्य की धन सम्पदा नहीं है और न उसके असंख्य पुस्तकों का ज्ञान ही है वरन् मनुष्य का स्वास्थ्य और उसका चरित्र ही हिटलर की परीक्षा का पैमाना है। हिटलर और व्हाइटमैन के प्यारे मनुष्य का शरीर सुन्दर, स्वस्थ और सुडौल होना चाहिए। उसका आचार व्यवहार उच्च होना चाहिए। उसमे आत्म सम्मान, साहस और अपने साथियों के प्रति सहानुभूति का भाव होना चाहिए। बुद्धि का आदर होना चाहिए परन्तु स्वस्थ शरीर और दृढ़ चरित्र अधिक मूल्यवान होते हैं। लीव आन ग्रास के कवि ने संसार के सामने प्रश्न रखा है:—

"क्या हमने केवल पुस्तकों से अपने को अंधेरे मे नही डाला है?" हमने बच्चों के पुस्तक ज्ञान पर बहुत ध्यान दिया है और इतना दिया कि उनके स्वास्थ्य की कोई पर्वाह नहीं की है। अतः शिक्षा जगत् में इस विषय पर पूरा पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार के विचार कहीं से भी प्राप्त क्यों न हों उन पर ध्यान दिया जाना चाहिए और इसलिए केवल उनको रद्द नहीं करना चाहिए कि कोई व्यक्ति हमारा शत्रु है और उसकी राजनीति त्याज्य है। (अंग्रेज़ी की पत्रिका से उद्धृत)

आर्य कुमार

कुमारावस्था का प्रारम्भ बाल्यकाल की समाप्ति होने पर (पांच से लगा कर आठ वर्ष तक) होता है। कोई कोई सोलह वर्ष तक के वय को किशोरावस्था में लगाते हैं, ऐसा किया जाय तो कन्याओं की कुमार्यवस्था तो लुप्त हो जाती है।

प्रत्येक ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी उस समय तक कुमार की कोटि में रहता है जब तक कि उसका लग्न न हो अथवा विवाह कर वह द्वितीय आश्रम में जा गार्हस्थ्य जीवन न बिताये, महाभारत के अनुशासन पर्व अ० २० में ५३ वर्षों की बड़ी उमर की स्त्री ने अपने ही विषय मे स्वय सूचना दी है—"कौमार ब्रह्मचर्यं मे कन्यैवास्मि न सशय"। पाराशर के बडे टीकाकार माधवाचार्य जिन्होंने वेदों का भाष्य भी किया है, उन्होंने लिखा है कि ऋतुकाल होने के पश्चात् रजोदर्शन से शुद्ध होने के बाद ही उसको कन्या कहना चाहिये।

अर्वाचीन काल मे प्राचीन शास्त्रों के अप्रचार के कारण पाराशरी और शीघ्रबोध में 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी ' श्लोक द्वारा व्यवस्था दी, " दसवें वर्ष कन्या का विवाह न करें तो मा बाप नरक को जाएँ।" दस वर्ष की आयु में रजस्वला कैसे हो सके' यह किसी ने न सोचा। प्राचीन वैद्यक के ग्रन्थ सुश्रुत में लिखते हैं कि स्त्री धर्म जल्दी से जल्दी १२ वें वर्ष प्राप्त होता है और साधारणतया ५५ वर्ष पीछे रजोदर्शन बन्द हो जाता है। आदि मर्यादा-कर्ता मनु भगवान् को जो दश वर्ष की आयु इष्ट होती तो वह किस लिए लिखते कि रजोदर्शन के तीन वर्ष बाद कन्या का योग्य वर से पाणिग्रहण करें और जो कन्या के योग्य वर न मिले तो चाहे जन्म पर्यन्त ब्रह्मचर्य पालन करे परन्तु नालायक वर के साथ विवाह न करे। और महाभारत में अंकित है कि 'कानीन कर्णो व्यासश्च' अर्थात् कर्ण व व्यास कन्या के पुत्र थे। पाण्डवों की माता कुन्ती को महाभारत में कन्या

कहा है। जो वह कन्या अर्थात् दश वर्ष की होती तो क्या जग-विख्यात पांडवों का उससे जन्म होना युक्त हो सकता है।

'विवाह कौन करे ? स्वयं कि माँ बाप ?

इस प्रश्न का उत्तर प्रत्येक लड़के लड़की को (कुमार को) जानना चाहिये। वेदादि शास्त्रों में दोनों को युवावस्था में पहुंचकर अपने आप विवाह करना लिखा है। सत्यार्थ प्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने भी अपना निर्णीत मत उक्त विषय में उत्तर रूप से घोषित किया है 'विवाह लड़के लड़की के आधीन हो, माता पिता का काम पुत्र पुत्री को पढ़ाना वेदों में कहा है परन्तु उनके विवाह करना वेदों में नहीं कहा है। हाँ मनु आदि में ऐसा लिखा है कि पुत्री का विवाह पिता करदे, परन्तु स्मृति में भी पुत्र का विवाह करने को तो नहीं लिखा है। वर कन्याओं के असमय व अयोग्य सम्बन्ध न हो जायें इस निमित्त मनुस्मृति में ही 'कन्यानां सम्प्रदानं कुमाराणां च रक्षणम्' वचन डाल इसे राजा का आवश्यक कर्म कहा गया है। ब्रह्मचर्य का पालन व स्वयम्वर की परिमार्जित परिपाटी थी तभी तो माता कुन्ती के ही युधिष्ठिर जैसे दृढ़ आत्मा (धर्मावतार), अर्जुन जैसे शस्त्र-धारी, एवं भीम जैसे बलशाली तीन पुत्र रत्न हुए। अब तो ८, १०, १२ के बच्चे ही नहीं २८; ३०, ३२ के युवक भी यही कहते हैं कि मुझे मालूम नहीं मेरे बाप को पूछो। इससे (युवावस्था के विवाह होने लगने पर भी) कहीं अधिक हानि आजकल अनमेल विवाहों से हो रही है। १८, २० वर्ष की कन्या के लिये ३६ व ४० का वर कोई नहीं चाहता। पंजाब में एम० ए० पास कन्या के लिए उससे बढ़कर वर दुष्प्राप्य हैं। ब्राह्मण या त्यागी स्वभाव व वैश्य वृत्ति (स्वभाव) के मेल गुण, कर्म स्वभावानुसार ही माने जा रहे हैं। कभी लड़के बेचे जाते थे अब बहुत करके लड़कियें बड़ी ड्योढ़ी या बड़ी आय पर न्योछावर की जाती हैं।

प्रभु कृपा करें कि शीघ्र वह समय आये जब प्राचीन राजे व ऋषियों की भाँति गुण, कर्म स्वभावानुकूल राजकुमार एक वनवासी ऋषि कन्या को चाहे एवं धनीमानी घराने की कन्या विद्या धन से विभूषित किन्तु दरिद्री ब्राह्मण का ही वरण करे जिससे आर्य कुमारों का तप फले व हमारे गृहस्थ फलें फूलें और एक बार फिर स्वर्ग धाम बन जाये।

ब्र० सोमाहुतिर्भार्गवः सिद्धान्त भूषण।
प्रचारक सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
देहली।

होलिकोत्सव !

संवत्सर में छः ऋतु होती हैं। बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त और शिशिर। वैदिक शब्द ऋत्विक् स्पष्ट रूप से इस बात का द्योतक है कि ऋतु २ में वैदिक ऋषियों ने यज्ञों का विधान किया है। इसलिए ही संवत्सर के अनेक भागों में अनेक प्रकार के यज्ञों को ऋतु २ में करने वालों को ऋत्विक् कहा जाता है। इन यज्ञों में से दो दो ऋतुओं की सन्धि में होने वाले श्रौत यज्ञों का नाम चातुर्मास्य यज्ञ है। प्रथम चातुर्मास्य बसन्त के आरम्भ में फाल्गुन पौर्णमासी, द्वितीय वर्षा के आरम्भ में आषाढ़ी पौर्णमासी और तृतीय हेमन्त ऋतु के आरम्भ में कार्तिक पौर्णमासी को करना विहित है इस प्रकार श्रौत यज्ञविधान के अनुसार प्रथम चातुर्मास्य का पावन पर्व उसी फाल्गुन पौर्णमासी को आता है कि जिस दिन वर्तमान होलिका का उत्सव मनाया जाता है। अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमास, आग्रायन, चातुर्मास्य, पशुबन्ध, अग्निष्टोम, राजसूय, वाजपेय, अश्वमेध, पुरुषमेध, अहीनदक्षिणा, अतिरात्र आदि २ श्रौत यज्ञ परम्परा जब तक आर्यावर्त में अबाध रूप से प्रचलित रही तब तक साधारण प्रजाजन को भी इन पर्व दिवसों का स्वरूप और उनको विधि से मनाने का अदम्य उत्साह बना रहा। किन्तु काल पुरुष के चंक्रमण से देशकालिक परिस्थिति में आमूल परिवर्तन होगया और विशुद्ध वैदिक यज्ञ-परम्परा को शनैः २ लोग भूल गये। तथापि उसके स्थान पर कुछ न कुछ विकृतरूप में करने लगे। आज उसी एक पर्व दिवस का अत्यन्त जुगुप्सित रूप होलिकोत्सव है। इसी पर्व दिवस को मनाते समय जो जो कुचेष्टायें करने का आयोजन किया जाता है उनको देखकर आश्चर्य और खेद होता है कि किस प्रकार सभ्यतम आर्य जाति के उत्तरवर्ती लोगों ने अपने स्वाभाविक स्वरूप को नितान्त विस्मृत कर देने का शोचनीय प्रयास किया है।

पौराणिक परम्परा के अनुसार हिरण्यकशिपु एक महान् प्रतापी किन्तु अत्याचारी दैत्य सम्राट् था कि जिसने अहंकार और बल से मत्त होकर अपने प्राणप्रिय पुत्र प्रह्लाद को इस कारण परिपीड़ित किया था कि वह ईश्वर भक्ति करता था और दैत्य पिता उसको ऐसा न करने के लिए अनेक प्रकार से मना करता था। अनेक दण्ड देने के उपरांत अन्त में दैत्यराज ने होलिका नामक अपनी बहन को आदेश दिया कि वह प्रह्लाद को अपनी गोद में लेकर धधकती हुई अग्नि में प्रवेश

करे कि बालक प्रह्लाद जलकर भस्म होजावे। उसके ऐसा करने पर प्रह्लाद तो जीवित रहा किन्तु वह स्वयं परिदग्ध हो गई। इस प्रकार इस कथा द्वारा यह दर्शाने की चेष्टा की गई है कि ईश्वर भक्त की रक्षा प्रत्येक अवस्था में होती है। महान् क्लेशों की करालतम यातनाओं के पार हो जाने के कारण आजतक भक्त प्रह्लाद की पावन कीर्ति प्रत्येक भारतीय के लिए उचित गौरव की बात है और आज भी पुरों, नगरों, ग्रामों और दूरस्थ अरण्य प्रदेशों में भारतीय नरनारी उसी अलौकिक घटना के उपलक्ष में घास फूस, उपला और काष्ठ आदि प्रज्वलित करके उसमें अक्षत और पुष्प छोड़ते हैं। एक बात इस पर्व के अवसर पर बड़ी विचित्र होती है कि पारस्परिक जात्यादि भेदभाव को भुलाकर आर्य हिन्दूमात्र परस्पर मिलते हैं और एक दूसरे के साथ भाई २ का व्यवहार करते हैं। अनेक कठिनाइयों के मध्य में पड़े हुए भारतीयों को दुरवस्था में भी बड़े उत्साह के साथ होलिकोत्सव मनाते देख कर आश्चर्य होता है। क्योंकि आनन्दोत्सव का कोई भी साधन और अवसर न होते हुए भी यह जाति घोर संकट के समय में भी बड़े उल्लास के साथ अपने पर्वों को मनाकर प्रसन्नता लाभ करने का साहस करती है।

काल पुरुष के कराल आघातों से नितान्त जर्जरित और परित परित्रस्त मानव आज पैशाचिक भीषणता के साथ जिघांसावृत्ति के साधनों से शोणित की होली मना रहा है। सभ्यता की सफेदी को श्वेतजाति कोष्ण शोणित से रक्ताक्त बनाने मे होड़ लगा रही है। दासता और दरिद्रता से सैकड़ों वर्ष पर्यन्त पीड़ित रहने के कारण नितान्त असहायावस्था में पड़े हुए भारतीय सर्वथा किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर कैसे होलिकोत्सव मनावें और किस प्रकार अपने दुःखों के हिमालय को भुलाकर हिलमिलकर फाग गाने की आत्मविडम्बना की लीला करने का साहस करें। जीवन में जब चैन होता है तभी पर्व और उत्सव भी मधुर लगते हैं। किन्तु कष्टक्लान्त जीवन में क्या स्वाद मिल सकता है।

ससार के प्रमुख देशों में आज रक्त की धारायें बह रही हैं। लाखों नरनारी प्राणाहुति दे चुके हैं। किन्तु अभी न जाने कबतक पशुता का यह नंगा नाच मानव-जाति को विनष्ट करने के लिये होता रहेगा और न जाने कबतक विज्ञान के विविध आविष्कारों का घोर प्रयोग जनसंहार के लिये व्यवहार में लाते हुए मानव, दानव और हिंस्रजन्तुओं से अधिक क्रूरता का परिचय अपने ही भाइयों के संहार करने में देने का दुःसाहस करता रहेगा। शोक और हाहाकार से परित्रस्त जगत् मे ढाढस देने वाली किस बात को कहकर हम सब भारतवासी होलिकोत्सव

श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, एम० ए०, प्रधान
श्रीमती आर्य्य प्रतिनिधिसभा संयुक्तप्रान्त तथा चांसलर
गुरुकुल वृन्दावन का गुरुकुल वृन्दावन के
३७ वें महोत्सव पर

दीक्षान्त–भाषण

(२)

(गताङ्क से आगे)

प्रथम तो गुरुकुल खोलते समय हमारी दृष्टि के सामने उद्देश्य मात्र था। हमने यह नहीं सोचा था कि हम कहाँ हैं और किस मार्ग से जाना है। यदि हमको किसी पर्वत के शिखर पर चढ़ना हो तो केवल शिखर को देखना ही पर्याप्त नहीं है। यह भी सोचना चाहिए कि हम कहाँ पर हैं और हमारे वर्तमान स्थान और उस शिखर के मध्य मे कितने कण्टकाकीर्ण जंगल अथवा नदी नाले पड़ेंगे जिनको पार किये बिना आगे नहीं बढ़ सकते। हमारे सामने यह उद्देश्य तो था कि हमको शीघ्रातिशीघ्र समस्त संसार को वैदिक झण्डे के तले ला देना है, परन्तु हमने अपनी परिस्थिति और अपनी शक्ति का विचार नहीं किया था। हमारे सामने कोई निश्चित स्कीम न थी। इसलिए जब गुरुकुल खोले गये तो आरम्भ से ही कठिनाइयाँ आने लगीं। उदाहरण के लिए पहले कियों का गुरुकुलों की सीमाओं के

को मनावें। इसका अनुमान करना भी कठिन है। नितान्त दुरवस्थाग्रस्त होने पर भी ईश्वर के विश्वास और आत्मविश्वास पर निर्भर रहने में यदि हम समर्थ हो सकें तो निश्चय ही भक्त प्रह्लाद के समान महान् कष्टों के पहाड़ के नीचे से भी सकुशल पार हो सकते हैं। विपत्ति काल में धीरज के साथ यदि हम विशाल आर्ष राजमार्ग पर दृढ़ता के साथ अग्रसर होते रहे और घोर संकट के समय में भी अपनी पावन परम्परा के अनुसार दुःख और सुख के परिवर्तनशील द्वन्द्व को विक्षुब्ध मन सहन करते हुये अपने कर्तव्य पालन में प्रवृत्त रहें तो प्रतिवर्ष ही वसन्त ऋतु के आगमन का होलिकोत्सव के समय उसी प्रकार स्वागत कर सकते हैं कि जिस प्रकार प्रकृति राज्य का प्रत्येक वृक्ष, वनस्पति गुल्म और लता अपने स्वरूप को नव पल्लव, और पुष्पों से आच्छादित करके ऋतुराज वसन्त का स्वागत करते हैं। प्रतिवर्ष मधुर होली की भांति यह कराल होली भी हमारे कल्याण की साधिका बने और हम सब उत्साह से नववर्ष का स्वागत कर सकें।

भीतर प्रवेश मात्र गर्हित और वर्जित समझा जाता था। पीछे से पता चला कि यह व्यवहार्य नहीं है। पहले नियम बनाये गये कि विद्यार्थी अपने विद्यार्थी काल में घर न जा सकेंगे। इसमें भी परिवर्तन करना पड़ा। पाठ्य क्रम में भी बहुत कुछ परिवर्तन हुये। वेदों को किस प्रकार पढ़ावें और किस क्रम से पढ़ावें यह भी प्रश्न था। और अब भी है।

यह आपत्तिया स्वाभाविक थी और प्रत्येक संस्था के सामने आया करती हैं परन्तु एक भेद है। यदि संचालक लोग आपत्तियों को स्वाभाविक समझ लेते हैं तो उनके आने पर वे उदासीन या हताश नहीं होते और धैर्य पूर्वक कार्य करते हैं परन्तु इसके विरुद्ध यदि उनको यह आपत्तिया अस्वाभाविक और आशा के विपरीत प्रतीत हों तो वे घबरा कर योजना के ही विरुद्ध हो जाते हैं। गुरुकुलों के साथ इसी प्रकार की बात हुई है। पहले से बड़ी बड़ी आशायें बाँधी गईं। जो काम केवल जादू से ही हो सकता है उसकी आशा कर ली गई और जिस प्रकार जादू के लिए किसी नैसर्गिक सामग्री की आवश्यकता नहीं समझी जाती इसी प्रकार इनके लिए भी उतनी सामग्री जुटाने का विचार नहीं किया गया जितनी किस प्रकार की योजनाओं के लिए आवश्यक है।

दूसरी बात यह है कि गुरुकुल अभी परीक्षण काल को पार नहीं करने पाये थे कि उनको सार्वजनिक रूप दे दिया गया। सम्भव है 'परीक्षण' शब्द को सुनकर कुछ लोग चौंकें और यह आक्षेप करें कि इस प्रणाली पर पूर्वकाल में भरपूर परीक्षण हो चुका। अब क्या आवश्यकता? परन्तु याद रखना चाहिये कि इस युग के लिए तो यह परीक्षण ही था। बहुत सी छोटी मोटी बातें (details) जो किसी व्यवहृत योजना को देखकर जानी जा सकती है गुरुकुलों के सम्बन्ध में प्राप्त न थीं। गुरुकुल किस प्रकार चला करते थे? उनके अध्यापक कहां से आते थे? कौन उनकी नियुक्ति करता था? किस योग्यता के विद्यार्थी लिए जाते थे? उनके लिए धन कहां से आता था? आदि आदि सैकड़ों छोटे छोटे पुर्जे हैं जिनके बिना कोई बड़ी मशीन नहीं चल सकती। गुरुकुल के संचालकों के सामने भी यही बातें आईं।

तीसरी बात बहुत ही गम्भीर है। अपनी संस्था को सर्व प्रिय बनाने के लिए हम इतने उतावले हो गये कि सार्वजनिक प्रगतियों के पीछे चलने लगे। हमको यह चिन्ता तो न रही कि हमारा उद्दिष्ट स्थान क्या है। हमको यह इच्छा होने लगी कि कोई हमको सुस्त या समय के प्रतिकूल न कहने लगे। इसलिए जब जब जिस जिस प्रगति ने देश में जोर पकड़ा हमने उसी का अनुसरण किया। कोई कारीगर अपने माल को उस समय तक प्रदर्शिनी गृह (show-room) में नहीं लाता जब तक वह माल पूर्ण रूप से तैयार न हो जाय। हमने इसके विपरीत काम किया। और जब लोगों ने हमारे माल को आशा के नीचे पाया

तो उनको शिकायत होने लगी। इसका एक उदाहरण देता हूं। गुरुकुल कांगड़ी के एक उत्सव पर लुकसर स्टेशन पर भीड़ बहुत थी और यात्रियों को रेल के अधिकारियों के साथ शिकायत भी बहुत थी। यात्री लोग बड़े सन्तोष से कह रहे थे, "इनको दो चार वर्ष अत्याचार कर लेने दो। जब हमारे गुरुकुल से ब्रह्मचारी निकलेंगे तो अपने वायुयान बना लेंगे।" जब ब्रह्मचारी निकले और उन्होंने वायुयान न बनाये तो लोगों ने सोचा कि गुरुकुलों का परिश्रम निष्फल गया। उनको ज्ञात ही न था कि वायुयान बनाने के लिए कितना परिश्रम कितना त्याग, कितनी योग्यता, कितना समय और कितनी सामग्री चाहिये।

हमने भावुकता म आकर गुरुकुलों की गाड़ी को आगे बढ़ाया। और अब भी भावुकता के आश्रय ही चला रहे हैं। यह है एक बड़ी भारी त्रुटि। कोई शिक्षणालय केवल भावुकता के सहारे नहीं चल सकता। शिक्षणालयों की उन्नति में बहुत समय लगता है। भावुक जनता इतने दिनों धैर्य पूर्वक नहीं बैठ सकती। जनता के लिए तो जादू चाहिए। यह है कारण गुरुकुलों के प्रति उदासीनता का।

परन्तु यह नहीं समझना चाहिए कि गुरुकुलों को कीर्ति प्राप्त नहीं हुई। गुरुकुल शब्द मे एक विशेष आकर्षण है। इसीलिए बहुत सी ऐसी संस्थाओं ने भी 'गुरुकुल" नाम अपनाया हुआ है जो प्राइमरी पाठशाला से बढ़कर नहीं है और जिनके नियम तथा पाठ्यक्रम अन्य छोटे स्कूलों के जैसे ही हैं।

जिस समय गुरुकुल स्थापित करने का प्रस्ताव हुआ उस समय शिक्षा का समस्त कार्य गवर्नमेंट के हाथ में था। जनता का उसमे कोई भाग न था। शिक्षा का माध्यम था अंग्रेजी और शिक्षा का आदर्श था पाश्चात्य। यह समझ लिया गया था कि यदि भारतीय सभ्यता में कोई अच्छी चीज है भी तो वह केवल ऐतिहासिक। वर्तमान युग के लाभदायक या अनुकरणीय उसमे कुछ भी नहीं। इसलिए सभी को अंग्रेजी पढ़ने और अपने शासकों की नकल करने की धुन थी। ऋषि दयानन्द पहले महा पुरुष थे जिन्होंने आर्य समाज के प्रचार द्वारा जनता को बताया कि प्राचीन वैदिक सभ्यता में ही मनुष्य की उन्नति का रहस्य है। उन्होंने जगत् को चेतावनी दी कि जिस मार्ग पर पश्चिम चल रहा है वह न पश्चिम के लिए ही हितकर है न पूर्व के लिए। पाश्चात्य देश वालों को चेतन आत्मा पर विश्वास न था। वह तो लोगों को जड़ तत्वों का समूह मात्र समझते थे। उन्होंने विज्ञान द्वारा यही सिद्ध करना चाहा। १८७४ ई० में टिंडल (Tyndall) महोदय British Association for Advancement of Science (विज्ञान की उन्नति करने वाली ब्रिटिश एसोसियेशन) के सभापति थे। उन्होंने अपने व्याख्यान में कहा था कि कुछ दिनों में विज्ञान इतनी उन्नति कर लेगा कि भौतिक और रसायन के आधार पर बिना जीव या ईश्वर की सत्ता के

आरम्भिक नेबुला (केन्द्र) के परमाणुओं से लेकर ब्रिटिश एसोसियेशन की कार्यवाही तक (from the atoms of the primeval nebula to the proceedings of the British Association for the Advancement of Science) सभी प्रगतियों की व्याख्या हो सकेगी।

यदि यह बात सत्य सिद्ध हो जाती जैसा कि बहुत से लोगों ने माना हुआ है तो फिर शिक्षा मे धर्म का तो कोई स्थान शेष ही नही रहता। जब चेतन जीव ही नहीं, जब कोई परमात्मा जैसी चेतनशक्ति ही नहीं तो शिक्षा एक अति क्षणिक वस्तु रह जाती है। क्षणिक चेतनता-शून्य जीवन मे विकास भी हो तो किसका ? उर्दू के एक कवि के शब्दों में—

जिन्दगी क्या है अनासिर की मुनासिब तरतीब।
मौत क्या है इन्हीं अजजा का परेशा होना॥

जब जीवन केवल तत्वों के संमिश्रण का नाम है और उनके बिखरते ही जीवन का अन्त हो जाना है तो इतने मात्र के लिए शिक्षा का कोई महत्व नहीं रहता।

मैं सन् १८७४ की बात कह रहा था। सन् १८७५ ई० में इसी के विरुद्ध ऋषि दयानन्द आर्य्य समाज की स्थापना कर रहे थे। जिसका मूलाधार परमेश्वर की सत्ता है। इतने दिनों की वैज्ञानिक उन्नति ने आज सिद्ध कर दिया कि टिंडल महाशय की आशाओं पर पानी फिर गया और वैज्ञानिक संसार ऋषि दयानन्द के अधिक निकट आ गया। मैक्स प्लैंक जो वर्तमान युग के सब से बड़े वैज्ञानिक है कहते हैं कि—

"Consciousness I regard as fundamental. I regard matter as derivative from consciousness, We cannot get behind consciousness Everything that we talk about, everything that we regard as existing, postulates consciousness."

(Observer. January 25, 1931. J. W N. Sullivan's Interview with Max Planck.)

"मैं चेतनता को मौलिक समझता हू। मैं जड़ माद्दे को चेतनता से ही उत्पन्न हुआ मानता हू। हम चेतनता से आगे नहीं जा सकते। प्रत्येक वस्तु जिसके विषय में हम बात करते हैं, प्रत्येक वस्तु जिसका हम अस्तित्व मानते हैं चेतनता को सूचित करती है।"

यही तो उपनिषत् ने कहा था कि —

इदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद् भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव॥

(माण्डूक्योपनिषत्)

उन्हीं महोदय ने "सायस किधर जारही है ?" (Where is Science going ?) नामक पुस्तक म लिखा है।

'The religious element in his nature must be recognized and cultivated if all the powers of the human soul are to act together in perfect balance and harmony'

अर्थात् यदि मानवी आत्मा की सब शक्तियों को पूर्ण समता और शान्ति से काम करना है तो आत्मा के धार्मिक तत्व को मानना और उसका पूर्ण विकास करना चाहिए।

यही परिवर्तन है जो आर्य्य समाज करना चाहता है और जो आर्य्य समाज से पूर्व वैज्ञानिकों के मस्तिष्क मे न था।

गुरुकुलों से पूर्व और अब भी कम से कम भारतवर्ष के शिक्षणालयों म न तो धर्म को कोई स्थान है न जातीयता को। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने दोनों आवश्यकताओं को पूरा करने का प्रयत्न किया है। जब गुरुकुल की शिक्षा का माध्यम मातृभाषा नियत किया गया तो लोग इस परिवर्तन को बडे सन्देह से देखने लगे आर्य्य भाषा (हिन्दी) मे इतनी क्षमता कहाँ कि वह उच्च शिक्षा का माध्यम हो सके ? पाठ्य पुस्तकें कहा ? पढ़ाने वाले कहाँ ? गुरुकुलों ने इन सब कठिनाइयों का सामना किया और अब तो बडे बडे नेता यही मानने लग गये हैं कि मातृ भाषा द्वारा शिक्षा न देना शिक्षा के साथ उपहास करना है। इस प्रकार गुरुकुलीय एक विशेषता को तो लागो ने इतना अपनाया है कि कुछ दिनों में हम इसको गुरुकुलीय विशेषता ही न कह सकेंगे। फिर भी इतिहास वेत्ता बता सकेंगे कि इस सुधार का मौलिक श्रेय गुरुकुलों को है।

गुरुकुलों ने हमारे युवकों में जातीयता का पहला बीज बोया। अब तक उच्च शिक्षा प्राप्त करने वालों का मस्तिष्क विदेशीय दासता में ग्रसित था। उनको अपने भूत कालिक गौरव का ज्ञान न था। वे प्राचीन भारतीयों को जगली समझते थे। भारतीय विशालता या तो भूमि के नीचे दबी पडी थी या पुस्तकों के पन्नों मे बन्द थी जिनको पढ़ने वाला कोई नहीं था। इस गौरव के पुनरुद्धार के लिये आवश्यकता थी। गुरुकुलों की जिनके द्वारा वैदिक साहित्य के अमूल्य रत्नों को निकाल निकाल कर ससार के सामने लाया जा सके। गुरुकुलों ने इस विषय में कुछ कम काम नहीं किया। हम अब नये सिरे से अपने भूत कालिक गौरव पर गर्व करने और उसके अनुकूल भविष्य का पुरोगम बनाने लग गये हैं। हम अब अपने वेदों को गडरियों के गीत कहकर उनका तिरस्कार नहीं करते किन्तु उनके अध्ययन के लिये हम में नई स्फूर्ति आगई है और नई नई आशायें हमारी हृदय में जाग्रत होने लगी हैं।

धार्मिक शिक्षा तो गुरुकुलों का मूलमंत्र है। यहा की शिक्षा गायत्री मंत्र से आरम्भ होती है।

शिष्य आचार्य के हाथ से दंड लेते समय यह मंत्र पढ़ता है।

ओं यो मे दण्डः परा पतद् वैहायसोऽधिभूम्याम्। तमहं पुनरादद आयुषे, ब्रह्मणे, ब्रह्मवर्चसाय ॥

इस मंत्र को आजकल की मनोवृत्ति वालों को समझाने के लिये मैंने अंग्रेजी में इस प्रकार अनुवादित किया है।

My heavenly rule that has come down on the earth, I take up again in order to obtain (1) Life, (2) Vedic knowledge (3) Godliness.

दण्ड या रूल (rule) लकड़ी के डण्डे का नाम है। यह दण्ड चिह्न या प्रतिनिधि है नियम का। दण्ड धारण करना मानों नियमों के व्रत का चिह्न है। वह व्रत तीन प्रयोजनों के लिए है। जीवन की रक्षा के लिए, वैदिक ज्ञान के लिए और आत्मिक उन्नति के लिये। वैहायस दण्ड का लैङ्गिक अर्थ (Symbolical sense) है। जिस प्रकार सूर्य की छाया पृथ्वी को प्रदीप्त करती है उसी प्रकार पारलौकिक छाया ऐहिक जीवन को ज्योतिर्मय बनाती है। वेद में भी कहा है कि—

यस्यच्छायाऽमृतं

(Whose. i. e. God's reflection in the soul leads to immortality).

एक और मन्त्र के अर्थों पर विचार कीजिए जिसको पढ़ कर ब्रह्मचारी अग्नि में आहुति देता है:—

ओ३म् अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे। यथा त्वमग्ने समिधा समिद्धसि एवमहमायुषा मेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्य निराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्व्यन्नादो भूयास स्वाहा।

(पार० का० २, कं० ४। ३)

"I have brought fuel to feed the great knowledge—producing fire. O fire just as thou shinest through this fuel,

just so let me shine through life, intellect, brightness progeny cattle, and godliness May my preceptor live eternally through me Let me be endowed with intellect Let me be active, glorified, bright, godly and assimilator of food"

"मैं बड़े और ज्ञान दाता अग्नि के लिये समिधा लाया हूँ। हे अग्नि जैसे तू इस समिधा के द्वारा प्रदीप्त होता है इसी प्रकार मैं आयु, मेधा, वर्चस, सन्तान, पशु और ब्रह्म ज्ञान द्वारा प्रदीप्त होऊँ। मेरा आचार्य मेरे द्वारा जीवित रहें। मैं मेधावी, कार्यकुशल, यशस्वी, तेजस्वी, ब्रह्मवर्चस्वी तथा अन्न का पचाने वाला हो जाऊँ।"

कितनी सुन्दर और जीवन को उन्नत करने वाली प्रार्थना है। एक एक शब्द से जीवन की सार्थकता टपकती है। अर्थों पर विचार करते ही रोम रोम पुलकायमान हो उठता है। ऐसी शिक्षा हमारी समस्त शिक्षा ब्रह्मवर्चस (godliness) से ओत प्रोत होनी चाहिये। यह ब्रह्मवर्चस ही हमारी बढ़ती हुई शक्तियों को पाशविक प्रवृत्तियों से बचायेगा। ब्रह्मवर्चस के अभाव मे हम शक्तिशाली होते हुये भी पाशविक बन जाते हैं (un godliness means dogliness) यह ब्रह्मवर्चस गुरुकुलीय शिक्षा की विशेषता है। इस विशेषता को अभी देश या जाति मे वह मान नहीं दिया गया जो देना चाहिये। कारण यह है कि हमारा वायुमण्डल भौतिकवाद से ओत प्रोत हो रहा है। हम अब यह तो समझ गये हैं कि देशीय भाषा और देश-भक्ति शिक्षा का ध्येय होना चाहिये। परन्तु हम अभी यह अनुभव नहीं कर पाये कि ब्रह्म वचस शून्य शिक्षा या जीवन की क्या हानिया हैं। जब तक मनुष्य को भोग विलास मिलता रहता है उसकी दृष्टि क्षुद्र रहती है। वह खाने पीने और भोग विलास में ही मस्त रहता है। जो व्यक्तियों का हाल है वही जातियो का। वही देशों का। विज्ञान ने भोग विलास की सामग्री को बहुत बढ़ा दिया है। अनेक प्रकार के भोग के साधन उपस्थित हैं। मन इनमें ग्रसित है। आगे की बात सोचने के लिये समय नहीं।

अब तो आराम से गुजरती है।
आक़बत की खबर खुदा जाने ॥

परन्तु भोग विलास वह फूँस की आग है जो फूस को जला कर स्वय भी बुझ जाती है। जो खाना पीना आनन्द देता है उसका व्यतिक्रम ही खाने पीने के आनन्द को भी नष्ट कर देता है। महात्मा बुद्ध कहते हैं—

सुखानुपस्सिं विहरन्तं इन्द्रियेसु असंवुतं।
भोजनम्हि अमत्तञ्ञुं कुसीतं हीन वीरियं।
तं वे पसहति मारो वातो रुक्खं व दुब्बलं ॥

"सुख में लिप्त और इन्द्रियों के वशीभूत, भोजन में मस्त, आलसी और हीनवीर्य मनुष्य को विषय इसी प्रकार उखाड़ गिराते हैं जैसे हवा दुर्बल वृक्ष को।

धम्मपद १ । ७

एक सीमा आती है जब भोग विलास की सामग्री होते हुये भी मनुष्य भोग विलास का आनन्द नहीं ले सकता है। जिस सायंस ने भोग विलास की सामग्री को जुटाया वही सायंस अब चैन से सोने नहीं दे रही। क्यों? इसलिये कि हम ब्रह्मवर्चस भूल गये। अब यह ब्रह्मवर्चस विरोधी युग अपने अन्त तक को पहुंच चुका है। अब हम भौतिकवाद के अन्धकार का अनुभव करने लगे हैं। अब समय निकट ही आने वाला है कि गुरुकुल की इस विशेषता की ओर भी लोगों का ध्यान जायेगा। गुरुकुल की तीन विशेषतायें शीघ्र ही विश्वव्यापी हो जायंगी। एक ब्रह्मचर्य का पालन, दूसरा वैदिक साहित्य का स्वाध्याय, तीसरा आध्यात्मिक शिक्षा। इस अर्थ में गुरुकुलो का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

इस सामान्य कथन के पश्चात् हमको कुछ उन वर्तमान संस्थाओ के विषय में भी विचार करना है जो गुरुकुल के नाम से आर्यसमाज द्वारा चलाई जा रही हैं। सब से आवश्यक बात तो यह प्रतीत होती है कि गुरुकुलो का निकटतम उद्देश्य (Immediate objective) निश्चित होना चाहिए। मेरे विचार से अभी गुरुकुलीय शिक्षा को सर्वशिक्षा (mass education) के लिये प्रयोग करने का समय अभी नहीं आया। अभी गुरुकुलों को केवल वेद विद्यालयों तक ही सीमित रहना चाहिये और उनको वैदिक साहित्य के परिशीलन और परिमार्जन का साधन बनाये रखना चाहिए। इसमे सन्देह नहीं कि हमको इस काम के लिए विद्यार्थी कम मिलेंगे परन्तु मिलेंगे अवश्य और जो मिलेंगे उनसे ठोस काम हो सकेगा। प्रत्येक संस्था को गुरुकुल कहने की प्रथा भी बन्द होनी चाहिए। जो उस निर्दिष्ट उद्देश्य को नहीं मानते या उस मार्ग पर भी नहीं चल सकते वे केवल नाम रख कर जनता को धोखे में क्यों डालें? इसके लिए नियम तो बनाये नहीं जा सकते परन्तु आर्यसमाज की ओर से सामूहिक माग होनी चाहिए जिससे अनिष्ट प्रगतियो को प्रोत्साहन न मिले। तीसरी आवश्यक बात यह है कि उद्देश्यो को बराबर बदल कर उनको क्षणिक न बनाया जाय और न अन्यान्य आन्दोलनों के पीछे लगना चाहिए। किसी बात को सफल बनाने के लिए धैर्य और संलग्नता की आवश्यकता होती है। यदि विद्यार्थी जल्दी बदलने वाली स्कीमों के चक्कर में फँस जाता है तो वह कोल्हू का बैल हो जाता है और आयु भर परिश्रम करके भी एक इंच उन्नति नहीं कर सकता। मैंने कई ऐसे विद्यार्थी देखे हैं जो केवल इसलिए अशिक्षित और निकम्मे रह गये कि उनकी शिक्षा की स्कीमें वर्ष में तीन बार बदलती

रहीं। उनमें नैरन्तर्य और स्थायित्व रहा ही नहीं। मेरा विचार तो यह है स्थाईपना विद्यार्थी जीवन का एक अनिवार्य गुण है। नित्य बदलने वाली सर्वोत्कृष्ट परिपाटियों द्वारा पढ़ा हुआ विद्यार्थी उतना सफल सिद्ध नहीं हो सकता जितना बुरी से बुरी परिपाटी द्वारा संलग्नता से निरन्तर पढ़ने वाला। भैंसे की गाड़ी में १ मील घण्टे की दर से चलने वाला मनुष्य भी कुछ न कुछ आगे बढ़ता ही है। परन्तु मेल ट्रेन में ६० मील घंटा चलने वाला यात्री भी वहीं का वहीं रहेगा यदि उसकी गति की दिशा नित्य बदलती रहे। मैं यह नहीं कहता कि प्रणालियां बदली न जायँ। मेरा तात्पर्य यह है कि यदि किसी प्रणाली या पाठविधि में दोष प्रतीत हो और उससे उत्कृष्ट प्रणाली सूझ सके तो उसे अवश्य ग्रहण करना चाहिए परन्तु बहुत सोच समझ कर और वह भी पुराने विद्यार्थियों के लिये नहीं।

एक और बात है जिस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक समझता हूँ। गुरुकुलों में जितने विद्यार्थी भर्ती होते हैं। उनका बहुत थोड़ा अंश स्नातक बनने तक ठहरता है। यह भी गुरुकुलों के विरुद्ध एक आक्षेप है। मैं इस आक्षेप में कुछ सार नहीं देखता। यह बात तो सर्वत्र ही है। लाखों विद्यार्थी पहली कक्षा में पढ़ना आरम्भ करते हैं। मैट्रिक मे उनकी संख्या लाखों से हजारों रह जाती है। और एम० ए० में सैकड़े से भी कम पहुंच पाते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि इतने लाखों विद्यार्थियों का जीवन नष्ट हो गया। जो दो वर्ष भी पढ़ लिया वह निरक्षर से अच्छा है और अपनी अल्पविद्या का कुछ न कुछ उपयोग करता ही है। प्राइमरी पास मिडिल पास, मैट्रिक पास, बी० ए० पास, एम० ए० पास सभी तो अपने २ स्थान पर अच्छा काम कर रहे हैं। यदि सभी एम० ए० पास हो जाते तो जम्पुलिस का कान्स्टेबिल भी प्राप्त न हो सकता। परन्तु हमको एक बात का ध्यान रखना चाहिये। हमारे गुरुकुलों की पाठ्य प्रणाली इस प्रकार बननी चाहिये कि विद्यार्थी जितने दिनों गुरुकुलों में पढ़े उतने दिनों का अपव्यय न हो। आरम्भ बिन्दु से लेकर अन्तिम स्थान तक थोड़ी २ दूरी पर स्टेशन बनने चाहियें। विद्यार्थी जिस स्टेशन पर चाहे उतर जाय और उसे यह अनुभव न हो कि मैं उस पुरुष की अपेक्षा अच्छा नहीं हूं जो रेल में चढ़ा ही नहीं। विद्यार्थी बीसियों कारणों से गुरुकुल छोड़ने पर विवश हो सकता है। सम्भव है कि उसके माता पिता न रहें और वह जीविकाहीन हो जाय। सम्भव है कि उसकी बुद्धि इतनी निर्मल न हो कि उच्च शिक्षा का बोझ सहार सके। सम्भव है कि बीच में कोई ऐसा प्रलोभन आ जाय जिसके लिये दूरस्थ लाभ को त्यागना ही हितकर समझा जाय। सम्भव है कि शारीरिक दशा बिगड़ जाय और अधिक पढ़ाई हानिकारक सिद्ध होती हो। इन सब सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुये ऐसी स्कीम बनानी चाहिये कि जो जितने दिन रह

सके वह उतना लाभ उठा सके और अपने भावी जीवन में गुरुकुलीय शिक्षा का कृतज्ञ बना रहे। इसके लिये जहाँ समस्त स्कीम मे कुछ न कुछ परिवर्तन करना होगा वहा संस्कृत भाषा पढ़ाने की शैली पर विचार करना आवश्यक है। नाक की सीध का मार्ग ठीक नहीं है। हमको पढ़ाते समय एक बात को कभी नहीं भूलना चाहिये। वह यह कि विद्या बच्चे के लिये है बच्चा विद्या के लिये नहीं। जो पाठ्यक्रम बच्चे की प्रकृति, प्रवृत्ति तथा शक्ति को विचार कर नहीं बनाया जाता वह कभी हितकर नहीं हो सकता। कोई चतुर वैद्य रोगी की पाचनशक्ति को बिना देखे औषध नही देता। परन्तु बहुत बड़ी संख्या ऐसे अध्यापकों की है जो विद्यार्थी की शक्तियों का अनुमान लगाये बिना ही पुस्तकों को घुटाया करते है। अध्यापकों को स्मरण रखना चाहिये कि अविद्या एक रोग है और वे हैं मस्तिष्क के डाक्टर। इस रोग को दूर करने के लिये सावधानी की आवश्यकता है।

यह हैं मेरे वैयक्तिक विचार। आशा है आप इनको इसी रूप मे लेंगे।

मै अन्त मे फिर आप सब को इस महोत्सव पर बधाई देता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि जिस मेधाबुद्धि द्वारा हमारे पूर्वज, सुख यश और परमपद के भागी बन सके उसी मेधा का दान हम सबको मिले, जिससे हम समष्टि गत और व्यक्तिगत कुरीतियो को दूर करते हुए पार्थिक जीवन मे स्वर्गीय आनन्द को भोग सकें।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आसुव॥

आर्यसमाज की चिनगारियां

प्रचारक

श्री उमरावसिंह जी आर्य समाज पीलीभीत के प्रसिद्ध कार्यकर्ता थे, वहाँ उनको मन्त्री जी के नाम से सम्बोधन किया जाता है। आप व्यापार का काम करते थे, आप अपनी दुकान पर नियत समय पर ही बैठते थे। साधारण रूप में जैसे दूकानदार सारा दिन बैठते हैं वह न बैठते थे। दूकान के समय से अतिरिक्त समय में वह आय समाज का प्रचार करते थे। उन्होंने दो स्थान नियत किये हुए थे, उन दोनों स्थानों पर बैठ कर वह आर्य समाज का प्रचार किया करते थे।

इसके अतिरिक्त वह रात को किसी २ को सत्यार्थ प्रकाश भी सुनाया करते थे, उनमें से एक व्यक्ति का नाम श्री जानकीदास जी मुख्तार है। आपने मुझे सुनाया कि वह उनके गृह पर उनको सत्यार्थ प्रकाश सुनाया करते थे, यदि किसी समय आलस्य हो तो उस आलस्य को दूर करने के लिये वह अनेक उपाय भी करते थे। श्री जानकीदास जी उस समय आर्य समाजी न थे और वह नगर में आर्य समाजी प्रसिद्ध थे इसलिये उनके आने पर श्री जानकीदास जी के पूज्य पिता विचारते थे कि वह हमारे पुत्र को आर्य समाजी बनायगा, इसी कारण वह श्री उमरावसिंह जी के आने को बुरा समझते थे और उन्होंने कई बार श्री उमरावसिंह जी को गालियाँ भी दीं ताकि वह उनके गृह पर फिर न आयें परन्तु उनके आने मे इससे भी कोई बाधा न पड़ी। एक दिन उन्होंने गालियाँ दीं, वह श्री जानकीदास जी के पास बैठे रहे, जब वह अपने समय पर चलने लगे तो इन्होंने उनको कहा आप हमारे गृह पर न आया करें क्योंकि मेरे पिता जी आपको गालिया देते हैं। उन्होंने हँस कर उत्तर दिया, यह जैसे आपके पिता हैं वैसे मेरे भी पितावत् ही हैं और मेरे पिता भी कई बार मुझे गालियाँ दे देते हैं। जब मैं उनकी गालियों से घर नहीं छोड़ता तो इनकी गालियों से यहाँ आना क्यों छोड़ूँ। श्री उमरावसिंह जी पूर्ववत् आते रहे, उनके सत्सग से ही श्री जानकीदास जी आर्यसमाजी बने और इन्होंने अपनी सतान को आर्य समाजी बनाया।

प्रत्येक उपदेशक को उमरावसिंह जी की इस घटना से शिक्षा ग्रहण करने का यत्न करना चाहिए।

—स्वतन्त्रानन्द

डा० परमात्माशरण, एम० ए० पी० एच० डी० इतिहासोपाध्याय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

का

वक्तव्य

भारतवर्ष आर्य कुमार परिषद् के महान् उद्देश्यों में से एक उद्देश्य यह भी था कि प्रायः समस्त जनता में विशेषकर नवयुवकों में अपने देश के प्राचीन साहित्य व संस्कृति का प्रचार किया जावे। हमारी आधुनिक शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक व सांस्कृतिक शिक्षा का अभाव ही है। इस त्रुटि को पूरा करने के लिये ही परिषद् ने धार्मिक परिक्षाओं की योजना की थी। बड़े हर्ष का विषय है कि परिषद् को इस कार्य में सन्तोषजनक सफलता मिली है। इस सफलता का श्रेय मुख्यतया हमारे सुयोग्य एवं परिश्रमी परीक्षा मन्त्री श्री पं० देवव्रत जी धर्मेन्दु जी को है। उन्हीं के अनथक और निस्पृह परिश्रम का फल है कि आज लगभग तीन हजार देश के दूर दूर स्थानों से परीक्षार्थी इनमें सम्मिलित होते हैं। इस कार्य से परिषद् ने जनता में शिक्षा की वृद्धि कर के कितनी सराहनीय सेवा की है उसे पाठक स्वयँ अनुभव कर सकते हैं। परन्तु जो कुछ कार्य हुआ है और हो रहा है उसकी मात्रा आर्य जाति की आवश्यकता को देखते हुए समुद्र में बूंद के समान है। क्या ही अच्छा हो कि इन परीक्षाओं का प्रचार इतना बढ़े कि इस परिषद् के इस विभाग को एक सार्वदेशिक यूनिवर्सिटी के रूप में कार्य करते हुये देखें। अतएव समस्त आर्य हिन्दू जनता का जो इस बात को भली भाँति जानते हैं कि इन परीक्षाओं से कितना महान् लाभ हो सकता है सहानुभूति और सहयोग बांछनीय एवं प्रार्थनीय है।

"परीक्षा समिति का निर्वाचन"

भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषद् की अन्तरंग सभा ने आगामी १९४२-४३ वर्ष के लिए निम्न लिखित सज्जनों को परीक्षा समिति का सदस्य निर्वाचित किया है:—

(१) डा० परमात्माशरण जी एम. ए. पी. एच. डी. बनारस, प्रधान, (२) ला० किशोरीलाल जी, हैडमास्टर मुजफ्फरनगर, (३) ला० चरणदास जी मित्तल बिजनौर (४) म० विश्वम्भर सहाय प्रेमी, मेरठ (५) पं० ज्ञानचन्द जी, बी. ए. लाहौर, (६) प्रो० सुधाकर जी, एम ए., देहली, (७) डा० युद्धवीरसिंह जी म्युनिसिपल कमिश्नर, देहली, (८) बा० परमेश्वरीदयाल जी, बी. ए एल-एल बी, देहली, (९) पं० देवव्रत धर्मेन्दु, देहली परीक्षा मन्त्री।

वार्षिक परीक्षाओं की नई पाठविधि

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की सिद्धान्त सरोज, रत्न, भास्कर और शास्त्री आदि परीक्षाओं की नई पाठविधि १९४२-४३ के लिए छप रही है जो कि विगत वर्ष की अपेक्षा अधिक सरल और संक्षिप्त कर दी गई है। अब परीक्षाओं का शुल्क भी घटा दिया गया है और केन्द्र स्थापना के लिए १० के स्थान पर ५ परीक्षार्थी सभी परीक्षाओं के होने पर नियम बना दिया गया है। परीक्षा देने के इच्छुक बहिन भाइयों को परीक्षाओं की नई पाठ विधि तथा परीक्षा के आवेदन पत्र आदि कार्यालय से बिना मूल्य मंगवा लेने चाहिए।

पर्वतीय स्थानों के भाइयों को सुख सम्वाद

भारत वर्षीय आर्यकुमार परिषद् की धार्मिक परीक्षाएं प्रायः जनवरी मास में देश के भिन्न २ केन्द्रों में होती हैं कुछ काल से पर्वतीय स्थानों के आर्य भाइयों का आग्रह था कि उनके लिये यह मास असुविधा जनक है अतः कोई अन्य प्रबन्ध किया जावे। परीक्षा समिति ने ऐसे भाईयों की सुविधा के लिये इस वर्ष से जनवरी में होने वाली परीक्षाओं के अतिरिक्त सिद्धान्त भास्कर व सिद्धान्त शास्त्री की परीक्षाएँ अगस्त मास में भी लेने का निश्चय कर दिया है। ऐसे भाईयों को परीक्षा की नई छप रही पाठ विधि मगवा कर इस सुअवसर से लाभ उठाना चाहिए। अगस्त के परीक्षार्थियों के भरे हुए आवेदन पत्र प्रथम जून तक कार्यालय में पहुंचने आवश्यक हैं अतः पर्वतीय स्थानों के भाईयों को आवश्यकतानुसार परीक्षाओं के आवेदन पत्र कार्यालय से मगवा कर अभी से भर कर भेज देने चाहिएँ।

सुमन-संचय

पुरस्कार

एक बार एक पुलिस सब इन्सपेक्टर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के एक परिचित मित्र के साथ उनसे मिलने आए। परिचित व्यक्ति ने कहा—"कल तीसरे पहर हम लोग आपसे मिलने आए थे मगर आपसे भेंट न हुई। ये भद्र पुरुष बड़े विपत्ति में पड़े हैं। एक मुकदमे में निर्दोष होने पर भी इनको ६ महीने की सजा हो गई है। इन्होंने हाईकोर्ट में अपील की है। इनकी ओर से ७००) पर एक पेशी के लिए मनमोहन घोष बेरिस्टर नियत किए गए हैं। घर से कल रुपए आने वाले थे, किन्तु नहीं आए। आज मुकदमे की सुनवाई का पहला दिन है। आप कृपा करके घोष महाशय को एक पत्र लिख दीजिये कि वे आज का काम करदें। इस बीच में रुपया आ जायगा और उनको दे दिया जायगा। एक हफ्ते में रुपया अवश्य आ जायगा।"

विद्या सागर ने सब हाल सुनकर घड़ी भर चुप रह कर कहा "यह काम मुझ से न होगा। एक आदमी का एक पैर जेलखाने में और एक बाहर है। रुपया बाकी रखकर उसका काम करने के लिए अनुरोध करना ठीक नहीं मालूम होता। और वही क्या कहेंगे? जिस समय घोष बाबू विलायत गए थे उसी समय की मेरी उनकी जान पहचान है। उसके बाद उनसे बहुत मेल-जोल नहीं रहा। ऐसी अवस्था में सहसा इस तरह का अनुरोध कर भेजना क्या ठीक होगा? तुम्हीं घोष महाशय से इनका हाल क्यों नहीं कहते? सुनता हूं वे तो परोपकारी हैं और विपन्न पुरुषों के हितैषी हैं? इतने दिनों तक अगर किसी बात के लिए मैंने उनसे अनुरोध किया होता तो आज निःसकोच उनसे यह बात कह सकता।"

विपन्न भद्र पुरुष यह सुनकर आंखों में आंसू भर कर कहने लगे, "सुना है जिसको कहीं आश्रय नहीं उसे यहां आश्रय मिलता है, किन्तु मुझे यहाँ भी आश्रय नहीं मिला?" विद्यासागर के हृदय में दया का समुद्र उमड़ पड़ा। वे घोष महोदय को पत्र लिखने बैठे My dear Ghose तक लिख कर कलम रुक गई। एक मिनिट, दो मिनिट, इसी तरह कई मिनिट बीत गए। तब विद्यासागर ने कहा नहीं यह काम मुझ से न होगा। विपन्न भद्र पुरुष ने रोते रोते कहा—'क्या

मैं फिर जेल ही जाऊँगा।' संकट में पड़े हुए भद्र पुरुष के इन हताश वाक्यों ने फिर विद्यासागर को विचलित कर दिया। उस दिन उनके पास एक कौड़ी भी न थी। उन्होंने बक्स से चेक बुक निकाल कर ७००) का एक चिक लिखकर उन्हें दिया और कहा "देखो बैंक में भी मेरा रुपया जमा नहीं है। तुम घोष बाबू को जाकर यह चिक दो और कहो कि कल साढ़े ग्यारह बजे के पहले बैंक में मत भेजना। मैं आज दिन भर में, जिस तरह होगा, बैंक में इतना रुपया जमा करा दूँगा।"

दैवयोग से सब इन्सपेक्टर बाबू हाईकोर्ट से छूट गए और चौथे दिन ७००) लेकर विद्यासागर के दर्शन करने आए। उनके साथ विद्यासागर के वही परिचित मित्र थे। प्रणाम के बाद रुपए सामने रखकर हँसते हुए सब इन्सपेक्टर ने कहा "मैं हाईकोर्ट से छूट गया हूं, आज घर से ये रुपये आ गये हैं. इसी से ये सुसमाचार सुनाने आया हूं।"

विद्यासागर जी इस खबर से सन्तुष्ट होंगे, इस प्रत्याशा से मित्र सहित दरोगा बाबू विद्यासागर के मुंह की ओर देखने लगे। विद्यासागर ने कहा 'तुमने भले आदमी के लड़के होकर मुझ से छल किया और तुमने अपने मित्र होकर मुझ से चातुरी की। दोनों आदमी दंग रह गये। थोड़ी देर बाद विद्यासागर ने फिर कहा 'तुम पुलिस में काम करते हो न ?' दरोगा—'जी हां।' विद्यासागर ने कहा नहीं, यह बात कभी सच नहीं हो सकती तुमने मुझ से झूठ बोला। दारोगा ने कहा—"नहीं महाशय, आप अनुसन्धान करके जान सकते हैं। मैं नाटौर का पुलिस सब इन्सपैक्टर हूं।'

विद्यासागर ने कहा, मैं इसे झूठ के सिवा और क्या समझूं। इतने दिनों से अनेकों लोग देने का वायदा करके रुपया ले गए, परन्तु फिर उन्होंने सूरत न दिखाई। गरीबों और परायों की बात नहीं कहता हूं। जिस देश के मामूली लोग लेकर देना नहीं जानते उस देश में तुम पुलिस के दरोगा होकर चौथे ही दिन रुपये देने के लिए आ गए हो, इस बात पर कैसे विश्वास करूँ। हाईकोर्ट के जज लोग अक्सर मुकदमे समझे बिना आसामी को छोड़ देते हैं। वही बात शायद तुम्हारे मुकदमे में भी हुई है। तुमको तो जेल जाना ही उचित था। सात दिन के वायदे पर रुपये लेकर जो चौथे दिन रुपए वापिस दे वह भारतीय पुलिस की नौकरी करके जेल न जायगा तो और कौन जायगा।"

दरोगा बाबू इस उच्च पुरस्कार को पाकर सिर झुका कर खड़े रहे। विद्यासागर ने उन्हें प्रेमपूर्वक बिठाकर और रुपये संभालकर कहा 'अजी आठ आने कम

आर्यसमाज का स्थापना-दिवस

[१७—३—४२ को मनाएँ]

आर्यसमाज का स्थापना दिवस आर्यसमाज के स्वीकृत पर्वों में से एक पर्व है। सभा के निश्चयानुसार अब यह पर्व चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को मनाया जाया करेगा।

इस वर्ष यह पर्व १७-३-४२ को मनाया जायगा। इस दिवस का कार्य-क्रम इस प्रकार है:—

कार्य—क्रम

संकीर्तन

(१) प्रातःकाल नर नारी अपने अपने ग्रामों वा नगरों में संकीर्तन और उनके बाद हवन करें।

सार्वजनिक सभा

(२) दोपहर वा सायंकाल को (स्वसुविधानुसार) आर्य मन्दिरों इत्यादि में सार्वजनिक सभाएँ की जावें और सभा में पर्व पद्धति के अनुसार प्रथम सरस्वती की स्तुति और महिमा के प्रदर्शक वेद मन्त्रों का पाठ, प्रवचन और व्याख्या हो। तत्पश्चात् आर्यसमाज स्थापना दिवस की स्मृति में आर्यसमाज की स्थापना के इतिहास तथा आर्यसमाज की उपयोगिता पर निबन्ध पाठ भाषण इत्यादि किये जायँ। इसी अवसर पर आर्यसमाज के सदस्यों में वृद्धि की जाय। इस सभा में

क्यों दिए ?' दरोगा अप्रतिम होकर सोचने लगा कि शायद रुपयों में कोई अठन्नी चली गई है किन्तु विद्यासागर के मित्र समझ गए कि विद्यासागर हंसी करते हैं। वे मुस्करा दिए। विद्यासागर ने कहा, मैंने जिनसे रुपये लिए थे उनको रुपए दे चुका। अब ये रुपए बैंक भेजूंगा तो आठ आने गाड़ी के किराए देने पड़ेंगे। वह पैसे कौन देगा ?' थोड़ी देर तक इसी प्रकार हँसी मजाक करके विद्यासागर ने कहा 'अब आपने आठ आने की हानि की है तब और कुछ हानि करो।'

दरोगा बाबू और परिचित मित्र को उस दिन विद्यासागर के यहाँ ही भोजन करना पड़ा।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

सार्वदेशिक सभा के वेद प्रचार फंड के लिए अपील की जाकर ।) निधि एकत्र की जाय। और मधुर गान, वाद्य और शान्ति पाठ के साथ सभा विसर्जित करदी जाय।

दीपमाला

इसी दिन रात्रि को आर्यसमाजों, आर्य संस्थाओं और आर्य गृहों में रोशनी की जाय।

यह भी यत्न किया जाय कि इस दिन अधिक संख्या में निकटवर्ती स्थानों में जहाँ आर्य समाजें नहीं हैं, आर्यसमाजें स्थापित की जावें।

अपील

सार्वदेशिक सभा के लिए ।) निधि एकत्र कीजिए

साथ में भेजे जा रहे 'सार्वदेशिक सभा का कार्य विस्तार' से आपको ज्ञात हो जायगा कि सभा को प्रतिवर्ष कितना भारी व्यय करना पड़ता है। दक्षिण भारत प्रचार का व्यय तो आर्य सत्याग्रह निधि की बचत से चलाया जा रहा है। सभा के विदेश प्रचार के लिए थोड़ी सी स्थिर राशि है जिसके सूद की आय थोड़ी सी होती है जो कि सभा के महान् कार्य की आवश्यकताओं की दृष्टि से कुछ भी नहीं है। शेष सभी कार्यों के लिये कोई धन का साधन नहीं है। इसलिये सार्वदेशिक सभा के महान् कार्य विस्तार के लिये समाजों तथा दानी महानुभावों की सहायता की आवश्यकता है।

सब प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं की सहमति से यह निश्चय किया गया है कि इस आर्यसमाज स्थापना दिवस के पवित्र उपलक्ष में प्रत्येक आर्य-समाज अपने सभासदों से उनके परिवार के प्रत्येक व्यक्ति पर ।) के हिसाब से और अन्य प्रत्येक आर्य से ।) प्रत्येक के हिसाब से एकत्र करके सार्वदेशिक सभा को भेजें। आशा है इस वर्ष पूरे उत्साह से धन राशि एकत्र करके न्यून से न्यून १००) रुपया भेजने की कृपा करेंगे।

सुधाकर, एम० ए०, मन्त्री। सार्वदेशिक सभा, देहली स्वतन्त्रानन्द, कार्य कर्ता प्रधान।

नोट—जैसाकि आर्य जनता तथा आर्य समाजों को विदित है, सभा ने आर्य डायरेक्टरी प्रकाशित करने का आयोजन किया था। डाइरेक्टरी प्रकाशित हो चुकी है। मूल्य १।) है। आर्यसमाज की प्रगति का यह अच्छा परिचय पुस्तक है।

आर्य समाज के लिये श्रद्धा

(लेखक—श्री पूज्य नारायण स्वामी जी महाराज)

कुछ समय बीता जब मैं लखनऊ के एक आर्य्य मन्दिर में था, रात्रि का समय था, मैं मन्दिर के आंगन में सो रहा था। आधी रात के बाद समाज के स्वयंसेवकों ने मन्दिर में आकर मुझे जगाया और प्रकट किया कि एक स्त्री को उसके नवजात बालक के साथ वे स्टेशन से लाये हैं। पूछने पर प्रकट हुआ कि अवध के एक ग्राम की घटना है कि एक कुलीन व्यक्ति के परिवार में एक विधवा युवती थी। उसका अनुचित सम्बन्ध श्वसुर से हो गया और विधवा गर्भवती हो गई। जब गर्भ की अवधि पूरी हो गई और बालक के जन्म का समय निकट आया तो श्वसुर ने उस विधवा को लेकर लखनऊ की गाड़ी में बिठाया और स्वयं भी उसके साथ आया। विधवा को विश्वास यह दिलाया था कि लखनऊ चलकर रहेंगे, जिससे बच्चा वहीं पैदा हो। जब लखनऊ एक दो स्टेशन बाकी रह गया तो स्वयं किसी बहाने से ट्रेन से उतर गया और विधवा को अकेली ट्रेन में उसकी किस्मत पर छोड़ दिया। लखनऊ स्टेशन पर ट्रेन पहुंच गई, मुसाफिर ट्रेन से उतर गये परन्तु विधवा ट्रेन ही में बैठी रही, उसकी यह पहली ही यात्रा थी उसे कुछ पता नहीं था कि उसे क्या करना चाहिए। अन्त में रेल के कर्मचारियों ने उससे कहा कि सभी यात्री गाड़ी से उतर गये तो आप क्यों नही उतरतीं? इसलिए उसने उतरने का प्रयास किया। अनभ्यसित होने से रेल की पटरी पर उसका पांव अच्छी तरह से जम न सका और वह प्लेटफार्म पर गिर पड़ी और इसी अवस्था में उसके बच्चा पैदा हो गया और वह बेहोश हो गई। रेल के कर्मचारियों ने स्टेशन मास्टर को खबर की, उसके घटना स्थल पर पहुंचने तक वहां अच्छी खासी भीड़ जमा हो गई थी। कुछ प्रतीक्षा के बाद स्त्री को होश हुआ और उससे पूछा गया कि तू कहां जावेगी? उत्तर में उसके आंखों से टप टप आंसू गिरने लगे और उसी रोती हुई आवाज में उसने कहा कि यदि यहां कहीं आर्य समाज हो तो वहां मुझे पहुंचा दो। आर्य्य समाज के स्वयंसेवक वहां मौजूद थे। इसी अवस्था में वे उसे आर्य्य मन्दिर में लाये थे। उन्होंने मुझ से कहा कि समाज के अधिकारी यहां मौजूद नहीं हैं, इसलिए आप हमें बतलावें कि हमें क्या करना चाहिए। उन्हें मैंने मेडिकल कालिज के अस्पताल में उस स्त्री के पहुंचा देने का आदेश दिया और वह स्त्री

वहां पहुंचा दी गई। मेरी नींद उचट गई और मैं सोचने लगा कि एक ग्रामीण स्त्री को जब वह ऐसी मुसीबत में थी, उस समय उसे सहायता की आशा हुई तो आर्य्य समाज से। उसको आश्रय स्थान कोई दिखाई दिया तो आर्य्य समाज का मन्दिर। उस समय मेरे हृदय में, आर्य समाज ने, अपने सेवा के कृत्यों से, अपने लिये कितना श्रद्धा का भाव साधारण-जन समुदाय में पैदा कर लिया है इसका चित्र-सा खिंच गया और मैंने श्रद्धा से आर्य्य समाज के संस्थापक के लिये कहा कि धन्य हो दयानन्द तुम्हे और धन्य है तुम्हारी यह स्थापना, जिसने सेवा के द्वार जनसमुदाय के लिये खोल रक्खे हैं।

आर्य समाज स्थापना दिवस

इस वर्ष आर्य समाज स्थापना दिवस १८-३-४२ को मनाया जायगा। दिवस का प्रोग्राम इसी अंक मे अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है। यह प्रोग्राम आर्य समाजों को भी भेजा जा रहा है। हमे आशा है यह दिवस पूरे उत्साह और सफलता के साथ मनाया जायगा।

इसी अवसर पर सार्वदेशिक सभा के वेद प्रचार फंड के लिए धन संग्रह का कार्य होगा। हमें यह लिखते हुए प्रसन्नता होती है कि आर्य समाजों ने गत वर्ष इस अपील का अच्छा उत्तर दिया है और लगभग २०००) इस निधि में सभा मे एकत्र हुआ है। यह राशि उत्तरोत्तर बढ़नी चाहिए जिससे सभा अपने बढ़ते हुए उत्तरदायित्व को पूरा करने मे सफलतया समर्थ हो। इस वर्ष उपर्युक्त राशि से तो किसी दशा में भी कम न होनी चाहिए।

(गत वर्ष सभा ने दक्षिण प्रचार के अतिरिक्त आसाम, गढ़वाल, बिहार उड़ीसा, सेन्ट्रल इण्डिया, तथा मध्य प्रदेश में प्रचार की आवश्यकता को अनुभव करके, प्रचार कार्य बढ़ाया था। इन स्थानों में सभा के १० प्रचारक कार्य कर रहे हैं। आवश्यकता को देखते हुए इस छोटे प्रचार पर सभा को कार्य प्रारम्भ करने का सन्तोष हो सकता है परन्तु आवश्यकतानुसार प्रबन्ध हो गया है, यह नहीं कहा सकता। प्रत्येक प्रचार क्षेत्र में प्रचार की महती आवश्यकता है। प्राय: ये सब क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ विधर्मियों का प्रचार कार्य जोरों पर है और वहाँ के हिन्दुओ की हर प्रकार से रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। पिछली जन गणना में संथालों को धर्म विहीन उद्घोषित तथा अंकित किए जाने के सरकारी यत्न से सार्वदेशिक के प्रेमी पाठक परिचित ही हैं। इसी प्रकार गढ़वाल आदि मे समस्याएं विद्यमान हैं। अत: उपर्युक्त स्थानों पर प्रचार की व्यवस्था न करना अथवा उसे न बढ़ाना सामाजिक अपराध है, जिसे आर्य समाज जैसी संस्था सहन नहीं कर सकती।) अतः इस अत्यावश्यक प्रचार कार्य सभा के स्थिर कार्य तथा नित नई २ उठने वाली अखिल भारतीय समस्याओं के हल के लिए आर्थिक दृष्टि से सभा के हाथ दृढ़ होने ही चाहिए। आर्य जनता को इस अवसर पर स्थानीय आर्य समाजों की अपील का जहाँ तक संभव हो अधिक से अधिक उत्साह वर्द्धक उत्तर देना चाहिए। जिन २ समाजों से गतवर्ष धन प्राप्त हुआ है उनके नाम राशि के सहित सभा को वार्षिक रिपोर्ट के साथ प्रकाशित होंगे। कोई भी समाज ऐसा न रहना चाहिये जो इस अपील मे अपना भाग न दे।

श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) दयानन्द ग्रन्थमाला २॥)
(२) संस्कृत सत्यार्थप्रकाश अ० ।) स० ।-)
(३) प्राणायाम विधि ॥
(४) वैदिक सिद्धान्त अजिल्द ।॥)
सजिल्द १)
(५) विदेशों में आर्य समाज ॥)
(६) यमपितृ परिचय २)
(७) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर १॥)
(८) आर्य सिद्धान्त विमर्श १॥)
(९) भजन भास्कर ॥)
(१०) वेद में असित शब्द -)॥
(११) वैदिक सूर्य्य विज्ञान ≡)
(१२) विरजानन्द विजय ≡)
(१३) हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद ≡)
(१४) हमारे हकीकत (उर्दू में) ॥।≡)
(१५) सत्य निर्णय (हिन्दी में) १)
(१६) धर्म और उसकी आवश्यकता ।-)
(१७) आर्य्यपर्व्वपद्धति अ० ॥≡) स० १)
(१८) कथा माला ।≡)
(१९) आर्य्य जीवन और गृहस्थ धर्म ।≡)
(२०) आर्य्यवर्त्त की वाणी =)
(२१) समस्त आर्य्य समाजों की सूची ॥)
(२२) वेद विषय व्याख्या ।)
(२३) सार्वदेशिक सभा का इतिहास
सजल्द २॥)
(२४) बलिदान ।)
(२५) आर्य डायरेक्टरी अ० १।) स० १॥)
(२६) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र २)
(२७) सत्यार्थ निर्णय १॥)
(२८) कायाकल्प सजिल्द ।)
(२९) पञ्चयज्ञ प्रकाश ॥।)
(३०) आर्य समाज का इतिहास ॥।)
(३१) बहिनों की बातें ॥)
(३२) Agnihotra
Well Bound २॥)
(३३) Crucifixion by an eye
witness ।-)
(३४) Truth and Vedas ।≡)
(३५) Truth bed rocks of Aryan
Culture ॥)
(३६) Vedic Teachings १)
(३७) Voice of Arya Varta ≡)
(३८) Christianity ॥)
(३९) The Scopes Mission of
Arya Samaj Bound १)
Unbound ॥)

आर्य डायरेक्टरी

अर्थात् आर्य जगत् की समस्त संस्थाओं सभाओं और समाजों का सन् १९४१ ई० की विश्व व्यापी विविध प्रगतियों का वर्णन आर्य समाज के नियम, आर्य विवाह कानून, आर्य वीर दल आदि अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातों का संग्रह। आज ही आर्डर भेजिये।

मूल्य अजिल्द १।) पोस्टेज ।)

मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

इस पुस्तक में आर्यसमाज के विद्वान् श्री प० प्रियरत्न जी आर्ष ने अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा सूत्र स्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान और चिकित्सा स्थान का प्रतिपादन किया है। चिकित्सा स्थान में आश्वासन चिकित्सा, उपचार चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, होम चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, सर्पादि विष चिकित्सा, कृमि चिकित्सा, रोग चिकित्सा और पशु चिकित्सा दी है। इन प्रकरणों में वेद के अनेक महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। पुस्तक २०×२६ आठ पेजी पृष्ठ संख्या ११२ मूल्य केवल २) मात्र है। पोस्टेज व्यय ।) प्रति।

विषय-सूची

सार्वदेशिक पत्र का नमूना मँगाने के लिये ।) का टिकट भेजना जरूरी है।

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १७ | वैशाख १९९९ अप्रैल, १९४२ ई० | [दयानन्दाब्द ११८ | अङ्क २

संगच्छध्वम् । ऋ० १० । १९१ । २

मिल कर चलो ।

Let us work and move in unison !

* * *

संवदध्वम् । ऋ० १० । १९१ । २

मिल कर बोलो ।

Let us think and speak in unison.

वैदिक-संस्कृति के सात महान सन्देश

(लेखक—डाक्टर ए. सी दास, एम. ए., पी-एच. डी.)

वैदिक संस्कृति को ठीक-ठीक समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम उसकी अन्तर्निहित भावनाओं को और उसके सन्देशों को पहले समझ लें। वेद का सब से पहला सन्देश है कि आर्य-संस्कृति शुद्ध भारतीय संस्कृति है। उसने पंजाब में जन्म लिया और अन्य भारतीय संस्कृतियों की अपेक्षा वह सब से पुरानी है। भारत ही प्राचीन देशवासियों की सभ्यता का उत्पत्तिस्थल है। यहीं हमारे पूर्वजों ने जन्म लिया और हजारों वर्ष तक इस सभ्यता के निर्माण में उन्होंने अकथनीय प्रयत्न किये। उन्होंने अपनी तपस्या से इस तरह की सभ्यता निर्माण की जो अपने दृष्टिकोण में उदार और सारी मानवता के कल्याण की भावना की द्योतक है। पाश्चात्य विद्वान् अपनी अनिश्चित खोज के आधार पर वैदिक सभ्यता को दो हजार ईसा-पूर्व से पहले की नहीं मानते। किन्तु ऋग्वेद का गम्भीर अध्ययन हमे यह विश्वास करा देता है कि उनका यह अन्दाज बिल्कुल गलत है। ऋग्वेद के अन्दर इस बात के अनेकों प्रमाण मिलते हैं, जो इसे स्पष्ट करते हैं कि वैदिक संस्कृति अति प्राचीन है। वेदों के मन्त्रों से हमें पता चलता है कि जिस जमाने में ऋग्वेद की ऋचाएँ लिखी गयीं, उस समय उत्तर भारत की भौगोलिक स्थिति दूसरे तरह की थी। ऋग्वेद के काल में सरस्वती और शतद्रु नदियां सीधी समुद्र में गिरती थीं। उस समय समुद्र पंजाब के ठीक दक्षिण में था जहां पर आजकल राजपूताना है। *

ऋग्वेद के अन्दर हमें और भी ऐसी सामग्री मिली है, जिससे हमें प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में अपनी धारणा और अपने विचार बदलने पड़ेंगे। हमें यह मानना पड़ेगा कि हमारे पूर्वज अनन्तकाल से इसी मनोरम भूमि में पैदा हुए, पनपे और यहीं उन्होंने अपनी संस्कृति और सभ्यता का संगठन किया। यह उस जमाने की बात है जबकि संसार की दूसरी प्रचलित सभ्यताएँ जिनका आज नाम और निशान तक मिट गया, उस समय अपनी प्रारम्भिक अवस्था में थीं। हमारी इस पुण्यभूमि का जर्रा जर्रा हमारे महान् पूवजों के चरणों से पवित्र किया हुआ है। यही भूमि हमारे पूर्वजों की मातृभूमि है और यहीं हमारे पूवजों ने जन्म लिया और उन्नति की।

वेद का दूसरा महान सन्देश

वेद का दूसरा महान सन्देश है कि हमारे पूर्वज एक संगठित जाति थे। आजकल की तरह उनका समाज असंख्य जातियों में बँटा हुआ न था। उनमें आपस के खान-पान और ब्याह शादी में कोई प्रतिबन्ध न था। ऋग्वेद की रचना को हम तीन महाकालों में बांट सकते हैं। इनमें तीसरे काल के अन्त में, दसवें मण्डल में, केवल

* ऋग्वेद ७,६५,२,३,३१,२

एक मन्त्र ऐसा मिलता है, जिसमें चातुर्वर्ण्य का जिक्र है।* अनेक भाष्यकारों ने यह कहा है कि यह मन्त्र बाद में जोड़ दिया गया। लेकिन मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता। इस मन्त्र से यह साबित होता है कि धीरे-धीरे भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का विकास हो रहा था। किन्तु यह वर्ण व्यवस्था गुण और कर्म के आधार पर प्रारम्भ हुई थी। कहीं भी इस बात का कोई सबूत नहीं मिलता कि जाति-पाँत का बन्धन वैदिक काल में इतना ही कठोर था जितना आज कल है। उस समय कोई भी ऐसा प्रतिबन्ध न था जिसके अनुसार एक वर्ण के व्यक्ति दूसरे वर्ण में शामिल न हो सकें। उस समय भिन्न-भिन्न जातियां भिन्न-भिन्न कर्म-वर्ग थी और उनमें आपस में अन्तर्जातीय खान-पान और अन्तर्जातीय विवाहों का कोई बन्धन न था।

वैदिक काल में आर्यों की केवल एक ही जाति थी और बाद में उस एक जाति से गुण कर्म के अनुसार चार वर्ण निकले। प्रारम्भिक वैदिक काल में कोई जाति-पांति न थी। जब पहले पहल वर्ण व्यवस्था बनी तो वह बहुत ही लचीली थी। किसी एक वर्ण के लोग किसी दूसरे वर्ण में शामिल हो सकते थे। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि उस जमाने में आपस के खान-पान में कोई बन्धन था। केवल ऐसे लोग जो गन्दा काम करते थे उनके ऊपर कुछ पाबन्दी लगा दी गयी थी। किन्तु वह पाबन्दियां ऐसी नहीं थीं कि जिससे गन्दा काम करने वालों को हरिजन कहा जा सके। इस बात से पता चलता है कि जांति-पांति या भेद-भाव प्राचीन भारत में नहीं था और ऋग्वेद के काल में तो था ही नहीं। आय लोग उदार वृत्ति के संगठित और आत्मनिर्भर मनुष्य थे।

वेद का तीसरा महान सन्देश

वेद का तीसरा महान संदेश है कि स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार थे। वैदिक काल में आय स्त्रियों का पद अत्यन्त उच्च था। बालविवाह का उस समय नाम निशान न था। लड़कियां जवान होने तक अपने पिता के ही घर में रहती थीं और उसके बाद उन्हें अपने लिये पति चुनने का पूरा अधिकार था। गृहिणी की हैसियत से वह अपने घर की स्वामिनी होती थीं। नौकर-चाकरों पर उन्हें पूरा अधिकार होता था। वे अपने पति के साथ नित्य यज्ञ, हवन करती थीं। उनके पति, उनकी सन्तान और उनके आत्मीय उनका आदर करते थे। स्त्रियां भी ऋषियों का पद प्राप्त कर सकती थीं। घोषा, लोपा मुद्रा और विश्ववारा इसका उदाहरण हैं। इन्होंने वैदिक मन्त्रों की रचना की है। विश्ववारा ने यज्ञ में होत्री का पद तक ग्रहण किया था। वैदिक काल की शक्तिशाली, उदार स्त्रियां शक्तिशाली और उदार सन्तानों की जननी थीं। प्राचीन भारत कमजोर और कायरों का देश नहीं था। ऋषि तक ऐसी सन्तानों की कामना करते थे, जो धैर्यवान, वीर्यवान और बलशाली हों, जो युद्ध क्षेत्र में हर्ष के साथ अपने शत्रुओं का मुक़ाबला करें†। जननी ही अपनी सन्तानों के दिमागों

* ऋग्वेद १०,९०,१२

† ऋग्वेद ५,२३,१,२;६,३१,१

को ढालती थीं। वे उनमें वीरता, सच्चाई और निर्भयता के भाव भरती थीं‡। वैदिक काल में स्त्रियां श्रेष्ठ सामाजिक और राजनैतिक विचारों से पूर्ण थीं।

वेद का चौथा महान सन्देश

वेद का चौथा महान सन्देश है कि हमारे पूर्वज जनतन्त्रात्मक विचारों के थे। स्वेच्छाचारी शासक और महन्तों का उन पर कोई असर नहीं था। वे अपने शासन-विधान को स्वयम् ही निर्मित करते थे। वे अपना राजा स्वयं ही चुनते थे और इस तरह के राजा और प्रतिनिधि पचायत द्वारा चलने वाली सरकार को वह खुशी से राज-कर देते थे। जब शासक अपना कर्त्तव्य पूरा नहीं करते थे तब जनता उन्हें कर देना बन्द कर देती थी। जनता को अत्याचारी राजा को गद्दी से उतार देने तक का पूरा अधिकार था। हमारे अंग्रेज शासक यह बात हमारे कानों में डालते रहते हैं कि भारतीय जनता के अन्दर जनतन्त्रात्मक प्रवृत्ति तो कभी थी ही नहीं, और सब से पहले अंग्रेजों ने इस तरह का शासन-विधान भारतभूमि में प्रचलित किया। वे हमसे यह कहते रहते हैं कि अभी हम लोगों को युगों तक अपने अंग्रेज महाप्रभुओं के संरक्षण में जनतन्त्रात्मक शासन की शिक्षा लेनी पड़ेगी। हमारा यह कहना है और यह मैं निःसंकोच भाव से कह सकता हूँ कि अंग्रेजों के इस चौथे दावे को वैदिक इतिहास सम्पूर्णतः गलत साबित करता है। वैदिक साहित्य का मनन करने से यह पता चलता है कि भारतीय जाति के अन्दर जनतन्त्रात्मक प्रवृत्ति कूट-कूट कर भरी थी। यह हो सकता है कि विपरीत अवस्था में उन्होंने कुछ काल के लिये अपनी इस प्रवृत्ति को थोड़ी देर के लिये भले ही दबाया हो।

वेद का पाँचवां महान् सन्देश

वेद का पांचवां महान सन्देश यह है कि हम स्वयम् अपने नैतिक और आध्यात्मिक बल से उन्नति कर सकते हैं और अपनी इस उन्नति के सन्देश को संसार की अन्य मानवजातियों के निकट पहुंचा सकते हैं। हमारी इसी सन्देश-भावना से भारत के एक वृहत् संस्करण विशाल भारत का निर्माण हुआ। केवल वैदिक काल में ही नहीं उसके बाद के बौद्ध काल में भी बौद्ध प्रचारकों ने भारत के बाहर जाकर संसार के कोने-कोने में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। प्राचीन काल में आर्य व्यापारी अपने तिजारती जहाजों पर माल लादकर उस समय की दुनिया के सभ्य देशों में जाते थे। इस बात की चर्चा है कि किस तरह हमारे यह प्राचीन व्यापारी बाहर के देशों से धन धान्य लाकर अपने देश को समृद्धशाली बनाते और भारत से अपनी महान् संस्कृति ले जाकर मैसोपोटामिया, फोनीसिया और मिस्र आदि देशों में उसका प्रचार करते थे। प्रोफेसर निलसन ने नार्वे में पाये गये कुछ अवशेषों के आधार पर इस बात का पता लगाया है कि प्राचीन काल में कुछ भारतीय व्यापारियों ने नार्वे जाकर वहां एक अत्यन्त उन्नत सभ्यता को जन्म दिया। प्रोफेसर निलसन

‡ ऋग्वेद ३,४,३

का निश्चय है कि वे व्यापारी भारतीय ही थे।* इस बात के निश्चित सबूत मिलते हैं कि भारतीय व्यापारी चीन, जापान और अमेरिका तक जाते थे। भारतीय व्यापारियों ने भिन्न-भिन्न देशों में अपने उपनिवेश कायम किये। उन्हों ने जगह-जगह जाकर महलों, इमारतों और मन्दिरों का निर्माण किया। जावा, सुमात्रा, चम्पा और पश्चिम एशिया के कुछ हिस्सों में आर्य सभ्यता के असंख्य प्रमाण बिखरे हुए पड़े हैं। हमारी इस सन्देशवाहकता और प्रचार-भावना को सब से बड़ा धक्का उस समय लगा जब आर्य जातियों ने अपना जातीय संगठन सकुचित और अनुदार बना लिया। उन्होंने स्वयं अपना एक बहुत बड़ा अंग अंत्यज कह कर काट दिया। सारा देश जाति-पांति के झूठे भेदों से टुकड़े टुकड़े हो गया। हर जाति और हर वर्ग एक दूसरे से अलग और स्वाधीन हो गया। इन सब बातों की वजह से कोई मिलाने वाली दृढ़ कड़ी न रह गयी। हम यहीं पर नहीं रुके। हमने आर्यों की चार जातियों को भी अनेक वर्गों और उपवर्गों में बांट दिया। हर वर्ग एक दूसरे से स्वाधीन और अलग हो गया। अन्तर्जातीय विवाह और खान पान के सारे सम्बन्ध टूट गये। भेद-भाव का यह चक्र निरन्तर उग्रता से घूमता गया और हर एक के कन्धों पर ब्राह्मणों की नैतिक दासता लाद दी गयी। भारतीय सभ्यता एक गुलाम सभ्यता बन कर रह गयी। हमारी इसी जातीय कमजोरी ने नैतिक गुलामी का दुर्ग-द्वार खोल दिया। आज परिणामस्वरूप हमें अपने इस महान और प्राचीन देश का समस्त ऐश्वर्य और गौरव धूल में पड़ा लोटता दिखाई दे रहा है। आज सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक और राजनैतिक अधःपतन के बीच में से हम निकल रहे हैं। हम अपने को अशक्त और हतवीर्य पा रहे हैं। सभ्यता की दौड़ में हमारा कर्तव्य क्या है, हम इसे स्वयम् नहीं समझ पा रहे हैं। किन्तु यह निश्चित है कि उस समय तक स्वाधीन राष्ट्र नहीं बना सकते, जब तक हम अपने अन्दर के इस जातीय भेद-भाव को सर्वथा नष्ट नहीं कर देते; ऐसे भेद और उपभेद जिन्होंने प्रत्येक वर्गों को और सम्प्रदायों को क्षीण कर दिया है और हमें मानसिक और शारीरिक गुलामी के बन्धनों में जकड़ दिया है।

* Pre Historic Times, PP. 77-7'-

वेद का छठा महान सन्देश

वेद का छठा सन्देश है कि भारत एक किसान देश है। यदि हमें राष्ट्र की हैसियत से उन्नति करना है तो हमें खेती को अमित प्रोत्साहन देना होगा। हमें अब अपने अर्थशास्त्र की धुरी शहरों से हटाकर गांवों में बनानी होगी। आर्थिक दृष्टि से हमें अपने गांवों को प्रोत्साहन देना होगा। हर आवश्यक वस्तु को, यहाँ तक कि अपने पहनने के कपड़ों को भी हमें गाँवों में बनाना पड़ेगा। वैदिक आर्य एक किसान जाति थे। झुण्ड की झुण्ड गायें उनके पास थीं, जो उनकी सब से बड़ी सम्पत्ति थीं। वे अपनी आवश्यकता की हर वस्तु को स्वयं तैयार करते थे। यूँ तो कहने के लिये हम गौ माता

के परम भक्त हैं, किन्तु वास्तव में सभ्य संसार में गौ माता का हमसे अधिक भयानक शत्रु कोई नहीं है। खेती, गो-पालन और ग्रामोन्नति प्राचीन पूर्वजों के प्रमुख धन्धे थे। किन्तु अपनी मानसिक गुलामी के दिनों में हमने अपने यही तीनों धन्धे अपढ़ और निपटमूर्ख मनुष्यों के हवाले कर दिये हैं। और इसका परिणाम यह हुआ कि हम राष्ट्र की हैसियत से नंगे, भूखे और अशक्त हो गये। हमें अपनी इस मानसिक गुलामी से ऊपर उठना होगा और फिर से हलधर बनना होगा। जाति-पांति के झूठे भेदों को भुलाकर हलों को हाथ में उठाना होगा और अपनी गायों की नस्ल को बढ़िया बनाना होगा। हमें अपने उन आर्य पूर्वजों की करुण भावनाओं को ध्यान में रखना होगा कि जिन्होंने अनेक मन्त्रों में अपने पशुओं को देवता के सदृश माना है*। हमें वेद के महान् मन्त्रों को अपने दिल में बैठा लेना चाहिए और बहैसियत एक किसान राष्ट्र के यदि हमें जीवित रहना है और उन्नति करना है तो हमें वेद के इस महान सन्देश को हर तरह से व्यवहार में लाना होगा।

वेद का सातवां महान सन्देश

वेद का सातवां महान सन्देश यह है कि यदि हमें ब्रह्म से साक्षात्कार करना है तो हमें सब से पहले आत्मदर्शन करना होगा, अपने आपको जानना होगा। जब हम अपने आपको जान लेंगे उस समय पूरी तौर से यह बात हमारी नजरों में आ जायेगी कि जो ब्रह्म आत्म-घट में है, वही ब्रह्म समस्त मानवता के घट-घट में विराजमान है। फिर हमारी नजरों के सामने मानव संसार एक महान् कुटुम्ब की तरह दिखाई देगा। हम न केवल बुद्धिवादी दर्शन-शास्त्री ही रहेंगे, बल्कि अपने नैतिक आदर्शों को व्यवहारिक रूप भी दे सकेंगे। सारा मानव-समाज हमारे लिये एक वर्ग होगा और हम साम्प्रदायिक नीति और धार्मिक भेद-भाव से ऊपर उठकर न केवल मनुष्यों में बल्कि प्राणिमात्र के अन्दर अपने ही रूप को देखेंगे और इस तरह हम अपने उन दिव्य ऋषियों के महान् सन्देश का, जिसे आज से ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् बुद्ध ने दुहराया था फिर से प्रचार करेंगे। यह वह सन्देश है जिसे प्राप्त करने के लिये भारतीय आत्मा आज व्याकुल और बेचैन है। यही भारतीय संस्कृति का मूल-मन्त्र है और यही वेदों के समस्त अन्य सन्देशों से महान् सन्देश है। आज सारी दुनियां इसी सन्देश को सुनने के लिये लालायित है। क्या हम दुनियां के कोने-कोने तक इस सन्देश को पहुँचा कर सन्तप्त मानवता को सुख और आनन्द पहुँचा सकेंगे ?

मानव जाति आज अपने स्वार्थों में अनुरक्त होकर खूँखार जंगली जानवरों की तरह एक दूसरे को निगलने के घृणित काम में लगी हुई है। यदि हमें फिर से विश्व-गुरु का पद स्वीकार करना है, कि जिस पद पर हमारे पूर्वज हजारों वर्ष तक योग्यता पूर्वक आसीन रहे, तो हमें दीर्घ काल तक आत्मत्याग और कठोर अनुशासन के बीच से निकलना पड़ेगा। मानव कल्याण के लिये हमें बड़े से बड़े त्याग के लिये तैयार होना होगा। क्या हम वर्तमान सन्तप्त और पीड़ित संसार में भारतीय संस्कृति के इस महान सन्देश के प्रचार की जिम्मेवारी ले सकेंगे ?

(विश्ववाणी)

* ऋग्वेद ६,२८

मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन

(लेखक—श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी. एस सी. लेक्चरार प्रयाग विश्वविद्यालय)

(गतांक से आगे)

"मैं जानता हूं कि मांस-भक्षण नितान्त अनुचित है परन्तु मैं क्या करूँ ? मुझे ऊँची सोसाइटी में रहना और बड़े २ अफसरों के सम्पर्क में आना पड़ता है अतः अपनी मर्य्यादा को बनाये रखने के लिये मुझे मांस और मदिरा का सेवन करना ही होगा।"

मांस-भक्षण की अपेक्षा शाकाहार अधिक गुणकारी, स्वाभाविक और सस्ता भोजन है। फिर भी न मालूम लोग मांस-भक्षण क्यों करते हैं ? ज्योर्ज बर्नर्डशा इसका समाधान इस प्रकार करते हैं:—

"मानव-जाति के बहुत थोड़े व्यक्ति मांस भक्षण इसलिये करते हैं कि मांसाहार एक जातीय चिह्न है जिसको बनाये रखना अनिवार्य्य सा बन गया है।"

उन नवयुवकों से मेरी पूरी सहानुभूति है जो अनिच्छा पूवक ऊँची सोसाइटी के शिकार बन जाते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि कुछ सदाचारी और उत्साही व्यक्ति मैदान में आएँ और इस अनाचार का क्रियात्मक विरोध करें।

मेरे एक विद्यार्थी ने जो अभी कुछ दिन हुए जंगलात के महकमे में नौकर हुआ है मुझे कहा कि मेरे उच्च अधिकारी मुझ से सदैव अनुरोध करते हैं कि मैं खान-पान के विषय में कट्टरता को छोड़ कर ऊँचे दर्जे के आमिष भोजन करना प्रारम्भ कर दूँ। मुझे प्रसन्नता है कि अपने कई साथियों के सहयोग से मेरा विद्यार्थी दृढ़ रहा और उसने शुद्ध शाकाहार का पृथक् प्रबन्ध कराने के लिये अधिकारियों को राजी कर लिया।

ऐसे भी कई मित्र हैं जो अपने समस्त विद्यार्थी जीवन में शाकाहारी रहे। परन्तु जिस क्षण राजकीय सेवा में गए उसी क्षण से अपने शाकाहार और उच्च सोशल स्टेटस (सामाजिक मर्य्यादा) में कदाचित उन्हें विरोध देख पड़ा। इसका कारण सुस्पष्ट ही है।

प्रारम्भ में इस देश में प्रायः सब उच्च अधिकारी अंग्रेज थे जिनमें अपनी शान शौकत बनाये रखने की भावना काम करती थी। छोटे पदों के भारतीय अधिकारी अपने रहन-सहन के ढंग के लिये उन अधिकारियों से प्रेरणा ग्रहण किया करते थे। बाहरी रंग-ढंग का अनुकरण करना बहुत सरल है और शासक जाति का अपना प्रभाव होता है। परिणाम स्पष्ट था।

इन पदों पर जाने वाले हमारे नये उत्साही भाइयों ने समय द्वारा पादाक्रान्त इन परम्पराओं को ठुकरा दिया और अपने रहन-सहन का एक नया ढङ्ग प्रारम्भ किया। देश की वर्तमान राष्ट्रीय जागृति को धन्यवाद है जिसके कारण अधिकार और स्टेटस की मिथ्या भावनाएँ तीव्रता से तिरोहित हो रही हैं। हमारे अंग्रेज और अमेरिकन मित्र हमारे शाकाहारी भोजों में बड़ी प्रसन्नता से जब तब सम्मिलित होते रहते हैं। भविष्य में तो इस विषय के अधिक सुधार की आशा है। भारतवर्ष जैसे देश में भारतीयों वा अंग्रेजों के मांस-भक्षण का औचित्य सिद्ध ही नहीं होता। बिना मांस के भी ऐसे सुस्वादिष्ट और बहुमूल्य खाद्य पदार्थ तैयार हो सकते हैं जो ऊँचे स्टेटस के खाद्य पदार्थों की तुलना में कहीं बढ़े चढ़े हो सकते हैं परन्तु शर्त यह है कि उनको अंगीकार किये जाने की मन में इच्छा और लग्न हो।

आर्यसमाज की चिनगारियां

श्री कर्मचन्द्र जी विद्यार्थी, लुधियाना निवासी

लाला कर्मचन्द्र जी विद्यार्थी लुधियाने के प्रसिद्ध व्यापारी बाबू जालमसिंह जनरल मरचेन्ट के इकलौते सुपुत्र थे। बाबू जालिमसिंह जी उस समय लुधियाने में काम कर रहे थे जब कि केवल एक दो दूकानें ही जनरल मरचेन्टों की थीं। आपका कारोबार निहायत उच्च तरीके से चल रहा था। बाबूजी रहमदिल होने के कारण शहर में मान की दृष्टि से देखे जाते थे। प्रायः गरीबों की सहायता करना उनका स्वभाव था। अभी ला० कर्मचन्द्र जी छोटी ही उम्र के थे कि उनके पिता का देहान्त हो गया। अदालत जजी से उनकी जायदाद का कोर्ट आफ वार्ड निश्चित हुआ। मुन्शीराम शरणआद्य पेन्शनर मुख्तार नियत किये गये। ला० कर्मचन्द्र जी के अजीज सम्बन्धी राय साहिब लाला लद्धाराम जी क्वेटा निवासी ने लाला कर्मचन्द्र को डी० ए० बी० हाई स्कूल लाहौर में दाखिल करा दिया। यह उस समय की बात है जब कि इस स्कूल के हैडमास्टर दुर्गाप्रसाद जी थे। श्री हैडमास्टर जी के प्रभाव में जहां और विद्यार्थी आर्यसमाजी बन रहे थे, वहां लाला कर्मचन्द्र जी पर भी वैदिक धर्म का वह रंग चढ़ा जो उनकी सारी आयु तक गूढ़ गूढ़ ही होता रहा। रायबहादुर सर जयलाल जी जज हाईकोर्ट लाहौर आपके सहपाठी थे। विद्यार्थी जी इस प्रकार सर्वप्रिय थे कि सब विद्यार्थी उनसे हित करते थे और वह एक प्रकार उनके कमान्डर बने हुए थे। विद्यार्थी जी के पिता से मेरे पिता जी का मेल जोल था। इसी नाते लाला कर्मचन्द्र विद्यार्थी का मेरे से बहुत प्रेम था। और जो आयु पर्यन्त उसी प्रकार बढता गया। जब मैं लाहौर मैं जाता तो डी० ए० वी० स्कूल बोर्डिङ्ग में उन से बड़े प्रेम से मिलता। उनके दृढ़ आर्य विचार देखकर हृदय प्रफुल्लित होता। आप अपनी धुन के इस प्रकार पक्के थे कि शुरू से अन्त तक सामाजिक कार्यों में खूब बढ़ चढ़ कर भाग लेते रहे। जब १८६४ ईस्वी में आर्य समाज में दो दल हो गए तो आपका सम्बन्ध उस समय महात्मा पार्टी से था। स्वामी श्रद्धानन्द जी के अनन्य भक्त बन चुके थे। इसका कारण उन्होंने मुझे बतलाया था कि डी० ए० वी कालेज सोसायटी के वार्षिक उत्सव पर जो दुर्घटनायें हुई थीं उसी से मुझे इस पक्ष से घृणा हो गई है। उस समय आर्यसमाज, अनारकली खुल चुकी थी। विद्यार्थी जी डी० ए० वी० स्कूल बोर्डिङ्ग से बहुत से अपने हम ख्याल विद्यार्थियों को लेकर बिना संकोच आर्य समाज बच्छोवाली के सत्संग में जाया करते थे। डी० ए० वी० कालेज के कर्त्ता धर्ताओं का यह हुक्म था कि कोई विद्यार्थी डी० ए० वी० स्कूल का बच्छोवाली समाज में न जाया करे। ला० कर्मचन्द्र विद्यार्थी और उनके साथी बड़ी

भारी संख्या में अपने विचार के अनुकूल न होने के कारण इस अनुचित आज्ञा की जरा भर परवाह न करते हुए आर्य समाज बच्छोवाली के सत्संग में जाना बराबर जारी रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसे विद्यार्थियों और उनके मुखिया ला० कर्मचन्द विद्यार्थी को स्कूल और बोर्डिङ्ग हाउस से निकाल दिया गया। जब ये विद्यार्थी ला० कर्मचन्द्र जी के साथ निकाले गये और इन नन्हें बच्चों की वह अवस्था जिन्होंने देखी बहुत ही आश्चर्य हुआ। उन्हीं दिनों क्वेटा आर्यसमाज का वार्षिक उत्सव हो रहा था। ला० कर्मचन्द्र आदि सब विद्यार्थियों ने वहां महात्मा पार्टी के नेताओं को सब हाल अपने निकाले जाने का तारों द्वारा विदित कराया। इस घटना से प्रभावित होकर जब नेता लाहौर पधारे जहां मास्टर दुर्गाप्रसाद जी ने एक दयानन्द हाई स्कूल खोल दिया जिसमें ला० लब्भूराम बी. ए. द्वाबा हाई स्कूल जालन्धर के संचालक व ला० कर्मचन्द्र बारी बी. ए. आदि नौ जवानों ने इसमें भाग लेना आरम्भ किया वहाँ आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने एक विद्यार्थी आश्रम खोलकर डी. ए. वी स्कूल से निकाले गए ला० कर्मचन्द्र आदि विद्यार्थियों को उसमें दाखिल करा दिया। ला० तोताराम जी इसके अधिष्ठता बनाये गये। ला० कर्मचन्द्र विद्यार्थी और अपने विद्यार्थियों की सेना के साथ फिर तो बच्छोवाली समाज में बेखटक जाने लगे। प्रायः देखने में आया कि जब तक आप विद्यार्थी रहे लाहौर के विद्यार्थियों के अगुआ की हैसियत से जहाँ आर्यन डिबेटिङ्ग क्लब में मुख्य भाग लेते रहे वहां नगर कीर्तन में भजन गाने के अतिरिक्त स्टेशन पर महमानों के स्वागत के लिये उपस्थित पाये जाते थे। स्कूल से पास करने के बाद विद्यार्थी जी गवर्नमेंट कालेज में दाखिल हुए। वहाँ भी आपको वैदिक धर्म के हित से प्रेरित होकर वहां के विद्यार्थियों को बच्छोवाली आर्यसमाज में लाने के लिये लगातार यत्न करते देखा। आपके इस विशेष प्रयत्न का परिणाम यह होता था कि विद्यार्थियों में से एक बड़ी भारी रकम एकत्र करके बच्छोवाली आर्यसमाज के सालाना जलसे पर वेद प्रचार के लिए देते। आपके साथ काम करने वालों में से ला० जयलाल जी (रायबहादुर सर जयलाल जज हाईकोर्ट पंजाब), ला० रंगीलाल जी (राय बहादुर ला० रंगीलाल जी एम. ए. जज हाईकोर्ट पंजाब), ला० हरदयाल जी चोपड़ा (डिस्ट्रिक्ट इन्स्पेक्टर स्कूल) के नाम वर्णनीय हैं। आपने अन्तिम क्लास तक आर्यसमाज की सेवा में कोई दकीका बाकी न छोड़ा।

क्वेटा आर्यसमाज मे लगभग १९०८ में आप आर्यसमाज के मन्त्री थे। आर्यसमाज क्वेटा के वार्षिक उत्सव को विद्यार्थी जी ने अपनी अनथक कोशिशों से चार चांद लगा दिये। जहां धन एकत्र करने में आपको नुमायां सफलता हुई वहाँ हाजरी के अतिरिक्त प्रचार का काम अति उत्तम हुआ। आपका डीलडौल प्रभावोत्पादक था। नित्य नियम से व्यायाम करते और प्रत्येक कठिन से कठिन काम के लिए तत्पर रहते थे। जिस कार्य में भी हाथ डालते उसमें नुमायां सफलता प्राप्त होती। मुझे अच्छी तरह से ज्ञात है कि एक बार आप गुरुकुल काँगड़ी के जलसे पर

मैनेजर कैम्प की हैसियत से आये। उस समय गुरुकुल में संख्या हजारों की होती थी। वहाँ मैं भी उनके साथ गुरुकुल धर्मशाला की एक हो कोठड़ी में ठहरा हुआ था।

उस समय विद्यार्थी जी कैम्प के प्रबन्ध में इस प्रकार मग्न थे कि कठिनता से चार घण्टे रात को आराम करने आते और प्रातः ही चार बजे कैम्प में चले जाते ! उनकी इस प्रकार की लगन देखकर मैं चकित होता था। पंजाब में बड़ों २ से आपका बहुत मेल जोल था, आपकी योग्यता को देखकर लाला हरकृष्ण लाल जी बैरिस्टर जब वजीर सनतोहिरफित बने तो उन्होंने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी के लिये लाला कर्मचन्द जी विद्यार्थी को ही नियत किया। विद्यार्थी जी ने अपने इस नये काम को कुछ ऐसी पूर्णता से निभाया क्या सर्वसाधारण और क्या गवर्नमेन्ट और लाला हरकृष्ण लाल जी उनकी योग्यता के कायल हो गये। हरेक आपकी योग्यता की प्रशंसा करता था। इसमें आपकी शौहरत को और भी चार चांद लग गये। ला० हरकृष्ण लाल जी ने उनकी योग्यता देखकर विद्यार्थी जी को भारत इन्स्योरेन्स कम्पनी का एजेन्ट निश्चत करके क्वेटे से अम्बाले तक का डिविजन उनके सुपुर्द किया। आपने इस कार्य को भी तनदेही से निभाकर लाखों रुपयों की पालसी भारत इन्शोरेन्स कम्पनी के लिये हासिल की। फिर तो आप लाला हरकृष्णलाल जी के राइटहेन्ड समझे जाने लगे। बढ़ते-बढ़ते एक दिन विद्यार्थी जी भारत इन्शोरेन्स कम्पनी लाहौर के चीफ़ मैनेजर की कुर्सी पर सुशोभित हुए जो अन्त तक भारत इन्शोरेन्स की शोहरत बढ़ाते ही रहे।

आपको व्यायाम से बड़ा प्रेम था। हिन्दू व्यायाम शाला स्थापित करने और उसको चलाने वाले हिन्दू सभा के कार्यकर्त्ताओं में आपका भी एक विशेष भाग था।

उपयोगी से उपयोगी कार्यों में आप सदैव अगुआ की हैसियत में विशेष भाग लेते रहते थे। व्यापारिक मामलात में आपको पूर्णता प्राप्त थी, इसी कारण विद्यार्थी जी उन्नति ही उन्नति प्राप्त करते रहे और अपने नवयुवकों के लिये उपयोगी कार्यों की खोज में लगे रहे। नवयुवकों को कार्य दिलाने में सदा नई से नई स्कीमें तैयार करते रहते थे। लाला कर्मचन्द जी विद्यार्थी निहायत उदारहृदय थे, जहां आप अपनी नेक कमाई में से आय समाज संस्थाओं को दान देते वहां कोई भी विद्यार्थी नवयुवक उनके पास आता जिस तरह भी हो सकता उसको आजीविका पर लगवाते और धन से भी सहायता करके संतोष प्राप्त करते।

लाला कर्मचन्द विद्यार्थी में धन, दौलत, यश और कीर्ति की कोई कमी न थी परन्तु उन्होंने किसी भी समय आर्यसमाज का हित नहीं छोड़ा। सदाचार का एक नमूना थे। उनकी कामयाब जिन्दगी का रहस्य केवल यही था कि पारब्रह्म प्रभु पर आपको पूर्ण विश्वास था। दूसरे की भलाई में अपनी भलाई उनका सुनहरी नियम था। चूँकि आरम्भ में आपने लुधियाने में परवरिश पाई थी इसलिए मेरे से उनका बहुत प्रेम था और जब भी अपने कारोबार के सम्बन्ध में लुधियाने पधारते मेरे ही पास ठहरते। शोक ! वह पवित्र

हस्ती अब कहां।

शोक है एक दिन सायंकाल को आप अपने एक मित्र ला० श्यामलाल जी० बी० ए० के साथ अपनी गाड़ी में सैर के लिये गये और निस्वत रोड के चौक में घोड़ा जो मुंहजोर था बिदक गया। आप और आपके मित्र गढे में गिर गये। शोक! घर लाते २ उनके प्राण पखेरू उड़ गये। अब भी जब २ उनकी याद आती है अश्रुपात होते हैं, ऐसा सच्चा मित्र कहां। लाला कर्मचन्द जी विद्यार्थी को उनके इष्टमित्र और मिलने वाले कभी नहीं भूल सकते। ईश्वर उन्हें सद्गति प्रदान करे।

—लब्भूराम नैयड़, आनन्दाश्रम लुधियाना।

गौ-सेवक श्री पं० जगतनारायण जी

काशी इन दिनों आर्यसमाज का एक अच्छा कार्य-क्षेत्र है। यहां चार पांच समाजें हैं। एक दयानन्द कालेज, स्कूल, वेद विद्यालय. आर्य कन्या पाठशाला, अनाथ नारी सदन और कई हरिजन विद्यालय हैं, पर लोगों को मालूम नहीं कि पचास साठ वर्ष पहिले किन किन महानुभावों ने कष्ट सहकर यह क्षेत्र तैयार किया था। उनमें से एक श्री पं० जगतनारायण जी थे। वे पंजाब से संस्कृत पढ़ने काशी आए थे। संकटा जी के मन्दिर में रहते थे और वहीं किसी विद्वान् से संस्कृत पढ़ते थे। सं० १८८५-८६ में उन्होंने काशी के घाटों और सड़कों पर आर्य सिद्धान्तों का प्रचार करना शुरू किया। उनकी एक आँख नहीं थी इसलिए लोग उनकी हंसी उड़ाते थे पर वे कभी अपने कर्तव्य से विचलित न हुए। उन दिनों ईसाई पादरियों का बड़ा जोर था और इन पादरियों में कुछ विद्वान् और त्यागी भी काशी में आकर बस गये थे। सिगरा मोहल्ले में ईसाइयों की एक बस्ती थी जो अब टूट रही है, इन पादरियों में डेविस नाम के एक अङ्गरेज थे जो गणित में रैंगलर थे। वे अपनी जेब में पैसे रखा करते थे और सड़क पर जहां कहीं कोई अन्धा, लंगड़ा, लूला मिल जाता उसको खैरात कर दिया करते थे। मैं क्वींस कालेज के स्कूल में पढ़ता था जो मेरे घर से दो मील से ऊपर था। रास्ते में तीन जगह पादरी प्रचार करते हुए मिला करते थे। पं० जगतनारायण वहाँ उनसे बहस करने लगते थे और कभी कभी एक या आधी फर्लाङ्ग हटकर स्वतन्त्र रूप से प्रचार करने लगते थे। घाटों पर वे गौरक्षा पर व्याख्यान दिया करते थे। जहां कहीं मेले लगते थे वहाँ भी वे पहुँच जाते थे। काशी में गाजी मियाँ की एक कब्र है, उन दिनों वहाँ बड़ा मेला लगता था जिसमें मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दू अधिक संख्या में जाया करते थे। पं० जगतनारायण ने गाजी मियां पर एक पुस्तिका छपवाई थी। वे उसे मेले में बाँटते थे। आर्य समाज के सिद्धान्तों का प्रचार करने के कारण उनसे हिन्दू, मुसलमान और ईसाई अप्रसन्न रहते थे और गौ रक्षा का प्रचार करने के कारण उनसे गवर्नमेंट खुश नहीं रहती थी। उन्होंने एक छोटा सा प्रेस भी खोल रखा था जिसमें ईसु-परीक्षा, मुहम्मद-परीक्षा, गो-विलाप, गो-पुकार आदि पुस्तकें छपवाई थीं।

दशाश्वमेध घाट पर स्वर्गीय पं० जयशङ्कर जी के सहयोग से उन्होंने एक अनाथालय भी

खोल रखा था जिसमें न मालूम कहाँ कहाँ से वे अनाथों को ले आया करते थे। यह अनाथालय अभी पांच दस ही बरस हुए टूट गया। उनके और पं० जयशंकर जी के मरने के बाद किसी आर्य समाजी ने इसका सचालन नहीं किया। जब यह टूटा तब लक्ष्मी-कुण्ड पर था।

यह बड़े मृदु भाषी थे, इनको कभी किसी ने क्रोध में नहीं देखा। उन दिनों पं० नीलकण्ठ शास्त्री ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया था। पं० जगतनारायण जी ने उनसे भी शास्त्रार्थ किया था।

वे बड़े स्वावलम्बी थे। एक छोटी सी छोलदारी लेकर गांवों में चले जाते थे। कहीं पेड़ के नीचे रात काटकर दिन के समय वैदिक धर्म और गौ रक्षा का प्रचार करते थे बिहार का सूबा बनारस के जिले से मिला हुआ है। प्रचार करते करते वे बिहार प्रांत के ग्रामों में भी पहुँच जाते थे।

सं० १८६१ में बनारस में "रामहल्ला" हुआ था। उस समय शहर में वाटर वर्क्स की नींव डाली गई थी जिस घाट से पानी लिया गया था वहाँ रामचन्द्र जी का एक मन्दिर है जिसमें गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामायण लिखी थी। हिन्दुओं ने आन्दोलन किया कि मन्दिर की दीवार तोड़कर पानी न लिया जाए। इस आन्दोलन ने बलवे का रूप धारण किया जिसमें शरीक होने का इन पर भी सन्देह किया गया था। गोरक्षा के प्रचार के कारण सरकार सदा उन पर सन्देह की दृष्टि रखती थी। वे कुछ दिनो के लिए बम्बई चले गये थे और वहाँ भी उन्होंने छापाखाना खोला था।

काशी में रहते हुए ही उन्होंने गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया था। मऊ (आजमगढ़) में गोहत्या के कारण एक बार बड़ा भयंकर बलवा हुआ था। उस सम्बन्ध में यह भी गिरफ्तार कर लिए गये थे तब से उनका पता नहीं लगा।

यदि कोई आर्य सज्जन उनके बारे में कुछ जानते हों तो कृपा कर लिखें जिससे उस समय के उत्कृष्ट, त्यागी और क्रान्तिकारी प्रचारक के जीवन पर अधिक प्रकाश पड़े।

—रामनारायण मिश्र

(काशी)

अज्येष्ठा, अविष्ठा का प्रचारक

रायबहादुर बाबू दुर्गाप्रसाद जी महाराज फरुखाबाद नगर के निवासी और सम्पन्न व्यक्ति थे। आपका यज्ञोपवीत संस्कार महर्षि जी ने करवाया था आपके जीवन की दो घटनाएँ लिखी जाती हैं।

आर्य समाज फरुखाबाद के सत्संग में महकू नाम का कहार भी आया करता था। वह एक दो सप्ताह न आया तब रायबहादुर बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने पूछा—"महकू कहां है वह देखा नहीं" तब किसी ने बताया महाराज जी! वह तो रोगी है। आप यह सुनकर आर्य समाज के सत्संग से उठकर उसके घर को चल दिये। जब गली में जाकर उसका घर पूछा तो लोग आश्चर्य में थे कि यह महकू के घर क्यों जाते हैं। वहां पहुँच कर उसका समाचार पूछा वह रोगी था। उसकी

ओषधि का प्रबन्ध किया और प्रति दिवस उसका समाचार लेने जाने लगे।

एक दिन वह अधिक रोगी हो गया बचने की आशा न्यून हो गई। आपने उस समय पूछा—"महकू क्या इच्छा है ?" उसका एक छोटा बालक था, उसने कहा "महाराज यह बालक है यदि कृपा करके इसकी रक्षा करने का वचन दें तो मैं शांति से शरीर छोड़ दूँगा।" आपने उत्तर हा मे दिया और महकू जी के प्राण पखेरू उड़ गये।

उस बालक को रायबहादुर बाबू दुर्गाप्रसाद जी ने उच्चशिक्षा दिलाई और वह किसी नौकरी मे लग गया। इनका समता का व्यवहार आर्यों के लिये अनुकरणीय है।"

राय बहादुर जी का पुत्र बालकों के साथ बाग मे खेल रहा था। खेलते समय बालकों की इच्छा हुई कि एक वृक्ष से फल तोड़ें। निश्चय होने पर नन्दकिशोर बालक वृक्ष पर चढ़ा और फल तोड़कर नीचे डालता रहा। जब वह नीचे उतरा तो उसने देखा रायबहादुर जी के सुपुत्र ने अच्छे २ पक्के फल खा लिये हैं और कच्चे रख दिये है वह देखकर उसे आवेश आगया। उसने कहा—"आप करोड़पती के लड़के हैं तो अपने घर, मै आपका नौकर नहीं। आपने मेरे फल क्यों खाए हैं इत्यादि।"

नौकर उनके सुपुत्र को घर ले गया और यही बात उनको बताई। उन्होंने नन्दकिशोर सहित सब लड़कों को बुलाया। वह सब डरे परन्तु विवश थे। राय बहादुर जी के सामने गए। उन्होंने नन्दकिशोर से कहा—आपने गाली क्यों दी। उसने डरते हुए कहा—"मै वृक्ष पर चढ़ा और फल तोड कर गिराए इसने पक्के २ अच्छे फल खा लिये और कच्चे रख दिये।" तब उन्होंने कहा—"आप वृक्ष पर थे आप ऊपर ही पक्के खा लेते और कच्चे नीचे डालते। आपने अच्छा नहीं किया और यदि इसने बुरा किया था तो आप इसे कुछ कहते, इसके पिता ने तो आपका कुछ न बिगाड़ा था उसे अपशब्द क्यों कहे"। नन्दकिशोर चुप खड़ा रहा।

तब वह अपने पुत्र से कहने लगे कि जब यह वृक्ष पर चढ़ा और इसने फल नीचे गिराए तो आपने पक्के खाकर इसके लिये कच्चे क्यों रखे यह आपका नौकर न था, जैसे आप हैं यह भी वैसा ही है इसने परिश्रम किया इसको फल मिलना चाहिये था। आपका कार्य अनुचित है वह भी चुप रहा।

तब आपने दोनों को कहा—अच्छा पाँच बार बैठो और उठो और आगे को ऐसा न करने का वचन दो।

यही किया गया और बालकों को बिदा किया गया यह दोनों घटनाएँ मुझे मुम्बई के श्री नन्द किशोर जी चोबे ने जो आर्य समाज मुम्बई के पुराने कार्यकर्ता है उन्होंने बताई थी। अतः मैं उनका आभार मानता हूँ।

—स्वतन्त्रानन्द

माता

कुरुक्षेत्र की युद्ध स्थली में नरसंहार का भीषण दृश्य उपस्थित था। भीष्म पितामह के युद्ध में प्रवृत्त होते ही वह दृश्य और भी बीभत्स हो गया था। पितामह की बाण वर्षा से पांडव सेना में प्रलय मच गई थी। उनके बल वेग को रोकने में स्वयं अर्जुन भी असमर्थ थे। कौरव दल में हर्ष और आशा और पांडव दल में विषाद और निराशा की लहर दौड़ गई थी और धर्मराज युधिष्ठिर युद्ध भंग करके पुनः वनवास में जाने की सोचने लग गये थे।

पितामह यद्यपि युद्ध में प्रवृत्त थे और विजयश्री उन्हें नित्यप्रति जयमाला पहनाती थी तथापि हृदय से वे दुखी थे। इस युद्ध के भावी दुष्परिणामों की चिन्ता उन्हें रह रह कर व्याकुल करती थी। जब उनके मन में कुल और जाति के क्षय की दुर्भावना उठती तो वे रोने लगते थे।

एक दिन वे इसी प्रकार के विचारों में निमग्न हुए अपने शिविर में बैठे थे। वे सोचते थे कि यह जीवन कैसा निर्लज्ज है। एक एक करके सभी मित्र सहचर और हितू मृत्यु के मुख में चले जा रहे हैं फिर भी यह अभी तक दृढ बना हुआ है! मन ऐसा उत्साह शून्य और मलिन हो रहा है फिर भी नित्य प्रातःकाल उठकर युद्ध में प्रवृत्त होना पड़ता है। कैसा गर्हित होता जा रहा है यह जीवन !!! नित्य हाहाकार पूर्ण संहारका रौरव दृश्य! निरीह सैनिकों का करुणा-जनक रक्त पात!! इसका तो शीघ्र ही अन्त हो जाना अच्छा है।

सहसा ही कुन्ती और गान्धारी के आगमन से उनकी विचार धारा टूट गई। पितामह को प्रणाम करके वे दोनों उनके निकट बैठ गईं। तीनों व्यक्ति कुछ क्षण तक मौन रहे। इसके पश्चात् भीष्म पितामह ने कुंती को सम्बोधन करके कहा—

कहो कुन्ती! पांडव कुशल से तो हैं?

कुन्ती ने उत्तर दिया:—

"हैं तो अभी सकुशल पितामह! किन्तु अब वे निरुत्साहित हो गए हैं। उन्हें विजय की आशा नहीं रही है। अतः युधिष्ठिर फिर वन को लौट जाने का विचार कर रहे हैं।"

भीष्म पितामह ने चकित होकर कहा "कुन्ती यह उनका भ्रम है। जिधर कृष्ण हों उधर पराजय कैसी?"

इस उत्तर से कुन्ती को संतोष न हुआ। उन्होंने पूछा—

"पितामह! यह कैसे निश्चित है कि मेरे पुत्रों की विजय होगी। केवल ६ दिन में पाण्डवों की सेना आधी रह गई है और आपके बाणों ने शेष सैनिकों और महारथियों का साहस तोड़

दिया है। हम तो अब युद्ध बन्द करके वनवास में जा रहे हैं इसीलिए मैं बहन गांधारी से भेंट करने आई थी।"

भीष्म पितामह ने पुनः पूछा—

"अर्जुन जैसे वीर पुत्र के रहते हुए ऐसा क्यों करोगी ?"

कुन्ती के उत्तर देने के पूर्व ही गान्धारी बोली—

"देव ! आप जैसे बुद्धिमान्, धर्मज्ञ और नीतिज्ञ को दुर्योधन का पक्ष छोड़ देना चाहिए। आप जैसे कौरवों के पितामह हैं उसी प्रकार पाण्डवों के भी हैं। एक पोते का पक्ष लेकर दूसरे से लड़ना आप जैसे पितामह के लिए शोभा जनक नहीं है। यदि आप अब भी दुर्योधन का पक्ष त्यागकर उदासीन बन जायें तो यह न्याय सङ्गत बात होगी।"

भीष्म पितामह ने ठंडी श्वास ली और कुछ क्षण मौन रहने के पश्चात् बोले—

"मैं ऐसा नहीं कर सकता, गांधारी ! दुर्योधन राजा है। मैं प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि हस्तिनापुर के राजा का आजीवन पक्ष लेता रहूँगा। मैं उसका अन्न खाता हूँ, परन्तु यह तो कहो अपने बेटे के प्रति तुम्हारी ऐसी दुर्भावना क्यों ?"

इस कटाक्ष से मानो गान्धारी का हृदय बिंध गया। उसने तड़प कर कहा—

"बेटा है तो क्या हुआ ? बेटे को तभी तक बेटा समझना चाहिए जब तक वह सत्य और धर्म पर आरूढ़ रहे। पाप और धूर्त्तता के बल पर सिंहासन पर बैठने वाले को मैं पुत्र नहीं समझती।

दोनों पक्षों के कितने ही निरीह व्यक्तियों का भीषण संहार हो रहा है, कितने ही निरपराध पिस रहे हैं, कितने ही परिवार निराश्रित हो रहे हैं, कितनी ही माताएँ अपने पुत्रों के लिए, स्त्रियां अपने पतियों के लिए और बच्चे अपने पिताओं के लिए धाड़ मार मार कर रो रहे हैं। इन सारे अनर्थों की जड़ एक दुर्योधन है। आप कहते हैं वह राजा है। वह राजा नहीं डाकू है। आप कहते हैं आप उसका अन्न खाते हैं। यह मिथ्या है। राज्य तो आपका है। आपका कृपा-पात्र बनकर ही दुर्योधन उसका अधिकारी बना है। आपने अब तक जो किया सो किया, पर अब उस अन्यायी का पक्ष छोड़ दीजिये।"

इस उत्तर से पितामह की सोई हुई स्मृतियां जग गईं। एक क्षण के लिए उनके मन के सामने वह दृश्य उपस्थित हो गया जब वे अपने पिता शान्तनु की प्रसन्नता के लिए धीवरराज से यह प्रतिज्ञा कर रहे थे:—

"मैं राज्य की चाह नहीं करूँगा,
है जो तुम्हें इष्ट वही करूँगा।
सन्तान सत्यवती जो जनेगी,
वही राज्याधिकारी बनेगी ॥

इस पुनीत प्रतिज्ञा का यह दुष्परिणाम होगा, यह सोच कर उन्हें बड़ा दुख हुआ। देवी गांधारी ठीक कहती है। उन्होंने कहा—

"गान्धारी, मैं तुम्हारा अभिप्राय समझता हूँ, पर मैं वचन दे चुका हूँ अतः उससे विचलित होना भीष्म के स्वभाव के विरुद्ध है।"

गान्धारी ने कुन्ती को उठाते हुए कहा—

"बहन कुन्ती, भीष्मदेव राजभक्त बने हुए

हैं। उन्हें इस समय कर्त्तव्याकर्त्तव्य का ज्ञान नहीं हो सकता। राज्याश्रयी की बुद्धि भ्रष्ट हो जाया करती है। इनसे कुछ कहना वन में रोने के समान है। चलो!"

गांधारी और कुन्ती के चले जाने पर पितामह दोनों देवियों के शब्दों पर गंभीरता पूर्वक विचार करने लगे। हमारे कुल में ऐसे उदात्त विचारों की देवियाँ हैं, इस विचार से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सोचने लगे, गांधारी जैसी देवी की कोख से ऐसा कुल-द्रोही पुत्र क्यों उत्पन्न हुआ। वह देवी तो पूजा के योग्य है जो अपने पुत्र को अस्वीकार करने में भी आगा पीछा नहीं सोचती। एक हम लोग हैं जो अपनी निर्बलताओं से अपने कुल और देश के क्षय का कारण बन रहे हैं। पांडवों से हमें स्वाभाविक प्रेम है। इस प्रेम का यह तकाजा नहीं है कि हम उनके विनाश का कारण बनें। गांधारी सच कहती है मैं अधर्म के पक्ष में हूँ। इसका प्रायश्चित करना ही होगा और वह यह हो सकता है कि मैं स्वेच्छा पूर्वक अपनी मृत्यु का आवाहन करूँ। और इस प्रकार आत्म-हत्या के पाप का भागी बनूं। कुछ भी हो इस अवस्था का अन्त करना ही है। यह निश्चय करके उन्होंने दुर्योधन को बुलाया और उसे समझा कर कहा—

"बेटा, युद्ध बंद करदो। नहीं तो कौरव वंश में कोई नामलेवा शेष न रहेगा।"

जब दुर्योधन किसी प्रकार भी न माना तो भीष्म ने कहा—

"होनहार! दैवेच्छा! इसमें मेरा कोई वश नहीं चल सकता। कुरुक्षेत्र की रण-स्थली में मातृ-द्रोह की जो भयानक अग्नि प्रज्वलित हुई है वह सारे भारत को नष्ट कर देगी।

अच्छा मैंने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया है। आज से दसवें दिन भीष्म का यह शरीर शेष नहीं रहेगा। यह कहकर पितामह उठे और गुरु व्यास एवं श्री कृष्ण को बुलाकर अपने निश्चय पर विचार किया और उस दिन से ठीक दसवें दिन शर-शय्या पर लेट गए।

(२)

एक बार जर्मन देश ने फ्रांस के कुछ नगरों पर विजय प्राप्त की। किसी देश को दासता के पाश में बांधने के लिये सब से अच्छा उपाय यह समझा जाता है कि उस देश की भाषा वेश-भूषा और विचार-धारा को नष्ट कराके उसमें विजेता देश की भाषा और विचार धारा का समावेश कर दिया जाय। इस असूल के अनुसार जर्मन देश के राजतन्त्र ने भी फ्रांस के अधिकृत भाग में इसी उपाय को क्रियान्वित करने का प्रबन्ध किया और शिक्षणालयों में जर्मन भाषा पढ़ाई जाने लगी।

फ्रांस वासी इस बलात् परिवर्तन से अत्यन्त दुखी हुए परन्तु उनके सामने चुपचाप सिर झुकाने के अतिरिक्त और कोई उपाय रह नहीं गया था।

एक बार जर्मनी की महारानी कन्याओं की पाठशाला का निरीक्षण करने के लिये गईं। एक फ्रेंस कन्या की पढ़ाई से प्रसन्न होकर उससे पूछा—

"कहो, तुम्हें क्या इनाम दिया जाय।"

उसकी अन्य सहेलियां सोचने लगीं कि यह लड़की बड़ी भाग्यशालिनी है कि जो महारानी को कृपा-पात्र बनी। उसे अलभ्य से अलभ्य वस्तु प्राप्त हो सकती है। वे उसके मुँह की ओर देखने लगीं कि यह क्या इनाम मांगती है।

उस कन्या ने उत्तर दिया—

"महारानी, जो मै मांगूगी क्या वह सचमुच मुझे दोगी।"

उसकी एक सखी ने उसको झिड़क कर कहा—

"पगली! महारानी क्या वस्तु नही दे सकती? वे तो हमारे देश की स्वामिनी हैं। धन सम्पदा की उन्हें क्या कमी? तू तो उनका अपमान कर रही है।

कन्या ने कहा—

'मेरी प्रार्थना है कि हमारी पाठशाला मे जर्मन भाषा के स्थान में हमारे देश की फ्रेंच भाषा पढ़ाई जाय।'

इस मांग को सुनकर महारानी एक दम चुप हो गईं। उन्हें चुप देखकर कन्या ने कहा—

'आप चुप क्यों हो गईं, महारानी जी क्या मेरी प्रार्थना स्वीकार न होगी।

महारानी ने दूसरी कन्याओं की ओर देखते हुए उस कन्या को कहा—

'तू सचमुच पगली है, तूने खाने पीने पहनने वा पढ़ाई की कोई वस्तु नहीं मांगी।'

कन्या ने कहा—

'महारानी! गुलाम शरीर और आत्मा को लिए हुए हमारा शृङ्गार किसी अर्थ का नहीं है।'

यह बात सुनकर रानी मन ही मन कन्या की देशभक्ति की प्रशंसा करने लगी और कहा—

'पुत्री, तुमने बहुत बड़ा इनाम मांगा है परन्तु मै तुम्हे निराश करना नहीं चाहती। मै आज्ञा देती हूँ कि आगे से इस पाठशाला मे जर्मनी के स्थान मे फ्रेंच भाषा पढ़ाई जाया करे।"

साहित्य-समालोचना

वैदिक प्रार्थना (चतुर्थ संस्करण)

सम्पादक और प्रकाशक—श्री स्वामी भवानीदयालु जी संन्यासी। प्रवासी भवन, आदर्श नगर, अजमेर।

सन्ध्या के विषय पर अपने ढंग की यह बहुत अच्छी पुस्तक है। सन्ध्या के मन्त्रों के सहित उनका पद्यानुवाद और अंग्रेजी अनुवाद दिया गया है। इससे हिन्दी न जानने वाले सज्जन भी लाभ उठा सकते हैं। हवन के मन्त्रों का भाषानुवाद दिया गया है। स्वस्तिवाचन और शान्ति-प्रकरण के मन्त्र पद्यानुवाद और अंग्रेजी अनुवाद के साथ दिए गए हैं। कई उत्तमोत्तम भजन, आरती और आर्य ध्वज गीत इत्यादि उपयोगी बातों का समावेश करके पुस्तक को उपयोगी बनाया गया है। दक्षिण अफ्रीका में पुस्तक के मिलने का पता:—

दयाल ब्रदर्स, ६१ विक्टोरिया स्ट्रीट

डरबन, नटाल।

यह पुस्तक भारत के मद्रास इत्यादि प्रान्तों और विदेश में प्रचारित एवं विशिष्ट जनों को भेंट रूप में दिए जाने योग्य है।

विश्ववाणी

प्रयाग के सहयोगी 'विश्ववाणी' ने अपने जनवरी और फरवरी १६५२ के अंक 'संस्कृति' अंक के नाम से प्रकाशित किए हैं। दोनों अंकों का सम्पादन सुन्दर और योग्यतापूर्ण हुआ है। इसके लिए पत्रिका के संचालक श्री सुन्दरलाल जी तथा संपादक श्री विश्वम्भरनाथ जी शिक्षित जन-समुदाय के धन्यवाद के पात्र हैं। दोनों अंकों में संस्कृति के विविध विकास और विभिन्न स्वरूपों पर पढ़ने योग्य प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है। 'संस्कृति' के तुलनात्मक स्वाध्यायी और जिज्ञासु के लिए तो ये अंक बड़े ही काम के हैं। वैदिक संस्कृति पर भी कई लेख उपलब्ध होते हैं, जो विचार और मनन के योग्य हैं।

भूल सुधार

फ़रवरी के 'सार्वदेशिक' में श्री महेश प्रसाद जी मौलवी आलिम फ़ाजिल कृत 'महर्षि दयानन्द सरस्वती' पुस्तक की आलोचना प्रकाशित हुई थी। उसमें छापे की भूल से मूल्य ।।) के स्थान में १) और प्रकाशक आलिम फ़ाजिल बुक डिपो मुहतशिम गंज इलाहाबाद के स्थान में श्री महेश प्रसाद जी मौलवी आलिम फ़ाजिल, आलिम फ़ाजिल बुक डिपो इलाहाबाद छपा है। पाठक कृपया सुधार कर पढ़ें।

अध्यात्म-धारा

स्व० श्री स्वामी सर्वदानन्द जी का एक प्रवचन

अफ़लातून का पुत्र जब बहुत बड़ा हो गया तो अफ़लातून की स्त्री को एक और पुत्र की इच्छा हुई। उसने पुत्र को सिखलाया और पुत्र ने अपने पिता से कहा कि यदि मेरा एक भाई और हो जाय तो क्या ही अच्छा हो, हम दोनों खेलें।

अफलातून ने उत्तर दिया "जाओ, मैं पहले ही पछता रहा हूं। यदि मैं तुझे उत्पन्न न करता तो मेरा सारा मस्तिष्क फ़िलासफी में लग जाता।

प्राचीन विद्वान् लोग वीर्य की इतनी कद्र करते थे परन्तु हम वीर्य को ऐसा समझते हैं जैसा नाक से मैल साफ कर दिया।

ब्रह्मचर्य जैसा पुरुष के लिए है वैसा स्त्री के लिए भी आवश्यक है। आपने ईंटें बनती कई बार देखी होंगी यदि मिट्टी नर्म है तो ईंट खराब हो जाती है, यदि सांचा ढीला हो तो तब भी ईंट टेढ़ी हो जाती है। यदि सांचा और मिट्टी दोनों ही खराब हों तब तो क्या ही कहना है? यही दशा मनुष्य के बच्चे की है। जब तक स्त्री और पुरुष दोनों ही दोष रहित न हों बलवान बालक उत्पन्न नहीं हो सकता।

जन्तुओं को परमात्मा ने एक २ गुण दिया है, कोकिला का कण्ठ सुरीला, तोते की नाक अच्छी, मृग के नयन सुन्दर, परन्तु मनुष्य के बच्चे में ईश्वर ने सब गुण इकट्ठे कर दिये हैं। अब यदि हम अपने दुष्कर्मों से उन्हें खराब करें तो इसमें परमात्मा का क्या अपराध।

विद्या और ब्रह्मचर्य के पश्चात् तीसरी आवश्यक बात विश्वास है। जगत में किसी का जितना विश्वास है उतना ही उसका गौरव है। जिस प्रकार वृक्षों के लिये जल है उसी तरह मनुष्यों के लिए विश्वास है। इसलिये पहले अपने पर विश्वास करो। जब तुम्हें अपने पर विश्वास नहीं तो दूसरों को तुम्हारा कैसे विश्वास होगा। जो जाति विश्वास से शून्य हो जाती है उसका कोई ठिकाना नहीं रहता। वह संसार में नीच समझी जाती है।

स्वामी विवेकानन्द जी ने अपनी पुस्तक में एक दुख-जनक कथा लिखी है। जापान में पहले जब कोई भारतवासी जाता तो जापानी उसका बड़ा आदर सम्मान करते थे। वहाँ एक बड़ी भारी लायब्रेरी है जिसमें प्रत्येक को जाने की आज्ञा नहीं परन्तु भारत निवासियों के लिए उसका दरवाजा भी खुला था परन्तु एक ऐसी शोकजनक घटना हुई जिसने सदा के लिए इस लायब्रेरी का द्वार भारतीयों के लिए बन्द कर दिया और उनका विश्वास खो दिया। एक बार उस लायब्रेरी में एक भारतीय पुस्तक पढ़ रहा था। पुस्तक का एक पृष्ठ उसे ऐसा पसन्द आया कि आँख बचा कर उसने वह पृष्ठ फाड़ लिया और चल दिया, परन्तु पकड़ा गया और उसी दिन से भारतीयों के लिए उस लायब्रेरी का दर्वाजा बन्द हो गया।

यही दशा धर्म की है। प्रत्येक मनुष्य को

शुद्धि

[लेखक—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज]

राजपूताने का इतिहास, चौथी जिल्द, भाग दूसरा, जोधपुर राज्य का इतिहास द्वितीय खण्ड में इन्द्र कुँवरी का विवाह और शुद्धि लिखी है। इस पुस्तक के लेखक महामहोपाध्याय रायबहादुर साहित्य वाचस्पति डाक्टर गौरीशंकर, हीराचन्द ओझा जी डी० लिट् (आनरेरी) हैं। नीचे उन्हीं का पाठ उद्धृत किया जाता है—

'पौष मास में महाराजा अजीत सिंह की पुत्री इन्द्र कुँवरी का विवाह बादशाह के साथ हुआ। विवाह के समय बादशाह ने हिन्दु-रीति के अनुसार तोरणवन्दन किया और भण्डारी खीमसी की पत्नी ने उसकी आरती कर केसर का तिलक किया एवं मोतियों के अक्षत लगाये तथा उनकी नाक खैंची। इससे बादशाह बड़ा खुश हुआ और उसने पुरोहित अखैराज, बारहट केसरी सिंह तथा भण्डारी खीमसी को सिरोपाव तथा अन्य पुरस्कार दिये।'

पृष्ठ ५६४

उस समय अजीत सिंह शाही सेना की हरावल का अफसर बनाया गया, परन्तु उसने यह कहकर आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया कि यदि मैं 'अपनी पुत्री (फरुखसीयर की बेगम) को अकेली छोड़ जाऊँगा तो या तो वह विष खा लेगी अथवा उसकी इज्जत भ्रष्ट होगी। इस पर अब्दुल्ला खां ने महाराज की पुत्री उसको सौंप दी। फिर हिन्दू मतानुसार उसकी शुद्धि की गई और उसने मुसलमानी पोशाक उतार कर हिन्दू-वेष धारण किया। अनन्तर अपनी एक करोड़ से भी अधिक रुपयों की सम्पत्ति के साथ वह जोधपुर भेज दी गई। इससे कुछ मुसलमानों को बहुत बुरा लगा और काजी ने यह फतवा दिया कि धर्म परिवर्तन किये हुए व्यक्ति को वापिस देना मुसलमानी मजहब के खिलाफ़ है। अब्दुल्ला खां अजीत सिंह को खुश रखना चाहता था जिससे उसने इन सब बातों पर ध्यान न दिया। महाराजा की पुत्री के लिये अठारह हजार रुपया मासिक देना तय हुआ था, जिसके अहमदाबाद के सूबे के शाही खजाने से देते रहने के सम्बन्ध में परवाना जारी हुआ। पृष्ठ ५८४, ५।

यह समझना चाहिए कि जितना मैं उन्नत हूँगा उतना मेरा धर्म उन्नति करेगा और जितना मैं दुष्कर्म करूँगा उतना ही अपयश मेरे धर्म का होगा।

आजकल जो पत्रियाँ वर्तमान हैं उनमें एक बड़ी विचित्र बात होती है। लिखा होता है कि अमुक मास में शुक्र का उदय होगा और अमुक में अस्त। शुक्र के उदय के मास में विवाह होते हैं शेष में नहीं। वे शुक्र से शुक्र तारे का अर्थ लेते हैं परन्तु यह उनकी भूल है। विवाह का तारे के साथ कोई सम्बन्ध नहीं और यदि तारे से प्रयोजन होता तो आज हिन्दुओं में असंख्य विधवाएँ दिखाई न देतीं। यहाँ शुक्र से अभिप्राय है वीर्य का, अर्थात् उस पुरुष से विवाह कराना चाहिए जो वीर्यवान् हो जिसका शुक्र वा वीर्य उदय हो। जिनका शुक्र उदय होता है उनके मुख पर सेव की जैसी लाली छाई रहती है।

विद्या, ब्रह्मचर्य और विश्वास के साथ साथ समय की प्रतीक्षा करना भी सीखो। कभी ऐसी उतावली न करो जिससे तुम्हारा बना बनाया खेल बिगड़ जाय। वही मनुष्य सफल होते हैं जिनमें समय और स्थान के पहचानने की योग्यता होती है।

आर्य समाज स्थापना दिवस

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (१७ मार्च) को समस्त भारतवर्ष में तथा विदेशों में जहां पर आर्य समाजें हैं, बड़ी धूमधाम से आर्यसमाज का स्थापना दिवस मनाया गया है। सार्वदेशिक सभा की सूचनानुसार आर्य मन्दिरों में सरस्वती की स्तुति और महिमा प्रदर्शक वेद मन्त्रों का गम्भीर पाठ हुआ, सभाओं में आर्यसमाज के कार्य पर भाषण हुए हैं, और रात को दीवाली मनाई गई है। इस प्रकार समारोह पूर्वक आर्य समाज ने छोटे किन्तु महत्वपूर्ण जीवन के ६८ वें वर्ष में पदार्पण किया है।

हमारे पास आर्य समाज के मंत्रियों के जितने भी समाचार प्राप्त हुए हैं सब में यही लिखा है कि स्थापना दिवस बहुत धूमधाम से मनाया गया। परन्तु यह किसी समाज ने भी नहीं लिखा कि इस वर्ष हमने काम करने के लिए क्या प्रोग्राम बनाया है।

वर्तमान समय में जो भयानक परिस्थिति हम सभी के सिरों पर से समान रूप से गुजर रही है उस के प्रतिकार के लिए कुछ सोचने की आवश्यकता है।

एक साधारण भारतीय युद्ध के विषय में अपनी कल्पनाएँ तक नहीं कर सकता है। इस समय आवश्यकता है कि संगठित होकर अपनी शक्ति को बढ़ाएँ।

यह समय आर्य समाज के उज्ज्वल इतिहास के पृष्ठों को अधिक महत्व देने का नहीं है, अब लोग भूत के गौरव-गीत सुन २ कर थक गये हैं। वे अब वर्तमान व भविष्य की गौरव गाथाएँ सुनना चाहते हैं। सारा संसार भविष्य की नई प्रणाली की ओर निर्निमेष नेत्रों से देख रहा है, हमें भी ज्ञान के शेवधि वेद को अपने साथ रखते हुए अपने भविष्य को बनाने का विचार करना चाहिए।

हम आशावादी हैं। परन्तु आर्यसमाज की वर्तमान दशा को देख कर कभी २ गहरी निराशा होने लगती है। आर्य समाज इस समय किस को नेता मान कर चल रहा है ? प्रान्तों में कौन प्रमुख व्यक्ति है ? आर्य समाजियों की संख्या तो बढ़ रही है किन्तु सच्चे अर्थों में आर्य कितने हैं ? ये प्रश्न समाधान नहीं करते। यदि इन प्रश्नों पर गम्भीरता से विचार न किया गया तो वह समय दूर नहीं जब कि आर्य समाज की बागडोर उन लोगों के हाथ में चली जायगी जिनको सांसारिक कार्यों से ही फुर्सत नहीं मिलती है।

इन समस्याओं को दूर करने का एक ही उपाय है जिसे बार २ दुहराया जाता है। वह यह कि आर्य समाज का केन्द्र जितना सुदृढ़ और शक्तिशाली होगा, उसका जीवन भी उतना ही दीर्घ होगा। केन्द्र से मेरा अभिप्राय सार्वदेशिक सभा से है।

यदि प्रान्तीय आर्य समाजें प्रान्त की प्रतिनिधि सभा के चारों ओर घूम रही हैं तो प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाएँ भी सार्वदेशिक के चारों ओर

घूम रही हैं, नियन्त्रण और सत्ता की दृष्टि से सार्वदेशिक सभा को ही शक्ति शाली बनाना चाहिये। सार्वदेशिक के कार्यकर्ता उसे सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं किन्तु बिना आर्य जनता के सहयोग के वह सफल नहीं हो सकते।

सार्वदेशिक सभा ने ३ वर्ष का जो रचनात्मक कार्य-क्रम दक्षिण तथा हैदराबाद में प्रचार करने के लिए बनाया था, वह बहुत सफल रहा है। जो लोग दक्षिण में रहते हैं उन्हें भली भांति ज्ञात है कि इधर आर्यसमाज के प्रचार की अत्यधिक आवश्यकता है। सभा की रिपोर्ट के अनुसार अब तक आर्य समाज के प्रचार के लिए १०००००) लाख से भी अधिक व्यय हो गया है, किन्तु यह राशि दक्षिण के क्षेत्र को देखते हुए अत्यल्प है। सभा का इस वर्ष का बजट ३१०००) हजार रुपयों का है जिसमें से १९०००) हजार रुपया अभी नहीं आया है। आशा है कि प्रतिनिधि सभाएँ इस राशि को शीघ्र भेज देंगी। और समाजों को भी चाहिए कि वे भी स्थापना दिवस पर किये गये चन्दे को सभा को भेजे, जिन समाजों ने चन्दा नहीं किया उन्हें भी अब करके भेज देना चाहिये। कुछ समय के लिए हमें केन्द्र को ही शक्ति शाली बनाने के लिए लग जाना चाहिए। केन्द्र के शक्तिशाली होने का मतलब होगा—हम शक्ति शाली हैं।

(आर्य भानु)

The Married Estate

A sister who is a good worker and was anxious to remain celibate in order to better serve the country s cause has recently married having met the mate of her dreams But she imagines that in doing so she has done wrong and fallen from the high ideal which she had set before her self I have tried to rid her mind of this delusion It is no doubt an excellent thing for girls to remain unmarried for the sake of service but the fact is that only one in a million is able to do so Marriage is a natural thing in life and to consider it derogatory in any sense is wholly wrong When one imagines any act a fall it is difficult however hard one tries to raise oneself The ideal is to look upon marriage as a sacrament and therefore to lead a life of self-restraint in the married estate Marriage in Hinduism is one of the four Ashramas In fact the other three are based on it But in modern times marriage has unfortunately come to be regarded purely as a physical union The other three Ashramas are all but non-existent

The duty of the above-mentioned and other sisters who think like her is therefore not to look down upon marriage but to give it its due place and make of it the sacrament it is If they exercise the necessary self-restraint they will find growing within themselves a greater strength for service She who wishes to serve will naturally choose a partner in life who is of the same mind and their joint service will be the country s gain

It is a tragedy that generally speaking our girls are not taught the duties of motherhood But if married life is a religious duty motherhood must be so too To be an ideal mother is no easy task The procreation of children has to be undertaken with a full sense of responsibility The mother should know what is her duty from the moment she conceives right up to the time the child is born And she who gives intelligent healthy and well brought up children to the country is surely rendering a service When the latter grow up they too will be ready to serve The truth of the matter is that those who are filled with a living spirit of service will always serve whatever their position in life They will never adopt a way of life which will interfere with service

Sevagram 3-3-42 M K G

From Harijan'

MAHRISHI DAYANAND'S DAY

CELEBRATED AT MADURA

Glowing Tributes Paid.

Mahrishi Swami Dayanand Sarswati's Day was celebrated with great eclat, under the auspices of Madura Aryasamaj, at a public meeting held on Friday the 13th February, 1942, at the Sethupati High School Hall, Shriyut K. P. Gopala Menon, Bar-at-law, Retired Chief Jusitice of Travancore High Court presiding. Amongst others were present Shriyuts N. M. R. Subbraman, M. L. A, Chairman Madura Municipal Council, P. Ranga Swami Naidu, Advocate and Ex-Public Prosecutor, B. M. Gopala Krishna Kone, Ex-M L C., S. V. Swami, Bar-at-law, N. S. Vishwa Nath Iyer, Advocate, C. M. V. Krishnmachari, Proprietor C. M. V. Press, A. R. Raghvan, proprietor Chari Ram & Co., P. S. A. Krishna Iyer, Honorary Magistrate and Secretary Sourastra Sabha, Seth Gaggo Bhai Proprietor Truthful Manufacturing Co., G. V. Mauttu Swami Chettiar, Proprietor of Eastern Chemists Ltd., and P. A. Srinivasan Iyengar, Agent of Hindustan Bank Ltd.

The Proceedings of the meeting began with a Vedic Prayer performed by Shriyut S. Chandra of the International Aryan League, Delhi.

Mahrishi Dayanand's photo was garlanded by Shriyut V. Krishna Swami Iyer, Advocate and a great Sanskrit scholar amidst the loud ovations of "Vedic Dharma Ki Jai", "Bharat Mata Ki Jai" and "Mahrishi Dayanand Ki Jai".

In the course of his speech, the learned president, while paying his tributes to the great personality of Mahrishi Dayanand Sarswati said, "He was the greatest and most illustrious son of modern India and he wanted to rejuvenate not only our own country but the whole world according to the teachings of the Vedas". The president further hoped that the seed of Aryasamaj sown in Madura by his earnest and enthusiastic young friend Shriyut S. Chandra of the International Aryan League Delhi will soon fructify. He also appealed to the public to strive to see that the work of Aryasamaj gets a permanent and strong footing in Madura as soon as possible.

Shriyut P. Renga Swami Naidu said, "Mahrishi Dayanand gave a new orientation to the degraded Hinduism, He was a great thinker, seer and reformer. He was bold

enough to tell the people the evils that crept into Hinduism and he removed all the excrescences from it. He tried to bring solidarity amongst the Hindus by removing caste distinctions and untouchability and thus again gave a firm footing to Hinduism.

Shriyut P. S. A. Krishna Iyer narrated the life sketch of Mahrishi Dayananda in Tamil.

Shriyut G V Mutuswami Chettiar said, "Mahrishi Dayanand opened the doors of Hinduism for the members of the alien faiths, which were closed till then and the whole Hindu India should feel highly indebted to him for it." He also drew attention of the local public to the great necessity of an Aryasmaj temple at Madura and appealed to raise funds for its construction so that the work of Swami Dayanand could be carried on more vigorously in and around Madura.

Shriyut T. P. Subrramanya Dass also gave a very interesting survey of the life and teachings of Mahrishi Dayananda in Tamil.

Shriyut V. Krishna Swami Iyer in a forceful speech said, "In these days of war-fare and hatred, the teachings of the Vedas as interpreted by Mahrishi Daynanda can only give peace and happiness to the world."

Shriyut S. N. Vishwa Nath Iyer, Advocate and the local greatest Sanskrit scholar said, "I am a Sanatanist, half of the old type and half of the modern type with a liberal outlook and a spirit of conciliation and accommodation, and it is therefore I revere Mahrishi Dayananda Sarswati; more because he stood for the Vedas, Brahamacharya, Sanskrit, Sanskaras, and Hindi He was also a great Yogi The Aryasamaj founded by him is a living force today. If any movement not only in India but in the whole world has any bright future, it is only the Aryasamaj, because its teachings and principles as expounded by Mahrishi Dayananda are universal. The Arya Samaj is the only answer to all the onslaughts on Hiuduism by alien faiths. There is a marked spirit of sincerity and sacrifice in Aryasamaj He appealed to all the Hindus to help the work of Aryasamaj carried on in Madura by Shri S. Chandra of Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha Delhi.

Shriyut R Seshan also made a short but beautiful speech in Tamil, eulogising the services of Mahrishi Dayananda.

In the end, Shri S. Chandra, while narrating in brief, how Mahrishi Dayananda got inspiration by two deaths in his family and the

historic incident of a rat crawling over an image of Lord Shiva on Shivaratri night, drew a picture and a line of demarcation between conceptions of God and the interpretations of the Vedas which existed before and after Dayanand period In conclusion, the speaker said, "The mission of Mahrishi Dayanand's life was to revive the Vedic Dharma, which was once universal, to its pristine refulgence and therefore, he laid the foundation of his mission, mainly on two things. i.e. God and His Revealed Knowledge, known as the Veda."

A condolence resolution was also adopted, all standing, on the untimely demise of Seth Jamna Lal Bajaj.

With a vote of thanks proposed by Dr. M. V. Natesan, President of the local Aryasamaj, the meeting came to a close after three hours.

शुद्धि और संस्कार

सिवान (छपरा) के रहने वाले एक कायस्थ की बीस वर्षीया मैनावती नाम की युवती लड़की को एक नट ने उड़ाकर बेश्या के हाथ बेच दिया था, जिसको केशवपुर (जमालपुर) जि० मुँगेर के उत्साही आर्य सदस्य श्री बाबूलाल जी ने उस बेश्या से उसका उद्धार किया और ता० ३-१-४२ जनवरी को श्री स्वामी शिवानन्द तीर्थ जी की अध्यक्षता में यज्ञ हवन के साथ समारोह से शुद्धि की गई। स्वामी जी का शुद्धि पर भाषण हुआ। उपस्थित लोगों ने शुद्ध शुदा देवी के हाथ से प्रसाद और जल ग्रहण किया। देवी का नाम मनोरमा देवी रखा गया।

ता० २०-१-४२ को एक सन्थाल परिवार की श्री कशुकिष्कुकी जिसमें ५ व्यक्ति थे जो रघुनाथपुर, पो० और थाना परैयाहाट जि० संथाल परगना का निवासी है श्री स्वामी जी ने शुद्धि की और उसी दिन शुद्धि में यज्ञ पूर्वक दो सन्थाल और दो गैर संथालों ने उक्त स्वामी जी से यज्ञोपवीत संस्कार कराया। यह शुद्धि उसके घर रघुनाथपुर में हुई। तीन वर्ष हुए कि परैयाहाट रोमन कैथोलिक मिशन के फेर में पड़कर ईसाई हो गया था।

निर्वाचन

आर्य भजनोपदेशक मण्डल देहली का चतुर्थ वर्ष का चुनाव इस प्रकार हुआ है—

१. प्रधान पं० रामसेवक शर्मा (लहरी)। २. उपप्रधान पं० शामलाल सविता। ३ मन्त्री धर्मसिंह। ४. उपमन्त्री पं० प्रह्लादशरण जी। ५. प्रचार मन्त्री चन्दगीराम जी। ६. कोषाध्यक्ष कवि छेदीलाल जी धनुर्धर।

अन्तरङ्ग सदस्य

१. बनवारीलाल शादाँ, २. हरिसिंह, राणा ३. पं० शिवनन्दन जी, ४. ला० टीकाराम जी, ५. निरीक्षक पं० रामचन्द्र जी शास्त्री।

दान

"खगड़िया आर्यसमाज के भूतपूर्व मन्त्री बाबू कार्तिकलाल जी ने अपने पुत्र चिरं० श्री जितेन्द्रकुमार के विवाहोपलक्ष्य में स्थानीय आर्यसमाज को ५११) रु० दान दिया है। इसके लिए उन्हें धन्यवाद है"

रामस्वरूप लाल
मन्त्री
आर्यसमाज खगड़िया

बौंसी मेला प्रचार

आर्य समाज भागलपुर और आर्य उप प्रतिनिधि सभा भागलपुर कमिश्नरी की ओर से बौंसी मन्दारहिल, पोस्ट बौंसी, जिला भागलपुर के संक्रान्ति मेला में जहां पर मुंगेर, भागलपुर और सन्थाल परगना आदि के निवासी वन्य पर्वतीय सन्थाल पहाड़िया तथा अन्य लोग हजारों की संख्या में उपस्थित होते हैं वहां तारीख १४, १५ जनवरी १६४२ को दो दिनों तक श्री स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ की अध्यक्षता में श्री पं० अशर्फी शुक्ल, श्री नन्दकुमार जी, श्री ठाकुर हृदय नारायणसिंह जी, श्री ठा० नित्यानन्दसिंह जी, श्री सोभाग सुरेन, जी श्री राजेन बाबा जी और श्री सीधो मरन्डी जी ने प्रचार किया। दोनों दिन प्रभातफेरी हवन-यज्ञ उपरोक्त सज्जनों के भजनोपदेश और विविध विषय पर सामयिक भाषण हुए।

प्रथम दिन सन्थाल परगना और भागलपुर जिला के निवासी ५७ सन्थाल पहाड़ियों ने यज्ञ मण्डप में यज्ञ हवन के साथ यज्ञोपवीत (जनेऊ) श्री स्वामी जी से ग्रहण किया। मेले में आये हुए संथाल और पहाड़ियों का एक वृहद् जुलूस, तीर धनुष, फरसा, तलवार, भाला के साथ श्री स्वामी दयानन्द की जय, वीर सावरकर की जय, वैदिक-धर्म की जय आदि के नारे लगाते हुए और "दयानन्द के वीर सैनिक बनेंगे" के गीत गाते हुए उपरोक्त कार्य-कर्त्ताओं की अध्यक्षता में निकाला गया। मन्दार पर्वत की उपत्यका के विस्तृत स्थान में रावण-वध का प्रदर्शन किया गया। अस्सी हाथ की दूरी पर केले के स्तम्भ में रावण का चित्र चिपकाया गया था और सब सन्थाल पहाड़ियों ने तीरों का लक्ष्य उस मूर्ति को बनाया, अन्त में उनमें एक मुन्सीसिंह बेसरा, पोस्ट नौनीहाट, जिला सन्थाल परगना को लक्ष्य-वेध में सफलता मिली। उसके अतिरिक्त एक दूसरे का बाण भी रावण के शिर के बगल में लगा अतः दोनों में प्रथम को एक रुपया एक धोती और आध सेर मिठाई और दूसरे को आठ आने, पुरस्कार में हम लोगों ने प्रदान किया। दूसरे वर्ष के लिये तीर संचालन में सर्वप्रथम को एक चांदी का तगमा, ५) रुपये, धोती, कुरता, शिरीवेस्टन (मुरेठा) दूसरे को २।।) रुपये और वस्त्र और तृतीय को एक रुपया देने की घोषणा उपस्थित जनता में की गई। इस प्रदर्शन में जनता की अपार भीड़ थी। उपस्थित लोगों पर इसका प्रभाव बहुत ही पड़ा यहां तक कि प्रचारकों से ठा० हृदयनारायण सिंह जी भी लक्ष्य वेधने को तैयार हो गये जो हाथ में कभी छुरी तक भी नहीं रखते थे।

दूसरे दिन रावण-वध के बाद भरत-मिलाप का सचमुच दृश्य उपस्थित हो गया। वर्षों से संथालों के दो दल खेरवा और साफा अलग २ रहते थे और सारा व्यवहार ही एक दूसरे से पृथक कर लिया था। उपरोक्त सज्जनों के प्रयत्न से दोनों दलों में मेल करा दिया गया। लड्डू द्वारा एक ने दूसरे का परस्पर स्वागत किया। दोनों दल प्रसन्नता-पूर्वक आपस में मिल गये। पण्डाल

आर्य सम्मेलन की धूम

(सम्वाददाता द्वारा)

ता० १२-२-४२ से ता० १४-२-४२ तक हैदराबाद स्टेट का प्रथम आर्य सम्मेलन उदगीर में बड़े समारोह के साथ मनाया गया।

प्रातः यज्ञ के पश्चात् स्टेशन से बृहद् जलूस निकाला गया। जलूस में १५, २० हजार की उपस्थिति थी। आगे घोड़ों पर पूज्य भाई बन्सी लाल जी, श्री पं० शेषराव जी वकील निलंगा तथा कुछेक उत्साही नवयुवक थे। पीछे ऊँटों पर आर्य वीर 'ओ३म्' की ध्वजा लिए बैठे थे। शेष सहस्रों आर्य समाजी भजन गाते हुए पैदल चलते थे। इनके मध्य में माननीय अध्यक्ष पूज्य पं० विनायकराव जी तथा स्वागताध्यक्ष श्री पं० निवृति रड्डी जी वकील हाथी पर विराजमान थे। यह जलूस एक मील लम्बा था। इसे शामलाल नगर के पहुंचने के लिए लगभग ५ घण्टे व्यतीत हुए। कहते हैं कि ऐसा सुन्दर जलूस किसी के देखने में नहीं आया था।

इसी दिन सायङ्काल ५ बजे दक्षिण केसरी में वक्ताओं के भजन और व्याख्यान-द्वारा दूसरे दिन की कार्यवाही समाप्त की गई।

संथाली बधना पर्व

सन्थालों में एक बधना-पर्व होता है जिस प्रकार बड़े दिन का त्यौहार ईसाइयों का होता है, और आर्य हिन्दुओं में मकर संक्रांति है इसी प्रकार यह भी संथालों का बड़े दिन का पर्व है। यह ठीक मकर संक्रांति के दिन से लेकर एक मास तक भिन्न-भिन्न ग्रामों में भिन्न-भिन्न दिन समारोह से मनाये जाते हैं। बधना संस्कृत के 'वृधु वृद्धौ' धातु से निष्पन्न वर्धना शब्द का अपभ्रंश है। बढ़ना शब्द हिन्दी-भाषा में उसी का अपभ्रंश है, दिन बढ़ने के उपलक्ष्य में मनाये जाने के कारण इसका नाम वर्धना का विकृत होकर बधना पड़ गया है। इसको संकरात भी कहते हैं जो संक्रांति का बिगड़ा रूप है।

जिस दिन यह पर्व मनाना होता है उस दिन मैदान में गांव के सब लोग दिन में हवन करते हैं और खीर बनाकर खाते हैं। रात में दाल-भात खीचड़ी आदि यथा अभिरुचि भोजन करते हैं और स्त्री पुरुषों का अलग अलग दल तथा कहीं सम्मिलित भोजन के बाद वाद्य यन्त्र (टामाक) ढोल (तुन्दा) मन्दरा, बांसुरी, झाल आदि के साथ अपनी संथाली भाषा के गीत स्वर के साथ गाते और नाचते हैं जो देखने और सुनने में मनमोहक और हृदयग्राहक ह ते हैं। उनके गान में मधुरिमा भरी रहती है, गान मे अपने हिन्दू देवी देवताओं के नाम तथा नदी पहाड़ों के नाम भरे रहते हैं, जो इनके कट्टर हिन्दू पन को सिद्ध करते हैं फिर भी सरकार ने इनको लामजहबी समझने का ठेका ले रखा है।

स्वामी शिवानन्द तीर्थ,
उपप्रधान—आर्य उप-प्रतिनिधि सभा,
भागलपुर कमिश्नरी।

पूज्य पं० विनायकराव जी के कर कमलों से विधि युक्त ध्वजारोहण हुआ। तदनन्तर ५।। बजे श्री मुन्नालाल जी मिश्र तथा श्री पं० बन्सीलाल जी व्यास के भजनोपदेश के साथ सम्मेलन की कार्यवाही आरम्भ हुई। भजन के बाद स्वागताध्यक्ष तथा अध्यक्ष महोदय के सारगर्भित भाषण हुए।

अध्यक्ष जी ने अपने भाषण में आर्य सत्याग्रह के पूर्व और वर्तमान परिस्थिति का वर्णन किया।

इस प्रकार के महत्वपूर्ण भाषण के बाद श्री पं० नरेन्द्र जी ने पूज्य म० नारायण स्वामी जी. पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, श्री एस० सत्यमूर्ति जी, श्री माननीय घनश्याम सिंह जी गुप्त, श्री कन्हैया लाल जी, श्री बैं० वि० द० सावरकर जी आदि महानुभावों के सन्देश पढ़ सुनाये। यह सन्देश लगभग ६० की संख्या में थे।

शुक्रवार ता० ११-२-४२ को प्रातः बृहद् यज्ञ के पश्चात् आर्य समाज उदगीर का वार्षिकोत्सव मनाया गया। इसमें भजनोपदेशक तथा विद्वान् वक्ताओं के भाषण हुए। इसी समय विषय निर्धारिणी समिति की एक बैठक हुई, जिसमें २६ महत्वपूर्ण प्रस्तावों पर विचार विनिमय हुआ जिनमें से मुख्य पाकिस्तान योजना का घोर विरोध, अछूतोद्धार, आर्यभाषा हिन्दी का प्रचार, बाल विवाह निषेध, गौरक्षा, व्यायामशाला और १४ मांगों को शीघ्र अमल में लाया जाय, बालिकाओं को उनकी मातृ-भाषा की शिक्षा दी जाय, उर्दू को ऐच्छिक विषय रखा जाय इत्यादि थे।

दोपहर में श्री आर्यभानु जी आदि के भजनोपदेश हुए और श्री पं० रामदेव जी शास्त्री, श्री पं० सतीश कुमार जी, श्री पं० मदन मोहन जी विद्याधर, श्री पं० जयदेव जी, श्री पं मनोहर लाल जी आदि विद्वानों के प्रभावशाली भाषण हुए, जिससे जनता को बहुत ही लाभ हुआ।

सायं ५। बजे कार्यवाही आरम्भ हुई। श्री मुन्नालाल जी, श्री पं० बन्सीलाल जी व्यास के भजनों के पश्चात् उपरोक्त २६ प्रस्तावों में से कुछ प्रस्तावों को सभा के सम्मुख रखा गया और यह सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए।

शनिवार ता० १४-२-४२ को प्रातः यज्ञ के पश्चात् उत्सव की कार्यवाही आरम्भ हुई। जिसमें सारगर्भित भजन और हृदयस्पर्शी भाषण हुए।

दोपहर को आर्यमहिला सम्मेलन मनाया गया। इसकी अध्यक्षा श्रीमती सुशीला देवी जी विद्यालंकृता थीं। इसमें श्रीमती विद्यावती जी आदि विदुषी महिलाओं के भावपूर्ण भाषण हुए। पुरुषों के लिए अलग प्रोग्राम रखा गया था।

सायं ५ बजे से सम्मेलन का कार्य आरम्भ हुआ। भजनों के पश्चात् शेष प्रस्तावों को सभा के सामने रखा गया और सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए।

इस प्रकार वह सम्मेलन बहुत ही शान्ति और आनन्द के साथ समाप्त हुआ। जनता लगभग ३५०० की संख्या में थी। इस सम्मेलन में हिन्दी सम्मेलन मनाया जाना था। दुःख है कि सरकार ने आज्ञा नहीं दी।

डा० परमात्मा शरण का वक्तव्य

कैम्प के सम्बन्ध म पारषद् के सभापति डा० परमात्मा शरण ने निम्न वक्तव्य दिया है —

"कैम्प का उद्देश्य विद्यार्थी और शिक्षकों, अनुभवी वृद्ध और नवयुवकों म पारस्परिक प्रेम और सम्पर्क स्थापित करके उनके जीवन से उन्हें शिक्षित करना है। इसकी जरूरत इसलिए भी है क्योंकि हमारी शिक्षण सस्थाओं म शिक्षक और शिक्षितो म व्यक्तिगत सम्पर्क बिल्कुल नही रहता। इस बात का ज्यादा से ज्यादा ध्यान रक्खा जायगा कि कैम्प म आने वाले विद्यार्थी अपने समय का अधिक से अधिक लाभ उठा सकें। वहाँ उन्हे आत्म-निर्भर बनाने, सभ्य मडली (सोसायटी) मे उठने बैठने का आचार सिखाने, निरीक्षण (आवजरवेशन) शक्ति बढाने उनका दृष्टिकोण विशाल व उदार बनाने, अपने मित्रों व सबन्धियों से मृदुल व्यवहार रखने, मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम और प्राणी मात्र के प्रति सद्भावनाएँ रखने की शिक्षा दी जायगी। ताकि वे देश और जाति के सच्चे सेवक और योग्य नागरिक बन सकें। ऐसे महानुभावों के साथ बच्चों को रखने की जो उनके गुणो का विकास कर सकें, जरूरत इसलिए महसूस हुई क्योंकि हमारे स्कूलों मे ऐसी व्यवस्था नही है। इन कैम्पों म हमारे बच्चों का स्वास्थ्य भी सुधरेगा और वे मजबूत भी बनेंगे। अतः मैं कालेज, स्कूलों और यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों से साग्रह अनुरोध करूंगा कि वे कैम्प म भाग ले। बच्चो के माता पिताओं से भी मेरा आग्रह है कि वे अपने बच्चो को कैम्पों म भेजें।

कैम्प म आने के लिए प्रवेश पत्र १ मई तक भर कर पेशगी रुपये के साथ परिषद-कार्यालय म आ जाना चाहिए। प्रवेश पत्र मन्त्री, भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद देहली से मिल सकते है।"

× × ×

सूचनाएँ

गत ५ मार्च को बिजनौर के मास्टर चरणदास जी को एक मुसलमान विद्यार्थी ने बड़ा निर्दयता से उस समय वध कर दिया जबकि मास्टर साहब प्रात काल स्कूल जा रहे थे। वध का कारण यह था कि उक्त विद्यार्थी बहुत उत्पात मचाता था और मास्टर साहब ने ऐसे सब विद्यार्थियो को अनुशासन मे लाने का प्रयत्न किया।

मास्टर साहब आर्य समाज के सच्चे सेवक थे। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् के कई वर्षों तक मन्त्री रहे। इस समय भी आप परिषद् की परीक्षा समिति के सदस्य थे। अत प्रत्येक आर्य कुमार सभा को अपने अधिवेशन मे उनकी मृत्यु पर शोक प्रस्ताव पास करके यहाँ भेजना चाहिए।

व्यायाम शालाएं

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् के गढ़मुक्तेश्वर सम्मेलन म यह प्रस्ताव पास हुआ था कि प्रत्येक कुमार सभा अपने अपने नगर म एक एक व्यायाम शाला कुमार सभा की ओर से स्थापित करे और उसकी सूचना तुरन्त परिषद् कार्यालय को दे। इसके साथ ही प्रत्येक कुमार सभा आर्य वीर दल भी बनाए। आशा है आप अपनी कुमार सभा का ओर से अवश्य ही इसका प्रबन्ध करेंगे। अगर आप इस पर विशेष धन व्यय न कर सकें तो कुछ विद्यार्थियों को इकट्ठा करें जो नियम पूर्वक दंड बैठक, आसन व्यायाम, ड्रिल तथा खेल कूद करें। इस सम्बन्ध में परिषद ने व्यायाम सञ्जीवनी नाम से जो पुस्तक छपाई है वह आप १) का मनीआदर भेज कर मगालें और उसके अनुसार सब व्यायाम किया करें। व्यायाम शालाएँ स्थापित करने की सूचना तुरन्त परिषद् को दें। जिन कुमार सभाओं म व्यायाम शालायें चल रही हैं वे कृपया लिखें कि १ व्यायाम शाला म नित्य प्रात कितने सदस्य आते हैं, २. क्या क्या व्यायाम करते हैं, ३. कोई शिक्षक रखा है या नहीं, ४. समय क्या है प्रात है या साय या दोनो समय।

वार्षिक शुल्क

परिषद् का नया वर्ष आरम्भ हो गया है लेकिन अभी तक अधिकाश कुमार सभाओं ने अपना पिछले वर्ष का चन्दा भी नहीं भेजा है। ऐसी अवस्था म परिषद् का काम चलना बहुत कठिन है। अत सभी आर्य कुमार सभाओं के मन्त्रियों से निवेदन है कि वे दोनों वर्षो का शुल्क शीघ्रातिशीघ्र भेजने की कृपा करें। बहुत सी कुमार-सभाएँ पत्रों का उत्तर नहीं देतीं इस-लिए कभी कभी तो यह जानना भी कठिन हो जाता है कि अमुक कुमार सभा जीवित भी है या नहीं। अत आप लोगों से निवेदन है कि आप इस विषय म भविष्य म सावधान रहें।

परमेश्वर दयाल, मन्त्री

"आर्य कुमार कैम्प"

विद्यार्थियों, युवकों और कुमारों के लिये अपूर्व आयोजन

भारतीय विद्यार्थियों, युवकों आर्य कुमारों और बच्चों को भारतीय संस्कृति का ज्ञान कराने उनम आत्म-निर्भयता आदि की भावनायें भरने के लिए भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषद् ने १५ मई से १५ जून तक ६ से १६ तक के बालको और १६ से ३० तक की आयु वाले युवकों के लिए कैम्प रामगढ़ (नैनीताल) म महात्मा नारायण स्वामी जी के आश्रम के पास करने का निश्चय किया है। डा० परमात्मा शरण प्रधान भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् के अध्यक्ष होंगे आपको परामर्श देने के लिए निम्न सज्जनों की एक समिति बना दी गई है—

डा० सत्यप्रकाश, प्रोफेसर इलाहाबाद विश्व-विद्यालय, प्रो० सुधाकर जी, श्री ज्ञानचन्द जी बी० ए०, प० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, प० देवव्रत जी धर्मेन्दु।

१६ से ३० वर्ष तक की आयु वालो के विद्यार्थियो और युवको के लिये कैम्प का कार्यक्रम इस प्रकार होगा।

प्रात ५ बजे शय्या त्याग शौच दातुन कैम्प की सफाई।

२ घन्टे—सध्या हवन व्यायाम बन्देमातरम् गान और झण्डा रोहण व कलेवा।

१ घन्टा—किसी विद्वान का व्याख्यान।

१ घन्टे—भोजन बनाना व पठन पाठन।

३ घन्टे—स्नान, भोजन, विश्राम व स्वाध्याय।

३ घन्टे—पहाड़ों में भ्रमण, ड्रिल, खेल कूद अपनी-अपनी विशेष रुचि (हाबीज) के अनुसार कार्य्य यथा बागवानी मधु मक्खी पालन चर्खा दङ्गल आदि।

२ घन्टे—भोजन बनाना व पठन पाठन।

१ घन्टे—सध्या हवन तथा विद्वानों से बातचीत।

६ बजे रात को शयन।

इस अवसर पर बहुत से विद्वानों के भाषण होंगे। भाषण देने के लिये निम्नलिखित विद्वान होंगे।

महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज, प्रो० सुधाकर जी, पं० बुद्धदेव जी, सर सर्व्वपल्ली, राधा कृष्ण, वाइस चासलर हिन्दू यूनिवसिटी, श्री ५० जयचन्द विद्यालकार, डा० मुकन्दस्वरूप वर्मा, काका कालेलकर, वा० सम्पूर्णानन्द जी, आचार्य नरेन्द्र देव, श्री हरीभाऊ उपाध्याय, श्री हीरालाल शास्त्री आदि महानुभावों के भाषण होंगे।

व्याख्यानो के विषय मोटे तौर पर निम्न रहेंगे —

१. भारत क प्राचीन इतिहास की झलक।

२. भारतीय सस्कृति अर्थात् इसके अनुसार हमारा वैयक्तिक, पारिवारिक सामाजिक और राजनीतिक जीवन कैसा होना चाहिये। प्राचीन भारत म स्त्रियों की अवस्था और शिक्षा की व्यवस्था सामाजिक सगठन व उसकी विशेषतायें राज्य-व्यवस्था सिद्धान्त और राज्य प्रणालिया।

३. भारत की वर्तमान सामाजिक, (ब) राजनैतिक (स) आर्थिक अवस्था।

४. स्वास्थ्य-विज्ञान।

५. संसार की अद्भुत बातें, आविष्कार, पृथ्वी, प्रकृति आदि।

६. चरित्र गठन—जीवन का उद्देश्य जीवन-कला आत्मा को बलवान बनाने का उपाय।

७ गान्धीवाद—महात्मा जी क सिद्धान्त वैयक्तिक, पारिवरिक, सामाजिक व राजनैतिक जीवन म।

८. पूर्व का पश्चिम को सन्देश (सर राधाकृष्ण वाइस चासलर हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस)।

बिना मूल्य मंगाइए

भारतवर्षीय आर्य्य कुमार परिषद् की अगस्त १६४२ में होने वाली सिद्धान्त भास्कर व शास्त्री की परीक्षाओ तथा जनवरी १६४३ मे होने वाली सिद्धान्त सरोज, सिद्धान्त भास्कर और सिद्धान्त शास्त्री की परीक्षाओं के छपे हुए आवेदन पत्र कार्यालय में बिना मूल्य मिल सकते हैं। इन परीक्षाओ म सम्मिलित होने क इच्छुको को प० देवव्रत धर्मेन्दु परीक्षा मन्त्री भारतवर्षीय आर्य्य कुमार परिषद् दीवान हाल देहली को पत्र लिखकर मगा लेने चाहिएँ।

देवीदयाल, उपमन्त्री,
भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्।

आर्य कुमार सभा का निरीक्षण

मैने ३ मार्च को आर्य कुमार सभा गाजियाबाद का निरीक्षण किया। फरवरी सन् १६४२ तक आर्य कुमार सभा के सदस्यों की सख्या ६२ थी और आर्य कुमार सभा के कोष में भी ३०।≥)||| शेष थे। २०० के लगभग पुस्तकें हैं। प्रत्येक रविवार को अधिवेशन होता है, आर्य कुमार सभा के वर्तमान अधिकारी बा० यमुना प्रसाद जी प्रधान व म० बालचन्द जी मन्त्री हैं। कुमार सभा के कामों मे श्री परमानन्द जी, श्री ब्रजमोहन जी, श्री रमेशचन्द्र जी उत्साह पूर्वक कार्य करते हैं।

देवीदयाल उपमन्त्री
भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्, देहली।

आगामी परीक्षाएँ

भारतवर्षीय आर्य्य कुमार परिषद् की सिद्धान्त सरोज, सिद्धान्त रत्न, सिद्धान्त भास्कर और सिद्धान्त की परीक्षाएं जनवरी मास १९४३ मे भारत के भिन्न २ केन्द्रो मे होगी। सिद्धान्त भास्कर व सिद्धान्त शास्त्री की परीक्षाएँ अगस्त में भी हुआ करेंगी। अतः जिस २ स्थान के सज्जन अपने नगर में वे परीक्षाएँ करना चाहें वे केन्द्र स्थापना फार्म, आवेदन पत्र, नवीन पाठविधि तथा अन्य परीक्षा सम्बन्धी जानकारी के लिये ५० देवव्रत धर्मेन्दु परीक्षा मन्त्री भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् दीवान हाल देहली से पत्र व्यवहार करें।

भवदीय—
मं० आ० कु० प०,
देहली।

वैदिक धर्म परीक्षाएं
परीक्षार्थियों को सुविधा

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की परीक्षा समिति की बैठक ने परीक्षार्थियो को सुविधा देने के लिए कई निश्चय किये हैं।

सिद्धान्त सरोज, रत्न व भास्कर के शुल्क घटा कर ।=), ।।।) और १।।) कर दिया हैं।

भास्कर व शास्त्री की परीक्षाएँ जनवरी के अतिरिक्त अगस्त के अन्त मे भी हुआ करेंगी। कही भी पॉच विद्यार्थी होने पर केन्द्र स्थापित हो सकेगा।

सिद्धान्त सरोज का पाठ्य क्रम यथा पूर्व रखा गया है। रत्न में बाल-सत्यार्थप्रकाश के स्थान में सत्यार्थप्रकाश का दसवा समुल्लास और उपदेशामृत के स्थान पर स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन चरित्र रखा गया है।

भास्कर में दयानन्द सिद्धान्त भास्कर, दर्शनानन्द ग्र थ-संग्रह और आर्य समाज नामक पुस्तकें हटा कर स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र रखा गया है। शास्त्री मे न्याय दर्शन और वैदिक वाङ्मय हटा दी गई हैं। संशोधित पाठ विधि परीक्षा-मन्त्री आर्य कुमार परिषद दीवान हाल देहली से मिल सकती है।

श्रीमान् पं० इन्द्र विद्या वाचस्पति उपप्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का वक्तव्य
भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की धार्मिक परीक्षायें

"प्रो० इन्द्र विद्या वाचस्पति जी ने आर्य कुमार परिषद् की धार्मिक परीक्षाओ के विषय मे निम्न सम्मति प्रकट की है।"

"यह स्पष्ट है कि भारतीय यूनिवर्सिटियों से सम्बद्ध हमारे धार्मिक शिक्षणालयों में भी इस बात का सन्तोष-जनक प्रबन्ध नही रहता कि उनके विद्यार्थी हमारे भावी युवक कार्यकर्ता अपने धार्मिक व सांस्कृतिक साहित्य से अभिज्ञ हो सकें। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् अपनी सचालित धार्मिक परीक्षाओं द्वारा गत २६ वर्षों से आर्य युवकों को यह सुविधा पहुचा रही है।"

"हर्ष का विषय है कि आज ये परीक्षाये विकास की एक सन्तोषजनक अवस्था तक पहुंच रही हैं। इस वर्ष इनका स्वरूप और व्यवस्था और भी अधिक उन्नत हो गए हैं। परिषद् के वर्तमान परीक्षा मन्त्री श्री प० देवव्रत जी धर्मेन्दु की लगन से इनके भविष्य में और भी अधिक उन्नत होने की आशा है।"

"आर्य संस्थाओ व शिक्षणालयों के सचालकों और प्रबन्धकों से मेरा अनुरोध है कि वे अपने सरक्षित बालक बालिकाओं और युवक युवतियो को अधिक से अधिक सख्या में इन परीक्षाओ मे सम्मिलित होने की प्रेरणा करें और उन्हे उसके लिए समुचित सुविधायें प्रदान करें।"

स्मृति

(ले०—शान्तिवीर आर्य "वीर" सम्भल)

(१)

निकले थे घर बार छोड़कर भला कहा पर जाने को।
बन बन में झखमार धर्म का सत्य मार्ग अपनाने को॥
काशी जी के पुण्य तीर्थ मे आ ईश्वर के पाने को।
या कोमल सी देह धर्म पर अपनी बलि चढ़ाने को॥

(२)

जाति के जर्जर जीवन में जीवन ज्योति जगाने को।
छूत छात और भेद भाव का हमसे भूत भगाने को॥
'सत्य ईश के बनो पुजारी', हमको यही सिखाने को।
कलियुग में भी ब्रह्मचर्य का दिव्य तेज दर्शाने को॥

(३)

सत्यधर्म के सदुपदेश मे ईंटें पत्थर खाने को।
धर्म कार्य उपहार रूप में विष तक भी पी जाने को॥
यवन ईसाइयों के पाशों से हिन्दू जाति बचाने को।
दीन अनाथों की रक्षा मे जीवन प्राण लुटाने को॥

(४)

ऋषि दयानन्द ! एक बार फिर भारत देश उठाने को।
आ जाओ युवकों के मन मे फिर से ज्वार मचाने को॥
विधर्मियों को शुद्धि शस्त्र से खंड खंड कर जाने को।
"वीर" धर्म पर मर मिटने की प्यारी राह बताने को॥

सन्ध्या तथा हवन के सम्बन्ध में धर्मार्य सभा की आवश्यक घोषणाएँ

"आर्य सामाजिक क्षेत्रों में इस समय सन्ध्या और दैनिक हवन के सम्बन्ध में विविध पद्धतियां पाई जाती हैं। सार्वदेशिक सभान्तर्गत धर्मार्य सभा ने इस सम्बन्ध में पद्धतियां निश्चित की हुई हैं। उन्हें हम यहां उद्धृत करते हैं। प्रत्येक आर्य और आर्यसमाज को इन पद्धति के अनुसार सन्ध्या और दैनिक यज्ञ करना चाहिए।

सन्ध्या

पंच महायज्ञ विधि (१) पंच महायज्ञ विधि में जो पंच यज्ञ के सम्बन्ध में मुख्य पुस्तक है और एक मात्र इसी उद्देश्य से निर्मित हुई है, सन्ध्या विधान इस प्रकार पाया जाता है:—

पहिली विधि—मार्जन।

दूसरी विधि—तीन प्राणायाम।

तीसरी विधि—गायत्री मन्त्र पाठ करते हुए शिखा का बांधना।

चौथी विधि—शन्नोदेवी······मन्त्र पाठ करके तीन आचमन करना।

पांचवीं विधि—ओं वाक् वाक् पाठ करते हुए इन्द्रिय-स्पर्श।

छठी विधि—ओं भू पुनातु शिरसि······पाठ करते हुए मार्जन करना।

सातवीं विधि—ओं भूः···द्वारा तीन प्राणायाम।

आठवीं विधि - (१) ओं ऋतञ्च······(२) ओं समुद्रादर्णवादधि··(३) सूर्याचन्द्रमसौ धाता···इन तीनों मन्त्रों द्वारा अघमर्षण।

नवीं विधि—आचमन।

दसवीं विधि—गायत्र्यादि मन्त्रार्थों का मन से विचार और प्रार्थना।

ग्यारहवीं विधि—(१) ओं प्राची दिगग्नि (२) ओं दक्षिणा दिगिन्द्रो (३) ओं प्रतीची दिग्वरुणो···(४) ओं उदीची दिक् सोमो··· (५) ध्रुवा दिग्विष्णु·· (६) ओं ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पति····इन छः मन्त्रों द्वारा मनसा परिक्रमा।

बारहवीं विधि—(१) ओं उद्वयं····(२) ओं उदुत्यं जातवेदसम्····(३) ओं चित्रं देवानां····(४) ओं तच्चक्षुर्देवहितं···इन चार मन्त्रों द्वारा उपस्थान।

तेरहवीं विधि—गायत्री मन्त्र।

चौदहवीं विधि—हे ईश्वर दयानिधे इत्यादि वाक्य से समर्पण।

पन्द्रहवीं विधि—नमः शम्भवायच····मन्त्र द्वारा नमस्कार।

संस्कार विधि—संस्कार विधि के गृहस्थ-प्रकरण में सन्ध्या का उल्लेख होते हुए उपर्युक्त विधान से निम्न बातों का उल्लेख हुआ है:—

(१) सब से प्रथम 'ओं अमृतोपस्तरणमसि' इत्यादि····आश्वलायन गृह्यसूत्र के ३ मन्त्रों

द्वारा एक और आचमन करने का विधान है।

(२) उपस्थान के मन्त्रों में इस प्रकार का भेद है:—

(क) जात वेदसे सुनवाम् '' मन्त्र बढ़ा दिया गया है।

(ख) चित्रं देवानां'''मन्त्र उपस्थान के मन्त्रों में तीसरा होने की जगह पहला कर दिया गया है।

सत्यार्थ प्रकाश—सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय समुल्लास में हवन से पहले संध्या का विधान बतलाते हुए 'अघमर्षण' क्रिया को सबसे अन्त में करने का उल्लेख किया गया है।

इस सभा की सम्मति में संध्या का मुख्य ग्रन्थ 'पञ्च महायज्ञ विधि' है। संस्कारविधि और सत्यार्थ प्रकाश में सन्ध्या का उल्लेख प्रासंगिक है। इसलिए यह सभा घोषणा करती है कि ब्रह्मयज्ञ (सन्ध्या) उसी विधि उसी क्रम और उतने ही मन्त्रों से किया जाया करे जिनको 'पञ्च महायज्ञविधि' में लिखा गया है जैसा कि स्वयं ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के 'पञ्चमहायज्ञ' विषय में लिखा है—

'सन्ध्योपासनविधिश्च पञ्चमहायज्ञविधाने यादृश उक्तस्तादृश एव कर्त्तव्यः। तथाग्निहोत्रविधिश्च यादृशस्तत्रोक्तस्तादृश एव कर्त्तव्यः' (पृ० ५६७ दया० ग्रन्थमाला शताब्दी संस्करण)।

इसी प्रकार ऋग्वेदादि-भाष्य-भूमिका के 'पञ्चमहायज्ञ' विषय भाषानुवाद में तथा संस्कार-विधि के गृहस्थाश्रम प्रकरण के संध्या विषय में भी 'पञ्चमहायज्ञ विधि' के अनुकूल ही सन्ध्यादि करने का आदेश दिया है।

हवन

दैनिक कृत्यों के सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के लेखानुसार दैनिक हवन निम्न प्रकार होना चाहिए:—

(१) अग्न्याधान (बिना मन्त्र के)

(२) प्रातःकाल या सायंकाल के मन्त्र। यदि दोनों समयों का एक ही समय करना हो तो दोनों समय के मन्त्र।

(३) ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा, इत्यादि ४ मन्त्र।

(४) ओं आपो ज्योतिरसोऽमृतम्।

(५) पूर्णाहुति।

नोट—सं० (१) १६ की संख्या पूरी करने के लिए गायत्री मन्त्र के अन्त में स्वाहा शब्द जोड़ कर आहुति देनी चाहिए।

नोट—सं० (२) चरु की आहुति घृत के साथ प्रारम्भ से ही देनी चाहिए।

युद्ध नव व्यवस्था और मातृ शक्ति

वर्तमान संसार-व्यापी महासमर जिस क्रूरता और भयंकरता से लड़ा जा रहा है वैसा शायद ही कोई युद्ध लड़ा गया हो। जीवन की क्षण-भंगुरता मनुष्य समाज के सम्मुख कदाचित् ही इतने वास्तविक रूप में आई हो जैसी आज आ रही है। हम लोग अपने सामान और सामग्री के साथ एक कोने में बैठे हुए अहर्निश इस चिंता में रहते हैं न मालूम हमें किस भयंकर स्थिति में से गुजरना पड़े। हम यह भी सोचते हैं कि क्या मनुष्य की सद्वृत्तियों का अन्त हो गया है जो आसुरी प्रवृत्तियों की इस जलती हुई आग में से मनुष्य समाज की रक्षा करने में सर्वथा असमर्थ है? परन्तु इस अनिश्चित और भयावह अवस्था में हमें सन्तोष और प्रकाश की एक धुँधली रेखा देख पड़ती है और वह यह है कि नर-संहार के इस ताण्डव नृत्य के पश्चात् समाज का वर्तमान निकृष्ट सङ्गठन न रहेगा और उसमें उत्तम परिवर्तन होगा और मनुष्य समाज सुख और सुरक्षा के साथ अपना जीवन व्यतीत करेगा; क्योंकि बड़ी से बड़ी बुराई में भी भलाई निहित होती है।

संसार की भावी व्यवस्था के निर्माण में मनुष्य का क्या कर्तव्य होना चाहिए, इस विषय पर इस समय हम कुछ न कहकर मातृ-शक्ति के कर्तव्य पर संक्षेप में विचार करना आवश्यक समझते हैं।

वर्तमान महा समर का सूत्रपात युरोप से हुआ है। इस समर को रोकने के लिए वहां के नारी समाज ने कुछ किया प्रतीत नहीं होता। उसके प्रति एक शान्तिप्रिय व्यक्ति की यह शिकायत है कि उसने मनुष्य समाज के हाथों से अपनी स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए सब कुछ किया। मनुष्य समाज के साथ समता और प्रतियोगिता करने में उसने जमीन आसमान एक किया परन्तु शोषण और दोहन के लिए युद्धों को रोकने के लिए उसने कोई उत्साह प्रगट नहीं किया और न भौगोलिक सीमाओंके परे—मनुष्य समाज को प्रेम करने की भावना अपनी सन्तान में भरी। मानो मातृत्व के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों से वे उपराम हो गई। स्वयं उस अवस्था से ऊपर न उठीं जिसका दुष्परिणाम आज संसार के सामने हैं। उन्होंने स्त्रीत्व के लिए भले ही कुछ किया हो परन्तु मातृत्व के लिए इनकी सफलताएँ नगण्य ही रहीं। यही दोष अन्य साम्राज्यवादी देशों की स्त्रियों को लगाया जा सकता है जो शोषण दोहन के युद्ध में व्यस्त है क्या!

उन्होंने कभी यह सोचा कि वे केवल मात्र इसलिए बच्चे उत्पन्न करती हैं कि वे दूसरी माताओं के बच्चों की हत्या करें और उस समाज की उस व्यवस्था को स्थिर रखने में सहायक बनें जो मानवता के प्रति घोर अपराधों की अपराधी सिद्ध हो चुकी हो।

हमारे सामने ऐसे उदाहरण हैं जब नारी समाज ने गत युद्धों में स्वयं अधर्म और अन्याय का आश्रय लिया और यहां तक कि सैनिक सेवा के जोश में अपनी अमूल्य निधि का बलिदान करने में देश सेवा समझी। उनकी मनोभावना के दिग्दर्शन के लिए इतना ही लिखना पर्याप्त है। वहाँ के नारी समाज की परवशता हमारी समझ में आ सकती है परन्तु यह समझ में नहीं आता कि जो समाज संगठित रूप से अनिच्छुक पुरुष समाज से अपने अधिकारों को छीनने में सफल हो सकता है वह इन युद्धों और उनके कारणों को रोकने में कैसे असफल रहा।

भावी व्यवस्था में स्त्री को, माता के रूप में, बहन के रूप में और पत्नी के रूप में अपने बहुत बड़े और पवित्र कर्तव्य का अनुष्ठान करना होगा। जिन बहनों के प्रमाद से वा भूल से वर्तमान सन्तति को कष्ट हुआ है उनके न दुहराये जाने का विशेष ध्यान रखना होगा। उन्हें निश्चय करना होगा कि वे जीवन की प्रेरणाओं का साथ देंगी वा मृत्यु, संहार और रक्तपात की शक्तियों का। उन युद्धों में बलिदान का बकरा बनने के लिए सन्तान उत्पन्न करने से उन्हें साफ इन्कार करना होगा, जो दोहन शोषण के उद्देश्य से लड़े जायेंगे और जिनमें पाशविकता को खुली छुट्टी दे दी जायेगी। उन्हें निर्भय होकर संसार की ऐसी व्यवस्था के लिए आवाज उठानी होगी जहां मानव जीवन और मानवी स्वतन्त्रता का समुचित आदर होगा और प्रत्येक व्यक्ति को उन्नति और सुरक्षा की सुविधा प्राप्त होगी। उन्हें यह भी निश्चय करना पड़ेगा कि न केवल स्त्री जाति का ही वरन समूचे मानव समाज के भाग्य निर्माण में उन्हें हाथ बंटाना होगा; क्योंकि माताएँ ही जाति की आत्मा की रक्षक होती हैं और युद्ध या शान्ति के लिए भावी सन्तान के निर्माण में उनकी उत्तरदायिता पुरुषों से अधिक होती है। आशा है यह सुनहरी नियम भावी व्यवस्था में अपना प्रभाव रखेगा और नारी समाज अपने दायित्व की पूर्ति करेगा।

सम्मिलित-भाषा

पिछले दिनों हिन्दू यूनिवर्सिटी काशी के रजत-जयन्ती महोत्सव के अवसर पर महात्मा गाधी ने अपने भाषण मे हिन्दू यूनिवर्सिटी में शिक्षा के अंग्रेजी माध्यम की तीव्र निन्दा की थी और साधारण हिन्दुस्तानी के माध्यम को अपनाने की प्रेरणा की थी। महामना प० मदन मोहन मालवीय जी ने महात्मा जी को विश्वास दिलाया था कि पुस्तकें तय्यार की जा रही हैं और जब वे तय्यार हो जायेंगी तब महात्मा जी के निर्देशों को मूर्त रूप दिया जायगा। स्पष्ट है हिन्दी वा हिन्दुस्तानी को बनारस विश्वविद्यालय में सम्मान प्राप्त होने वाला है। समाचार है, उसी अवसर पर महात्मा जी के पास विश्वविद्यालय के कुछ आन्ध्र विद्यार्थी गए और उनसे पूछा कि जो विद्यार्थी हिन्दी वा हिन्दुस्तानी नहीं जानते उनका क्या बनेगा? महात्मा जी ने कहा बतलाते हैं कि वे विश्वविद्यालय मे पृथक् आन्ध्र सेक्शन

के लिए सर राधाकृष्ण जी को प्रार्थना करें और यदि वे अखिल भारतीय भाषा का अध्ययन करना नहीं चाहते तो तेलुगु मे शिक्षण की व्यवस्था करायें।

इस घटना की चर्चा करने का हमारा अभिप्राय यह है कि इस प्रकार की घटनाओं से भारत के लिए सम्मिलित भाषा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण बन जाता है। सम्मिलित भाषा के प्रश्न पर देश मे पर्य्याप्त विवाद चल रहा है, कांग्रेस का 'हिन्दुस्तानी' के प्रति प्रेम सुस्पष्ट ही है। हिन्दी और उर्दू के मध्य जो द्वन्द चल रहा है उसी के फलस्वरूप राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क मे हिन्दुस्तानी का प्रेम उत्पन्न हुआ प्रतीत होता है परन्तु उत्तर भारत के विद्वानों और देश के अन्य भागों के लोगों को 'हिन्दुस्तानी' के उच्च दावे में विश्वास नहीं है।

यदि भारत की सम्मिलित भाषा बनीं, जिसकी कि अत्यन्त आवश्यकता है, तो बंगाली, आसामी, उड़िया, महाराष्ट्रीय, गुजराती और हिन्दू प्रजा हिन्दी को ही पसन्द करेगी क्योंकि हिन्दी समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत के बहुत निकट है। शुद्ध हिन्दी समझने मे शिक्षित बंगालियों को कोई कठिनाई नहीं होती, परन्तु 'हिन्दुस्तानी' उनके लिए हव्वा है और उनके लिए उर्दू अंग्रेजी के सदृश ही विदेशी है।

दूसरी ओर मुसलमान भाई उर्दू से चिपटे हुए हैं और उर्दू को अरबी और फ़ारसी मय बना रहे हैं। इसके प्रमाण में श्रीयुत अमरनाथ झा दिसम्बर १९४१ के 'हिन्दुस्तान रिव्यू' मे लिखते हैं:—

"फ़रहंग आसफिया मे यह उर्दू का कोष है जो अभी हाल में दक्षिण में तय्यार किया गया है, ७००० शब्द अर्बी के, ६५०० शब्द फ़ारसी के, और संस्कृत के केवल ५०० शब्द हैं।" प्रो महोदय आगे लिखते हैं—

"लगभग १५ वर्षों से इलाहाबाद यूनिवर्सिटी मे हिन्दी और उर्दू परीक्षा के विषय हैं। सैकड़ों हिन्दू लड़कों ने बी० ए० में और बहुत से लड़कों ने एम० ए० मे उर्दू ली परन्तु एक भी मुसलमान लड़के ने बी० ए० तथा एम० ए० के लिये हिन्दी नहीं ली।"

प्रोफेसर झा उर्दू के प्रकाण्ड पंडित हैं परन्तु वे भी यह कहने के लिये बाधित हो गए हैं:—

"मेरा यह दृढ मत बन गया है कि उर्दू का समस्त वातावरण और प्रतिमा विदेशी है भारतीय नही। मुट्ठी भर भारतीय ही इसे समझ सकते हैं।" इसी प्रकार 'हिन्दुस्तानी' का दावा भी बहुत थोदा दावा है क्योंकि यह जीवित भाषा नहीं है और जिस प्रकार इसका विकास हो रहा है, उसे सर्वसाधारण समझ भी नहीं सकते।

बिहार सरकार के एक सरक्यूलर का उद्धरण देकर प्रोफेसर महोदय लिखते हैं—

"बिहार के ग्रामो म रहने वाले मुसलमान भी हिन्दुस्तानी को नही समझ सकेंगे और हिन्दू तो समझ ही नहीं सकते, जिनकी आबादी ८५ प्रतिशतक है। अतः वे उचित रीति से इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं—

"यदि किसी भारतीय भाषा को सम्मिलित भाषा बनने का अवसर मिल सकता है तो यह वही भाषा होगी जिसमे संस्कृत शब्दो की प्रधानता होगी।"

हुमनाबाद कांड—

हैदराबाद राज्यान्तर्गत हुमनाबाद में गत होली के अवसर पर मुस्लिम बलवाइयों के द्वारा ४ आर्यों का वध वर्तमान कालीन ऐसी घटना है जिससे समस्त आर्य जगत मे दुख उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकता।

निजाम गवर्नमेंट द्वारा प्रचारित प्रेस वक्तव्य से भी इन हत्याओं की पुष्टि हो गई है। निजाम सरकार का इस विषय मे वक्तव्य है कि दुलहडी के दिन हिन्दुओं के जलूस का कुछ सशस्त्र मुसलमानों से झगड़ा हो गया था। यह जलूस उस दिन दुबारा निकाला गया था यद्यपि प्रातःकाल के समय पहला जलूस शान्ति पूर्वक निकल गया था। मुसलमानों का यह विरोध था कि जलूस के दुबारा निकाले जाने की आज्ञा प्राप्त नहीं की गई थी और जलूस वाले जो झंडे ले जा रहे थे वह एक नई वस्तु थी। इस दंगे के सिलसिले में कुछ गिरफ्तारियां हुई हैं और १४४ धारा भी लगादी गई थी जिसके अनुसार हथियारों का ले जाना निषिद्ध ठहरा दिया गया था।

इस दुर्घटना के सम्बन्ध मे जिम्मेवार क्षेत्रों से हमे जो समाचार प्राप्त हुए हैं वे दूसरे प्रकार के हैं। इस दुर्घटना को हुए लगभग १ मास हुआ। पता नहीं निजाम सरकार इस विषय में क्या कर रही है। आशा है निज़ाम सरकार इस सम्बन्ध में ठीक २ निष्पक्ष जाँच कराके उसके परिणाम को जनता के समक्ष रक्खेगी।

श्री प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित।

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) दयानन्द ग्रन्थमाला २॥)
(२) संस्कृत सत्यार्थप्रकाश अ० ।) स० ।-)
(३) प्राणायाम विधि)॥
(४) वैदिक सिद्धान्त अजिल्द ।॥)
सजिल्द १)
(५) विदेशों में आर्य्य समाज ॥)
(६) यमपितृ परिचय २)
(७) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर १)
(८) आर्य्य सिद्धान्त विमर्श १॥)
(९) भजन भास्कर ॥)
(१०) वेद में असित शब्द -)॥
(११) वैदिक सूर्य्य विज्ञान =)
(१२) विरजानन्द विजय =)
(१३) हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद =)
(१४) इजहारे हक़ीक़त (उर्दू में) ॥।=)
(१५) सत्य निर्णय (हिन्दी में) १)
(१६) धर्म और उसकी आवश्यकता ।-)
(१७) आर्य्यपर्व्वपद्धति अ० ॥=) स० १)
(१८) कथा माला ।=)
(१९) आर्य्य जीवन और गृहस्थ धर्म ।=)
(२०) आर्य्यवत्स की वाणी -)
(२१) समस्त आर्य्य समाजों की सूची ॥)
(२२) सार्वदेशिक सभा का इतिहास २)
सजिल्द २॥)
(२३) दायदान ॥)
(२४) आर्य डायरेक्टरी अ० १।) स० १॥)
(२५) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र २)
(२६) सत्यार्थ निर्णय १॥)
(२७) कायाकल्प सजिल्द १।)
(२८) पञ्चयज्ञ प्रकाश ॥।)
(२९) आर्य समाज का इतिहास ॥।)
(३०) बहिनों की बातें ॥)
(३१) Agnihotra
Well Bound २॥)
(३२) Crucifixion by an eye witness ।-)
(३३) Truth and Vedas ।=)
(३४) Truth bed rock of Aryan Culture ॥)
(३५) Vedic Teachings १)
(३६) Voice of Arya Varta =)
(३७) Christianity ॥)
३८) The Scopes Mission of Arya Samaj Bound १)
Unbound ॥)

अर्थात् आर्य जगत् का समस्त संस्थाओं सभाओं और समाजों का सन् १९४१ ई० की विश्व व्यापी विविध प्रगतियों का वर्णन आर्य समाज के नियम, आर्य विवाह कानून, आर्य वीर दल आदि अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातों का संग्रह। आज ही आर्डर भेजिये।

मूल्य अजिल्द १।) पोस्टेज ।)

मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र

इस पुस्तक में आर्यसमाज के विद्वान् श्री प० प्रियरत्न जी आर्ष ने अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा सूत्र स्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान और चिकित्सा स्थान का प्रतिपादन किया है। चिकित्सा स्थान में आश्वासन चिकित्सा, उपचार चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, होम चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, सर्पादि विष चिकित्सा, कृमि चिकित्सा, रोग चिकित्सा और पशु चिकित्सा दी है। इन प्रकरणों में वेद के अनेक महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। पुस्तक २०×२६ आठ पेजी पृष्ठ संख्या ३१२ मूल्य केवल २) मात्र है। पोस्टेज व्यय ।) प्रति।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

सार्वदेशिक

मई १९५२ ई०

ज्येष्ठ २००९ सं०

सम्पादक—प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति

स० सम्पादक—श्री रघुनाथप्रसादजी पाठक

वार्षिक मूल्य स्वदेश ५) विदेश १० शि० एक प्रति का

विषय-सूची

सार्वदेशिक पत्र का नमूना मँगाने के लिये ।) का टिकट भेजना जरूरी है ।

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १७	ज्येष्ठ १९९९ मई, १९४२ ई०] [दयानन्दाब्द ११८	अङ्क ३

प्रियाः स्वग्नयो वयम् ।   सा० ८।१।१

हम खूब तेजस्वी होकर उसके प्यारे हो जांय।

May we all become enlightened and beloved of the Lord !

*   *   *

अघमस्त्वघकृते ।   अ० १०।१।५

पापी को दुःख ही मिलता है।

The wicked always come to harm.

जीवन का सांस्कृतिक रूप

(ले०—सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन)

आज हम जिस युग में रह रहे हैं वह युग युद्ध, युद्ध की जबरदस्त तैयारियों और उनके राजनैतिक तथा आर्थिक दुष्परिणामों का युग है। यह विचारों का नहीं शब्दों का युग है। हम बुलन्द आवाज में नारों को दुहराते हैं और समझते हैं कि हम सोच रहे हैं। प्रचार की कला चारों ओर से हमारे दिमागों पर असर डालती रहती है। हम सिनेमा पर पलते हैं और रेडियो की शिक्षा पाते हैं। दूसरे व्यक्ति हमारे लिए सोचते हैं और हम सोच विचार की परेशानी से बच जाते हैं। हमारा जीवन बिलकुल मशीनों की तरह हो गया है। यदि कोई व्यक्ति राजनैतिक दलों द्वारा निश्चित की हुई नीति से सहमत नहीं होता और राजनीति की अपेक्षा दूसरे व्यापक सिद्धान्तों पर अधिक विश्वास रखता है, तो उसे आफत समझकर जड़ से उखाड़ देने की जरूरत समझी जाती है। यदि मैं यह कहूँ कि हमारे व्यक्तित्व को ही चकनाचूर किया जा रहा है तो मैं गलत नहीं हूं।

व्यक्ति जीवन की अन्तिम सचाई है। समाज का उद्देश्य व्यक्ति के गुणों को उन्नत बनाना है। उसे सुसंस्कृत करना है। व्यक्ति के दिमागी सदाचार, उसके स्वभाव की उदारता और दया से ही उसकी उन्नति का अन्दाजा लगाया जायगा। किंतु अपने पड़ोसी के साथ उदारता के व्यवहार का यह अर्थ नहीं कि पड़ोसी को तुम अपनी तरह बना लो। उसे उसकी तरह होने का अवसर दो। वह तुमसे भिन्न व्यक्ति है। तुम्हारे दिमागी वस्त्र शायद दूसरों को ठीक न बैठें और तुम्हारे अध्यात्मिक भोजन से मुमकिन है दूसरों को सन्तोष न हो। उसका अपना एक अलग व्यक्तित्व है। उसे अपनी असफलताओं की तकलीफ और सफलताओं की खुशी अनुभव करने का अवश्य मौका मिलना चाहिए। उसे अपने तईं दूसरे व्यक्तियों से अनोखा और भिन्न होना चाहिये। जीवन व्यक्तित्व के साथ ही शुरू होता है और बहुत दर्जे तक व्यक्तित्व के साथ ही समाप्त होता है। यदि हम किसी व्यक्ति से उसकी कल्पना और उसकी साहस पूर्ण निर्माण की क्षमता और अपने समकालीन लोगों पर उस व्यक्ति के दिमाग की छाप को हटालें, तो हम एक बड़ी हद तक इतिहास के रुख को ही बदल देंगे।

कलापूर्ण जीवन और मशीन जैसे जीवन में एक बड़ा अन्तर है। राजनीति और अर्थशास्त्र चाहे वे समस्त सुविधाएँ एकत्रित करदें, जो जीवन के लिए आवश्यक है, किन्तु हम अच्छी तरह जीवित रहना चाहते हैं। एक विशेष उद्देश्य के लिये जीवित रहने में ही जीवन का सच्चा सुख है। क्या यह मैं समझूँ कि शिक्षक, कलाकार और दार्शनिक हमें जीवन की कला सिखाने और जीवन को गतिविधि देने के सम्बन्ध में राजनीतिज्ञों से भी अधिक हमारे

उत्तम पथ निर्देशक हैं और इस सम्बन्ध में हमें उनसे अधिक मदद मिलती है।

यदि इस देश का कोई सांस्कृतिक सन्देश है, तो वह राजनीति या अर्थनीति में नहीं है, बल्कि दर्शन और धर्म में है। हमारे देश के इतिहास की विशेषताएँ राजा, सम्राट लड़ाइयें या युद्ध नहीं हैं, बल्कि ऋषि और धर्म ग्रन्थ हैं। सदा से ही भारत ने सैनिकों और राजनीतिज्ञों, या बनियों और व्यापारियों अथवा कवि और दार्शनिकों, जिन्होंने अपने शब्दों और कृत्यों से दुनिया को प्रभावित किया है, की उतनी कद्र नहीं की, जितनी उन तपस्वी आत्माओं की, कि जिनकी महत्ता इस बात में नहीं है कि वे क्या कहते थे बल्कि इसमें कि वे स्वयं क्या थे, ऐसे व्यक्ति जिन्होंने हमारे देश के विचारों और जीवन पर असीमता की छाप लगाई और जिन्होंने दुनिया में भलाई के अप्रकाश्य गुणों को बढ़ाया। उन्होंने ऐसी दुनिया को, जो शक्ति और सांसारिक सुख की पुजारी है पारलौकिक सत्य और आत्मा के रहस्य के दर्शन कराये। बावजूद अपने पतन और गरीबी, अपनी गुलामी और अपने त्याग के भारत आज भी जबरदस्त आत्मिक बल का प्रदर्शन कर रहा है।

जरा इतिहास के पन्नों को उलटाइये और फिर बताइये कि आपको उनमें क्या दिखाई देता है? यही न कि कौमें और सभ्यताएँ अनन्त और अनश्वर नहीं होतीं। वे फूलतीं हैं, फलती हैं, गिरती है और नष्ट हो जाती हैं। महान यूनानी सभ्यता का जीवन काल केवल ८०० वर्ष था, रोम की सभ्यता केवल १०० वर्ष तक ही कायम रह सकी और बाइजेण्टिअम (पूर्वीय रोमन) सभ्यता मुश्किल से हजार वर्ष जिन्दा रही। बाइजेण्टिअम सभ्यता के बाद वर्तमान सभ्यता के अभी से नाश के लक्षण दिखाई दे रहे हैं। इस सबका क्या अर्थ है? इसका अर्थ है कि ऐसी सभ्यताएँ, जो सांस्कृतिक और धार्मिक सिद्धान्तों को अधिक महत्व देती हैं, वे अधिक काल तक जीवित रहती हैं और जो महज शक्ति, तर्क और भौतिक उन्नति पर ही जोर देती हैं, वे अधिक काल तक जीवित नहीं रहतीं। ईसा ने कहा है–धन्य हैं वे नम्र आत्माएँ क्योंकि संसार अन्त में उन्हीं का है। संसार पर अन्त में असंसारियों का ही प्रभुत्व होगा।"

शहरों और राष्ट्रों से भी अधिक अन्य बातों का मूल्य होता है। हमारे इस देश ने सामयिक वस्तुओं को कभी महत्व नहीं दिया। अनन्त की भावनाओं को ही उसने सदा अपना लक्ष्य बनाया है। यह हमारी विशेषता है और हमारी कीर्ति का विषय है कि प्रत्येक युग मे और देश के हर भाग में हमने ऐसी महान् आत्माएँ पैदा की हैं, जिन्होंने इस उच्च आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ किया है। आज भी हमारे देश में ऐसी महान् आत्माएँ मौजूद हैं जो दावे के साथ इस बात का प्रचार करती हैं कि हिंसा की राजनीति से संसार का उद्धार तभी होगा जब हम अनन्त पर विश्वास रखें और घृणा की जगह प्रेम के सिद्धान्त को अपनाएँ।

इस तरह के व्यक्ति मौजूद हैं जो कहते फिरते हैं कि धर्म हमारे लिए अभिशाप रहा है, हमारी मानवता पर इसने पाले का काम किया

है, इसने समाज की उन्नति को रोक दिया है और जितना शीघ्र हम इस धर्म से छुटकारा पायें हमारे लिए उतना ही कल्याणकर है। ये लोग धर्म को जीवन के सिंहासन से उतार फेंकना चाहते हैं। ये लोग कहते हैं हिटलर की इस सफलता को देखकर हम धर्म पर कैसे विश्वास करें। वे प्रश्न करते हैं कि 'क्या ईश्वर कहीं है ?' 'क्या धार्मिक होने में कोई लाभ है ?' क्या यह उचित है कि असंख्य मनुष्य अपना आत्म विश्वास खोकर धम का सहारा लेकर रीढ़ की हड्डी तुड़वा लें ?' मैं केवल इसी बात पर जोर देना चाहता हूं कि वास्तविक अर्थों में धर्म जीवन से भिन्न वस्तु नहीं है। अध्यात्म को सदा दैनिक जीवन में उतारा जा सकता है। हम जीवन के अमर सिद्धान्तों की उपेक्षा नहीं कर सकते। राजनैतिक परिस्थितियों और आर्थिक माँगों से उन का कहीं विरोध नहीं होता। फर्ज कीजिये, हमारा आर्थिक जीवन संगठित हो जाय और म्युनिसिपैल्टियां हमारे लिए अच्छी सड़कें, मुफ्त पानी और उम्दा रेडियो, सेटों का प्रबन्ध कर दें तो क्या हम पूरे सुखी और संतोषी बन सकेंगे ? क्या संसार के समृद्ध और धनी मनुष्य आज सबसे ज्यादा दुखी नहीं हैं ? अमरीका में आत्म-हत्या करने वालों का बहुमत धनी धोरी व्यक्तियों का होता है। धन जीवन की जिन सुविधाओं और आराइशों को खरीद सकता है, उन्हें प्राप्त करते ही क्या हमारे अन्दर से ईर्षा, मूर्खता, अभिमान और नफरत का अन्त हो सकता है ? उस समय भी व्यक्तिगत जीवन की शुद्धता को मूर्खता और स्वार्थ नष्ट कर देंगे। जीवन में आर्थिक सिद्धान्तों के अलावा और भी दूसरे सिद्धान्त हैं। भौतिक वस्तुओं की बहुतायत ही सुख की कुञ्जी नहीं है।

प्रत्यक्ष वस्तुओं के अतिरिक्त मनुष्य का जीवन कहीं अधिक ऊँची बातों के लिए है। सत्य की तलाश व आन्तरिक सौंदर्य के सृजन और आत्म ज्ञान के लिए मनुष्य भूख और प्यास सहता है, शरीर को कष्ट देता है हम इसे उसका क्षणिक सनकीपन कह कर नहीं टाल सकते लोगों के आराम और सुखी जीवन को ध्यान में रखते हुए जब हम दुनिया का संगठन करें, तो हमें इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिये कि हम उनके दिमाग में प्रेम की भावना भरें और जीवन के अमर सिद्धान्तों की ओर उनकी आस्था पैदा करें।

इसलिए मेरा यह विश्वास है कि जीवन के लिये भारतीय संस्कृति का यह श्रेष्ठ सन्देश न केवल बाहरी दुनिया के लिए उपयोगी है, बल्कि हमारे देश में भी इसके दोहराने की जरूरत है।

मनुष्य की आयु

(ले०—श्री प० विष्णुमित्र जी मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कुरुक्षेत्र)

शतं जीवन्तु शरदः पुरूची । ऋ० ।
जीवेम शरदः शतम् । यजु० ।
शतं च जीव शरदः सुवर्चाः । सा० ।
शतं जीवेम शरदः सर्ववीराः । अ० ।

इन चारों वेदों के चारों मन्त्रों से मालूम होता है मनुष्य की औसत आयु सौ वर्ष की है । अर्थात् सौ वर्ष से पहिले किसी की भी मृत्यु न होनी चाहिये । जैसे कि सभ्य राज्यशासन में प्रत्येक मनुष्य के कुछ जन्म-सिद्ध अधिकार हुआ करते हैं पर उत्तम पुरुषार्थ से विशेष मनुष्यों को विशेष अधिकार भी मिल जाते हैं । हां, राज्य शासन का विरोध करने से वे छीने भी जाते हैं । ठीक वैसे ही ईश्वरीय राज्यशासन में प्रत्येक मनुष्य का सौ वर्ष जीने का जन्म-सिद्ध अधिकार है । पर जो पुरुष यम-नियमादि का पालन कर विशेष अधिकार प्राप्त करेंगे उनकी आयु बढ़ जायगी और जो आचार-हीन मनुष्य आहार-विहार का विचार छोड़ कर मन-माना करेंगे उनसे वे अधिकार छीने भी जा सकते हैं । उनकी आयु कम भी हो जायगी । सौ वर्ष की आयु की मर्यादा सर्व-साधारण जनता के लिये है । पुरुषार्थी सदाचारी लोग अपनी आयु की अवधि बढ़ा लेते हैं और दुराचारी अपनी आयु की अवधि को घटा भी लेते हैं । जैसे एक कैदी अपने अच्छे व्यवहार से अपनी कैद कम भी कर लेता है और जेल का शासन न मानने वाला कैदी जेल की मियाद को बढ़ा भी लेता है । इसी बात को ध्यान में रखकर मालूम होता है, ऋषि ने अपने सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय सम्मुल्लास में चार सौ वर्ष तक की आयु का होना लिखा है । पर दुनियां में बहुत से लोग आयु का नियत होना मानते हैं । उनका कहना है कि विधाता ने गर्भ में ही आयु का निपटारा कर दिया है । उसके बाद आयु घट और बढ़ नहीं सकती । यदि ऐसा मान लिया जाय तो किसी रोगी को रुग्णावस्था में दवाई आदि करने की और आयु के लिये—'भूयश्च शरदः शतात्'—इत्यादि प्रार्थना की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती । साथ ही मृत्योः पद योपयन्तो यदैतत् द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।' ऋग्वेद के इस मन्त्र का जो लम्बी आयु करने का और 'आयुर्दधाना प्रतरं नवीयः' इस अथर्ववेद मन्त्र का नवीन आयु के बनाने के आदेश का क्या अर्थ होगा । और 'दिविने मन्त्र ओषधे पृथिव्यामसि निश्चितः ।' आयु प्रवर्धया महे ।' अ० । इस मन्त्र में तो आयु का बढ़ाना स्पष्ट है । निश्चित आयु होने पर 'प्रवर्धया महे' कैसे संगत हो सकेगा । अस्तु, अब यह तो स्पष्ट हो गया कि वेद में आयु बढ़ाने के लिये अनेक स्थानों में आदेश दिये गये हैं । हम दुनियां में देखते हैं कि बहुत से मनुष्यों की सौ वर्ष से ज्यादह उम्र पाई जाती है । महाभारत के देखने से पता चलता

है कि जिस समय युद्ध हो रहा था उस समय व्यास की आयु १५७, धृतराष्ट्र की १०५, विदुर की १०५, भीष्मपितामह की १७० वर्ष की आयु थी। बहुत से यह कह उठेंगे कि यह बहुत पुराने समय की बातें हैं। पर नहीं इन जमाने में पैदा हुए कुछ एक आदमियों की आयु देखें जो सौ वर्ष से ऊपर उम्र भोग कर अभी मरे हैं। अभी रूस की जो मनुष्य गणना की रिपोर्ट छपी थी उसमें लिखा था कि रूस में ७१ ऐसे आदमी हैं जिनकी आयु इस समय १२० वष की है। 'प्रताप' अखबार में कुछ समय हुआ सोवियट रूस की एक और खबर छपी थी कि वहां एक ऐसा व्यक्ति है जिसकी आयु इस समय १५७ वर्ष की है। चीन का सबसे बड़ा मनुष्य लीचिंगयान इस समय २५० वर्ष का है। इन उदाहरणों से पता चलता है कि मनुष्य की आयु सौ वर्ष से ऊपर भी हो सकती है और वह बढ़ाई भी जा सकती है। अब सिर्फ विचारना यह रह जाता है कि किन २ कारणों से आयु बढ़ सकती है और उसके कम होने के क्या २ कारण हैं।

महाभारत में युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से यह प्रश्न किया है—

आयुष्मान् केन भवति,

अल्पायुर्वापि मानवः।

अर्थात् किन कारणों से मनुष्य दीर्घायु और अल्पायु होता है।

भीष्मपितामह ने कहा कि हे युधिष्ठिरः—

आचाराल्लभते ह्यायु राचाराल्लभते श्रियम्।
आचारात्कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥१॥
ये नास्तिका निष्क्रियाश्च गुरु शास्त्राति लंघिनः
अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्तिगतायुषः ॥२॥

अर्थात् सदाचार से आयु-धन और कीर्ति मिलती है और नास्तिकता-आलस्य-गुरु तथा शास्त्रों की आज्ञा के न मानने से मनुष्य अल्पायु होता है।

योरोपीय विद्वानों का यह भी विचार है कि दीर्घायु और अल्पायु पर अच्छे तथा बुरे विचारों का भी अवश्य प्रभाव होता है। उनका कहना है कि जब तक हम बुढ़ापे के ख्याल में गर्क रहेंगे निश्चित है कि हम बूढ़े ही होते जायेंगे। हमारे विचार इस बात को बता देते हैं कि हमारे जीवन में यौवन की इमारत बन रही है या बुढ़ापे की। जिस मनुष्य के ऐसे विचार हैं कि अब हमारे गिरते हुए दिन हैं, अब हमारा शरीर क्षीण होने वाला है। अब हमारा बल दिन पर दिन घटे।—वह तो बच नहीं सकेगा—जल्द मर जायगा। इसके विपरीत यदि मन में यौवन के दिव्य प्रवाह को बहाते रहेंगे और यौवन के आदेश को सामने रखकर यौवन प्राप्ति के लिए अच्छे विचारों को बनाये रखेंगे तब बुढ़ापा और मृत्यु हम से दूर भागते रहेंगे प्रेन्टिस मालफोर्ड नामक एक सुविख्यात लेखक का कहना है कि यदि मनुष्य ३० या ३५ वर्ष की आयु में बुढ़ापे के स्वप्न को देखने लगेगा तो निःसन्देह वह ५० या ५५ वर्ष की आयु में बूढ़ा हो जायगा। हमारे मनमें यह एक भारी भ्रम बैठा हुआ है कि ५५ वर्ष की आयु के बाद मनुष्य की ढलती दशा का आरम्भ हो जाता है। पर वात्स्यायन काम

सूत्र में लिखा है कि—"आषोडशात् सप्तति वर्ष पर्य्यंत यौवनम्"—अर्थात् सोलह वर्ष से लेकर सत्तर वर्ष तक यौवनावस्था होती है। मेरे ख्याल में मनुष्य तब तक बूढ़ा नहीं हो सकता जब तक कि उसके जीवन में मधुरता-उत्साह-महत्वाकांक्षा और कार्य्य करने की उमंग बनी हुई है। हम लगातार दूसरे के श्वेत बालों को देख कर और बूढ़ा २ कह कर बूढ़ा कर ही देते हैं। इस बात को सभी मानते हैं कि आदमी पर अपने तथा दूसरों के विचारों का प्रभाव होता है। मैं एक ऐसे मनुष्य को जानता हूँ कि जिसकी जन्म-पत्री में लिखा हुआ था कि तुम अमुक संवत् की अमुक तिथि को मर जाओगे। फलित-ज्योतिष पर विश्वास रखने वाला वह अभागा नियत तिथि से तीन दिन पूर्व ही मरने की तैयारी करने लगा। उसकी सब मनो-वृत्तियां मृत्यु की ओर खिंच गईं। सचमुच वह उसी दिन मर भी गया मनुष्य पर विचारों का कितना प्रभाव होता है यह देखने के लिये अमेरिका में एक परीक्षण किया गया। फांसी होने वाले एक कैदी को यह विश्वास करा दिया गया कि शरीर से एक नस काटकर खून निकाल देने पर आदमी मर जाता है। ऐसा कहकर उस कैदी को एक कुरसी पर बिठा दिया गया और उसकी आंखों पर पट्टी बांध कर पीठ पर एक चाकू चुभा वहीं कुछ गर्म जल धार बांधकर डाला गया। कैदी खून निकला समझ कर थोड़ी देर के बाद मर गया। एक घटना का जिकर अलबर्ट आस्टिन साहब ने किया है। वह कहते हैं कि एक स्त्री अपनी बहिन से मिलने के लिये भारत से योरोप गई। एक दिन वह अपनी बहिन के बगीचे में अकेली घूम रही थी; अकस्मात् उसे एक फलदार वृक्ष नजर आया। उसने उसका एक फल तोड़ कर खा लिया। उसकी बहन जो कुछ दूर खड़ी थी भाग कर चिल्लाती हुई उसके पास पहुँची और कहने लगी कि बहिन तूने तो अनर्थ कर दिया। यह फल जो तूने खाया है वह तो जहरीला था। बस ऐसा उसे कह कर वह डाक्टर को लेने दौड़ी। डाक्टर के आने से पूर्व ही उसकी बहिन मर भी चुकी थी। पीछे जांच से मालूम हुआ कि दर-असल वह फल जहरीला न था।

हमारे देश में यह एक बड़ी बुरी प्रथा चली हुई है कि हम अपने आपको पर्याप्त-वयस्क दिखाने की कोशिश करते हैं। इसके विपरीत दूसरे देशों में जवानी का जोश दिखाने की इच्छा बूढ़ों को भी रहती है। भारत वर्ष में प्रत्येक पुरुष एक दूसरे से उसकी आयु पूछता है पर दूसरे देशों में आयु का पूछना बुरा समझा जाता है। मेरे ख्याल में तो यह अच्छा होता कि हमें अपनी आयु मालूम ही न होती। यह आयु ज्ञान ही ६० वा ७० वर्ष की आयु में हमें जल्द मार देता है। क्योंकि हम समझने लगते हैं कि अब हमारी काफी उम्र हो गई है और हम अब मृत्यु के निकट हैं।

"वेद स्वयम्वर"

[लेखिका—श्रीमती देवी वेदमन्दिर, बरेली]

भारत वर्ष का इतिहास स्वयम्वर की कथाओं से भरा हुआ है। इन्दुमती का अज के साथ, भीम की पुत्री दमयन्ती का नल के साथ तथा शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का ययाति के साथ विवाह स्वयम्वर करके ही हुआ था।

महाभारत में भी बहुत से श्लोक इस सम्बन्ध में प्राप्त होते हैं। जैसे—

स समीक्ष्य महीपालः
स्व सुतां प्राप्त यौवनाम्।
अपश्यदात्मनः कार्यं
दमयन्त्याः स्वयम्वरम् ॥
(महाभारत वनपर्व अ० ६६)

वेद में भी स्वयम्वर का वर्णन है या नहीं, इस बात को दिखाने के लिये कुछ वेद मन्त्र दिखाती हूँ। जो निम्न प्रकार हैं—

१. कियती योषा मर्यतो वधूयोः
परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति या सुपेशा
स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥
॥ ऋ० ७। ७। १७। ३ ॥

अर्थात्—(प्रश्न) पत्नी की इच्छा करने वाले पुरुष को किस प्रकार की स्त्री सुखदायक होती है।

(उत्तर) वह सुन्दर पत्नी कल्याण कारिणी होती है। जो मनुष्यों के बीच में से स्वय अपने मित्र भूत साथी पति को चुनती है।

२. सोमो वधूयुर भवत्
अश्विनास्ता मुभावरा।
सूर्यां यत् पत्ये शंसन्ती
मनसा सविता ददात् ॥ऋग्वेद॥

अर्थात्—शान्ति आदि गुणयुक्त वर पत्नी की इच्छा करने वाला हो और दोनों एक दूसरे को स्वीकार करने वाले हों, उस समय पिता का कर्तव्य है कि उस वर को कन्यादान करे।

३. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं
विन्दते पतिम् ॥ ऋग्वेद ॥

ब्रह्मचर्य धारण की हुई कन्या युवा पति का वरण करे।

४. वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति।
ऋ० अ० ७ अनु० वर्ग १७

इस मन्त्र में भी "पतिम्-इच्छन्ती" कन्या का विश्लेषण है।

नोट—पौराणिक पद्धति में भी—
अथ वरं वृणीते।

यह रीति मात्र बांचते हैं। जिस प्रकार यज्ञोपवीत और वेदारम्भ के समय सनातनी पण्डित काशी की ओर दो चार पैर चलवा लेते हैं। इससे प्रतीत होता है कि प्राचीन सिद्धान्त स्वयं वरण का ही था।

ऋषि दयानन्द और आर्य समाज

(ले०—ला० दीवानचन्द जी, बी० ए० एल० एल० बी०)

"उतिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधित"

ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज की स्थापना सारे ससार मे सतयुग लाने के लिए की थी। उसके कन्धों पर आपने भारत माता को उठाने आर्य जाति को ससार में सर्वोत्तम बनाने और आर्य सस्कृति को सारे ससार मे फैलाने का भार रखा था। ऋषिवर बहुत दूरदर्शी थे वे पच्छिमी जातियों के ऊपरी वैभव को देखकर अग्रेजी लिखे पढे लोगों की तरह उसकी अन्धा धुन्धी पैरवी को देश और जाति के लिए आत्म हत्या मानते थे। स्वामी दयानन्द विचित्र क्रान्तिकारी थे वे दूसरों के गुण ग्रहण करने के लिए सवदा तत्पर रहते थे परन्तु अपनी जाति की अन्तरात्मा को त्यागकर विदेशियों की नकल को घृणा से देखते थे। आपने इस देश, जाति और धर्म की रक्षा के लिए वैदिक वर्णाश्रम मर्यादा के आश्रित समानता, भ्रातृ भाव तथा स्वतन्त्रता का आदेश दिया और इसी उद्देश्य के लिए आर्य समाज के नियमोपनियम मे पूर्ण रूप से केन्द्रीय सङ्गठन की योजना ससार के सम्मुख रखी। आप आजीवन ब्रह्मचारी तथा सन्यासी रहे। इतिहास मे इस प्रकार की कठिन तपस्या लगन और बलिदान का उदाहरण मिलना कठिन है। अनगिनत महात्मा अपनी मुक्ति के लिए विरक्त हो जगलों मे तपस्या कर चुके हैं। परन्तु दयानन्द ने ससार की मुक्ति के लिए अपनी मुक्ति की इच्छा को ठुकरा दिया, बहुधा उदासी और सन्यासी गुरु लोगों को उदासी और सन्यासी बनने का आदेश करते हैं परन्तु ऋषि ने गृहस्थियों को वर्णाश्रम मर्यादा पर चलने का आदेश दिया है यही दयानन्द की विशेषता है।

इस समय युद्ध की लपटे भारत के द्वार अर्थात् ब्रह्मा तक पहुच चुकी है आर्य समाज औरों को जगाकर आप सो रहा है। क्या आपकी सस्थायें सकट के समय आर्यों को दूसरों का आखेट होने से बचा सकेगी। जो लोग ससार मे आत्म रक्षा नही कर सकते वे भेड बकरियों की भॉति कब तक अपनी जान की कुशल मनायेगे। आर्य समाज के नेता वेदों क नाम पर अपील करके लाखों नहीं करोडों रुपये अपना सस्थाओं पर लगा चुके है। जिनम १ आना प्रति रुपया भी वास्तव मे वेद प्रचार पर व्यय नही किया गया। प्रारम्भ से अपील के समय वेदों के धुरधर विद्वान् निकालने के स्वप्न हम देखते रहे है। क्या कभी सच्चे क्षत्री बनाने क लिए कोई सस्था खोली गई। ऋषिवर की शिक्षा पद्धति मे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य सब वर्णों की तैयारी के लिए याजना अकित है। क्या किसी भी सस्था को ऋषि वर की शैली पर पूर्ण रूप से चलने का यत्न किया गया है। ऋषिवर की अपनी शिक्षा पद्धति उनका जीवन और उनका काय प्रणाली का यदि अनुकरण किया जावे तो इस समाज मे नया जीवन

और आत्म बल आ सकता है। नीचे हम ऋषि वर की कार्य प्रणाली की योजना को संक्षेप से अंकित करते हैं।

१. ऋषि दयानन्द ने आजीवन ब्रह्मचारी रह कर इस मृत प्रायः जाति में नवीन जीवन का संचार किया हमारे नेताओं को कम से कम समय पर वानप्रस्थी और संन्यासी बनने में संकोच न करना चाहिये जो महानुभाव ऐसा करने में असमर्थ हैं वे यथाशक्ति ५० वर्ष की आयु के उपरान्त अपने जीवन का अधिकाँश समय आर्य समाज की सेवा कार्य के लिए अर्पण करें। यदि आर्थिक अवस्था अच्छी न हो तो कुछ सहायता आर्य समाज से लेकर समाज सेवा का नियम पालन करें।

२. स्वामी दयानन्द ने पहले संस्कृत की पाठशालायें खोली थीं परन्तु वेद प्रचार में सफलता न देखकर उन्हें तोड़ दिया और अपनी सम्पूर्ण शक्ति को वैदिक यन्त्रालय अजमेर पर लगा दिया। यदि यह यन्त्रालय न होता तो आर्यसमाज का प्रचार इस भाँति देश देशान्तर में न पहुंचता भविष्य में हरेक प्रान्तिक सभा को अपना प्रेस बनाकर वहाँ से पुस्तकें मासिक पत्र तथा दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित करने चाहियें साथ ही वैदिक अनुसंधान कार्य के लिए उच्च कोटि के विद्वान्, स्नातक प्रेस में रखें ताकि वैदिक धर्म सम्बन्धी उच्च कोटि के साहित्य का प्रकाशन हो सके।

३. स्वामी जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन राजपूताना की वीर जातियों के उत्थानार्थ अर्पण कर दिया। आर्यों को अपना सम्पूर्ण प्रचार बल देहात और जँगलों की वीर जातियों में प्रचार करने में लगाना चाहिये। इस संकट के समय व्याख्यानों की आवश्यकता नहीं किन्तु शान्ति से स्थान स्थान पर रक्षार्थ आर्य वीर दल बनाने चाहियें।

४. आर्य जाति की रक्षा के लिये आर्यसमाज के नेताओं को समस्त हिन्दू जाति का नेतृत्व करना चाहिये। नवयुवक लाखों की संख्या में काम करने को तैयार हैं और दानवीर महापुरुष लाखों व्यय करने को उद्यत हैं परन्तु जब तक बड़े बड़े आर्य नेता एकत्रित होकर केन्द्रीय सँगठन रक्षार्थ कोई योजना प्रस्तुत न करें धनी लोगों की थैलियाँ कैसे खुलवाई जा सकती हैं और किस प्रकार नवयुवकों को एक आवाज पर संगठित होने को कहा जा सकता है।

आशा है इस जाति के नेता इस आड़े समय में मैदान में निकलेंगे और हर्ष से देखेंगे कि सारी जनता उनके पीछे है।

दिल्ली में श्री स्वामी दयानन्द जी

[ले०—महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाज़िल हिन्दू यूनीवर्सिटी बनारस]

दिल्ली हमारे देश की पुरानी राजधानी है। श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के कार्य काल (सन् १८६३ ई०—१८८३ ई०) में इस नगर पर अंग्रेजों का पूर्ण अधिकार हो चुका था किन्तु अंग्रेजों ने इसको अपने राज्य की राजधानी नहीं बनाया था। इस पर भी इसकी महत्ता उस काल में कुछ कम न थी। यही कारण है कि श्री स्वामी जी महाराज ने अनेक वार इस नगर को गौरवान्वित किया।

पौष कृष्ण १३ संवत् १९३३ वि० अर्थात् पहली जनवरी सन् १८७७ ई० को अंग्रेजी राज्य की ओर से एक बड़ा भारी दरबार दिल्ली में हुआ था। उस अवसर पर भारत के बड़े २ विद्वान व राजे-महाराजे दिल्ली में पधारे थे। ऐसे अवसर पर श्री स्वामी जी ने दिल्ली पधारना अधिक उपयोगी समझा और संभवतः उक्त तिथि तथा तारीख* से कुछ समय पहले ही अलीगढ़ से दिल्ली आये। अजमेरी दरवाजा से पश्चिम व दक्षिण की ओर श्री शेरमल जी के अनार बाग में उनके ठहरने का प्रबन्ध किया गया अर्थात् अजमेरी दरवाजे से जो सड़क कुतब तथा गुड़गावां को गई है उसी सड़क के समीप प्रबन्ध था इस प्रबन्ध में छलेसर जिला अलीगढ़ के ठाकुर श्री मुकन्दसिंह जी तथा कपीवास जिला बुलन्दशहर के ठाकुरों व कुछ अन्य प्रेमियों का हाथ अधिक था। यही लोग उनकी सेवा में विशेष रूप से उपस्थित थे।

* खेद है कि ठीक तिथि नहीं मालूम हो सकी।

श्री स्वामी जी को कार्य-क्षेत्र में उतरे हुये उस समय तक लगभग १२ वर्ष हो चुके थे। उन्होंने काफी अनुभव प्राप्त कर लिया था। इसी कारण दिल्ली दरबार के अवसर को उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति का एक अच्छा साधन समझा था। उनकी इच्छा थी कि दिल्ली में बहुत से राजे-महाराजे एकत्र हैं, यदि वे सब एकत्र होकर एक बार मेरा व्याख्यान सुन लें तो बड़ी सुगमता कार्य में हो सकती है। परन्तु यह बात न हो सकी।

उनका दूसरा प्रयत्न यह हुआ था कि भारत के अनेक सुधारकों को उन्होंने अपने स्थान पर निमंत्रित किया था और उन्होंने यह इच्छा प्रगट की थी कि सब लोग एक मत होकर एक ही रीति से देश का सुधार करें, परन्तु समस्त सुधारक इस बात पर सहमत न हुये निदान अपने उद्देश्य की पूर्ति में श्री स्वामी जी महाराज पूर्ण रूप से दिल्ली में सफल न हुये। परन्तु उनके विचारों की गूंज से दिल्ली तथा दरबार मे सम्मिलित होने वाले लोगों के कान वंचित न रह सके थे। अनेक लोग उनकी सेवा में प्रतिदिन पहुंचा करते थे और इस प्रकार नाना प्रकार के लोगों ने उनकी शिक्षा से लाभ उठाया था।

उक्त अवसर पर दो सप्ताह से कुछ अधिक ही दिल्ली में ठहरे थे क्योंकि १६ जनवरी सन् १८७७ ई० को वह दिल्ली से मेरठ में आ विराजे थे। इसके पश्चात् सं० १६३५ वि० आश्विन शुक्ल ८ अर्थात् ३ अक्टूबर सन् १८७८ ई० को मेरठ से दिल्ली में पदार्पण किया था। ऐसी बात मुझे एक ऐसे अप्रकाशित पत्र से मालूम हुई है जो कि श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा जी के नाम है। यह पत्र ७ अक्टूबर सन १८७८ ई० का लिखा हुआ है इसमें दिल्ली आने के विषय में शब्द यह हैं –

"हम ३ अक्टूबर को दिल्ली आये हैं।"

श्री स्वामी जी महाराज के जीवन चरित्रों से ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने ६ अक्टूबर को दिल्ली को सुशोभित किया था किन्तु मुझे तो पत्र के शब्द अधिक ठीक प्रतीत होते हैं। इसके सिवा श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा के नाम के एक अप्रकाशित पत्र लिखित ३० अक्टूबर सन् १८७८ ई० से दिल्ली में आर्य समाज के स्थापित होने का पता इस प्रकार चलता है:—

"कल यहां पर भी आर्य समाज के लिये प्रधानादि नियत हो गये हैं और ३ नवम्बर रविवार को समाज का प्रारम्भ हो जायगा।"

३० अक्टूबर सन् १८७८ ई० (कार्तिक शुक्ल ५ सं० १६३५ वि०) को बुधवार था। इसके पश्चात् रविवार ३ नवम्बर (कार्तिक शुक्ल ६) को पड़ा था। निदान दिल्ली में आर्य समाज का नियमित पहला सत्संग उक्त तिथि को हुआ था। इस बार श्री स्वामी जी महाराज ने ६ नवम्बर को दिल्ली छोड़ा और जयपुर व अजमेर होकर पुष्कर में जा विराजे थे। इस बार दिल्ली में उनका ठहरना मोहल्ला सब्जी मण्डी में लाला बालमुकन्द केसरीचन्द (या किशोरीचन्द) के मोती बाग में हुआ था।

कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को पुष्कर में बड़ा भारी मेला हुआ करता है। इस मेले में प्रचार के पश्चात् कई स्थानों में होते हुये ६ जनवरी सन् १८७६ ई० (माघ कृष्ण प्रतिपदा सं० १६३५ वि०) को अर्थात् दो मास के पश्चात् फिर दिल्ली में रिवाड़ी से पधारना हुआ। उक्त सन् में हरिद्वार में कुम्भ का बड़ा भारी मेला होने वाला था। उस में जोरों के साथ प्रचार करना आवश्यक था, इसी कारण केवल एक सप्ताह दिल्ली में रहे। इस बार भी सब्जी मण्डी में ही ठहरना हुआ था जहां कि इससे पूर्व पधार कर ठहरे थे।

उनके एक जीवन चरित्र से पता चलता है कि दिल्ली से १५ जनवरी को मेरठ चले गये थे किन्तु श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा जी के नाम का एक अप्रकाशित पत्र लिखित १७ जनवरी में शब्द यह हैं:—

"हम कल दिल्ली से मेरठ आ गये हैं।"

निदान तीन बार श्री महाराज जी ने दिल्ली को गौरवान्वित किया था। आशा है कि दिल्ली में पधारने व दिल्ली से प्रस्थान करने से सम्बन्ध रखने वाली जो तिथियां (तारीखें) हैं लोग उन्हें जीवन चरित्रों में ठीक कर लेंगे।

सुमन-संचय

(१)

जीव-दया

एक दिन इमाम हसन साहब मदीने के बाहर खजूर के एक बाग में होकर जा रहे थे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक हब्शी गुलाम बैठा हुआ रोटी खा रहा है और एक कुत्ता सामने खड़ा है। गुलाम एक टुकड़ा आप खाता और दूसरा कुत्ते को देता। यह देख इमाम हसन साहब ने गुलाम से पूछा—'तू अपनी थोड़ी सी रोटियों में से इस कुत्ते को क्यों देता है ?' उसने उत्तर दिया—'मुझे इस बात से लज्जा मालूम होती है कि मैं तो पेट भरूँ और यह गूंगा दीन पशु जो खड़ा २ मेरा मुंह देख रहा है, वैसा ही भूखा रह जाय।"

यह सुन कर इमाम हसन साहब ने अपने मन में कहा—"दुःख है कि ऐसा भला व्यक्ति दास हो।" फिर उन्होंने उससे पूछा, "तेरे मालिक का क्या नाम है ?" गुलाम ने उत्तर दिया—"मेरे मालिक का नाम है अवान और वह मदीने में रहता है।"

इमाम साहब यह सुनते ही तत्काल अवान के पास आये और बोले--"अवान, मेरी एक प्रार्थना है उसे स्वीकार करोगे या नहीं ?" यह सुन कर अवान ने विनय पूर्वक कहा—'साहब, आप तो हमारे पैग़म्बर के धेवते हैं, आप जो आज्ञा करेंगे, मैं ख़ुशी से मंजूर करूँगा।' इमाम हसन ने कहा—'अच्छा, तो उस खजूर वाले बाग को, मय उस गुलाम के जो उसकी रखवाली करता है, मुझे दे दो और जो क़ीमत कहो मैं देने को तय्यार हूँ।' अवान ने कहा—'मैं बिना क़ीमत ही आपकी भेंट करता हूँ।' इमाम साहब बोले—"इस तरह मैं क़बूल नहीं करता।" अन्त में अवान को क़ीमत लेनी पड़ी। इमाम हसन साहब इस मामले को तय करके तुरन्त उस गुलाम के पास आये और उससे कहा—"मैंने तुझे और इस बाग़ को तेरे मालिक से खरीद लिया है। यह सुन कर गुलाम की आँखों में आँसू आ गये। रुधे हुए कण्ठ से उसने कहा—"यह आपने अच्छा नहीं किया। मुझे अवान की गुलामी में ही सुख और खुशी थी।"

इस उत्तर से उस गुलाम के प्रति इमाम साहब की श्रद्धा और भी बढ़ी। उन्होंने कहा—"अब तुझे मैं गुलामी से रिहा (मुक्त) करता हूँ और यह बाग़ तुझे इनाम में देता हूँ।"

यह सुन कर गुलाम का हृदय भावावेश से भर गया। वह सोचने लगा कि मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। उसने कहा—"जनाब ! मैं इस कृपा के क़ाबिल नहीं हूँ। मुझे गुलामी ही करने दो।"

इमाम साहब ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"तुम जैसे नेक आदमी, गुलामी के योग्य नहीं। तुम्हारी नेकी के लिये यह इनाम कुछ भी नहीं है। यह स्वीकार करना होगा।"

यह कह कर इमाम साहब वहाँ से चले गये और गुलाम हब्शी हाथ जोड़ कर अनन्त की ओर देखने लग गया।

(२)

सादगी

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्कूलों के इंस्पेक्टर के पद पर कार्य करते थे। एक बार स्कूल का निरीक्षण करने के लिए हुगली जिले के अन्तर्गत एक गाँव में उन्हें जाना पड़ा। इसके पहले ही उस गांव के बालक, जवान, बूढ़े सब विद्यासागर के नाम को अच्छी तरह सुन चुके थे। गाँव की लड़कियाँ, युवतियाँ और वृद्धाएँ सब विद्यासागर के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित थीं। दस बजे के पहले ही स्कूल के आस पास रहने वाले गृहस्थों के घरों में औरतों के ठट बंध गये। घरों की खिड़कियों में, दरवाजों के पास, छतों के ऊपर यहाँ तक कि बूढ़ी औरतें राह तक में खड़ी थीं। विद्यासागर जी के आने में बहुत देर हो गई। छतों और मार्गों में खड़ी हुई स्त्रियों को घाम से बड़ा क्लेश मिल रहा था। इसी समय विद्यासागर के आने का शोर मच गया। चारों ओर उत्साह और आग्रह छा गया।

स्कूल के लड़के अपनी २ जगह पर शान्त भाव से बैठने लगे। बाहर स्कूल के संचालक लोग विद्यासागर की अभ्यर्थना के लिए खड़े थे। स्त्रियां जो जहाँ थीं वहीं से घूँघट जरा जरा खोले विद्यासागर को देखने की चेष्टा करने लगीं।

विद्यासागर आए और सामने से निकल भी गये, परन्तु स्त्रियों में से किसी ने उनको न देखा। उनको विद्यासागर के आने का विश्वास ही न हुआ। एक वृद्धा स्त्री ने आगे बढ़कर जिस मँडली में विद्यासागर थे उसके एक व्यक्ति से पूछा—"क्यों जी, विद्यासागर कहां हैं?" वे क्यों नहीं आए?" उस व्यक्ति ने विद्यासागर की ओर इशारा करके कहा—'यही विद्यासागर जी हैं।" वृद्धा आंखें फाड़कर थोड़ी देर तक विद्यासागर की ओर देखती रही। इसके बाद उसने कहा "यही मोटी धोती मोटी चादर वाले विद्यासागर हैं! इन्ही को देखने के लिए हम घाम में तप गईं। न गाड़ी घोड़ा है, न घड़ी-छड़ी है, और न चोगा चपकन है।"

विद्यासागर ने विनीत भाव से बुढ़िया से कहा—"माई! विद्यासागर तो गरीब है और दीन दुखियों की नाईं ही रहता है।"

—रघुनाथप्रसाद पाठक

आर्यसमाज की चिनगारियां

लाला चिरंजीलाल जी प्रचारक लुधियाना

लाला चिरञ्जीलाल, लाला राजाराम चोपड़ा, राहों, जिला जालन्धर के सुपुत्र थे। जब आपके पिता कारोबार के सम्बन्ध में लुधियाने में आये तो आप भी यहीं आ गये। बचपन में लाला चिरञ्जीलाल जी लड़ाई झगड़ों में निर्भयता से भाग लेते थे। यही कारण था कि शहर में उनकी समान आयु वाले उनसे भयभीत रहते थे। लाला जी जवानी में एक ग्रान्डील, सुडौल बदन थे, और इनका मुख प्रभाव-शील था। उनके दबदबे के कारण ही मुकाबिले में कोई आंख तक नहीं मिला सकता था। जहां तबियत में जोश अधिक था वहां विचार की न्यूनता थी। उन्नीस बीस साल की आयु तक आपके इस स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आया। जब आप पर ऋषि दयानन्द की कृपा से वैदिक धर्म का रग चढ़ा तो चिरंजी-लाल कुछ से कुछ बन गये। दिन रात चलते फिरते वैदिक धर्म का प्रचार ही उनका लक्ष्य था पौराणिक विचारों के कारण उनके माता पिता बहुत दुःखित थे। परन्तु चिरंजीलाल दृढ़ वैदिक धर्मी बन चुके थे। उन पर माता पिता के रोष का असर तो क्या होना था। उल्टा वैदिक धर्म पर आरूढ़ हो गये। इन्हीं दिनों में मुन्शी नवल किशोर जी लुधियाने पधारे तो उनकी कविताओं से जो वह झूम २ कर पढ़ा करते थे आप इस प्रकार प्रभावित हुए कि कविता का शौक बढ़ गया क्योंकि वे साधारण शिक्षा के अतिरिक्त हिन्दी भाषा आदि से अनभिज्ञ थे इसलिये अपने शौक को पूरा करने के लिये अपनी कविता पंजाबी मे आरम्भ की। उन्हीं दिनों मे चौधरी गोपीराम थापर शहर के मशहूर व्यक्ति का उनसे बहुत मेल जोल था। दोनों मित्रों ने आर्य समाज में प्रवेश किया। लाला अनन्तराम ठठिआर सभा-सद् आर्य समाज लुधियाने के बड़े भाई लाला कन्हैयालाल को कविता का अधिक अभ्यास था। लाला चिरञ्जीलाल कुछ समय उनसे परामर्श लेते रहे। इससे वह कविता में सिद्ध हस्त हो गये। आर्य सामाजिक सिद्धान्तों पर लाला चिरञ्जीलाल जी ने लगभग दो दर्जन के करीब ट्रैक्ट लिख डाले। जब आप अपनी कविता सुनाते तो सैकड़ों पुरुष थोड़े समय में एकत्रित हो जाते। वैदिक धर्म सम्बन्धी अपने स्वभावानुसार कड़ी समालोचना करते कि लोग दंग रह जाते।

पौराणिक विचारों के धूर्त मुख पर बुरा भला कह कर अपने मन की भड़ास निकालने के अति-रिक्त उनके पिता जी को भड़काते कि तुम्हारा पुत्र आर्य हो गया है। मगर लाला चिरंजीलाल जी ने जो वैदिक धर्मी विचारों में परिपक्व हो गये थे अपने पिता माता आदि की कुछ परवा न करते हुए अपने कर्त्तव्य पर चट्टान की तरह

अटल तथा निर्भय अपने कार्य में लगे रहे। इस समय ला० चिरंजीलाल ने अपने ढंग पर जो प्रचार वैदिक धर्म का किया उसकी मिसाल अब ढूंढे भी नहीं मिलती। उनके प्रचार कार्य को विस्तार से लिखने के लिये एक भारी पुस्तक चाहिये। परन्तु मैं थोड़े में ही कुछघटनाएँ लिखता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि लाला चिरञ्जीलाल जी अधिक क्रोधी थे परन्तु यह क्रोध जो वैदिक धर्मी लोगों को अपने धर्म से विमुख करते हैं उन पर टलता था। यही कारण था कि लाला चिरंजीलाल जी किसी की परवाह न करते हुए अपने कार्य में डटे रहते थे। एक समय स्त्रियों के उकसाने से चिरंजीलाल जी की माता ने लाल पीली आंखें निकाल कर कहा—बेटा! क्या अनर्थ किया, जो तू आर्य हो गया। चिरंजीलाल ने क्या उत्तर दिया—"माता जी! सभी आर्य हैं, मैं भी उनमें से एक हूँ। अलग तो नहीं हुआ।"

ला० चिरंजीलाल की धर्म पत्नी एक साधारण स्त्री होते हुए उनके विचारों के अनुकूल थी। और स्त्रियों के तानों की परवाह न करते हुए चुप रहती। जब लाला चिरंजीलाल को विरोधियों की ओर से अधिकतर सताया जाता तो वह ईंट का जवाब पत्थर से देते। जो प्रायः उस समय के अनुकूल था। लाला जी के उपदेशों का ढंग निराला ही था। जबान में इस कदर रस था जहां भी खड़े हों लोग शौक से सुनते थे।

ला० चिरञ्जीलाल के दिल में अनाथों, विधवाओं के लिये एक विशेष तड़फ थीं। जब भी कहीं किसी को कष्ट में पाते, तुरन्त पहुँच कर उसके कष्ट को निवारण करते।

एक दिन की घटना है कि कुछ मुसलमानों ने एक हिन्दू कन्या को मस्जिद में मुसलमान बनाना चाहा, चिरंजीलाल सुनते ही तुरन्त मस्जिद में जा कूदे और एक भारी मुस्लिम हजूम में से उस लड़की को कन्धे पर उठा लाए। लाठियों की बारिश में इस साहस से लड़की को लाकर उसके घर पहुँचा दिया। लाला जी इस साहस भरे कार्य से अब विचार शील लोगों में भी मान की दृष्टि से देखे जाने लगे।

दशहरे के दिनों में मेले में एक दिन आप पाखण्डी ब्राह्मणों और बगले भक्तों के सम्बन्ध में अपनी कवितायें सुना रहे थे तो एक व्यक्ति ने आप पर हमला कर दिया। परन्तु वह शेर मर्द प्रचार से नहीं रुका। आपकी इस दृढ़ता से लोगों में अच्छा प्रभाव पड़ा और विरोधी नादम होकर दुम दबाकर चल दिये।

लुधियाना ठाकुर द्वारा नौरिया में एक रात दरख्त पर राल बांधकर आग की चिनगारियां बरसाने लगा। इस अचम्भे से तमाम शहर में शोर मच गया। हजारों नर नारी वहां पहुँच गये। और चकित थे। ला० चिरञ्जीलाल जी मुझे बाजार में ला० गणेशीलाल पान वाले की दुकान पर सदा की भांति सामाजिक बातें करते मिले। यह घटना सुन कर तुरन्त ही मेरे साथ ठाकुर द्वारा नौरिया में पहुँचे। भीड़ चीर कर हम दोनों उस वृक्ष के नीचे जहां आग बरस रही थी, खड़े हो गये। वृक्ष के पत्ते हिलने पर हमें कोई आदमी वृक्ष पर बैठा हिलता दिखाई दिया। तुरन्त ही ला० चिरंजीलाल ने उच्च आवाज से कहा—"लभ्भूरामजी बन्दूक पकड़ाओ, इस आग बरसाने वाले

पाखण्डी को मैं इसकी चिनगारियां दिखाऊँ।" वह पाखण्डी आदमी ऐसा भयभीत हुआ कि दरख्त से कूद पड़ा। इसकी पोल खुलने पर भरे जनसमूह में गर्ज कर चिरञ्जीलाल ने अपने उपदेश में इन धूर्तों की खूब जी भर कर पोल खोली। इस पर सब एक २ करके खिसकने लगे। कई दिन शहर में इस पाखण्डी की करतूत की चर्चा रही।

श्राद्धों के दिनों में एक दिन हंसी के रूप मे चिरंजीलाल ने एक ब्राह्मण को न्योता दिया। जब ब्राह्मण देवता खाने बैठा तो लाला जी ने एक अफीम की डली पेश की कि खाइये महाराज! मेरे पिता जी अफीम खाते थे। अब वे इसके लिए तड़प रहे होंगे। शीघ्र पहुँचा दीजिये। बाद में मिष्टान भी दूँगा। ब्राह्मण देवता अपना मुँह लेकर दुष्ट दुष्ट कहता वहाँ से भाग निकला।

पैल रियासत पटियाला का नन्दलाल नामी ब्राह्मण जो प्रायः चिरंजीलाल से छेड़ छाड़ किया करता था उसने एक दिन चिरंजीलाल से कहा मै दान लाया हूं। तुम दान लोगे। लाला जी वह दान के चावल लेकर चलते बने। कुछ समय बाद नन्दलाल फिर वह दान वापिस मांगने लगा और कहा धिक्कार है खत्री होकर दान लेता है। बड़बड़ाता हुआ पुलिस में जा पहुँचा। चिरंजीलाल भी साथ साथ हो लिए। तुर्रबाज़ खां थानेदार ने सब माजरा सुनकर कहा—चिरंजीलाल चावल इनको दे दो। चिरंजीलाल ने कहा कि इसने आप मुझे दिए हैं, अब इन्हें वापस मँगाने का क्या हक है। जब थाने में कुछ भी न बना तो नन्दलाल ने फौजदारी दावा कर दिया। मुकदमा चला, इसमें चिरंजीलाल को चार मास कैद और ५०) जुर्माना हो गया। आर्य समाज लुधियाने ने जहां आपसे बेतअल्लुकी का ऐलान किया वहां ब्राह्मणों ने और भी शोर मचाना शुरू किया। जब महात्मा मुन्शीराम जी वकील जालंधर को इसका पता चला तो उन्होंने इस मुकदमे को अपने हाथ में लेकर जालंधर में अपील की। सब खर्च अपने पास से करके ला० चिरंजीलाल को रिहा करा दिया। इस घटना के सम्बन्ध में ला० चिरंजीलाल ने "चिरँजीलाल से पोपों का पहला मुकदमा" किताब में निम्न लिखित बन्द लिखे हैं।

"जो २ जुल्म मेरे पर गुजरे तुसां ताई समझाया।
ब्राह्मण गवाह ते ब्राह्मण वकील अदालत किसते पावां,
चिरञ्जीलाल दरोगा भी ब्राह्मण किसनू कूक सुनावां।
पर मुंशीराम के बच्च्यां दी मैं नित उठ खैर मनावां।"

जेल से निकलते ही फिर उसी दम खम से वैदिक धर्म के प्रचार में लग गये। जो धूर्त यह समझ बैठे थे कि चिरञ्जीलाल डर जायगा उनको न केवल निराश ही होना पड़ा अपितु उनमें से कई एक लाला जी की स्प्रिट से प्रेरित होकर उनके विचारों के अनुकूल होकर आर्य हो गये।

इसी तरह लाला चिरञ्जीलाल ने उस ज़माने के अनुकूल खूब दिल खोल कर प्रचार किया और दर्जनों अपने लिखे ट्रैक्ट छाप कर जहां सर्व साधारण में प्रचार किया वहां इन्हीं ट्रैक्टों को बेचकर स्वतन्त्रता से अपना निर्वाह किया। महाराजा हीरासिंह जी वालिये नाभा ने विधवा विवाह पर लाला जी के विचार और कविता सुनकर एकबार लाहौर में, दूसरी बार नाभे में बुलाकर

खिलत और १००) नकद दिये। इनके कारनामों का हाल कहां तक लिखूं। सद्धर्म प्रचारक की फाइलें भरी पड़ी हैं। शोक है कि उनकी बहुत सी लिखी पुस्तकें अब नहीं मिलती। आर्य समाज लुधियाने की पचास साला जुबली पर मैंने यत्न किया कि सब पुस्तकें मिल जाएँ तो उनको एक पुस्तक के रूप में "कुल्यात ला० चिरञ्जीलाल" छपाऊँ। जिसके छपवाने का खर्च उनके सुयोग्य छोटे भाई लाला घसीटाराम ने देने का वचन दिया था। मगर शोक सिवाय पांच चार ट्रैक्टों के और नहीं मिले। "आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब जिसके प्रधान उस समय महात्मा मुन्शीराम जी थे" की ओर से उनकी धर्म पत्नी को अन्तिम समय तक आर्य समाज लुधियाने की मारफत सहायता मिलती रही।

शोक है कि अब हमारे भाई ला० चिरञ्जीलाल जी यद्यपि हममें नहीं हैं तथापि उनका काम जो उन्होंने साधारण योग्यता रखते हुए सर्वसाधारण में किया, स्थायी रहेगा। गर्मियों और सर्दियों के झकोलों में धम का लगातार प्रचार करना हमारे स्व० भाई ला० चिरञ्जीलालजी के दिली उत्साहका पाठ हमें पढ़ा रहा है। इस दिव्य मूर्ति की गरजती हुई आमफहम आवाज अब भी मेरे कानों में गूंज रही है।

इस बात से सन्तोष है कि जहां उनकी छोटी लड़की के बच्चे उनकी निशानी मौजूद हैं वहां उनके छोटे सुयोग्य भाई महाशय घसीटाराम जी जिन्होंने अपने पूज्य भ्राता के चरण चिन्हों पर चलकर पर्याप्त समय तक उनकी भांति वैदिक धर्म की सेवा की अब भी एक सफल व्यापारी होते हुए वैदिक धर्म सेवा तन, मन, धन से करते हुए विद्यमान हैं।

लब्भूराम नैयड़
आनन्दाश्रम लुधियाना

सत्यार्थ प्रकाश और गायत्री भगत

ठाकुर देवीसिंह जी मुंबई आर्य समाज के पुराने कर्ताओं में से एक थे आप जिला जौनपुर के निवासी थे और मुंबई में ठेकेदारी का काम किया करते थे आप अधिक विद्वान् न थे। आपका स्वभाव लोगों से मिलने का था। मिलकर साधारण बात चीत किया करते थे जब कोई धर्म के विषय पर इनसे प्रश्न करता तो कह देते थे मैं आपको एक पुस्तक देता हूं आप उसे प्रथम पढ़ लें यदि उससे आपका समाधान न हुआ तब फिर बात करना फिर उसे वह सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने को देते थे यदि हिन्दी (आर्य भाषा) जानता हो तो महर्षि लिखित आर्य भाषा का सत्यार्थ प्रकाश दिया करते थे यदि वह न जानता हो तो जो भाषा वह जानता हो अर्थात् गुजराती जानता हो तो गुजराती अनुवाद, मरहठी जानता हो तो मरहठी अनुवाद, अंग्रेजी जानता हो तो सत्यार्थ प्रकाश का अंग्रेजी अनुवाद उसे देते थे और पढ़ने का आग्रह करते थे। इस प्रकार आपने सत्यार्थ प्रकाश दे दे कर अनेक आर्य समाजी बनाए।

इसी प्रकार आप साधारण पुरुष और बालकों को पूछा करते थे कि क्या आपको गायत्री मंत्र आता है ? यदि वह उत्तर न देते तो प्रेरणा करते थे कि गायत्री मंत्र पवित्र है। आर्यों का गुरु मन्त्र है धर्म पुस्तकों में इसके कंठ करने की

महिमा का वर्णन है। इसके जप करने का स्मृतियों में विधान है। आपको यह मन्त्र अवश्य कंठस्थ करना चाहिये। यदि कोई गायत्री मन्त्र का पाठ सुनादे तो उसे कुछ न कुछ अवश्य देते थे। बालकों को ।) और युवकों को १) प्रायः दिया करते थे और यदि कोई गायत्री मन्त्र अर्थ सहित सुना दे तो अधिक दिया करते थे।

इसी प्रकार आपने गायत्री मन्त्र का प्रचार किया इसलिये आप सत्यार्थ प्रकाश और गायत्री मन्त्र के भगत थे।

मरने की तैयारी

श्री गया प्रसाद जी आर्य समाज हैदराबाद के पुराने कार्य कर्ताओं में से एक थे। मैंने उनके दर्शन किये हैं।

आप सरकारी नौकरी में थे और श्री केशोराम जी की सम्मति से आर्य समाज का काम किया करते थे। एक बार किसी भजनीक ने भजन गाने में आना कानी की तब आपने कहा अच्छा आगे को इसका प्रबन्ध भी करना होगा। तब आपने गाना सीखना आरम्भ किया और गाना सीख कर आगे को आर्य समाज में स्वयं भजन गाने लगे।

जिस समय आपने पैंशन ली तब भी आर्य समाज के कामों में समय दिया करते थे प्रति मास जब आप पैंशन के रुपए लेने जाते थे तो आते समय चन्दन खरीद कर लाते थे। वह उनका नियम था प्रति मास चन्दन लाकर सुरक्षित रखना। अंत में जब आप बीमार पड़े तो श्री विनायकराव जी को बुलाया। जहां और बातें की वहां यह भी कहा महर्षि जी ने शरीर के बोझ के सम चन्दन चिता के लिये लिखा है। मैंने चन्दन का प्रबन्ध कर रखा है। अमुक स्थान पर इतना चन्दन पड़ा है। पूछा गया इतना वहां कैसे आ गया। आपने बताया मैं प्रति मास खरीद कर वहां रखता रहा हूँ। मैंने वह अपनी अन्त्येष्टि के लिये ही जमा किया है।

आपकी धर्म पत्नी पास बैठी थीं। उनके आंखों में अन्त्येष्टि की बात सुन कर आंसू आ गये। आप ने कहा आपने मेरे सहवास से कुछ नहीं सीखा आपके पुत्र आज्ञाकारी हैं। आपको कोई कष्ट न होने देंगे और परमात्मा सबका रक्षक है। साथ ही सब ने मरना है। मरना मेरे लिये भी कोई नई बात नहीं है यदि आप रोयेंगी तो मुझे भी दुःख होगा। आप धैर्य करें और मुझे मौत की गोद में शांति से जाने दें।

आपकी धर्म पत्नी यह सुन कर चुप हो गई और आपने अपना शरीर प्रसन्नता पूर्वक शान्ति से परमात्मा का नाम स्मरण करते हुए त्यागा।

—स्वतन्त्रानन्द

महिला-जगत्

विवाह

(लेखक—श्रीयुत महात्मा गांधी)

एक बहिन ने अपनी पसन्द का वर पाने पर अभी कुछ दिन हुए विवाह किया है जो अच्छी कार्य कर्त्री है और भली भांति देश-सेवा के लिए जो आजन्म कौमार व्रत धारण के लिए उत्सुक थी। परन्तु वह सोचती है कि ऐसा करने में उसने ग़लती की है और जो उच्च आदर्श उसने अपने सामने रखा था वह उससे गिर गई है। उसके दिमाग़ से यह भ्रम दूर करने की मैंने कोशिश की है। इसमें सन्देह नहीं कि सेवा के लिए अविवाहित रहना लड़कियों के लिए बड़ी अच्छी चीज़ है परन्तु सचाई यह है कि लाख में से केवल एक ही लड़की ऐसा करने में समर्थ होती है। जीवन में विवाह स्वाभाविक वस्तु होती है और इसे किसी भी प्रकार से हेय समझना बड़ी भारी भूल है।

आदर्श यह है कि विवाह को पवित्र वस्तु समझा जाय और वैवाहिक जीवन आत्म-संयम के साथ बिताया जाय। हिन्दू धर्म में विवाह ४ आश्रमों में से है। वस्तुतः अन्य ३ आश्रम इसी पर अवलम्बित होते हैं। परन्तु दुर्भाग्य से वर्तमान काल में विवाह का अर्थ केवल मात्र विषय वासना की तृप्ति समझा जाने लगा है। अन्य ३ आश्रमों का अस्तित्व ही नहीं है।

उपर्युक्त बहन तथा उस जैसी विचार वाली अन्य बहनों का कर्त्तव्य है कि वे विवाह को हेय न समझें वरन् इसे उचित स्थान देकर पवित्र बनाएँ। यदि वे आवश्यक आत्म-संयम से काम लेंगी तो वे अपने भीतर सेवा के लिए उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति का अनुभव करेंगी। जिस बहन को सेवा की इच्छा होगी वह स्वभावतया समान विचारों वाला जीवन संगी चुनेगी और उन दोनों की सम्मिलित सेवा देश का लाभ करेगी।

यह बड़े दुःख की बात है कि आम तौर से हमारी लड़कियों को मातृत्व के कर्त्तव्यों की शिक्षा नहीं दी जाती। परन्तु यदि विवाहित जीवन धार्मिक कर्त्तव्य है तो मातृत्व भी धार्मिक कर्त्तव्य होना चाहिए। आदर्श माता होना सरल कार्य नहीं है।

बच्चे उत्पन्न करने का कार्य पूर्ण उत्तर दायित्व के भाव में होना चाहिए। गर्भ स्थापित होने के समय से बच्चे के उत्पन्न होने तक माता को अपने कर्त्तव्य का ज्ञान होना चाहिए, और जो माता देश को स्वस्थ, बुद्धिमान और सुपालित सन्तान देती है निस्सन्देह वह देश की सेवा कर रही है। जब ये बच्चे बड़े होंगे तो वे भी सेवा के लिए तत्पर रहेंगे, असल बात यह है कि जिन्हें सेवा की लग्न होती है वे सदैव सेवा करते हैं भले ही जीवन में उनकी स्थिति कोई क्यों न हो। वे कभी भी ऐसे जीवन में नहीं पड़ते जो उनकी सेवा में विघ्न उपस्थित करता हो।

(हरिजन से अनूदित)

साहित्य समीक्षा

अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र

लेखक—श्री पण्डित प्रियरत्न जी आर्ष, प्रकाशक—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, मूल्य २) पृष्ठ लगभग ३०० ।

आयुर्वेद का मूल ऋग्वेद अथवा अथर्व वेद है इस बात को सभी आर्य मानते आये हैं किन्तु अभी तक इस स्थापना की सिद्धि के लिए सिवाय छोटे मोटे निबन्धों के कोई विस्तृत महत्त्व पूर्ण ग्रन्थ नहीं लिखा गया था। श्री पंडित प्रियरत्न जी ने इस कमी को पूरा करके आर्य जनता और सभी वेद प्रेमियों की बड़ी भारी सेवा की है। इस पुस्तक में सूत्र स्थान, निदानस्थान, और चिकित्सास्थान ये तीन मुख्य विभाग आयुर्वेद की दृष्टि से करते हुए और उन सब विषयों में वेदों के प्रमाण देते हुए चिकित्सा प्रकरण में निम्न प्रकार की चिकित्साओं का वैदिक मन्त्रों द्वारा विस्तृत विवेचन किया गया है।

उपचार चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, अग्नि वायु होम चिकित्सा, शल्य-चिकित्सा (Surgery), विष चिकित्सा, कृमि-चिकित्सा, केशरोग, शिरोरोग, उन्माद अपस्मार, खाँसी, हृदयरोग, मन्दाग्नि, मूत्ररोग, वन्ध्यात्व, त्वचारोग, पाण्डुरोग, क्षेत्रिय वा परम्परागत रोग, ज्वर, क्षयरोग इत्यादि रोगों की औषधियों द्वारा चिकित्सा, रसायन चिकित्सा, पशु चिकित्सा, अथर्ववेद में औषधि विषयक जितने सूक्त अथवा मन्त्र आये हैं उन सबका विवरण इस पुस्तक में दिया गया है और उसके साथ आयुर्वेद के ग्रन्थों के उद्धरण तुलनात्मक दृष्टि से दिये गये हैं। मेरे विचार में यदि सुयोग्य लेखक महानुभाव 'अथर्व-वेदीय चिकित्सा शास्त्र' के स्थान में पुस्तक का नाम 'वैदिक चिकित्सा शास्त्र' रखते और उसमें आयुर्वेद के मूलभूत ऋग्वेद के सब सूक्तों और मन्त्रों का विवरण भी देते तो ग्रन्थ अधिक पूर्ण बन जाता। अब भी कई ऋग्वेदीय सूक्त उन्होंने प्रसंगवश उद्धृत किये ही हैं।

इस ग्रन्थ रत्न से वेद और आयुर्वेद के सब प्रेमियों को अवश्य लाभ उठाना चाहिये। हम इस ग्रन्थ रत्न के लिखने पर श्री पं० प्रियरत्न जी और उसे प्रकाशित करने पर सार्वदेशिक आर्य प्रति-निधि सभा का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

—धर्मदेव विद्यावाचस्पति

बोध रात्रि

श्री विज्ञान मार्तण्ड वात्स्यायन कृत तथा सरस्वती पुस्तक मन्दिर मांडले (ब्रह्मा) द्वारा प्रकाशित बोध रात्रि का प्रथम संस्करण मैंने आद्योपान्त पढ़ा है और इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि पुस्तक वस्तुतः अपने ढंग की अनूठी एवं सर्वोपयोगी है। पुस्तक का आकार २०×३० का १६ वां भाग लगभग ३०० पृष्ठ है तथा ११ सर्गों में समाप्त की गई है। आदि में प्रत्येक सर्ग का सार गद्य रूप में श्री रामचन्द्र जी भारती बी. ए. एल. टी.

हेडमास्टर डी. ए. वी. हाई स्कूल, मांडले के नोट सहित तथा अन्त में कठिन शब्दों के अर्थ देकर पुस्तक को यथा सम्भव सरल और सुबोध बनाने का यत्न किया गया है। ब्रह्मा जैसे अहिन्दी भाषी प्रान्त में ऐसी पुस्तक का प्रकाशन और वह भी एक बौद्ध भिक्षु द्वारा आर्य समाज के मूल प्रवर्तक के जीवन चरित्र को इतने सुन्दर ढग से पद्य मय लिखकर गौरवान्वित करने के लिये लेखक और प्रकाशक दोनों ही स्तुत्य एवं बधाई के पात्र हैं। पुस्तक का मूल्य २॥) है। भारतवर्ष में पुस्तक मिलने का पता सरस्वती पुस्तक मन्दिर चूड़ी वालान देहली है।

—निरञ्जनलाल "विशारद," देहली।

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की अन्तर्गत सभा का प्रथम अधिवेशन ता० १९ अप्रैल सन् १९४२ ई० रविवार को दोपहर के ढाई बजे से दीवान हाल दिल्ली में श्रीमान् डा० युद्धवीरसिंह जी के सभापतित्व में हुआ।

कार्यवाही

१. श्री मास्टर चरणदास जी के अमानुषिक वध पर शोक प्रस्ताव पास हुआ और मास्टर जी की मृत्यु से रिक्त स्थान में पं० हरिश्चन्द जी विद्यालंकार को परीक्षा समिति का सदस्य बनाया गया।

२. श्री इन्द्रनारायण जी का त्याग पत्र स्वीकार किया गया और उनके स्थान पर श्री देवीदयाल जी को उप मन्त्री बनाया गया।

३. अगस्त मास के प्रथम सप्ताह में गाली विरोधी एवं शिष्टाचार सप्ताह मनाने का निश्चय हुआ।

४. दहेज एवं तम्बाकू दिवस के कार्यक्रम व तिथियां तय करने का अधिकार कार्यकारिणी को दिया गया।

५. रामगढ़ कैंप की योजना स्वीकार हुई, तथा अन्य प्रस्ताव पास हुए।

देवीदयाल उपमन्त्री,
भा० आ० कु० परिषद् दिल्ली।

परीक्षा विभाग

केन्द्र व्यवस्थापकों तथा आर्य जनता से अपील

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की ओर से होने वाली धार्मिक परीक्षाओं की पाठविधि और नियमादि छप गये हैं जिन सज्जनों को आवश्यकता हो वे परीक्षा मन्त्री भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् दीवान हाल दिल्ली से मँगा लें, आर्य कुमार सभाओं, आर्य समाजों, और परीक्षा केन्द्रों को भेज दी गई हैं और भेजी जा रही हैं, कृपया इनको अपने नगर की समाज कुमार सभा व स्कूल, और कन्या पाठशाला में प्रचारित करने का कष्ट करें, और साथ ही आर्य स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकाओं से प्रेरणा करें कि वे अधिक से अधिक संख्या में, इन परीक्षाओं में शामिल हों। कृपया केन्द्र स्थापना फार्म कार्यालय से मंगवाकर अपने नगर के केन्द्र की स्वीकृति करा लें। आशा है कि आप धार्मिक ग्रंथों के स्वाध्याय में इस प्रकार यज्ञ में अपना बहुमूल्य सहयोग देकर कृतार्थ करेंगे।

—देवव्रत धर्मेन्दु,
परीक्षा मंत्री।

प्रौढ़ शिक्षा का आयोजन

कुमार सभाओं का कर्तव्य

भारतवर्षीय आर्य्य कुमार परिषद् की अन्तरंग सभा ने यह निश्चय किया है कि गर्मियों की छुट्टियों में सभी कुमार-सभाएं रात्रि-पाठशालाओं द्वारा प्रौढ़ शिक्षा का कार्य करें। परिषद् अभी तक जितने काम और आयोजन करता रहा है उनमें यह एक ठोस व रचनात्मक कार्य्य है। पश्चिमी देशों में युवक व विद्यार्थी गण अपने ग्रीष्म काल का उपयोग इसी प्रकार किया करते हैं। कुमार सभाओं का कर्तव्य है कि वे भी इस योजना को सफल बनाने में पूरी तरह जुट जाएं। आर्य्य-समाज के अधि-रियों से भी नम्र निवेदन है कि वे इस योजना को सफल बनाने में कुमार सभाओं का सहयोग करें।

इसके लिए निम्न लिखित योजना बनाई गई है:—

कुमार-सभाएं अपने नगर या कस्बे की सभी युवक सस्थाओं, खासकर विद्यार्थीगण का सहयोग प्राप्त करें। उन मुहल्लों में जहां अपढ़ लोग रहते हैं तथा अपने नगर या कस्बे के आसपास ५ मील के क्षेत्र में बसे हुए सभी गांवों में कुमार और विद्यार्थी गण पहुँचें। ४-४ कुमारों की एक-एक टोली एक-एक मुहल्ला या गांव अपने जिम्मे लें। कुमार उस मुहल्ले या गांव में पहले एक सभा कराएं जिसमें उन्हें शिक्षा का महत्व समझाते हुए उनसे एक मास के पाठ्यक्रम में शामिल होने के लिए कहा जाए और उनकी सुविधा के अनुसार दूसरे दिनसे ही प्रौढ़ पाठशाला शुरू करदी जाए। एक भी विद्यार्थी पढ़ने वाला मिले तो भी काम शुरू रखा जाए।

इसका पाठ्य-क्रम निम्न प्रकार रखा जाये:—

१. एक सप्ताह में साक्षर बनाने की पुस्तक के आधार पर प्रति दिन एक घंटा उन्हें शिक्षा देकर साक्षर बना दिया जाये। यह पुस्तक परिषद् कार्यालय से दो आने के टिकट भेजने पर मिल सकती है। इस प्रकार एक सप्ताह में साक्षर बनाने के बाद उनकी इतनी योग्यता बढ़ा दी जाये जिससे वे छोटी मोटी पुस्तकें पढ़ सकें।

आध घण्टा किसी भी दैनिक समाचार पत्र से सरल, रोचक ढग से समाचारों का सार सुनाया जाए।

एक महीने का पाठ्यक्रम समाप्त होने पर निम्न विषयों पर आवश्यकतानुसार ४ या ५ दिन तक लगातार व्याख्यान हों।

१. स्वास्थ्य व ग्रामों व कस्बों की सफाई।

२. आने वाले संकट के लिए क्या करें।

३. सामाजिक कुरीतियां।

४. जो कुमार इन विषयों को पढ़ाएँ उन्हें स्वयम् कुछ पुस्तकें पढ़नी चाहिए। इस संबंध में विस्तृत आदेश परिषद् की ओर से विज्ञप्ति के रूप में प्रकाशित किए जा रहे हैं। जो सज्जन चाहें एक पत्र लिख कर मंगा लें।

—परमेश्वरदयाल, मन्त्री।

संथाल-प्रचार की संक्षिप्त रिपोर्ट

बिहार प्रान्त के पहाड़ी जिलों मे जैसे संथाल परगना, सिंहभूमि, मानभूमि, पूर्णिमा, मुंगेर हजारी बाग, रांची आदि जिलों में संथाल जाति तथा अन्य पिछड़ी पहाड़ी जातियां पाई जाती हैं। इनकी संख्या २०४८८०८ बीस लाख अड़तालीस हजार आठ सौ आठ (१९३१ के सेन्सज रिपोर्ट के आधार पर) है ये लोग प्रायः पहाड़ों की तराई तथा जंगलों के आस पास विशेष रूप से रहते हैं।

वैदिक काल से ही इन लोगों के बहुत से रस्म रिवाज आर्य तथा हिन्दुओं के ही हैं। जैसे जातकर्म, मुण्डन, छठी, कर्णवेध, विवाह, मृतक दाह संस्कार आदि आदि, अर्थात् ये लोग कर्म तथा जन्म दोनों से ही हिन्दू हैं। किन्तु ये लोग शिक्षा दीक्षा तथा सभ्यता में बिल्कुल पिछड़े हैं। इन्हीं कमजोरियों के कारण आज उन जिलों में ईसाइयों के मेडिकल, एजुकेशनल तथा धार्मिक मिशन बड़ी सफलता के साथ कार्य कर रहे हैं। और इन जातियों को अपने दूषित प्रचार के बल से हिन्दू जाति से बहुत कुछ बिलग कर रहे हैं। इतना ही नहीं, उन ईसाई मिशनों का इतना प्रबल उद्योग जारी है कि इन पहाड़ी जिलों को जिनमें वे जातियां अधिकतर पाई जाती हैं बिहार से अलग कर एक अलग सूबा बनाने का आन्दोलन जारी है। दुर्भाग्य से कुछ ईसाई वातावरण में पले हुए कुछ पहाड़ी नेता बहुत जोरों से प्रचार कर रहे हैं।

इन मिशनों को यूरोप, अमेरिका तथा अन्य ईसाई देशों से प्रचुर आर्थिक तथा नैतिक सहायता मिलती है और इसी के फल स्वरूप इन लोगों ने इन जिलों में अपना जाल विस्तृत पैमाने पर फैलाने में अच्छी सफलता प्राप्त करली है। ये ईसाई मिशन लगातार विगत ४०-५० वर्षों से इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

इधर बिहार प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा ने ईसाइयों के बढ़ते हुए प्रचार को देख कर इन स्थानों में प्रचार की व्यवस्था की है। सर्व प्रथम बाबू शीतलप्रसाद जी वैद्य भूतपूर्व अन्तरंग सदस्य प्रतिनिधि सभा ने हिन्दू तथा आर्य जनता का ध्यान लेखों के द्वारा आकृष्ट किया और उन लोगों में प्रचार की व्यवस्था की। तत्पश्चात् श्री स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ ने इस कार्य को अपने हाथ मे लिया जो इन जिलों में घूम घूम कर जोरदार प्रचार कर रहे हैं।

इस काय मे श्री प० बद्रीनारायण जी शर्मा (मुंगेर) बड़ी सहायता करते रहे हैं और अब आर्य समाज का प्रचार दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है।

इन दिनों बिहार प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा इन पहाड़ी भागों में तीन केन्द्र स्थापित कर प्रचार कर रही है।

(१) रघुनाथपुर (संथाल परगना जिला) (२) मुंगेर (मुंगेर जिला) (३) झरिया (छोटा नागपुर कमिश्नरी) इन तीनों केन्द्रों मे बिहार प्रान्तीय

आर्य प्रतिनिधि सभा के आधीन निम्नलिखित उपदेशक काम कर रहे हैं।

(क) वैतनिक

(१) श्री पं० जगन्नाथ शर्मा
(२) श्री श्रीकृष्ण सुरेन
(३) श्री ठा० नित्यानन्द जी
(४) श्री हृदयनारायण सिंह जी
(५) श्री सरदार ठाकुर जी

(ख) अवैतनिक

(१) श्री स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ
(२) श्री पं० बद्री नारायण जी शर्मा
(३) श्री पं० शीतल प्रसाद जी
(४) श्री पं० नन्दकिशोर जी

इन तीनों केन्द्रों में प्रचार के फलस्वरूप बहुत सी नयी समाजें स्थापित हो गयी हैं तथा पाठशालायें स्थापित हो गयी हैं।

२३ संथाल जाति के बालकों की शिक्षा की व्यवस्था गुरुकुल वैद्यनाथ धाम, गु० कु० अयोध्या बदायूं, आरा तथा शान्ति आश्रम, गया तथा रामसुमरन अनाथालय उलाव में की गयी है। इन सस्थाओं ने इन बालकों को निःशुल्क शिक्षा देकर सहायता की है। अतएव वे धन्यवाद के पात्र हैं। उपर्युक्त तीनों केन्द्रों में लगभग २००) दो सौ रु० प्रति मास खर्च होता है। आधा खर्च तो स्थानीय लोगों से चन्दा आदि से व्यवस्था कर लेते हैं और आधा खर्च में ½ सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली, तथा ½ बिहार प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा करती है। यद्यपि यह प्रारम्भ किया हुआ काम ईसाइयों के मुकाबिले में बहुत कम है किन्तु इस कम खर्च में भी हमारे प्रचारकों ने बड़ी सफलता प्राप्त की है। बहुत से लोग शुद्ध कर पुनः हिन्दू धर्म में दीक्षित कर लिये गये हैं।

यह लिखते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है कि हमारे सभी प्रचारकों ने बड़ी मुस्तैदी के साथ अपने २ केन्द्राध्यक्षों के नियन्त्रण में कार्य किया है। शहरों के प्रचारकों के लिए सब तरह की सुविधाएँ समुपस्थित हैं परन्तु देहातों और बीहड़ जंगलों में जहाँ धर्म के नाम से भी लोग अनभिज्ञ हैं, वहाँ भोजन आदि के प्रबन्ध की कौन बात कहे—ठहरने तक के लिए स्थान भी मिलना कठिन है—वहां प्रचार करना कितना कठिन है इसका अनुभव तो उन प्रचारकों को ही है। हमारे प्रचारकों को बहुत बार ऐसे अवसर प्राप्त हुए हैं कि दिन में कई मीलों तक पैदल चल कर भी रात्री में जगल की किसी झोंपड़ी में केवल कन्द मूल पर ही निर्भर रहना पड़ा है।

हमारी सभा ने सार्वदेशिक सभा की सहायता से विगत अप्रैल १९४१ से यह प्रचार काय प्रारम्भ किया है। हमारे प्रचारकों में एक संथाली प्रचारक भी है जो उन पहाड़ी भाषा के पूरे जानकार हैं। रघुनाथपुर में संथालों में शिक्षा देने के लिए एक स्कूल भी खोला गया है जो अच्छी तरह से चल रहा है।

आय		व्यय	
सार्वदेशिक सभा से	४४२॥)	वेतन	४२२॥)
बिहार प्र० सभा से	१५०)	मार्ग व्यय	१७०)

इसके अतिरिक्त प्रत्येक केन्द्र के लोग स्थानीय चन्दे से भी व्यय कर प्रचार कर रहे हैं।

ईसाई लोग संथालों में रोमन लिपि का प्रचार बड़े जोरों से कर रहे हैं। Mass Literacy Comittee ने भी रोमन लिपि के द्वारा ही शिक्षा देना प्रारम्भ किया किन्तु हमारी सभा ने इसका प्रबल विरोध किया।

इस कार्य में बाबू शीतलप्रसाद जी वैद्य, श्री स्वामी शिवानन्द जी तीर्थ तथा श्री पं० बद्री-नारायण जी शर्मा के कार्य सराहनीय रहे।

संथालों में प्रचार की बहुत ही आवश्यकता है। ईसाई लोग लाखों रुपया प्रति वर्ष इस दिशा में खर्च करते हैं इसलिए फिर भी संथालों में ईसाई जिस काम को एक हजार में कर सकते हैं, उसी को हम १०) रु० में कर सकते हैं। संथालों की समस्या सारे भारतवर्ष की समस्या है। अतएव सार्वदेशिक सभा को इस कार्य में पूरी २ सहायता मिलनी चाहिये।

वासुदेव शर्मा प्र० मन्त्री
वि० प्रा० आ० सभा

सार्वदेशिक सभा का चुनाव

११-४-४२ को सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि का वार्षिक अधिवेशन श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के सभापतित्व में हुआ जिसमें नये वर्ष के लिए निम्न पदाधिकारी चुने गए।

प्रधान—माननीय श्री घनश्यामसिंह गुप्त, स्पीकर, लेजिस्लेटिव एसेम्बली सी० पी०।

उपप्रधान—श्री पं० बुद्धदेव विद्यालंकार।
राय बहादुर पं० गंगाप्रसाद एम० ए० चीफ़ जज रिटा०।
श्री पं० विनायकराव विद्यालंकार।

मन्त्री—प्रो० इन्द्र विद्यावाचस्पति।

कोषाध्यक्ष—श्री ला० नारायणदत्त जी ठेकेदार।

पुस्तकाध्यक्ष—श्री ला० ज्ञानचन्द्जी ठेकेदार।

अन्तरंग सदस्य—श्री महात्मा नारायण स्वामी प्रतिष्ठित। श्री प० वासुदेव शर्मा 'पटना, विहार प्रांत। श्री प्रो० ताराचन्द गाजरा, एम० ए० शिकारपुर, सिंधप्रांत। श्री कुंवर चाँदकरण शारदा, अजमेर, राजस्थान प्रांत। श्री मिहरचंद धीमान् कलकत्ता, बंगाल प्रांत। श्री बा० ज्योतिस्वरूप रईस, इटावा, दानियों के प्रतिनिधि। श्री रायसाहब अमृतराय, अम्बाला, पंजाब प्रांत। श्री बा० नारायणदास कपूर लाहौर, पंजाब प्रांत। श्री पं० ज्ञानचन्द आर्य, बी० ए०, लाहौर, पंजाब प्रांत। श्री राजगुरु धुरेन्द्र शास्त्री, संयुक्त प्रांत। श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०, इलाहाबाद, संयुक्त प्रांत। श्री प्रो० महेन्द्रप्रताप शास्त्री एम० ए०, देहरादून, संयुक्त प्रांत। श्री, बा० श्रीराम जो, आगरा, प्रवासियों के प्रतिनिधि। श्री ला० देशबन्धुजी गुप्त एम० एल० ए, (पंजाब) देहली, समाजों के प्रतिनिधि।

रक्षा सम्बन्धी निश्चय

सभा ने आगामी वर्ष के लिये ५६०१५ रु० का बजट स्वीकार किया और जनता की रक्षार्थ निम्न निश्चय किया है।

युद्ध से पैदा हुई स्थिति को दृष्टि में रखते हुए सार्वदेशिक सभा प्रांतीय सभाओं के सहयोग से जनता की रक्षा के लिए निम्न प्रकार के उपाय करे—

१. जहाँ आक्रमणों की आशंका हो, वहाँ के स्त्री-बच्चों तथा परिवार को सुरक्षित स्थानों पर रखने के लिए अस्थायी कैम्प बनाये।

२. ऐसे लोगों की धन-सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए उपाय किए जायें।

३. आर्य वीर दल स्थापित करने के लिए शिक्षक नियत किए जायें और वीरदल जारी किए जायें।

४. जनता में यह उत्साह पैदा किया जाय कि पुरुष अपने अपने स्थान में रहकर स्थिति का मुकाबला करें।

५. इस काम के लिए यह सभा अन्तरंग सभा को अधिकार देती है कि २५००० रु० का प्रबन्ध करे। आवश्यकतानुसार इस काम के लिए रक्षा-निधि से धन व्यय किया जा सकता है।

६. यह सभा अन्तरंग सभा को यह भी आदेश देती है कि इन कामों की पूर्ति के लिए उचित कार्यवाही करे।

—मन्त्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का

कार्य-विस्तार

दक्षिण तथा हैदराबाद राज्य में कार्य

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के पश्चात् सभा ने हैदराबाद राज्य में रचनात्मक कार्य-क्रम का ३ वर्ष का कार्य-क्रम बनाया था। उस कार्यक्रम में निम्न बातें सम्मिलित थीं.—

१. हैदराबाद में जो आर्य सत्याग्रही वीर गति को प्राप्त हुए हैं उनका किसी उपयुक्त स्थान पर और किसी न किसी रूप मे आर्यसमाजों में अच्छा स्मारक बनाया जाय। धर्मवीरों के परिवारों की यथावश्यकता धन की सहायता की जावे।

२. हैदराबाद शहर में एक हाई स्कूल खोला जाये और यथा सम्भव अन्य स्थानों पर भी छोटे बड़े स्कूलों की स्थापना की जाये।

३. हैदराबाद राज्य के अन्तर्गत ग्रामों और नगरों में वैदिक धर्म प्रचार को तेजी से बढ़ाये जाने के उपाय किये जायें।

४. हैदराबाद राज्य में ग्रामों के विशेष केन्द्रों में सभा की ओर से ५००) तथा कस्बों में १०००) की लागत के आर्य समाज मन्दिर बनाये जायें और किराये के मकानों में समाज मन्दिरों के अस्थायित्व को दूर करके उन्हें स्थायित्व प्रदान किया जाये।

५. सभा के प्रकाशन विभाग को सुदृढ़ और उन्नत किया जाये।

६. इस कार्यक्रम की संख्या ३ को सफल बनाने के लिये सारे दक्षिण भारत मे प्रचार की विस्तृत योजना तैयार करके उसे कार्य में परिणत किया जाये।

(१)

(क) हैदराबाद के धर्म युद्ध में वीर गति को प्राप्त हुए धर्मवीरों के परिवारों को इस समय ६३) मासिक की सहायता दी जा रही है। इसके अतिरिक्त हैदराबाद सरकार ने जिन आर्य भाइयों को बिना मुकदमा चलाये बन्दीगृह में डाला हुआ है उनके परिवारों को भी २५) मासिक सहायता दी जा रही है। इस समय तक ३५००) रुपया इस कार्य में व्यय हो चुका है।

(ख) वीरगति को प्राप्त हुए इन हुतात्माओं के स्मारक में पीतल की पट्टिकायें समाज मन्दिरों तथा संस्थाओं मे रखवाये जाने की व्यवस्था की गई थी। इस व्यवस्था के अनुसार अब तक ५० समाजों में ये पट्टिकायें रखी गई हैं। एक पट्टिका का मूल्य २४) है। जो समाजें पीतल की पट्टिका का व्यय भार वहन करने में असमर्थ हैं उन्होंने अपने यहां हुतात्माओं के छपे हुए कलेण्डर रख कर अथवा समाज मन्दिरों मे उपयुक्त स्थान पर चूने व सीमेंट से हुतात्माओं के नाम खुदवाकर उनकी स्मृति को स्थिर किया है परन्तु अधिकांश समाजों की प्रवृत्ति पीतल की पट्टिकायें ही रखने की है।

(ग) हुतात्माओं की स्मृति में सभा की ओर से 'बलिदान' नामक पुस्तक प्रकाशित की जा

चुकी है जिसमें औपन्यासिक रूप में सरस भाषा में १३ बलिदानों की विशद गाथायें अंकित हैं। शेष बलिदानों की गाथायें भी शीघ्र से शीघ्र प्रकाशित करने का सभा का विचार रहा है परन्तु कई अनिवार्य्य कारणों से अभी तक यह विचार मूर्त रूप धारण नहीं कर सका है। ज्योंही सभा उनके प्रकाशन की अवस्था में हुई त्यों ही वे प्रकाशित करदी जायेंगी।

(घ) हुतात्माओं के स्थायी केन्द्रीय स्मारक बनाये जाने के सम्बन्ध में सर्व सम्मत मत न बनने से सभा इस कार्य को सम्पादित नहीं कर सकी है। एक विचार यह था कि शोलापुर की ऐतिहासिक आर्य कान्फ्रेंस तथा हुतात्माओं की स्मृति में शोलापुर में आर्य समाज मन्दिर के रूप में यह स्मारक बनाया जाये। सभा इसी विचार को क्रियान्वित किये जाने के प्रयत्न में है। शोलापुर में १-२ मकान देखे भी जा चुके हैं परन्तु उपयुक्त स्थान न मिलने के कारण अभी तक यह कार्य नहीं हो सका है। इस कार्य के लिये आगामी वर्ष के बजट में १५ हजार रुपये का व्यय रखा गया है।

(२)

(क) हैदराबाद नगर में 'केशव आर्य हाई स्कूल' की स्थापना करके कार्यक्रम के दूसरे भाग की पूर्ति की गई है। इस समय यह स्कूल मिडिल तक है और शीघ्र ही हाई स्कूल बनेगा। इस समय स्कूल में २६३ विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। छोटी क्लासों में शिक्षा का माध्यम हिन्दी और मिडिल क्लासों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी है। स्कूलीय तथा धार्मिक शिक्षा की दृष्टि से स्कूल को आदर्श संस्था बना कर प्रचार का सुदृढ़ केन्द्र बनाये जाने का यत्न हो रहा है। सभा ने इस स्कूल की सहायतार्थ २५ हजार रुपया दिया है तथा हैडमास्टर की १२५) रुपया मासिक दक्षिणा भी देती रही है। स्कूल की नई इमारत बन रही है और बहुत शीघ्र स्कूल अपनी इस इमारत में चला जायेगा।

हैदराबाद के कलम परगने में लड़के लड़कियों और वयस्कों की ४० पाठशालाएँ चलती रही हैं।

इसके अतिरिक्त वरंगल जिले में हिन्दी प्रचार के लिये एक हिन्दी पाठशाला सभा के व्यय पर चल रही है।

(३)

हैदराबाद राज्य के लिये ट्रेन्ड उपदेशकों की प्राप्ति के लिये शोलापुर उपदेशक विद्यालय में ट्रेन्ड करके २५ उपदेशक कार्य पर लगाये गये थे। इन सब के भोजन तथा पढ़ाई आदि का व्यय सभा ने स्वयं उठाया था। इस कार्य पर सभा का ६२६४-२-३ व्यय हुआ था। हैदराबाद राज्य में ३२ राज्य के और ४ उत्तर भारत के उपदेशक प्रचार करते रहे हैं।

मद्रास प्रान्त में कई वर्ष पूर्व से सभा की ओर से प्रचार कार्य हो रहा था। हैदराबाद राज्य के आसपास प्रचार को विस्तृत किये जाने के महत्व को दृष्टि में रखकर सभा के लिये यह प्रचार कार्य विस्तृत करना आवश्यक हो गया था। अतः सभा ने ७ उपदेशक मद्रास प्रान्त में बढ़ाये थे और ये प्रायः सब उपदेशक तामिल, तिलगु, कनडी, मलयालम और मराठी आदि लोक भाषाओं में प्रचार करते हैं और आवश्यकता-

सार अंग्रेजी संस्कृत आदि में भी प्रचार कार्य रते हैं। २ उपदेशक महाराष्ट्र प्रान्त में रखे थे। सब उपदेशक अभी तक प्रचार कार्य कर रहे हैं। इस कुल प्रचार पर सभा का ८२४५६-५-८ यय हुआ है जो सत्याग्रह के बचे हुए धन से था श्री बिड़ला जी की सहायता से किया गया है। इस प्रचार के फल स्वरूप हैदराबाद राज्य में ६ तथा दक्षिण भारत में २० नई समाजें स्थापित हो गई हैं,

मद्रास प्रांत में आर्य प्रतिनिधि सभा का भी निर्माण हो गया है जिसमें १३ निम्न समाजें विष्ट हो गई हैं:—

१. आर्य समाज कुचीट्ठी, २. आर्य समाज नाली, ३. आर्य समाज पाया पारु।

४. आर्य समाज गुडप्पा, ५. आर्य समाज डेपाली, ६. आर्यसमाज भीमवरम।

७. आर्यसमाज प्रसंगुला पाडु आंध्र प्रांत में।

८. आर्यसमाज मंगलौर तथा ६. कार्कल क्षिण कनारा में।

१०. श्री रामपुरम बंगलौर मैसूर राज्य में।

११. कनानौर तथा १२. कोट्टायम मालाबार में।

१३. आर्यसमाज मद्रास सेन्ट्रल।

(४)

हैदराबाद राज्य में मन्दिरों के निर्माण के लिए सभा ने हैदराबाद मन्दिर निर्माण फण्ड के नाम से एक निधि खोली थी। इस निधि में १०६८६ रु० नकद प्राप्त हुए हैं। इस निधि के लिए २०५१४ रु० वायदों का अभी शेष है। इनमें से ६५०० रु० समाज मन्दिरों के निर्माण में व्यय हो चुके हैं। भूमि की प्राप्ति, नकशों की स्वीकृति और निर्माण की सुव्यवस्था के कारण ही यह कार्य अपेक्षित गति से नहीं चल रहा है। राज्य की ओर से नकशों की स्वीकृति में आवश्यकता से अधिक विलम्ब हो जाता है। इस कार्य में हैदराबाद के आर्यसमाजों को सहायता करने का उत्तर भारत के समाजों में अधिक प्रेम और उत्साह देख पड़ता है। सभा इस भाव का आदर करती हुई उससे पूरा पूरा लाभ उठाने के यत्न में है। जिन व्यक्तियों और समाजों ने इस शुभ कार्य के लिए धन के वायदे किए हुए हैं, उन्हें शीघ्र धन भेज देना चाहिए। यह सभा प्रत्येक प्रकार से पूर्ण सन्तोष कर लेने पर ही यह सहायता भेजती है।

(५)

साहित्य द्वारा प्रचार की ओर सभा का विशेष ध्यान रहा है। हैदराबाद राज्य और दक्षिण भारत के प्रचार में सभा ने इस कार्य को विशेषरूप से बढ़ाने का यत्न किया है। अंग्रेजी टामिल, तिलगू, मलयालम और कनारी में लगभग ६० ट्रैक्ट और पुस्तकें लिखाये तथा लगभग १ लाख की संख्या मे सभा के व्यय पर प्रकाशित कराये गये हैं। इस कार्य पर सभा का ४५०० रु० व्यय हुआ है। तामील में २४ ट्रैक्ट ४६००० की संख्या में मलयालम में १६ ट्रैक्ट २०००० की संख्या में, तिलगू भाषा में ११ ट्रैक्ट लगभग २७००० संख्या में छपाकर वितरण किये गए हैं।

सभा के इस समस्त कार्य को हैदराबाद राज्य तथा दक्षिण भारत में इच्छित सफलता मिली है यह कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।

हैदराबाद राज्य की ओर से प्रचार तथा समाज की अन्य प्रगतियों में जो छोटी मोटी बाधाएँ उपस्थित होती हैं वे पारस्परिक विचार और पत्र व्यवहार से सहज ही दूर हो जाती हैं। हमें आशा है प्रचार की यह गति उत्तरोत्तर बढ़ती तथा दृढ़ होती जायगी।

इस प्रचार कार्य में श्रीयुत दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला ने इस समय तक २०००० रुपये की सहायता प्रदान कर अपने धर्म प्रेम का सुन्दर परिचय दिया है।

सभा के अन्यान्य कार्य

जनगणना

गत जनगणना में आर्य जगत के मार्ग प्रदर्शन के कार्य तथा बाधाओं के निराकरण कार्य को सभा ने बड़े पैमाने पर और सुव्यवस्थित रूप में हाथ में लिया था और सभा के प्रयत्नों और समूचे आर्य जगत् के हार्दिक सहयोग और कर्तव्य पालन के फल स्वरूप यह कार्य अत्यन्त सन्तोषजनक रीति से सम्पन्न भी हुआ था। इस बार भारत सरकार ने गत जनगणनाओं की नाईं आर्यों इत्यादि की संख्याएँ पृथक् नहीं कराई हैं वरन् अपने व्यय पर जो संख्या प्राप्त करना चाहे उनके लिए संख्याओं के दिये जाने की व्यवस्था करदी गई थी। अतः आर्यों की संख्या पृथक् अंकित नहीं हुई। अवश्य अपने व्यय पर जहां के अंक प्राप्त हो सकते थे उनके प्राप्त करने का यत्न किया गया है और इस समय तक प्राप्त अंकों की तालिका १९३१ की जनगणना के अंकों के साथ नीचे दी जाती है:—

नाम स्थान	सन् १९३१ में कुल संख्या	सन् १९४२ में कुल संख्या
मध्य प्रदेश	१८३७	३१६८०
ग्वालियर	११०८	३६३४
बंगाल	२०१	६८०३०
मैसूर	४५	४२७
सी० आई०	३०९७	३९०४

मोटा अन्दाजा है कि १९४१ की जनगणना में आर्यों की संख्या ४० लाख के लगभग होगी।

हैदराबाद राज्य में आर्यों की जनगणना के अंकित होने में राज्य कर्मचारियों द्वारा प्रस्तुत की हुई अनेक विघ्न बाधाओं के होते हुए भी हजारों की संख्या में लोगों ने अपने को आर्य लिखाया है विस्तृत रिपोर्ट हैदराबाद आर्य प्रति सभा की ओर से शीघ्र प्रकाशित होगी जिसमें आर्यों की ठीक २ संख्या ज्ञात होगी।

प्रचार विस्तार

सभा की प्रचार विस्तार की योजना के अनुसार कुमायूँ, छोटा नागपुर, सेन्ट्रल इण्डिया, मध्य प्रदेश, आसाम और उड़ीसा में प्रचार कार्य हो रहा है। इन क्षेत्रों में जनता घोर अविद्या अन्धकार में विलीन होने के कारण सहज ही विधर्मियों का शिकार बन जाती है। अतः वहां विधर्मियों ने सुदृढ़ अड्डे बनाये हुए हैं। स्कूलों, अस्पतालों इत्यादि के जाल फैलाये हुए हैं और आये दिन बड़ी संख्या में कृष्ण और राम के नाम लेवा मुसलमानों और ईसाइयों की गोद में जा रहे हैं।

सभा के लिये यह स्थिति असह्य थी अतः अपनी स्थिर आय के न होते हुए भी सभा ने इस कार्य को अपने हाथ में लिया।

कुमायूँ

इस प्रान्त में सभा के ६ प्रचारक काम कर

रहे हैं। चार उपदेशक और भेजे जाने वाले हैं। गत वर्ष गढ़वाल को डोला पालकी की समस्या का हल किया गया था, प्रसन्नता है उसके फलस्वरूप इस वर्ष २३ बारातें शान्ति पूर्वक निकल गई हैं। हमें आशा है यह समस्या शीघ्र ही भूतकाल की वस्तु बन जायगी।

छोटा नागपुर

संथाल, मुण्डा, आदि-'आदि वासियों' में सभा की ओर से ४ प्रचारक कार्य कर रहे हैं और उनकी मुख्य प्रगति शुद्धि कार्य है। इस समय तक हजारों की संख्या में ये लोग ईसाई बन चुके हैं। इस इलाके को ईसाई मिशनरी अपनी खेती समझते हैं अतः यहाँ का प्रचार बहुत व्यय तथा कष्ट साध्य है। सभा की इच्छा है वहां शीघ्र से शीघ्र अपनी २-४ शिक्षा तथा रक्षा संस्थाएँ खुल जावें, देखें यह इच्छा कब पूर्ण होती है?

सेन्ट्रल इण्डिया तथा मध्यप्रदेश

यहां भी मुख्यतया भीलों और गोंडों को विधर्मी लोगों से बचाने की परम आवश्यकता है। इस क्षेत्र में सभा के दो प्रचारक काय कर रहे हैं। यदि कोई शिक्षित अनुभवी और त्यागी भाई इन क्षेत्रों में प्रचार के लिये अपना जीवन दान दे दें तो क्या ही अच्छा हो। इन क्षेत्रों में औषधालय इत्यादि की कई योजनाएँ सभा के आधीन हैं जिनके लिये हजारों रुपये दरकार हैं।

उड़ीसा

यहाँ प्रचार कार्य का श्री गणेश हो चुका है। मौखिक प्रचार के साथ उड़िया भाषा में साहित्य तैयार किये जाने पर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। क्योंकि बिना उड़िया साहित्य के प्रचार की सफलता में विलम्ब होने की आशङ्का है। सत्यार्थप्रकाश उड़िया भाषा में छप चुका है। संस्कार विधि का अनुवाद हो गया है। इसके अतिरिक्त कई छोटे छोटे ट्रैक्ट अनुदित हो रहे हैं। इस समय उड़ीसा प्रांत के रहने वाले एक संन्यासी वहां प्रचार कर रहे हैं। इस वर्ष एक प्रचारक और भेजा जायगा।

आसाम, बङ्गाल

आसाम में भी कार्य पुनः आरम्भ किया गया है। सभा का यत्न है कि इस प्रान्त में भी लोक भाषा में प्रचुर मात्रा में साहित्य तैयार कराया जाय।

नैपाल

इस प्रांत में प्रचार की कई कठिनाइयां हैं परन्तु नैपाल में वैदिक धर्म का प्रचार कार्य सभा की दृष्टि में है।

इस कुल प्रचार का आगामी वर्ष का बजट ४००० रु० का रखा गया है।

केन्द्रीय आर्य धर्म रक्षा समिति

संयुक्त प्रान्त के पश्चिमी जिलों में आर्य धर्म की अवहेलना करके चोटी तथा जनेऊ आदि वैदिक चिह्नों का परित्याग कराने का दुर्भाग्य पूर्ण आन्दोलन गत वर्ष प्रकट रूप में जनता के सामने आया था। सभा के लिये यह स्थिति सह्य नहीं हो सकती थी। इस आन्दोलन के निराकरणार्थ यत्न किया जा रहा है। इस समय वहाँ ६ प्रचारक काम कर रहे हैं और उन्हें अपने काम में पर्याप्त सफलता मिल रही है। आगामी वर्ष के लिये इस काय का ४१७५ रु० का बजट बनाया गया है।

सार्वदेशिक आर्य पुस्तकालय

देहली में आर्य साहित्य के सर्वाङ्ग पूर्ण पुस्तकालय के अभाव की पूर्ति तथा देहली में बैठ कर अनुसंधान करने वालों को पूरी पूरी सामग्री उपलब्ध हो सके और बाहर कहीं न जाना पड़े, इस विचार से सभा ने उपर्युक्त पुस्तकालय को बनाना प्रारम्भ कर दिया है। इस सम्बन्ध में सभा ने समाजों के नाम एक विशेष सरक्यूलर निकाल कर अपनी आवश्यकताएँ बतलाई हैं। इस समय तक इसमें विविध विषयों की लगभग ४०० पुस्तकें एकत्र हो गई हैं। सभा इस कार्य को शीघ्र से शीघ्र सम्पन्न कर देना चाहती है।

न्याय सभायें

आर्य समाज तथा आर्य पुरुषों के आन्तरिक झगड़ों के निपटारे के लिये आर्य समाज के प्रबन्ध विभाग से बिलकुल पृथक् सार्वदेशिक प्रान्तीय और स्थानीय न्याय सभाओं की योजना की जा रही है। पंजाब हाईकोर्ट के रिटायर्ड जज माननीय श्री सर जयलाल जी ने यह विधान तैयार कर दिया है। प्रान्तीय सभाओं की सम्मतियाँ प्राप्त की गई हैं। १-२ प्रान्तीय सभाओं की सम्मति प्राप्त होनी शेष है।

उपसंहार

हैदराबाद और दक्षिण भारत में प्रचार कार्य सत्याग्रह के बचे हुए प्रान्तीय सभाओं तथा आर्य समाजों इत्यादि से प्राप्त हुए तथा श्री बिड़ला जी की सहायता के धन से किया गया है। अब इस निधि मे लगभग १२०००) रु० जमा हैं और लगभग १६०००) रु० प्रान्तीय सभाओं से प्राप्तव्य है। अतः आगामी वर्ष के लिये हैदराबाद और दक्षिण प्रचार के लिये ३१०००) के व्यय का बजट बनाया गया है। अगले वर्ष सभा और उसके द्वारा आर्य जगत् के सामने यह प्रश्न उपस्थित होगा कि दक्षिण भारत के बढ़े हुए प्रचार कार्य के लिये क्या व्यवस्था की जाये।

सभा के गढ़वाल, आसाम इत्यादि के प्रचार विस्तार तथा अन्यान्य महत्वपूर्ण कार्यों के लिये स्थिर आय का साधन नहीं है। उधर आर्य धर्म और संस्कृति की रक्षा तथा आर्य एवं हिन्दू जगत् के मार्ग प्रदर्शन की उत्तरदायिता दिनों दिन बढ़ती जाती है। अत प्रत्येक आर्य समाज तथा आर्य इस विवरण को पढ़ कर गम्भीरता पूर्वक इस पर विचार करें और अपने कर्त्तव्य का पालन करें।

आर्य समाज स्थापना दिवस के उपलक्ष में

प्राप्त दान की सूची

आर्य समाज स्थापना दिवस के उपलक्ष में आर्य समाजों से अप्रैल के अन्त तक निम्न सूची के अनुसार दान प्राप्त हुआ है। अभी तक अनेक समाजों ने इस दिन के उपलक्ष में अपना भाग नहीं भेजा है। अतः निवेदन है कि वे अपना भाग शीघ्र से शीघ्र भेज देवें और जिन समाजों से सूक्ष्म राशियाँ प्राप्त हुई हैं उन्हें और संग्रह करने का उद्योग करना चाहिए और यथाशक्ति संग्रह करके धन इस सभा को भेजना चाहिए ताकि सभा को अपना प्रचार कार्य चलाने में सुविधा हो। आशा है समाजें हमारे इस निवेदन पर ध्यान देंगी।

पंजाब प्रान्त की समाजें (गुरुकुल सैक्सन)

क्रम संख्या	नाम आर्य समाज	प्राप्त राशि
१.	साबुन बाजार लुधियाना	१४५)
२.	साहो वाला	२)
३.	पसरूर	३।≈)
४.	चीचावतनी	१०)
५.	गुजरांवाला	१०)
६.	दीनानगर	३)
७.	पिंडी भटियां	५)
८.	मिठा टिवाना	२)
	संयुक्त प्रान्त की समाजें	
९.	मुजफ्फरनगर	४०)
१०.	केराकत	२)
११.	गंगोह	१०)
१२.	मुगलसराय	४)
१३.	गुलावठी (बुलन्दशहर)	१५)
	राजस्थान प्रान्त की समाजें	
१४.	संयुक्त अधिवेशन अजमेर	११)
१५.	छोटी सादड़ी	४)
१६.	बीकानेर	१०)
	बिहार प्रान्त की समाजें	
१७.	आरा	५)
१८.	नवादा (गया)	५)
१९.	वारसली गंज (बिहार)	४।≈)
	बंगाल प्रान्त की समाजें	
२०	खिदरपुर कलकत्ता	१०)
	बम्बई प्रान्त की समाजें	
२१.	बुलसाड़	१०)
२२.	म० चन्द्रमोहन जी बम्बई	२०)
	सिंध प्रान्त की समाजें	
२३	आर्य प्रतिनिधि सभा सिंध द्वारा	६।।।)
	हैदराबाद स्टेट की समाजें	
२४.	हिंगोली	८।।≈)
	मद्रास प्रान्त की समाजें	
२५.	हिरयपड़क	२।।)
२६.	उडुपी	१।।)

समय आ गया है

दिखा दो कि तुम क्या हो।

गोस्वामी तुलसीदास जी कह गये हैं:—

धीरज, धर्म, मित्र अरु नारी।
आपत काल परखिये चारी॥

नियम कुछ व्यापक है। वीर व्यक्तियों तथा वीर जातियों की भी परीक्षा विपत्ति में होती है। हैदराबाद में आर्य समाज पर विपत्ति आई। आर्य समाज ने दिखा दिया कि वह किस धातु का बना हुआ है। आर्य समाज ने ही क्यों सारी आर्य जाति ने अपनी शक्ति और प्रेम का परिचय दिया। कश्मीर से कुमारी तक और अटक से कटक तक कौन हिन्दू था जिसके चेहरे पर उस शान्तिमय संग्राम के आरम्भ के दिन चिन्ता न थी और विजय के दिन उल्लास न था। जब प्रभु का धन्यवाद करने के लिये इकट्ठे हुये थे तो सारी आर्य जाति का सिर झुका हुआ था। बच्चे से लेकर बूढ़े तक सब निर्बल के बल 'राम' का अर्थ समझ रहे थे।

अब ठीक उसी प्रकार का समय आया है किन्तु यह युद्ध उससे भी मीठा है। इसमें कोई हिन्दू मुसलमान का भेद, देश विदेश का भेद नहीं। हमारा शत्रु है युद्ध से उत्पन्न होने वाला संकट। हमें क्या करना होगा?

१. निराश्रितों को आश्रय देना होगा।
२. भूखों को अन्न देना होगा।
३. घायलों को सेवा करनी होगी।
४. दुर्बलों को गुंडों के पंजे से बचाना होगा।

निराश्रितों को आश्रय देने के लिये मकान बनवाने होंगे चाहे कितने ही सादे हों परन्तु गर्मी, सर्दी, बरसात से बचाव तो कर सकें। इस कार्य के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने २५ हजार रुपया पास कर दिया है तथा गुरुकुल में शरणार्थियों के लिये स्थान बनाने का उपक्रम भी हो गया है। गाजियाबाद में सार्वदेशिक सभा की ओर से शरण केन्द्र बनाने की योजना हो रही है।

अन्न भी लिया जायेगा, घायलों की सेवा के लिये सामग्री भी ली जायेगी परन्तु यह सब होगा कहां से? यह समय है कि राजा महाराजा, सेठ, साहूकार, धनी, निर्धन, देशी विदेशी सब आर्य समाज के झंडे के नीचे इकट्ठे हों। हमें तो विश्वास है कि इस पवित्र कार्य में तो सरकार भी हमारा हाथ बटायेगी।

मैं आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की ओर से ग्वालियर नरेश से मिला था। उनका उत्तर बड़ा उत्साह वर्धक था। विश्वास है कि अन्य राजा महाराजा भी हमारे साथ होंगे, केवल हमारे दरवाजा खटखटाने की देर है।

घायलों की सेवा के लिये डाक्टरों तथा परिचारिकाओं की आवश्यकता है। यह स्थान है जहां स्त्री जाति अपने जौहर दिखा सकती है। स्वयं सेविकायें अपने नाम भेजें। डाक्टर लोग भी इस सेवा कार्य के लिये अपने नाम भेजें। आज तक जब जब मांग आई आर्य डाक्टर कभी

पीछे नहीं रहे। आर्य डाक्टरो! अब फिर समय आया है नाम भेजो।

तीसरा कार्य निर्बलों की गुंडों से रक्षा का कार्य है। इसके लिये आर्य वीर दल में नाम आ ही रहे हैं। आर्य नौजवानो! माता ने जिस दिन के लिये जन्म दिया था वह आ गया। बड़े से बड़े संकट में सब भेद भुला कर गुंडों से निर्बलों की रक्षा करो। क्या तुम सैनिक हो? नहीं तो आज ही नाम भेजो।

तुम्हारे नायक कौन हैं?

हैदराबाद के विजेता श्री घनश्यामसिंह जी सार्वदेशिक सभा के प्रधान हैं। स्वामी श्रद्धानन्द जी के सुपुत्र पं० इन्द्र जी सभा के मन्त्री हैं। सदा विजय से सजने वाली आर्य जनता सैनिक बनकर खड़ी है। इससे अच्छा सुयोग कब मिलेगा। उठो! संसार को दिखा दो कि तुम किस धातु के बने हो।

बुद्धदेव विद्यालंकार
उपप्रधान
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
देहली।

रक्षा कार्य और हमारे मूल मन्त्र

युद्ध आत रक्षा कार्य के लिये सार्वदेशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा की साधारण सभा ने अपने ११ और १२ अप्रेल १९४२ के अधिवेशन में एक महत्व पूर्ण प्रस्ताव पास किया है, जो इस प्रकार है:—

१. जहाँ आक्रमणों की आशंका हो, वहाँ के स्त्री-बच्चों तथा परिवार का सुरक्षित स्थानों पर रखने के लिये अस्थायी कैम्प बनाये।

२. ऐसे लोगों की धन-सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिये उपाय किये जायें।

३. आर्य वीर दल स्थापित करने के लिये शिक्षक नियत किये जायें और वीर दल जारी किये जायें।

४. जनता में यह उत्साह पैदा किया जाय कि पुरुष अपने अपने स्थान में रहकर स्थिति का मुक़ाबला करें।

५. इस काम के लिये यह सभा अन्तरङ्ग सभा को अधिकार देती है कि २५००० रु० का प्रबन्ध करे। आवश्यकतानुसार इस काम के लिये रक्षा-निधि से धन व्यय किया जा सकता है।

६. यह सभा अन्तरङ्ग सभा को यह भी आदेश देती है कि इन कार्यों की पूर्ति के लिये उचित कार्यवाही करे।

इस प्रस्ताव को क्रियान्वित करने के लिये सभा की अन्तरंग सभा उपाय कर रही है। हमें यह देख कर प्रसन्नता है कि प्रान्तीय सभाओं के अधिकारी उपर्युक्त प्रस्ताव के उद्देश्यों को सफल बनाने के लिये यत्न कर रहे हैं।

वर्तमान भीषण समय में आर्य्य समाजों को आवश्यकतानुसार दो प्रकार का रक्षा कार्य करना है। एक तो आर्य्य समाजियों की पारस्परिक रक्षा का कार्य और दूसरा दुखी प्राणी मात्र की रक्षा का कार्य। श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रांत ने 'आर्य्य मित्र' में 'लड़ाई और हम' शीर्षक में सार्वदेशिक सभा के उपर्युक्त प्रस्ताव की व्याख्या स्वरूप आर्य्य समाजों के द्वारा किये जाने योग्य कुछ बातों का निर्देश किया है।

दूसरे प्रकार के रक्षा कार्य के विषय में उन्होंने लिखा है कि आर्य भाइयों को रक्षा केन्द्र बनाने चाहिएँ और साम्प्रदायिक विचार छोड़कर सभी का सहयोग प्राप्त करके निस्वार्थ भाव से काम करना चाहिए। प्राणी मात्र की सेवा तो आर्य समाज का कर्त्तव्य ही है। उसके लिए आर्यों को किसी उपदेश, निर्देश वा आदेश की आवश्यकता नहीं है।

दुर्भाग्य से साम्प्रदायिक भेद भाव के बहुत बढ़ जाने के कारण भारतवासियों में एक दूसरे के प्रति अविश्वास और घृणा उत्पन्न हो गई है और आर्य समाज के प्रति भी बहुत भ्रम फैला दिया गया है। ऐसी अवस्था में आर्य समाजियों को साम्प्रदायिक भेद भावों से ऊपर रह कर ही अपने प्रेम और सेवा से उस अविश्वास की वास्तविकता को दूर करके भ्रम को मिटाना चाहिए। इसीलिए इस प्रकार के निर्देशों की आवश्यकता है।

पारस्परिक रक्षा कार्य में अग्रसर होते हुए आर्यों को अपने व्यक्तिगत और सामाजिक भेद भाव और मनोमालिन्य को भुलाकर एक हो जाना चाहिए जिस प्रकार हैदराबाद सत्याग्रह के काल में उन्होंने अपनी एकता का संसार को परिचय दिया था और लोगों को यह कहने के लिए बाधित किया था कि आर्य समाजी आपस में तो प्रायः लड़ते हैं परन्तु समय पड़ने पर एक हो जाते हैं। ऐसा ही समय अब उपस्थित हुआ है। आशा है अब भी आर्य भाई और आर्य संस्थाएँ पहले से बढ़कर प्रेम और सौहार्द का परिचय देंगे।

आर्य मन्दिर और ए० आर० पी०

आर्य समाज मन्दिर, ए० आर० पी० आदि सरकारी रक्षा कार्यों मे प्रयुक्त होने दिए जाएँ या नहीं, यह प्रश्न आर्य समाज के सम्मुख अभी कुछ दिन हुए उपस्थित हुआ है। ए० आर० पी० की प्रगतियों के लिए कहीं कहीं राज्याधिकारियों द्वारा आर्य मन्दिरों के प्रयोग की माग की गई है। इस सम्बन्ध मे समाजों ने अपनी अन्तरङ्ग सभाओं के निश्चयों के अनुसार उत्तर भेज दिए हैं। इस विषय में आर्य समाज की एक सुनिश्चित नीति का निर्धारण अत्यावश्यक है। जहाँ तक हमें ज्ञात है सरकारी नियमों (Defence Rules) के अनुसार उपासना गृह इस प्रकार की प्रगतियों के केन्द्र बनाये जाने से मुक्त हैं। आर्य्य समाज भी एक उपासना गृह है, अतः यह भी मन्दिरों और मस्जिदों की नाईं उपासना गृह माना जाना चाहिए। हमे आश्चर्य है कि सरकारी अधिकारी आर्य्य समाज मन्दिर को उपासना-गृह न मानने तथा सरकारी युद्ध रक्षा कार्यों के प्रयोग के लिये मागने की भूल क्यों करते हैं? हमें आशा है कि इस विषय मे शीघ्र से शीघ्र नीति का निर्धारण हो जायगा।

नवीन-योजना—

उपर्युक्त शीर्षक में युद्ध-जात रक्षा कार्य के सम्बन्ध में सहयोगी 'आर्य मित्र' लिखता है:—

इस सम्बन्ध मे दो बातों की ओर साधारणतया भारतीय नेताओ का और विशेषया आर्य समाज के नेताओ का ध्यान आकृष्ट होना चाहिए। पहली बात यह है कि जो लोग एक स्थान से भयभीत होकर दूसरे स्थान पर रक्षार्थ जाते हैं वहा उनके निवासादि की आवश्यक सुविधाएं करने का संगठित आयोजन होना आवश्यक है। इस कार्य के लिये संगठित रूप से रक्षा के ऐसे स्थानों का पूर्व से ही प्रबन्ध होना चाहिए कि वहा जाकर शरणार्थी यथोचित रूप से त्राण प्राप्त कर सकें। किन्तु इस प्रकार के व्यापक प्रबन्ध का सुसंचालन तभी सम्भव हो सकता है जब कि विभिन्न स्थानो में आवश्यकतानुसार रक्षा समितियों की सुव्यवस्था की जाय। इसलिये पुर नगर और ग्राम की आर्यसमाजों में अन्य भारतीय कार्यकर्त्ताओं के सहयोग से एक रक्षा समिति का निर्माण किया जाय तो देश कालोचित परिस्थिति

के अनुसार सर्वसाधारण जनता की सहायता से शरणार्थियों के सम्बन्ध में उचित प्रबन्ध करे। इस योजना के सम्बन्ध में आवश्यक आन्दोलन करने के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली में ता० ११।४।४२ को एक इस आशय का निश्चय किया गया कि प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं के सहयोग से शरणार्थियों की रक्षा का यथोचित प्रबन्ध करने के लिये सभा विशेष उद्योग करे। संयुक्त प्रांत में ६०० से अधिक आर्यसमाजें तथा अन्य ऐसी संस्थाएं हैं कि जिनके आधीन अनेक विशाल भवन और मन्दिर हैं। सुविधानुसार इनका उपयोग शरणगृहों की भाँति किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सुरक्षित स्थानों में स्थायी शिविरों का निर्माण भी किया जा सकता है कि जिनमें शरणार्थी संकट के समय में शरण प्राप्त कर सकते हैं। संयुक्त प्रान्त में अनेक सुरक्षित स्थान हैं कि जिन में शिविर स्थापित हो सकता है। इसी प्रकार से राजस्थान में भी अनेक सुरक्षित स्थानों का उपयोग किया जा सकता है। संयुक्त प्रान्तीय आर्य समाजों के अधिकारियों तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं को मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा संयुक्त प्रान्त से इस सम्बन्ध में परामर्श करना चाहिये।

दूसरी बात है आर्य वीर सेवा दलों का संगठन। स्थान २ पर बाहरी आक्रमणकारियों तथा आन्तरिक उपद्रव करने वाले आततायियों के हाथों से सर्व साधारण की प्राण रक्षा और सम्पति रक्षा के लिये यह आवश्यक प्रतीत होता है कि नवयुवकों का संगठन सेवा धर्म के आधार पर किया जाय कि जिनका व्रत सज्जनों की रक्षा और आततायियों का दमन हो। इस कार्य में अपने ऊपर कैसा ही संकट क्यों न आवे किन्तु विपद्ग्रस्त की सहायता करने में किसी प्रकार संकोच न किया जाय। प्रान्त भर में आर्यवीरों के सुसंगठन से आर्यसमाज के लिये एक ऐसा प्रगति शील कार्यक्रम प्रस्तुत है कि जिससे अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावशाली अन्य कार्यक्रम वर्तमान समय में कदाचित् सम्भव नहीं है। प्रान्तीय आर्य नेताओं को बड़ी गम्भीरता के साथ इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करके निश्चय करना चाहिये और एक निश्चित किन्तु व्यवहार्य कार्यक्रम अविलम्ब संचालित करने का आयोजन हो जाना चाहिये। अनिश्चित् किन्तु कराल युग की हुङ्कार "यदर्थंमार्याः सूते तस्य कालोयमागतः" अर्थात् जिस प्रयोजन की सिद्धि के लिये आर्य माताएं अपनी सन्तानों को जन्म देती हैं उसका अवसर आ गया है। हमारे कानों में प्रतिध्वनित होते रहना चाहिए और हम सबको अपने निश्चित कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर हो जाना चाहिए।

श्री प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित।

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) संस्कृत सत्यार्थप्रकाश	अ० ।) स० ।-)	(२१) सार्वदेशिक सभा का इतिहास अ०	२)
(२) प्राणायाम विधि	)॥	सजिल्द	२॥)
(३) वैदिक सिद्धान्त अजिल्द	।॥)	(२२) बलिदान	॥)
सजिल्द	१)	(२३) आर्य डायरेक्टरी अ० १।) स०	१॥)
(४) विदेशों में आर्य्य समाज	॥)	(२४) अथर्ववदीय चिकित्सा शास्त्र	२)
(५) यमपितृ परिचय	२)	(२५) सत्यार्थ निर्णय	१॥)
(६) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर	१।)	(२६) कायाकल्प सजिल्द	१।)
(७) आर्य्य सिद्धान्त विमर्श	१॥)	(२७) पञ्चयज्ञ प्रकाश	।॥)
(८) भजन भास्कर	॥)	(२८) आर्य समाज का इतिहास	।॥)
(९) वेद में असित शब्द	-)॥	(२९) बहिनों की बातें	॥)
(१०) वैदिक सूर्य्य विज्ञान	=)	(३०) Agnihotra Well Bound	१॥)
(११) विरजानन्द विजय	=)	(३१) Crucifixion by an eye witness	।-)
(१२) हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद (उर्दू में)	=)	(३२) Truth and Vedas	।=)
(१३) इजहारे हकीकत (उर्दू में)	॥।=)	(३३) Truth bed rocks of Aryan Culture	॥)
(१४) सत्य निर्णय (हिन्दी में)	१।)	(३४) Vedic Teachings	१।)
(१५) धर्म और उसकी आवश्यकता	।-)	(३५) Voice of Arya Varta	=)
(१६) आर्य्यपर्व्वपद्धति सजिल्द	१)	(३६) Christianity	॥)
(१७) कथा माला	।=)	(३७) The Scopes Mission of Arya Samaj Bound	१)
(१८) आर्य्य जीवन और गृहस्थ धर्म	।=)	Unbound	॥)
(१९) आर्य्यवर्त्त की वाणी	-)		
(२०) समस्त आर्य्य समाजों की सूची	॥)		

स्वाध्याय योग्य ... ६

आर्य डायरेक्टरी

अर्थात् आर्य जगत् की समस्त संस्थाओं सभाओं और समाजों का सन् १९४१ ई० की विश्व व्यापी विविध प्रगतियों का वर्णन आर्य समाज के नियम, आर्य विवाह कानून, आर्य वीर दल आदि अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातों का संग्रह। आज ही आर्डर भेजिये।

मूल्य अजिल्द १।) पोस्टेज ।)

मूल्य सजिल्द १॥) पोस्टेज ।=)

मिलने का पता—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र

इस पुस्तक में आर्यसमाज के विद्वान् श्री पं० प्रियरत्न जी आर्य ने अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा सूत्र स्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान और चिकित्सा स्थान का प्रतिपादन किया है। चिकित्सा स्थान में आश्वासन चिकित्सा, उपचार चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, होम चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, सर्पादि विष चिकित्सा, कृमि चिकित्सा, रोग चिकित्सा और पशु चिकित्सा दी है। इन प्रकरणों में वेद के अनेक महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। पुस्तक २०×२६ आठ पेजी पृष्ठ संख्या ३१२ मूल्य केवल २) मात्र है। पोस्टेज व्यय ।) प्रति।

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

सार्वदेशिक

जून
१९४७ ई०

सम्पादक मण्डल—

वार्षिक मूल्य

विदेश ५ शि०

विषय--सूची

सार्वदेशिक पत्र का नमूना मँगाने के लिये ।) का टिकट भेजना जरूरी है।

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १७	ज्येष्ठ १९९९ जून, १९४२ ई०] [दयानन्दाब्द ११८	अङ्क ४

ओ३म् वर्च आधेहि मे तन्वां सह ओजो वयो बलम् ।
इन्द्रियाय त्वा कर्मणे वीर्याय, प्रतिगृह्णामि शतशारदाय ॥ (अ० १९ । ३७ । २)

शब्दार्थ—हे परमेश्वर (मे) मेरे (तन्वाम्) शरीर में (वर्चः) तेज (सह) सहन शक्ति (ओजः) मानसिक आत्मिक शक्ति और पुरुषार्थ (वयः) दीर्घ जीवन और (बलम्) बल को (आधेहि) सब ओर से भली भांति धारण करा। मैं (इन्द्रियाय) आत्मा और इन्द्रियों की शक्ति बढ़ाने (कर्मणे) उत्तम कर्मों को करने (वीर्याय) वीर्य लाभ करने और (शत शारदाय) सौ वर्ष की उत्तम आयु को प्राप्त करने के लिये (त्वा-प्रतिगृह्णामि) तुझे स्वीकार करता हूं तेरी शरण में आता हूं।

हे सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर! आप हमें ऐसी शक्ति दीजिये कि हम सब आपका ध्यान भजन कीर्तन करते हुए तेजस्वी, ओजस्वी, दीर्घजीवी पुरुषार्थी और बलवान् बनें। आपकी कृपा से हमें उत्तम कर्म करने का सामर्थ्य प्राप्त हो जिससे सौ वर्षों तक हम दीनता हीनता रहित और धीर वीर होकर आपके सच्चे भक्त और जनता के सच्चे सेवक बनें।

वेदामृत—

उन्नति का मार्ग

ओ३म् अश्मन्वती रीयते संरभध्वम्,
उत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।
अत्राजहीमो ऽशिवा ये असन्,
शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान् ॥
(यजु०)

ओ३म् उद् यानं ते पुरुष नावयानं,
जीवातुं ते दक्षताति करोमि ।
आहि रोहेममृतं सुखं रथमथ,
जिर्विर्विदथमावदासि ॥
(अथर्व ८ । १ । ६)

१. शब्दार्थः—(अश्मन्वती रीयते) यह पथरीली नदी बह रही है (सखायः) हे मित्रो ! (संरभध्वम्) कमर कसलो—अच्छी प्रकार मिल उद्योग करो (उत्तिष्ठत) उठो—आलस्य का परित्याग करो (प्रतरत) इस नदी को उत्तमता से तैर जाओ । (ये अशिवा असन्) जो दुःख और अशान्तिदायक पदार्थ वा दुर्गुण हैं उनको (अत्र जहीमः) हम यहां इस तरफ ही छोड़ देते हैं (शिवान् वाजान् अभि) मङ्गल शान्तिदायक अन्न, ज्ञान और बलों की सहायता से (वयम् उत्तरेम) हम इस नदी के पार चले जायें ।

२. शब्दार्थः—हे (पुरुष) मनुष्य (ते उत् यानम्) तेरी उन्नति ही सदा होती रहे, तू आगे २ सदा बढ़ता जा। (न अवयानम्) तेरी अवनति या गिरावट न हो (ते) तेरे (जीवातुम्) जीवन को सफल बनाने के लिये मैं ईश्वर (दक्षतातिम्) तेरी शक्ति का विस्तार करता हूं तुझे बलवान् बनाता हूं। (इमम्) इस (अमृतं सुखं रथम्) अमृत समान सुखदायक शरीररूपी रथ पर (आ हि रोह) तू अच्छी तरह चढ़ बैठ और इस को अपने वश में रखकर उचित रीति से काम मे ला (अथ) और उसके बाद स्वयं संयमी बन कर (जिर्विः) ज्ञानवृद्ध तथा अनुभवी होकर दूसरों को भी (विदथम् आवदासि) ज्ञान का भलीभांति उपदेश कर ।

इन वेद मन्त्रों में मनुष्यों को उन्नति के मार्ग की ओर ले जाने के लिए बड़े महत्वपूर्ण और स्फूर्तिदायक उपदेश हैं। मनुष्यों को अपने सामने एक उच्च आदर्श रखना चाहिये और उसकी तरफ लगातार बढ़ते चले जाना चाहिए। यह संसार रूपी पथरीली नदी है जिसमें अनेक विघ्न बाधाएँ और आपत्तियां मनुष्यों के आगे चट्टान के रूप में आ खड़ी होती हैं। उन्हें देखकर मनुष्य को घबराना नहीं चाहिये किन्तु धैर्य और उत्साह के साथ उन्हें दूर करने का प्रयत्न अपने परिश्रम और अन्य मित्रों की सहायता से करना चाहिए। उसके लिये यह भी आवश्यक है कि मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, शोकादि दुर्गुणों का परित्याग करे और उत्तम अन्न का सेवन करके अपनी शक्ति तथा ज्ञान की वृद्धि में सदा तत्पर रहे। दुर्गुणों और दुष्ट भावनाओं का बोझ लादे

हुए मनुष्य इस संसार रूप पथरीली नदी को कभी पार नहीं कर सकता। मनुष्य के मन में ईश्वर की ओर से यही पवित्र भावना रक्खी गई है कि वह सदा उन्नति के मार्ग की ओर बढ़ता जाए। कभी ऐसे काम न करे जिनसे उसका पतन हो जाए। इसके लिए निरन्तर आत्मनिरीक्षण करने और अपने इन्द्रिय मन बुद्धि आदि पर पूर्ण संयम रखने की आवश्यकता है। परमेश्वर ने अपनी अपार कृपा से मनुष्य को यह देह रूपी रथ दिया है जिसका स्वामी आत्मा है सारथि बुद्धि, लगाम मन, घोड़े इन्द्रिय और मार्ग विविध विषय हैं जैसे कि उपनिषत्कार ऋषियों ने कहा है—"आत्मानं रथिनं विद्धि, शरीर रथमेव तु बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च। (कठोप) इस रथ का बड़ी सावधानी से उपयोग करने की आवश्यकता है तभी यह सुखदायक हो सकता है अन्यथा यही दुःखदायक हो जाता है। "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत।" इत्यादि सरल शब्दों द्वारा उपनिषत्कार ऋषियों ने वेदों के इसी पवित्र सन्देश को लोगों के सन्मुख रक्खा कि उठो, जागो, श्रेष्ठ विद्वानों के पास जाकर उनकी सहायता से उत्तम ज्ञान को प्राप्त करो। आर्यों का कर्तव्य है कि वे वेदों और उपनिषदों के इस पवित्र आदेश को सुनें, आलस्य का परित्याग करें, निराशा को अपने पास न फटकने दें, धैर्य, साहस, उत्साह और मैत्री भावना को धारण करते हुए निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर होते जाएँ। प्रतिदिन नियमपूर्वक ऐसे स्फूर्तिदायक वेद मन्त्रों का पाठ करने और उनपर आचरण करने से आर्यों को दिव्य-शक्ति प्राप्त होगी। ("ध्रुव")

सत्य सनातन आर्य धर्म

(लेखक—प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, उपमन्त्री, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली)

सत्य सनातन धर्म से मेरा तात्पर्य वैदिक धर्म का है क्योंकि 'सनातन' शब्द का अर्थ नित्य है। 'आर्य' शब्द के जो अर्थ प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर संस्कृत कोषों में दिये हैं उन्हें यहाँ स्मरण करा देना अप्रासङ्गिक न होगा। वेदों में मनुष्य जाति के 'आर्य' और 'दस्यु' ये दो विभाग बताये गये हैं जैसे कि सुप्रसिद्ध 'विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।' (ऋ० १।५१।८) इत्यादि में कहा है कि जो अव्रत अर्थात् सत्य भाषणादि शुभ व्रत और उत्तम कर्मों से रहित दुराचारी, विषय लम्पट, उत्तम कर्म में विघ्न करने वाले, स्वार्थ साधन तत्पर लोग हैं वे अनार्य अथवा दस्यु तथा विद्या धर्मादि उत्कृष्ट स्वभावाचरण युक्त मनुष्यों को आर्य जानो।

"आर्य रूपमिवानार्यं, कर्मभिः स्वैर्विभावयेत्" (मनुस्मृति १०।५७) इत्यादि मनुस्मृति के श्लोकों में भी धर्मात्मा के लिये आर्य शब्द का प्रयोग करते हुए कहा गया है कि जो वेषादि द्वारा अपने को आर्यों के तुल्य दिखावे ऐसे अनार्य की परीक्षा उसके दुष्ट कर्मों द्वारा करनी चाहिये।

महाभारत उद्योग पर्व में आर्यों का लक्षण करते हुए बताया है "न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं, न दर्पमारोहति नास्तमेति। न दुर्गतोऽपीति करोत्यकार्यं, तमार्य शील परमाहुरार्याः॥"

अर्थात् जो शान्त हुए वैर को फिर बढ़ाता नहीं किन्तु शान्ति की स्थापना का सदा प्रयत्न करता रहता है, जो अभिमान नहीं करता, जो कभी निराश नहीं होता अथवा नाश को नहीं प्राप्त होता, जो आपत्ति के आने पर भी कभी बुरा कार्य नहीं करता उसे आर्य लोग आर्य स्वभाव वाला कहते हैं।

महाभारत आदि पर्व में 'आर्य शील' का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं, नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः। दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं सकथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः॥

अर्थात् आर्य शील वाला पुरुष वह है जो अपने सुख में बहुत अधिक खुश नहीं हो जाता और दूसरों के दुःख मे जो कभी प्रसन्नता नहीं प्रकट करता, दान देकर जो पश्चात्ताप नहीं करता।

वसिष्ठ स्मृति मे 'आर्य' का निम्नलिखित स्वर्णाक्षरों मे लिखने योग्य लक्षण किया गया है:—

'कर्तव्यमाचरन् कार्यम्, अकर्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे, स तु आर्य इति स्मृतः॥

अर्थात् आर्य उसे कहते हैं जो कर्तव्य कर्म को सदा करता रहता है और पापों से सदा दूर रहता तथा जो पूर्ण सदाचारी है।

निरुक्त में श्री यास्काचार्य ने 'आर्य' का अर्थ "आर्यः ईश्वर पुत्रः" ऐसा किया है। अर्थ अर्थात् सबके स्वामी परमेश्वर का सच्चा पुत्र—जो परमेश्वर का सच्चा भक्त और उसकी आज्ञानुसार शुभ

कर्मों के करने में सदा तत्पर रहता है ऐसा किया है।

'शब्द रत्नावली' नामक संस्कृत कोष में आर्य शब्द का अर्थ 'पूज्यः—श्रेष्ठः' ऐसा दिया है। पं० तारानाथ तर्क वाचस्पति भट्टाचार्य द्वारा संकलित 'वाचस्पत्य संस्कृताभिधान' और राजा राधाकान्त देव बहादुर प्रणीत 'शब्द कल्पद्रुम' नामक संस्कृत कोषों मे आर्य शब्द के अन्य अर्थ—

'मान्यः, उदार चरितः शान्त चित्तः, न्याय-पथावलम्बी, प्रकृताचार शील., सतत कर्तव्यकर्मा-नुष्ठाता' इत्यादि दिये हैं जिनका तात्पर्य यह है कि जो अपने उत्तम गुणों के कारण माननीय हो, जिसका चरित्र उदार हो जिसका चित्त शान्त हो, जो न्याय के मार्ग का अवलम्बन करने वाला हो, जो पूर्ण सदाचारी हो, जो कर्तव्य कर्मों को लगातार करने वाला हो उसे आर्य कहते हैं। इस प्रकार आर्य शब्द कितना उदात्त और महत्व पूर्ण है इस बात को विचार शील पाठक स्वयं जान सकते हैं।

धर्म शब्द धृञ्—धारणे इस धातु से बनता है जिसको लेकर श्री वेद व्यास जी ने महाभारत में कहा है:—

"धारणाद् धर्म इत्याहु. धर्मो धारयते प्रजाः।
यस्त्याद् धारण संयुक्तं, स धर्म इति निश्चयः॥

अर्थात् जिसके द्वारा सारी प्रजा या सब समाज और जगत् का धारण किया जा सके, जिसके धारण करने से समाज का कल्याण और उद्धार हो वह धर्म कहलाता है। इस प्रकार धर्म एक अत्यन्त व्यापक शब्द है जिसके अन्दर सभी उत्तम गुणों और कर्मों का समावेश हो सकता है जो व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् का कल्याण करने वाले और उन्हें उन्नति तथा शान्ति के मार्ग पर ले जाने वाले हों।

वैशेषिक शास्त्रकार कणाद मुनि ने वेदों के 'पावमानीर्दधन्तु न इम लोकमथो अमुम्। कामा-न्त्समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः॥

'पावमानी' स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छति नान्दनम्
पुण्यांश्च भक्षान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति॥
(सामवेद उत्तरार्चिक प्र० ५ म० ८) इत्यादि मन्त्रों के अनुसार जिनमें वैदिक शिक्षा का फल ऐहलौकिक और पारलौकिक उन्नति के रूप में बताया गया है धर्म का लक्षण यों किया है।

"यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः" अर्थात् जिससे इस लोक में उन्नति और मोक्ष की प्राप्ति हो वह धर्म है। सत्य सनातन वैदिक धर्म का इससे उत्तम लक्षण करना कठिन है। मनुस्मृति में

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं, शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्॥

इत्यादि श्लोकों द्वारा धर्म के १० लक्षण बताये गये हैं। धैर्य, क्षमा, मन को वश में करना चोरी का विचार तक मन मे न लाना, सब प्रकार की पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि को बढ़ाना सत्यज्ञान को प्राप्त करना, मन, वचन, कर्म से सत्य के व्रत का पालन और क्रोध न करना ये सब बातें वैयक्तिक धर्म के अन्दर आती हैं।

सनातन धर्म का लक्षण मनु महाराज ने संक्षेप से इस प्रकार बताया है:—

"सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात्, एष धर्मः सनातनः॥"

अर्थात् सनातन-नित्य वेदोक्त धर्म यह है कि मनुष्य सदा सत्य बोले, प्रिय वचन बोले, सत्य को भी यथा सम्भव अप्रिय रूप से न बोले और जो बात असत्य है वह कितनी भी प्रिय मालूम होती हो उसे कभी न कहे।

सत्य सनातन आर्य धर्म का आधार-वेद

इस सनातन आर्य धर्म का आधार वेद है जिनका प्रकाश आर्यों के युक्ति युक्त मन्तव्यानुसार सृष्टि के प्रारम्भ में मङ्गलमय भगवान् ने अग्नि, वायु, आदित्य, अङ्गिरा नामक ऋषियों के पवित्र हृदय में किया। भगवान् समस्त संसार के पिता माता के समान हैं। जिस प्रकार पिता माता बच्चों के कल्याण के लिये उन्हें अच्छा ज्ञान देते हैं, इसी प्रकार सर्वशक्तिमान् पिता और मङ्गलमयी माता के रूप में समस्त मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ भगवान् ने वेद ज्ञान को सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकाशित किया क्योंकि जब तक कोई ज्ञान देने वाला न हो तब तक स्वयं ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती यह बात सभी के अनुभव से सिद्ध है और असीरिया के राजा असुर बानी पाल, अकबर आदि के परीक्षणों द्वारा इतिहास सिद्ध है। इस ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता को वर्तमान समय के सुप्रसिद्ध अनेक वैज्ञानिकों ने भी इस उपर्युक्त युक्ति के आधार पर स्वीकार किया है उदाहरणार्थ इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध वैज्ञानिक प्रो॰ फ्लेमिङ्ग M. A. D. Sc. F. R. S. ने The Supreme Intelligence in and above nature विषयक अपने व्याख्यान में जो 'Science and Religion' by Seven men of Science नामक पुस्तक में प्रकाशित हुआ है ईश्वर के अस्तित्व को विज्ञान द्वारा सिद्ध करते हुए कहा है:—

"If we are to obtain more solid assurance it can not come to the mind of the man groping feebly in the dim light of un assisted reason, but only by a communication made directly from this Supreme mind to the finite mind of man."

अर्थात् यदि मनुष्य को निश्चित यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना हो तो वह केवल असहाय मानव बुद्धि वा तर्क द्वारा प्राप्त नहीं हो सकता। किन्तु ईश्वर द्वारा-मनुष्य के मन का उसके साथ सम्बन्ध होने पर ही प्राप्त हो सकता है।

वेद का अर्थ ज्ञान है इसीलिये वेदों के अन्दर हमें वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय सब कर्तव्यों और प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक विषयों के प्रतिपादक मन्त्र उपलब्ध होते हैं।

"तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे। छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्माद्-जायत ॥"

(ऋ० १०। ६०। ६)

"यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्। सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम्। स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥"

(अथर्व १०। ७। २०)

"तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्॥"

(ऋ० ८। ७५। ६)

इत्यादि मन्त्रों के अनुसार जिनमें परमात्मा को वैदिक ज्ञान का दाता बताते हुए उसकी वाणी (वेद) को नित्य कहा गया है "अतएव च नित्यत्वम्।"

(वेदान्त १ । ३ । २९)

"अनादि निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा। आदौ वेदमयी दिव्या, यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥"

(महाभारत १२ । २३३ । २४)

निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम्॥

(सांख्य ५ । ५१)

धर्मं जिज्ञासमानानां, प्रमाणं परमं श्रुतिः॥

(मनु०)

इत्यादि वचनों द्वारा श्री वेद व्यास, कपिल, मनु इत्यादि सब प्राचीन ऋषि मुनि तथा शास्त्रकार एक स्वर से वेदों को नित्य, स्वतः प्रमाण और धर्म का मूल स्वीकार करते हैं।

यहां इतना लिख देना आवश्यक है, क्योंकि वेदों का ज्ञान ईश्वर ने जो समस्त संसार का पिता है मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये दिया अतः 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय चारणाय च स्वाय॥

(यजु० २६ । २)

"समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्। समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥"

(ऋग्वेद १० । १९१ । ३)

इत्यादि वेद मन्त्रों के अनुसार जिनमें स्पष्ट बताया गया है कि इस कल्याणकारिणी वेद वाणी का उपदेश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अतिशूद्र सब मनुष्य मात्र के लिये समान रूप से भगवान् ने किया है। वेदों के पढ़ने का अधिकार सब मनुष्यों को है। इस सत्य सनातन आर्य धर्म के मुख्य तत्त्वों पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार समय मिलने पर फिर किया जाएगा। इस लेख में दिये 'आर्य' और 'धर्म' शब्द के महत्व पूर्ण अर्थों को समझ कर प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक आर्य बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

हमारी पताका

(लेखक—स्वा० आत्मानन्द जी, गुरुदत्त भवन, लाहौर)

पिछले दिनों श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ने अथर्ववेद के एक मंत्र से आर्य-पताका का वर्ण अरुण या लाल बताया था। मैं आर्यसमाज को कोई पन्थ नहीं मानता। ऋषि दयानन्द के सदृश ही हमारे अन्य ऋषि-मुनि और पूर्वज हमारे हृदय में पूजा का स्थान रखते हैं। श्री राम, लक्ष्मण, भरत, कृष्ण, अर्जुन, भीम आदि गृहस्थ भी आर्यसमाज के गौरवभूत पूर्वज हैं। इन पर आर्य जाति को अभिमान रहा है और रहेगा। आर्य जाति को ऋषि दयानन्द का उतना ही अभिमान है जितना अन्य ऋषियों और पुरुष-पुङ्गवों पर हो सकता है पर आर्यसमाज को ऋषि दयानन्द की गद्दी नहीं बनाया जा सकता। यह तो सारे ऋषि मुनियों का सुआसन है जहां सबके बैठने का एक समान स्थान है। 'ऋषि दयानन्द सन्यासी थे इसलिये आर्यसमाज की पताका का रंग गेरुआ हो' जिन्होंने यह बात सोची थी उनकी ऋषिभक्ति प्रशंसनीय है पर यह आर्यसमाज जैसे वैदिक सगठन के लिये शोभा की बात नहीं। आर्य समाज को वेद मान्य हैं वेदोक्त बातों की विद्यमानता में अन्य कल्पना अनुचित है। वेद में "अरुणैः केतुभिः सह" और "सूर्य्य-केतवः" आदि पद आते हैं। इन से स्पष्ट सिद्ध है कि हमारे केतु अरुण हों और उन पर सूर्य का चिह्न हो। इस आकार पर केतु की कोई सुन्दर आकृति निर्माण की जा सकती है।

मैं इसके पक्ष में क्यों हूँ ?

१. यह वेदोक्त है। २. वर्णो और आश्रमों का रक्षक दण्ड है और दण्ड का नेता क्षत्रिय होता है। क्षत्रिय के विषय में मनु जी कहते हैं—

तपत्यादित्यवच्चैषां चक्षूंषि च मनांसि च।
न चैनं भुवि शक्नोति कश्चिदप्यभिवीक्षितुम्।

(मनु० ७।६) अर्थात् राजा सूर्यवत् शत्रुओं की आंखों और मनों को तपाता है और कोई शत्रु इसे आंख उठाकर देखने का साहस नहीं करता। राजा सूर्य है इसलिये उसकी पताका भी सूर्य चिह्नित होनी चाहिए। ३. सूर्य अरुण-वर्ण है अतः इसकी आकृति अरुण-वर्ण की होनी चाहिए। ४. आर्य प्रत्येक कार्य में आर्थिक दृष्टि भी सम्मुख रखते हैं। आर्थिक दृष्टि से चौकोन से त्रिकोण सस्ता पड़ेगा क्योंकि एक चौकोन में से दो त्रिकोण झंडे निकलते हैं।

अरुण का अर्थ

१. ऋषि कृत उणादि कोष के भाष्य में "ऋच्छति प्राप्नोतीत्यरुणः सूर्यः कुष्ठं रक्तं वा॥" अरुण का अर्थ लाल लिखा है। २. वेदार्थ कोष में "रक्तवर्णः १०।१३०-६।२४-३।२६-५६॥" ऐसा है। ३. अलीगढ़ से प्रकाशित हिन्दी जेबी कोष में 'गहरा लाल रङ्ग, लालरंग का' इत्यादि अर्थ लिखे हैं। ४. मेदिनी कोष में 'अरुणोऽव्यक्तरागेऽर्के सन्ध्यारागेऽर्कसारथौ। निःशब्दे कपिले कुष्ठभेदे ना गुणिनि त्रिषु' ऐसा है।

लाल रंग के कई भेद हैं उनमें गहरा लाल रंग अरुण माना गया है। बाल सूर्य भी अरुण कहलाता है वह अरुण वर्ण का प्रत्यक्ष निदर्शन है।

भावी संकट में आर्य्य समाज का कर्तव्य

(ले०—प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली)

किसी संस्था के जीवित होने का यही प्रमाण है कि वह मनुष्यों की वास्तविक सेवा कर सके। जो भूखों को अन्न दे सके, प्यासों को पानी दे सके, घायलों की मरहमपट्टी कर सके, निरक्षरों को अक्षर ज्ञान दे सके और आश्रय-हीनों को आश्रय दे सके; वही संस्था मनुष्यों के लिये उपयोगी और हितकर समझी जा सकती है। केवल मकान बना लेने, सभाएँ कर लेने या मठ बना लेने से किसी संस्था की उपयोगिता सिद्ध नहीं हो सकती। साथ ही, यह भी याद रखना चाहिए कि जो संस्था मनुष्य जाति के लिए वस्तुतः उपयोगी नहीं रहती, वह बहुत शीघ्र क्षीण होकर मर जाती है।

आर्यसमाज एक जीवित संस्था है। वह अपने मूल सिद्धान्तों पर दृढ़ रहती हुई भी सदा समय और आवश्यकता के अनुसार मनुष्य सेवा के कार्यक्रम को बनाती रही है। उसे परिस्थिति के अनुसार कार्यक्रम में परिवर्तन करने में कभी दिक्कत नहीं हुई। उसके मुख्यतः दो कार्य हैं। (१) अपने विचारों का प्रचार और (२) मनुष्य जाति की सेवा। मनुष्य जाति की सेवा का कार्य स्वयं एक लक्ष्य होता हुआ भी, प्रचार का साधन होने से अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जा सकता है। परन्तु इसका यह अभिप्राय न समझना चाहिए कि वह स्वयं अपने-आप में गौण वस्तु है, या केवल साधन मात्र है। सेवा कार्य स्वयं एक लक्ष्य है। शास्त्रकारों ने कहा है कि भगवान् की सृष्टि की आराधना भगवान् की आराधना का सुन्दर-तम रूप है।

भारत के सामने इस समय एक महान् संकट खड़ा है। संहारकारिणी शक्तियां पूर्व और पश्चिम से मुंह खोले उसकी ओर आरही हैं। उन शक्तियों को रोकने के लिए और यदि वह न रुक सकें तो उनके बुरे प्रभावों से प्रजा को बचाने के लिये भारत के शासक तथा राजनैतिक नेता क्या कर रहे हैं, इस पर मैं यहां कोई सम्मति नहीं देना चाहता। आर्यसमाज के लिये समूह रूप से यह प्रश्न कोई मूल्य भी नहीं रखता। देशवासी की हैसियत से हम में से प्रत्येक का कर्तव्य है कि हम उपर्युक्त प्रश्न का समाधान अपने हृदय में पूछें और हमारा जो राष्ट्रीय कर्तव्य हो, उसका पालन करें। आर्यसमाज की संस्था का दृष्टिकोण दूसरा ही होना चाहिए। एक घोर संकट आ रहा है। टल जाये तो ठीक, परन्तु हमें मान लेना चाहिए कि वह नहीं टलेगा उस दशा में आर्यसमाज प्रजा के लिए किस प्रकार उपयोगी हो सकती है, यह प्रश्न इस समय सब से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

इस प्रश्न का उत्तर एक दूसरे प्रश्न के उत्तर पर अवलम्बित है। उस प्रश्न का रूप यह है कि युद्ध के आ जाने पर भारतीय प्रजा पर कौन

कौन से कष्ट आयेंगे ? युद्ध के कारण आने वाले मुख्य संकट निम्नलिखित हैं—

१—युद्ध के समीप आने पर सरकार शहरों और ग्रामों को खाली कराती है। कई स्थानों पर सरकार की प्रेरणा न होने पर भी लोग स्वय भयभीत होकर भागने लगते हैं। उस समय रास्तों और पड़ाव पर भागते हुए लोगों को सहारा देना अत्यन्त आवश्यक है।

२—युद्ध के आगे-आगे हवाई गोलों की वर्षा चलती है। उसके सम्बन्ध मे सब से बड़ी सेवा तो यह है कि लोगों को हवाई हमलों से बचने के उपायों का परिज्ञान कराया जाय। उन्हें मालूम हो कि चेतावनी का भोंपू बजने पर और फिर गोला-बारी शुरू होने पर आत्म-रक्षा के लिए क्या करना चाहिए।

३—गोलाबारी से जो नाश होता है उसका चित्र बहुत भयङ्कर होता है। घर तबाह हो जाते हैं, मनुष्य रुई के टुकड़ों की तरह हवा में उड़ जाते हैं, जो उड़ते नहीं वह घायल हो जाते हैं। स्त्रियां विधवा हो जा ी हैं और बच्चे अनाथ हो जाते हैं। उस समय उन्हें क न सम्भाले और कौन उनकी सेवा करे, यह सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। उस समय सेवा करना उनका काम नहीं, जिन्होंने केवल यूनीफार्म, झण्डा या जलूस के शौक में स्वयसेवक दल में नाम लिखाया है। उस समय केवल वही सेवा कर सकता है, जिस के लिये सेवा एक धर्म है।

४—युद्ध के समय शासन की बागडोर प्रायः ढीली हो जाती है। उस समय यह खतरा रहता है कि आततायी लोग साधारण प्रजा में लूट मार मचायें और बलात्कार करें। उस उत्पात को रोकना एक महान् और कठिन, परन्तु अत्यन्त आवश्यक सेवा कार्य है।

यह चार प्रकार की सेवा है, जिसके लिये आर्यसमाज को थोड़े-से-थोड़े समय में तैयार हो जाना चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि इस समय यही वैदिक-धर्म का प्रचार है। तलवार वही है, जो युद्ध में काम आये। सखा वही है, जो जाति के सकट के समय उपयोगी सिद्ध हो।

आर्यसमाज की सब से बड़ी सस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा और प्रान्तिक आर्य प्रतिनिधि सभाओं ने निश्चय कर लिया है कि वह आर्यसमाज को इस सेवा कार्य के लिये तैयार करने में विलम्ब न करेंगी। विस्तृत कार्यक्रम शीघ्र ही आर्य जनता के सामने आ जायगा। तब तक आर्य नर-नारियों को इसके लिए मानसिक तैयारी पूरी कर लेनी चाहिए कि जब वह कार्यक्रम प्रकाशित हो तब बगैर किसी विलम्ब के उसे पूरा करने में लग जायें। सकट इतनी तेजी से समीप आरहा है कि अधिक सोचने और देर लगाने का अवसर नहीं। यह ध्यान में रखना चाहिए कि इस समय थोड़ी सी देर का भी अभिप्र य होगा, सेवा के कार्य को सर्वथा खो देना।

सार्वदेशिक सभा की महत्वपूर्ण आयोजना

(ले०—प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, मन्त्री, सार्वदेशिक सभा, देहली)

आहुति देने का समय है

आर्य जनता तैयार हो जाये

रक्षा और सेवा कार्य के लिए सार्वदेशिक सभा की योजना

युद्ध की अग्नि भारत के समीप ही समीप आ रही है। शत्रुओं के आक्रमण को कैसे रोका जाये ? इस प्रश्न का उत्तर देना सरकार का या राजनैतिक क्षेत्र में काम करने वालों का काम है, युद्ध को भारत मे आने से रोका जा सकेगा या नहीं और यदि न रोका जा सका तो उसका विस्तार कहा तक होगा इन प्रश्नों का उत्तर भी कल्पना से ही दिया जा सकता है, परन्तु जो चीज कल्पना के क्षेत्र से बाहर है और जिसे हम निश्चित सत्य कह सकते हैं यह है भारत में युद्धाग्नि की लपटें अपना असर पैदा कर रही हैं और वह असर दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है।

भारत की प्रजा पर युद्ध का असर कई प्रकार से हो रहा है। जिन स्थानों पर शत्रु का कब्जा हो गया वहाँ से भागे हुए भारतवासी, जिनकी सख्या शायद अब लाखों तक पहुँच चुकी है, अपनी भारत भूमि मे वापिस आ रहे हैं। वह हर प्रकार की आपत्ति में ग्रस्त हैं। उनके रहने के लिये घर नहीं है, खाने के लिए अन्न नहीं है और पहनने को कपड़े नहीं हैं। ऐसी विधवायें हैं जो भीख मागने से मरना अच्छा समझती हैं। ऐसे बच्चे हैं जिनका कोई वाली वारिस नहीं है।

यह तो उन स्थानों की कथा है जहाँ दुश्मन आ गया है लेकिन जहाँ नहीं आया वहाँ भी उसका विनाशकारी हाथ पहुँच रहा है। हवाई हमले भारत की भूमि पर भी होने लगे हैं जिससे सकट के निरन्तर बढ़ने की ही सम्भावना है।

धर्म का लक्ष्य अशान्त मनुष्य को शान्ति देना है। वही धार्मिक सस्था अपने नाम को सार्थक बना सकती है जो कष्ट के समय मनुष्य जाति को सहायता प्रदान करे। इस उद्देश्य से सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया है कि वह इस सकट काल मे आर्य समाज की सारी शक्ति जनता के कष्ट के निवारण में लगा देगी। इस उद्देश्य से सभा ने निम्न लिखित कार्य करने का निश्चय किया है—

१ स्थान स्थान पर रक्षा गृह कायम किये जायें जिनमें अनाथों और विधवाओं को आश्रय दिया जावे।

२. आवश्यकतानुसार सेवा कैम्प स्थापित किये जायें जहाँ स्वय सेवकों द्वारा पीड़ितों की सहायता की जावे।

३ इस उद्देश्य को सामने रखकर देश भर में आर्य वीर दल सगठित किये जाएँ। प्रत्येक प्रांत की प्रतिनिधि सभा और स्थानीय आर्य-समाजों को अपनी शक्ति आर्य वीर दलों के संगठन में लगा देनी चाहिये।

४ आर्य वीर दलों को सगठित करने के लिए शिक्षकों की आवश्यकता होगी। यह अनुभव करके सभा दिल्ली में एक स्थायी आर्य वीर दल शिक्षक कैम्प स्थापित कर रही है।

५ इन सब कार्यों की पूर्ति के लिये सभा ने २५००० रुपये की अपील की है। प्रत्येक आर्य नर-नारी का कर्तव्य है कि वह अपनी शक्ति के अनुसार रक्षा निधि की पूर्ति में सहायता प्रदान करे। जो लोग सहायता देना चाहें उन्हें सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के मुख्य कार्यालय मे सहायता की राशि भेजनी चाहिये।

यह है देश व्यापी कार्य जिसका बीड़ा सार्वदेशिक सभा ने उठाया है। यह तभी पूरा हो सकता है यदि आर्य जगत् इसकी पूर्ति में अपनी सारी सक्ति लगा दे। कुन्ती ने युधिष्ठिर को युद्ध के आरम्भ में सन्देश भेजा था कि हे पुत्र, जिस समय के लिये क्षत्राणी सन्तान को पैदा करती है वह समय आ गया है। यह ससार के इतिहास में वैसा ही समय है। हमारे दुर्भाग्य हैं कि हम अपने देश की रक्षा के लिये प्राणों को समर्पित नहीं कर सकते परन्तु युद्ध से पीड़ितों की रक्षा और सेवा के लिये तो प्राणों की बलि दे सकते हैं। आर्य जगत को सचेत होकर इस महायज्ञ की पूर्ति में लग जाना चाहिए।

(आर्य प्रतिनिधि सभाओं के नाम पत्र

सेवा मे

श्रीमान् मन्त्री जी।

आर्य प्रतिनिधि सभा,

श्री नमस्ते।

मैं इस पत्र के साथ आपकी सेवा में एक वक्तव्य भेज रहा हूँ जो रक्षा कार्य के सम्बन्ध में समाचार पत्रों को भेजा गया है। साथ ही प्रस्तावों की कापी भी भेज रहा हूँ। इनसे आपको सार्वदेशिक सभा के रक्षा सम्बन्धी कार्य क्रम का पता चल जायेगा। सार्वदेशिक सभा को इस कार्य-क्रम मे तभी सफलता हो सकती है जब प्रान्तिक सभायें बड़ी तत्परता से इस कार्य-क्रम को पूरा करने मे लग जायें।) विशेषतया निम्नलिखित कार्यों की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ —

१ प्रत्येक आर्य समाज के साथ आर्य वीर दल कायम किये जायें। विचार यह है कि दो मास के अन्दर अन्दर देश भर में कम से कम १००००० एक लाख आर्य वीर भर्ती हो जायें जो एक सगठन मे बधे होने के कारण एक आज्ञा मे काम कर सकें। यह तभी सम्भव है यदि प्रान्तिक सभायें और आर्य समाजें मिलकर भर-सक प्रयत्न करें।

२ दूसरा कार्य है रक्षा गृहों की स्थापना का। सरकार ने कांग्रेस से एक लक्ष व्यक्तियों को शरण देने का प्रबन्ध करने की प्रार्थना की है। मालूम नहीं कांग्रेस यह प्रबन्ध कर सके या नहीं परन्तु सभा का विश्वास है कि आर्य समाज इस प्रबन्ध को कर सकती है। उसके लिये आवश्यक है कि हरेक प्रान्त में शीघ्र से शीघ्र एक अस्थायी

प्राप्त करली जाये कि कहां की आर्य समाजें कितने शरणार्थियों को शरण दे सकती है। मैं आपसे निवेदन करूंगा कि जहां आप अपने प्रान्त की समाजों और अनाथालय आदि संस्थाओं को रक्षा कार्य के लिये तैयार होने की प्रेरणा करें वहां १५ दिन के अन्दर अन्दर सार्वदेशिक सभा को सूचित करें कि आप अपने प्रान्त में कितने शरणार्थियों को स्थान देने का प्रयत्न कर सकते हैं।

३ कार्य-क्रम से आपको मालूम होगा कि केन्द्रीय रक्षा गृह और आर्य वीर दल शिक्षक शिविर खोलने का सार्वदेशिक सभा ने निश्चय कर लिया है। जिस प्रान्त में सेवा कार्य की आवश्यकता होगी वहां सेवा केन्द्र भी खोले जायेंगे। इस कार्य के लिये तथा इस सम्बन्ध में जागृति पैदा करने के लिये सार्वदेशिक सभा ने २५०००) रु० की अपील जनता से की है प्रत्येक प्रान्तीय सभा को इस राशि की पूर्ति में सहायक होना चाहिये। सब प्रान्तों के सम्मिलित परिश्रम से ही यह महान् कार्य पूरा हो सकता है।

(४. मुझे विश्वास है कि आप अपने प्रान्त मे इस कार्य-क्रम की सफलता के लिये आज से ही यत्न प्रारम्भ कर देंगे। सूचनाओं द्वारा तथा उपदेशकों द्वारा जनता तक इस कार्य के महत्व को पहुँचा कर उसे तैयार करना प्रान्तिक सभाओं का काम है। इस विषय में आप जो उद्योग करें तथा कदम उठायें उसकी सूचना इस सभा को देते रहिये। आपके प्रान्त में आर्य वीर दलों के संगठन का क्या कार्य हो रहा है, इसकी तो साप्ताहिक सूचना आप देते रहेंगे तो कृपा होगी।)

(रक्षा सम्बन्धी उपसमिति के लिये प्रस्ताव

१. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के ११-४-४२ के अधिवेशन में स्वीकृत प्रस्ताव सं० ६ को कार्य-परिणत करने के लिये रक्षा समिति निम्नलिखित उपाय आरम्भ करे:—

(क) गाजियाबाद में सार्वदेशिक सभा की जो ३४ बीघा भूमि है वहां एक केन्द्रीय रक्षा गृह बनाया जाये जिसमें युद्ध भय से भागे हुए कम से कम २०० असहाय स्त्रियों तथा अनाथ बच्चों को आश्रय दिया जा सके।

(ख) दिल्ली में अथवा उसके समीप किसी स्थान पर आर्य वीर दल का एक शिक्षण केन्द्र खोला जाये जिसमें आर्य वीर दलों के देश व्यापी संगठन के लिये शिक्षक तैयार किये जायें।

२. सभा की ओर से युद्ध के समीपवर्ती आसाम और बंगाल प्रान्तों की परिस्थिति का निरीक्षण करने के लिये एक डेपूटेशन तुरन्त भेजा जाये जो परिस्थिति को देख कर रिपोर्ट करे कि सभा उन प्रान्तों में किस प्रकार की सहायता पहुँचा सकती है। डेपूटेशन यह भी देखे कि सभा की ओर से कोई मेडिकल मिशन उपयोगी हो सकता है या नहीं।

३. इन कामों की पूर्ति के लिये आर्य जनता से २५ हजार रुपये की अपील की जाये और उस राशि को एकत्र करने का काम किया जाये।

४. जिन प्रान्तों में रक्षा कार्य आवश्यक हो और वहां की प्रतिनिधि सभा उस कार्य को हाथ में लेने को उद्यत हो और सार्वदेशिक सभा उन की कार्य प्रणाली से सहमत हो तो उन्हें सभा की ओर से आर्थिक तथा मानवीय सहायता दी जावे।)

सार्वदेशिक सभा का महत्वपूर्ण कार्य क्रम

सेवा मे,

श्री मन्त्री जी, आर्यसमाज।

श्रीमन्नमस्ते।

समाचार पत्रों तथा प्रान्तिक प्रतिनिधि सभाओं द्वारा आपको यह विदित हो चुका होगा कि सार्वदेशिक सभा ने आर्यवीर दल के देश-व्यापी सगठन करने का निश्चय किया है और इस निश्चय की पूर्ति के लिये प्रान्तों के नाम आदेश भी भेज दिए गए हैं। आशा है आपने अपने स्थान पर आर्यवीर दल के सगठन का कार्य आरम्भ कर दिया होगा। यदि न किया हो तो आप बगैर किसी विलम्ब के यह कार्य जारी कर दीजिए। यदि आपको आर्यवीर दल सम्बन्धी नियमादि की आवश्यकता हो तो आप सार्वदेशिक सभा के कार्यालय से मंगा सकते हैं।

सभा की इच्छा है कि जुलाई मास के अन्त तक देश भर में कम से कम १ लाख आर्यवीरों की भर्ती हो जानी चाहिए। यह तभी हो सकता है यदि हरेक आर्यसमाज के साथ दल का निर्माण हो जाय। अब आप इस कार्य के प्रारम्भ करने में देर न लगाए।

यह भी आवश्यक है कि जितना कार्य होता रहे उसकी सूचना सभा को मिलती रहे। इस कारण आप यह नोट कर लें कि हर दो सप्ताह के बाद आर्यवीर दल सम्बन्धी कार्य की रिपोर्ट की १ प्रति अपनी प्रान्तिक सभा को और दूसरी सार्वदेकि सभा को भेजते रहें।

आगामी दो मास का यही विशेष कार्यक्रम है। प्रत्येक आर्यसमाज को अपनी सारी शक्ति लगा कर आर्यवीरों की संख्या बढ़ाने का यत्न करना चाहिए।

यह अनुभव करके कि आर्यवीर दल के संगठन के लिए अच्छे शिक्षकों की आवश्यकता होगी, सभा ने जुलाई के प्रारम्भ से दिल्ली के समीप आर्यवीर दल शिक्षा-केन्द्र स्थापित करने का निश्चय किया है। उस केन्द्र में हरेक प्रान्त के लिए शिक्षक तैयार किये जाएंगे। शिक्षार्थी इस केन्द्र में प्रान्तिक प्रतिनिधि सभा की सिफा-रिश से प्रविष्ट हो सकेंगे।

आर्यवीर दल का संगठन करते हुए यह ध्यान रक्खा जाय कि उसका प्रबन्ध या तो आर्यसमाज की अन्तरंग सभा के हाथ में हो अथवा ऐसी उपसमिति के हाथ में हो जिसका निर्माण अन्तरंग सभा ने किया हो। आर्यवीर दल के अखिल भारतीय सगठन में वही दल सम्मिलित हो सकेंगे जिनका प्रबन्ध स्थानीय आर्यसमाज के हाथ मे होगा।

जिन समाजों को यह घोषणा-पत्र भेजा जा रहा है उनका कर्तव्य है कि वह अपने आस-पास की अन्य छोटी समाजों को "आर्यवीर दलों की स्थापना" की प्रेरणा करें और जिन स्थानों पर आर्यसमाज नहीं है वहां के लिये भी समी-पस्थ आर्यसमाजों को प्रयत्न करना चाहिए।

सुमन-संचय

(१)

दान—

खान खाना रहीम सम्राट् अकबर के दरबार में एक उच्च पदस्थ राज्याधिकारी थे। हिन्दी कविता से उन्हें बहुत प्रेम था। हिन्दी कविता की उन्होंने अपनी कई अमर कृतियां छोड़ी हैं। वे हृदय के बड़े उदार और दानशील थे। उनकी दान शीलता उन दिनों बड़ी प्रसिद्ध थी। वे प्राय: प्रतिदिन प्रातःकाल रुपयों पैसों के पृथक् २ ढेर लगाकर बैठते और दीन-दुःखियों को खुले हाथ बांटा करते थे।

एक बार कवि गंग को उनकी इस दान क्रिया को देखने का अवसर मिला। उन्होंने आश्चर्य्य के साथ देखा कि दान देते समय खानखाना की आंखें जमीन की तरफ़ हैं और वे किसी भिखारी को नहीं देखते हैं।

जब खानखाना दान दे चुके तब कवि गंग ने इसका कारण पूछा। खानखाना ने कहा, 'कवि गंग! जब मैं इन दीन दुःखियों को रुपए पैसे देता हूं तब ये मेरी तारीफ़ के पुल बांध देते हैं। मैं इसे झूठी तारीफ समझता हूं क्योंकि मैं जो कुछ देता हूं वह परमात्मा की ओर से उसी के बच्चों को देता हूं। ये भिखारी बड़े भोले हैं। परमात्मा का जय २ कार करने के बजाय ये मेरा जय जय कार करते हैं इसी कारण मारे शर्म के मेरी आखें नीची हो जाती हैं।"

देने वाला और है, जो देता दिन रैन।
दुनिया मेरा नाम ले, या विध नीचो नैन॥

(२)

संत प्रभाव—

महात्मा कबीर के डेरे पर प्रायः साधुओं और विद्वान् अतिथियों का जमघट लगा रहता था। उनके भोजन का प्रबन्ध भी महात्मा को स्वय करना पड़ता था।

एक दिन लगभग २० अतिथि उनके यहां आए। उस समय महात्मा के डेरे पर भोजन सामग्री का अभाव था, इस कारण उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। कबीर साहब की लोई नाम की पत्नी थी। उन्हे चिंतित और घबराया हुआ देखकर उससे न रहा गया और तत्काल शहर में गई और एक सेठ से धन लेकर खाद्य-सामग्री ले आई। कबीर साहब उसकी सहायता से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने बड़े प्रेम से अतिथियों का सत्कार किया।

कबीर साहब यद्यपि अतिथियों को खाना खिलाने में व्यस्त थे तथापि उनका मन जिज्ञासा कर रहा था कि इस अपरिचिता लोई को नगर से पैसा कैसे मिल गया। अतिथियों के चले जाने पर कबीर साहब ने लोई को अपने पास बुलाकर पूछा "तुम्हें किसने पैसे दिए हैं।" लोई ने कहा "महाराज मैं एक साहूकार के बेटे से रुपया लाई

थी। वह मुझ पर मोहित है। मैंने उससे ज्योंही धन की याचना की त्योंही उसने मेरे हाथ पर रुपए रख दिए परन्तु उसने मुझ से वायदा करा लिया है कि रात्रि को मैं उसके पास आऊँ?"

इस वृत्तान्त से कबीर साहब को बड़ा कष्ट हुआ। रात हुई, चारों ओर अंधेरा छा गया, संयोग से उस दिन वर्षा हो रही थी। कबीर साहब ने लोई को साहूकार के पास जाने के लिए तय्यार होने को कहा। लोई संकोच करने लगी। इस पर कबीर साहब ने स्वयं लोई के साथ जाने का फ़ैसला किया। हवा पानी की परवाह न करके कम्बल ओढ़कर—लोई को कंधे पर बिठाकर साहूकार के घर पहुँचे। कबीर साहब बाहर खड़े रहे और लोई भीतर चली गई। न तो उसके कपड़े भीगे थे और न उसके पैरों में कीचड़ ही लगी थी, यह देखकर साहूकार के लड़के ने इसका कारण पूछा। लोई ने कहा कि मुझे लाने वाला बाहर खड़ा है। इस पर साहूकार के लड़के को क्रोध और विस्मय हुआ। क्रोध में भरा हुआ वह सीधा द्वार पर गया। वहाँ महात्मा कबीर को खड़ा देखकर हैरान हो गया और उनके पैरों में लिपट कर क्षमा याचना करने लगा। महात्मा कबीर चुपचाप खड़े रहे। कुछ क्षण के पश्चात् लोई को भीतर जाने के लिए कहा। इसपर साहूकार का पुत्र रोने लगा और लोई के पैरों पर गिरकर कहा 'तुम मेरी बहिन हो', ये शब्द सुनकर कबीर साहब ने साहूकार के पुत्र को उठाकर छाती से लगाया। साहूकार का वह बेटा उसी दिन से कबीर साहब का सच्चा सेवक बन गया।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

अध्यात्म सुधा

(१)

आत्मा

इस संसार में रहते हुए प्रत्येक मनुष्य और प्राणी अपने आपको सुख में देखना चाहता है परन्तु सुख केवल मात्र भाग्य के भरोसे पर रहने से प्राप्त नहीं होता। आत्मिक बल बढ़ाने से हर प्रकार से आनन्द प्राप्त होता है। यह आनन्द प्रेम के बिना दृढ़ नहीं होता।

प्रेम क्या है इसका उत्तर बृहदारण्यक उपनिषद् में बड़ी सुन्दरता के साथ दिया गया है कि माता को पुत्र क्यों प्यारा है? पुत्र को माता क्यों प्यारी है? स्त्री को पति क्यों प्यारा है? पति को स्त्री क्यों प्रिय है? पुत्र, पुत्र के लिए प्यारा नहीं वरन् आत्मा के लिए। स्त्री, स्त्री के लिए प्रिय नहीं वरन् आत्मा के लिए। संसार में माता, स्त्री, पुत्र, पिता या असख्य हैं, हम एक दूसरे को इस लिये प्यार करते हैं कि हमारी आत्मा का उनसे सम्बन्ध है। कोई आदमी दूसरे को उसके लिए प्रेम नहीं करता बल्कि आत्मा को फैलाकर उसके अन्दर देखता है अपने आत्मा को वहां पाकर उसे आनन्द प्राप्त होता है और वह उस आनन्द में मग्न हो जाता है।

जब आदमी अपनी आत्मा को दूसरे के अस्तित्व में निमग्न कर देता है तो स्वार्थ नष्ट हो जाता है। ज्ञानी पुरुष अपने आत्मा को इतना अधिक फैलाते हैं कि समाज, जाति, मनुष्य बल्कि प्राणि-मात्र में वे अपने को ही देखते हैं। यदि उसमें भी स्वार्थ का कुछ अंश होता है तो याद रखना चाहिए कि वह इतना विस्तृत होता है कि उसके अस्तित्व का अभाव बराबर है।

ज्यों २ प्रेम बढ़ता है त्यों २ विश्वास पैदा होता है। निष्काम भाव आता है। ममत्व नष्ट होता है और जिज्ञासु अपने प्रभु की भक्ति में अपने आपको खो देता है। इस विश्वास के भीतर एक बल पैदा हो जाता है जो आत्मिक बल कहलाता है जिसका संसार में मुकाबला नहीं हो सकता। जो मनुष्य अपने प्रभु पर विश्वास रखता है वह आत्म-दर्शन कर लेता है। मनुष्य को मनुष्य का जन्म इसलिए नहीं मिलता कि वह उसके शाब्दिक अर्थों पर विचार न करे। मनुष्य के वास्तविक अर्थ मनन करने के हैं। मनन ज्ञान के बिना नहीं हो सकता। संसार में ज्ञान ही बड़ी शक्ति है। ज्ञान के विकास से आत्मा-बलशाली हो जाता है।

भूल

(ले०—श्री निरंजनलाल विशारद, देहली)

"क्या देखते हो इसे पकड़कर उस जलती हुई अग्नि में झोंक दो, दुकान का माल लूट लो। इसके बच्चों को मृत्यु के घाट उतारने में विलम्ब न करो। आखिर हैं तो ये साँप के बच्चे ही। बड़े होकर जहर ही उगलेंगे। यह वह मुसलमान है जिसने ब्रह्मा में हमारे ब्रह्मी बौद्ध भाइयों को हजारों की ही नहीं लाखों की तादाद में मुसलमान बनाने में सहायता दी है" यह कहते हुए एक ब्रह्मी सरदार ने अपने दल की ओर इशारा किया। बात की बात में दल ने सरदार की आज्ञा पालन में कोई कसर न उठाई। चारों ओर बच्चों का चीत्कार और स्त्रियों का रुदन क्रन्दन कानों को फाड़े देता था। इसी प्रकार चारों ओर मुसलमानों को गाजर मूली की भाँति काटता हुआ यह दल आगे बढ़ा जाता था। अचानक दल में से एक ने पुकारा देखो, हिन्दुस्तानी जाता है, पकड़ना! सहसा दल के चार आदमियों ने उस अभागे भारतीय को पकड़ लिया। परन्तु उस भारतीय की जान में जान आई, जब उस दल के सरदार ने यह कहकर उसे छोड़ देने की आज्ञा दी कि यह हिन्दू है। बौद्ध भी हिन्दू धर्म की एक शाखा है। दल के कुछ लोगों ने इसका विरोध किया परन्तु सरदार की आज्ञा थी। अपने दल को सन्तोष देने के लिये सरदार ने कहा कि "आर्य दल ने हमें पूरा विश्वास दिला दिया है कि हिन्दू और बौद्ध एक हैं। वे हमसे मित्रता का हाथ बढ़ा रहे हैं। हमें उनका स्वागत करना चाहिए। वह भारतीय हिन्दू हैं हम ब्रह्मी हिन्दू हैं पर हैं सब एक ही भाई।

इस प्रकार हिन्दुओं की तरह देकर मुसलमानों को नष्ट करते हुए १९३४ ई० में मुसलिम-ब्रह्मी गृह युद्ध की समाप्ति हुई। इसमें कितने मुसलमानों की जानें गई कोई नहीं जानता। परन्तु यह एक साधारण भावना थी जो कि कथित भारत-ब्रह्मी युद्ध और वस्तुतः मुसलिम-ब्रह्मी युद्ध में हिन्दू निर्भयता से अपनी दुकानें खोले रहे और उनके ऊपर कोई आँच नहीं आई।

परन्तु यह भावना कि हिन्दू हमारे भाई हैं ब्रह्मी लोगों में बहुत अधिक समय तक नहीं ठहर सकी। यद्यपि बुद्धिमान् बौद्ध तो अब भी बौद्ध और हिन्दू धर्म में भेद नहीं करते। परन्तु इसमें दोष किसका है। भारतीय हिन्दुओं ने ब्रह्मा के बौद्धों को इसी कारण तो हिन्दू मानना अस्वीकार कर दिया कि वे मांसाहारी हैं। वे अछूत हैं। बौद्ध धर्म हिन्दू धर्म नहीं हो सकता। चाहे उन्हें लाख समझाया गया कि वे सुदूर देश में रहकर उस देश के निवासियों से मित्रता के भाव बनाकर रहें और विशेषकर अपने ही भाइयों से घृणा करना तो बुद्धिमानी नहीं कही जा सकती। परन्तु उन्हें समझाये कौन? उनका धर्म तो उन्हें मिलने की आज्ञा ही नहीं देता। वे

तो अपने धन के नशे में इस मित्रता का महत्व समझने ही क्यों लगे ? यदि हिन्दू अपनी इस संकुचित मनोवृत्ति को दबाकर ही रखते तब भी गनीमत थी पर उन्होंने तो बडे व्यापारी होने और बडे धर्म होने के कारण खुल्लम खुल्ला ब्रह्मी लोगों का विराध ही मोल लिया। अवसर पडने पर मुसलमानों का साथ दिया और ब्रह्मी हिन्दुत्व को कुचलने का प्रयास किया। धीरे धीरे ब्रह्मी लोगों की वह भावना कि भारत के हिन्दू हमारे भाई हैं नष्ट प्राय होती चली गई। आर्य दल का समझना कि भारतीय हिन्दू और बौद्ध लोग भाई हैं उनके नेताओं को विशेष रुचिकर नहीं लगती। चाहे उनके मन में यह बात घर करती हो कि वस्तुत आर्य सघ का कहना यथार्थ है, परन्तु बाह्य दृष्टि और व्यावहारिकता तो इसके विपरीत ही पाई जाती है।

समय गुजरता गया। कटुता के भाव अपनी जड़ें पाताल की ओर फैलाने लगे। चाहे कोई यही कहे कि मैं जले पर नमक छिडक रहा हूँ कि दु:खित तथा आपदा ग्रस्त हिन्दू भाइयों से सहानुभूति न करके एक बेसुरा राग आलाप रहा हू परन्तु वस्तुस्थिति तो यही है। यह कडवा सत्य है पर है अटल सत्य। हमारे दुर्भाग्य से अचानक एक दिन रंगून पर जापानी बमों की वर्षा होने लगी। लोग घर-बार और अमूल्य वस्तुओं को छोड़कर अपने व्यापार और करोडों रुपये की सम्पत्ति को छोडकर भाग रहे हैं। उन्हें अपनी जान बचाने की ही चिन्ता है। आज ऐसे आडे समय में जहाँ भी ये भारतीय जाते हैं चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, हैं तो भारतीय। अचानक लूट लिये जाते हैं और इस विपदा के समय सहायता और सहानुभूति के स्थान पर उन्हें मिलता है लुटेरों का दल। भारतीय की सूरत देखते ही वे ब्रह्मी लोग उन पर टूट पडते हैं। उनका सर्वस्व लूट लिया जाता है। तनिक भी आना कानी पर मौत के घाट उतारना ब्रह्मी लोगों के बायें हाथ का खेल है। भारतीय लोगों को उतना त्रास जापान के बमों से नहीं हुआ जितना कि ब्रह्मी लोगों से। भारतीय लोगों को कोई आश्रय देने वाला भी न था परन्तु इसमें दोष हिन्दुओं का ही है जिन्होंने ब्रह्मा में इतने दिन रहकर भी उसे सब प्रकार से लूटने का सिद्धान्त अपनाया और अपने मित्र पैदा करने की अपेक्षा शत्रु पैदा किये। यह कभी स्वप्न में भी न सोचा कि ये ब्रह्मी भी हमारे भाई हैं। इसी का आज यह फल है कि हमारे अनेक बच्चे एक एक बूँद पानी और एक एक दाने चावल के लिये तडप तडप कर मरे अनेक प्रकार के त्रास उन भारतीय लोगों को हुए जो भारत को पुन आ रहे थे। हमारा सर्वस्व लूटा गया लाखों जानें गईं परन्तु अपनी भूल तो अब भी हिन्दू कभी स्वीकार न करेंगे।

लिपि-समस्या

(लेखक—श्रीयुत के० एम० मुन्शी, भू० पू० गृह सचिव, बम्बई सरकार)

श्री नारायण अग्रवाल द्वारा प्रेषित १० मई के 'हरिजन' में इस आशय की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है कि लखनऊ विश्वविद्यालय की शिक्षा समिति ने निम्न सुझाव प्रस्तुत किये हैं —

(१) शिक्षा और परीक्षा का माध्यम हिन्दुस्तानी होना चाहिए।

(२) समस्त वैज्ञानिक ग्रन्थों के लिखने और प्रकाशन में, प्रश्न पत्रों और उनके उत्तरों को सम्मिलित करके, रोमन लिपि का व्यवहार होना चाहिए और आवश्यकतानुसार नए अक्षरों और चिह्नों का निर्माण कर लेना चाहिए।

ये सुझाव विश्वविद्यालय की प्रबन्ध समिति के सम्मुख विचाराधीन हैं।

वस्तुतः मुझे इस बात का खेद और आश्चर्य है कि इतनी बड़ी संस्था ने भारतवर्ष के लिए एक सम्मिलित लिपि बनाने की अपनी इच्छा और उत्साह के आवेश में इसकी गम्भीर समस्या का यह छोटा मार्ग निर्धारित किया है जिस पर भारत के विचारशील व्यक्ति वर्षों से अपने दिमाग लगा रहे हैं।

यह प्रस्ताव वास्तविकता के विरुद्ध है इसलिए मैं इसके सर्वथा विरुद्ध हूँ।

भारत में (१) १०००० व्यक्तियों में से ९९८२ व्यक्ति भारतीय भाषा बोल सकते हैं। (२) ७२२५ व्यक्ति संस्कृतमय भाषाएँ बोलते हैं जिनका साहित्य और शब्द भण्डार मुख्यतया संस्कृत द्वारा निर्मित है (३) इनमें से ४०५३ व्यक्ति देवनागरी लिपि में लिखित भाषाओं का प्रयोग करते हैं। (४) २६६२ उन भाषाओं का प्रयोग करते हैं जो देव नागरी के विविध रूपों में लिखी हुई हैं। इसका अर्थ यह है कि ६७१५ व्यक्ति सुगमता से देव नागरी लिपि को स्वीकार कर सकते हैं।

दूसरे अधिक से अधिक २८ लाख भारतीय उर्दू भाषा बोलते हैं। १०००० में लगभग ७०० व्यक्ति यह भाषा बोलते हैं जो साधारणतया फ़ारसी लिपि में लिखी हुई हैं।

हमारे विदेशी शासकों की भाषा का १५० वर्ष से भारत में प्राधान्य हुआ है परन्तु १०००० में केवल १०३ व्यक्ति ही अंग्रेजी जानते हैं जो रोमन लिपि में लिखी जाती है।

इन अंकों पर दृष्टि डालने से तत्काल पता लग जायगा कि रोमन लिपि का सूत्रपात करके लिपि की भारतीय समस्या का हल करना कितना उपहासास्पद और व्यर्थ का प्रयत्न है।

(रोमन लिपि को प्रचलित करने से अभागे विद्यार्थी के मार्ग में एक बड़ी कठिनाई यह उपस्थित होगी कि उसे अपनी मातृ-भाषा को एक अस्वाभाविक लिपि में प्रकट करना होगा और इस रीति से उसकी राष्ट्रीय प्रतिभा की क्षति

मारी जायगी। इसमें सन्देह नहीं कि इंगलिश जानने वाले व्यक्ति के लिए संस्कृत को भी रोमन लिपि में पढ़ना और लिखना सरल है। परन्तु उदाहरण के लिए 'शकुन्तला नाटक' को रोमन लिपि में पढ़ने से एक दो नस्लों के बाद हिन्दू विद्यार्थी की धार्मिक भावनाओं को गहरा धक्का लगेगा।)

इस विषय में भावनाओं के अतिरिक्त जिनकी जड़ें बहुत गहरी हैं, विश्वविद्यालय को यह अनुभव करना चाहिए कि इस प्रकार का यत्न स्थायी नहीं हो सकता। इससे उत्साह पैदा न होगा और यह कुछ विद्यार्थियों के अतिरिक्त अन्यों पर प्रभाव भी नहीं उत्पन्न करेगा। हिन्दू और मुसलमान दोनों इससे रुष्ट होंगे।

इसमें सन्देह नहीं है कि महात्मा गांधी का यह यत्न वास्तविक हल है कि राष्ट्रभाषावादियों को नागरी और फारसी दोनों लिपियाँ लिखनी चाहियें। यदि समय अनुकूल हुआ तो उसका सर्वोत्तम हल हो जायगा और वह इस प्रकार कि हिन्दू लोग देव नागरी के साथ २ हिन्दी हिन्दुस्तानी को उर्दू लिपि में भी लिखना सीखें और मुसलमान फ़ार्सी के साथ २ हिन्दी, हिन्दुस्तानी को हिन्दी में लिखना सीखें। देहली में राष्ट्रीय सरकार की स्थापना होने पर इस अन्तिम भविष्य में बहुत संभावना देख पड़ती है। असाम्प्रदायिक राष्ट्रीयता की अन्तिम सिद्धि के लिए अपने दृढ़ आदर्श के लिए निस्सन्देह महात्मा गांधी एक मर्यादा का निर्माण कर रहे हैं जिसके दूरवर्ती परिणाम होंगे। परन्तु मुझे भय है वे ऐसी भूमि में अपने बीज डाल रहे हैं जिसमें साम्प्रदायिकता की दीमक लग जाने से उसकी उत्पादक-शक्ति इस समय नष्ट हो चुकी है।

यदि कोई राष्ट्र अपनी राष्ट्रीय भाषा के लिए ऐच्छिक लिपियों का आश्रय लेता है तो आन्तरिक दृष्टि से इसमें कोई हानि नहीं है। भारत में यदि ऐसा हो जाय तो यह एक बड़ी बात होगी और हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर जिस भारतीय जीवन और संस्कृति में स्वतन्त्रता पूर्वक योग दिया है उसका यश बढ़ेगा परन्तु बड़े से बड़े आशावादी देश-भक्त को यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान स्थिति में तो यह बड़ा कठिन है मैं चाहता हूँ कि मैं विपरीत परिणाम पर पहुँचूँ। परन्तु वस्तुस्थिति मुझे किसी अन्य परिणाम पर नहीं पहुँचाती है।

('Social Welfare' के आधार पर)

[महात्मा गांधी जी ने एक प्रश्न कर्ता के प्रश्न का उत्तर देते हुए 'हरिजन' में लिखा है "रोमन लिपि अन्य भारतीय लिपियों का स्थान नहीं ले सकती। यदि मेरा वश चले तो सब प्रान्तों में देव नागरी को प्रचलित कर दूँ।......यह सब लिपियों से जो व्यवहार में आती हैं सबसे अधिक पूर्ण है।"

—सम्पादक]

आर्य धर्म की हिंसा-अहिंसा

महात्मा गांधी और उन जैसा विचार रखने वाले शान्ति-वादियों का कहना है कि आत्मिक शक्ति पशु-बल से श्रेष्ठतर है इस कारण संसार से द्वेष-भाव मिटाने और भातृ-भाव की स्थापना करने के लिए अहिंसा को काम में लाना चाहिए, यदि कोई शत्रु हमारे देश पर चढ़ आवे तो हमें द्वेष को छोड़कर अहिंसा की भावना से ओत-प्रोत होकर उसके सामने डट जाना चाहिए। शत्रु भले ही हमारे आदमियों को मार डाले लेकिन हमें उसके विरुद्ध हाथ नहीं उठाना चाहिए। जब शत्रु की हिंसा-वृत्ति शांत हो जायेगी तो उसकी आत्मा जागृत होगी और प्रभु की दिव्य ज्योति का प्रकाश उसके ज्ञान-नेत्र खोल देगा, तब वह अपनी भूल पर पश्चात्ताप कर युद्ध का अन्त कर देगा। भगवान् बुद्ध और महात्मा गांधी आदि इस सिद्धान्त को मानते हैं कि द्वेष-द्वेष से शान्त नहीं होता बल्कि प्रेम से शान्त होता है। हजरत ईसा मसीह ने भी इसी सिद्धान्त की पुष्टि की है। मगर ईसामसीह के अनुयायियों ने व्यवहारिक रूप में इसे स्वीकार नहीं किया। आज १९०० वर्षों के बीत जाने पर भी ईसाई देश युद्ध पर डटे हुए हैं। इससे पता चलता है कि इन तीनों महात्माओं का स्वीकार किया हुआ अहिंसा का यह रूप केवल आदर्श मात्र है। बौद्ध देशों ने भी कभी युद्ध से मुंह नहीं मोड़ा है। केवल महाराजा अशोक का एक ऐसा उदाहरण है कि जिसने शस्त्र-विजय के स्थान पर धर्म विजय का प्रचार किया। भारतवर्ष में अहिंसा के अशुद्ध रूप ने लोगों मे कायरता भर दी है और साधारण हिन्दू जनता अपनी कायरता छिपाने के लिए दया और अहिंसा का आश्रय ले लेती है।

तो प्रश्न यह उठता है कि आर्य धर्म का अहिंसावाद है क्या चीज ?

आर्य धर्म ईश्वर प्राप्ति को अपना जीवनादर्श मानता है और उसका साधन योगाभ्यास बत-लाता है। महर्षि पतञ्जलि ने अहिंसा की व्याख्या करते हुए यह बात कही है—

"अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्नि धौ वैरत्याग":—

अर्थात् जो मनुष्य अहिंसा की सिद्धि कर लेता है वह वीतराग हो जाता है। किसी प्रकार का द्वेष, किसी प्रकार की शत्रुता उसके अन्दर नहीं रहती। महर्षि पतंजलि ने इस प्रकार की सिद्धि उन लोगों के लिये कही है जो योगाभ्यास द्वारा ईश्वर प्राप्ति करना चाहते हैं। ऐसे लोगों को किसी प्रकार के सामाजिक आन्दोलन अथवा संग्राम में नहीं पड़ना चाहिए। जो क्षत्रिय हैं जिनके जिम्मे शासन भार है अथवा जो व्यापारी हैं जिनका धन्धा सेवा करना है, वे भला शत्रुता से कैसे बच सकते हैं ? शुद्ध अहिंसा-धर्म विकास की चीज है। आर्य धर्म के संस्थापक मानव स्वभाव से परिचित थे इसी लिए उन्होंने अपने धर्म का स्वरूप प्राकृतिक नियमों के अनुसार अहिंसावादी रक्खा। राग द्वेष, ईर्ष्या और घृणा

तो मनुष्य स्वभाव हैं ही, हमें इन्हें सात्विक वृत्ति की ओर ले जाना है और प्रबन्ध यह करना है कि पशु बल का यथा योग्य नियन्त्रण कर, उसमें सामाजिक उपयोगिता भर, अन्तिम लक्ष्य सात्विक वृत्ति की प्राप्ति की जाय। जो नियम वैश्य और क्षत्रिय के लिए लागू हाते हैं वे ब्राह्मण के लिए नहीं होते। धीरे २ दर्जा ब दर्जा क्षात्र धर्म द्वारा मनुष्य आदर्श की ओर बढ़ता चला जाता है और अन्त में वह ब्राह्मणत्व पद पाकर उसकी सिद्धि कर लेता है। तो आर्य-धर्म का अहिंसा-वाद यह है कि जहाँ तक हो सके हृदय से द्वेष को दूर करने की आदत डालनी चाहिए। युद्ध आ पड़े तो निर्भय होकर करना चाहिए। दूसरों का बीज-नाश करने के लिए नहीं बल्कि सुधार के लिए, मित्रता भाव रख कर। अमरीकन घरेलू युद्ध मे जब सन् १८६० मे उत्तर और दक्षिण की अमरीकन फौजें हबशियों की आजादी के सिद्धान्त पर रण क्षेत्र में भिड़ीं तो दोनों दलों के सिपाही लोग शान्ति के समय आपस मे मिलते, खाने की चीजें बाटतें और प्रेमालाप करते थे, वही सिपाही लड़ाई शुरू होने पर सेनापतियों का हुक्म पाकर एक दूसरे पर बन्दूकें दागते थे। कुरुक्षेत्र के युद्ध मे भी ऐसा ही हुआ था। आर्य लोगों का अहिंसा वाद यह था कि सामाजिक नियन्त्रण और दुष्टों के दलन के लिए युद्ध आवश्यक है, मगर उसमें द्वेष का विष नहीं आना चाहिए। जब इस प्रकार मनुष्य अभ्यास करता चला जायगा तो वह ईश्वर प्राप्ति के दर्जे तक पहुँच सकता है। अपनी पूरी शक्ति लगाकर शान्ति का प्रयत्न कीजिए, मगर जब शत्रु माने ही नहीं तो फिर लड़ाई से मुंह न मोड़िये। सदा अपने सामने सात्विक आदर्श रहे, क्योंकि वह जीवन का श्रेष्ठतम लक्ष्य है। भगवान् कृष्णचन्द्र जी ने शान्ति के लिए भरपूर कोशिश की थी, मगर दुष्ट दुर्योधन ने नहीं माना, तब लाचार होकर उन्होंने युद्ध का शख फूंक दिया।

यह है वैदिक धर्म का अहिंसावाद। (र. प्र.)

[इस विषय मे इतना और लिख देना आवश्यक है कि वैदिक आदर्श 'मित्रस्याह चक्षुषा सर्वाणिभूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा-महे' (यजु० ३६।१८) इत्यादि मन्त्रों के अनुसार प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखने का है किन्तु जब धर्म और न्याय की रक्षा के लिये साम, दान, भेद आदि निष्फल हो जाएं और युद्ध ही अनिवार्य हो जाए तो भी द्वेष रहित होकर क्षत्रियों को ऐसे ही कर्तव्य बुद्धि से दुष्ट दमन करना चाहिये जैसे कि न्यायाधीश वैयक्तिक द्वेष न रखते हुए चोर आदि अपराधियों को समाज रक्षार्थ दण्ड देता है। वेदों मे इस उच्च आदर्श को विजेता के मुख से पराजित शत्रु के लिये प्रयुक्त "न वैत्वा द्विष्म अभय नो अस्तु" अर्थात् तेरे साथ भी हम द्वेष नहीं करते हमे सब ओर से निर्भयता प्राप्त हो इन शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है। ब्राह्मणों और सन्यासियों के लिये तो अहिंसा का वही उच्च आदर्श है जिस का मनु महाराज ने "क्रुध्यन्त न प्रतिक्रुध्येत्, आक्रुष्टः कुशल वदेत्।" अर्थात् क्रोध करने वाले पर भी वह क्रोध न करे, गाली देने वाले को भी आशीर्वाद दे इत्यादि शब्दों मे प्रतिपादन किया है—

धर्मदेव स० सम्पादक]

स्त्री आन्दोलन का आदर्श क्या हो ?

(लेखक—श्री प० सतीशकुमार जी विद्यालङ्कार, सम्पादक 'आर्यभानु', शोलापुर)

वर्तमान समय में भारत में शिक्षा की विशेषत स्त्री शिक्षा की जो हीन अवस्था है वह हमें आश्चर्य में डाल देती है कि क्या शिक्षा के विषय में भारत की सदा ऐसी ही अवस्था रही है !

प्राप्त इतिहास के अध्ययन से मालूम पड़ता है कि वैदिक काल में स्त्री शिक्षा अपने विकास की चरम सीमा पर थी और समाज में स्त्रियों को बहुत ही सम्माननीय स्थान प्राप्त था। घर में स्त्री साम्राज्ञी की तरह रहती थी। बहुत से वेद मन्त्रों की द्रष्ट्री स्त्रियां हैं। ऋग्वेद के प्रथम अध्याय के १२६ वें सूक्त की द्रष्ट्री रोमशा नामक स्त्री है। १७९ की लोपामुद्रा है। इस प्रकार ऋग्वेद की २६ मन्त्र द्रष्ट्री ऋषि स्त्रियों का पता चलता है।

गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, लोपामुद्रा, ममता, अपाला, सूर्या, इन्द्राणी, शची, सर्पराज्ञी तथा विश्ववारा आदि बहुत सी स्त्रियां अपनी प्रखर बुद्धिमत्ता एवं गम्भीर आत्मिक ज्ञान के कारण अमर हो गई हैं। इससे प्राचीन भारत में स्त्रियों की शिक्षा की अवस्था का पता चलता है।

ऐतिहासिक घटना क्रम से ऐसा भी मालूम पड़ता है कि स्त्रियां न केवल उत्तम गृहिणी और विदुषी होती थीं किन्तु अपने पतियों के साथ युद्धों में भी वीरता से भाग लेती थीं। राजा खेल की रानी विश्पला का एक पैर युद्ध में कट गया था, जिसकी जगह लोहे का पैर लगाया गया। मुनि मुद्गल की पत्नी इन्द्रसेना ने अपने पति के शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। महारानी कैकेयी महाराज दशरथ के साथ सभी युद्धों में साथ जाती थी।

प्राचीन युग के बाद मध्ययुग से पूर्व बौद्धों के उत्थान के समय में भी स्त्री शिक्षा उन्नति पर थी। इस का प्रमाण बौद्ध भिक्षुणियां हैं। थेरी गाथा की रचना ७३ बौद्ध भिक्षुणियों द्वारा ही हुई है। आन्तरिक अशुद्धियों के कारण बौद्धों के पतन हो जाने के बाद ब्राह्मणों के हाथ में शक्ति आई। बौद्धों के पतन से शिक्षा लेकर उन्होंने स्त्रियों को भिक्षुणी या सन्यासिनी होने से तो रोक ही दिया किन्तु साथ ही उन्हें घर की चार दीवारी में रख कर शिक्षा से भी वञ्चित कर दिया।

(२)

अब पुनः स्त्री शिक्षा के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुआ है। भिन्न २ संस्थाएं इस दिशा में प्रयत्न शील हैं। आर्य समाज इस दिशा में विशेष गति शील है। पूना और बम्बई के सेवासदन, बंगलोर का महिला सेवा समाज अपने २ ढंग से स्त्रियों की शिक्षा के लिए कार्य कर रहे हैं। अब बहुत सी स्वतन्त्र शिक्षा संस्थाएं भी खुल गई हैं। परन्तु स्त्रियों के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य तथा शिक्षा के बारे में जो आंकड़े प्राप्त हुए हैं उनको देखते हुए ये प्रयत्न यवक्रीत की तरह लगते हैं जो मुट्ठी २ रेत डाल कर गंगा के प्रवाह को रोकना चाहता था। भारत में शिक्षित स्त्रियों की संख्या केवल ३ प्रतिशतक है। भारत की अवनति का मुख्य कारण यही है कि स्त्रियों के लिए आवश्यक शिक्षा की उपेक्षा की गई है। मातृ शक्ति की अवहेलना की गई है।

इतिहास इस बात का साक्षी है कि संसार के बड़े २ व्यक्ति वे ही हैं जिन्होंने माताओं द्वारा उचित शिक्षा प्राप्त की है। माताओं के शिक्षित होने पर ही भावी सन्तान उत्तम हो सकती है।

(३)

सदियों से पुरुष ने स्त्री को जिस प्रकार अपने आधीन रखा, उसके विरोध स्वरूप जो स्त्री आन्दोलन चल पड़ा हैं उसका हम कुछ अंश तक स्वागत करते हैं। यूरोप और अमेरिका म स्त्रियों ने बहुत-सी बातों की स्वतन्त्रता, और समाज म पुरुषों की तरह ही अधिकार प्राप्त कर लिया है। पश्चिम की स्त्रियों को सम्पत्ति म अधिकार है, वे अपने पतिया को तलाक दे सकती हैं, व कोर्ट में काम करती हैं। राज्य की नियम विधातृ परिषद् में भाग ले सकती हैं। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रवेश कर सकती हैं। वह मत दे सकती हैं, सिगरेट पी सकती हैं, पुरुष मित्रों के साथ सिनेमा म जा सकती हैं इत्यादि। ये स्वतन्त्रता या अधिकार पश्चिम की स्त्रियों को प्राप्त हैं। किन्तु इसस स्त्रियों का पारिवारिक सहज स्नेह कम हो गया है। घर के प्रति स्त्री के उत्तरदायित्व को भुलाया जा रहा है। अब प्रश्न यह है कि क्या भारत में जो स्त्री आन्दोलन हो रहा है वह पश्चिम के ही पद चिन्हों पर होना चाहिए? क्या पश्चिम द्वारा स्थापित आदर्श भारतीय स्त्रियों की सभ्यता, प्रथाएँ परिस्थितिया तथा वंश परम्परा के अनुकूल होगा।

बहुत से लोगों की सम्मति मे वर्तमान स्त्री आन्दोलन भव्य प्राचीन संस्कृति के लिये बाधक है जिसे स्त्रियाँ वंश परम्परा से सुरक्षित रखती आई हैं। इससे समाज के पारिवारिक जीवन में एक प्रकार का रूखापन और अव्यवस्था आ जायेगी। इससे भारतीय स्त्रियों के आदर्श के मूल पर कुठाराघात हो रहा है। गृहिणी के उदात्त गुणों और कौटुम्बिक संगठन का सदा के लिये लोप हो जायगा। इससे पश्चिमी अन्धछाइया ही नहीं आयेगी किन्तु भारतीय स्त्रियों का जो गौरव पूर्ण इतिहास है वह भी नष्ट हो जायगा।

ये विचार पुरुषों के हैं सम्भवत पुरुषों को अपने प्रति जो पक्षपात है उसका भा इसमें कुछ समिश्रण हो। किन्तु हम इतना अवश्य कह दें कि भारत की प्राचीन विदुषी स्त्रियों पर हम गौरव कर सकते हैं। भारतीय स्त्रिया पश्चिमी स्त्रियों का अनुकरण न करें। अपने इसी देश की संस्कृति में पत्नी और आदर्श भूत स्त्रियो का अनुकरण कर सकती हैं। सभी क्षेत्रों म उन्हें आदर्श स्त्रिया मिल सकती हैं। भारतीय स्त्रियों का कोई भी ऐसा आन्दोलन जिसका प्रारम्भ और अन्त भारतीय राष्ट्रीयता से नहीं किया गया कभी भी सफल नहीं हो सकता। भारतीय स्त्रिया, सीता सावित्री, सती आदि को पत्नीत्व के पूर्ण आदर्श के रूप में स्वीकार कर सकती हैं। आदर्श माता के रूप में गान्धारी को, भक्ति के रूप में मीराबाई को, शक्ति, वीरता और बुद्धिमत्ता के लिए पद्मिनी झांसी की रानी और अहिल्याबाई को स्मरण कर सकती हैं। भारतीय स्त्रियों के लिए ये ध्रुव तारे की तरह हैं। भारतीय स्त्रियों को गृहिणी के साथ उत्तम नागरिक भी होना चाहिये। उन्हें वर्तमान ज्ञान विद्या एव कला को सीखना चाहिए किन्तु साथ ही कन्या, बहिन पत्नी और माता के कर्तव्यों को भी पूर्ण करना चाहिए। किसी भी परिस्थिति में आध्यात्मिक आदर्श वही होना चाहिए जो प्राचीन भारत में था। ऋग्वेद के दशम मण्डल में १७०,३० में कहा है, स्त्रियों को अपने सतीत्व की उसी प्रकार रक्षा करनी चाहिए जिस प्रकार एक शक्तिशाली राजा

अपने राज्य की करता है। रामायण और महाभारत आदर्श स्त्रियों की घटनाओं से भरे पड़े हैं। रामायण में सीता का आदर्श पत्नी के रूप में वाल्मीकि ने जो चित्र खींचा है वह संसार के इतिहास में दुर्लभ है।

हम यह चाहते हैं कि स्त्रियां आधुनिक धारा के अच्छे अंशों को अपनायें किन्तु अपनाते हुए सीता और सावित्री के पद-चिन्हों पर चलने का भी प्रयत्न करें। आजकल स्त्रियों को इसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। यही समय है जबकि हमें स्त्रियों में फैले हुए अज्ञान को दूर करना चाहिए तब ही हम राष्ट्रीयता और भारत की समृद्धि के मार्ग पर बिना विघ्न बाधाओं के चल सकते हैं।

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की सूचनायें

वार्षिक शुल्क

परिषद् का नया वर्ष आरम्भ हुवे ६ मास से अधिक हो गये, लेकिन अभी तक अधिकांश आर्य कुमार सभाओं ने अपने पिछले वर्ष का चन्दा नहीं भेजा है ऐसी अवस्था में परिषद् का काम चलना बहुत कठिन है, अतः सभी आर्य कुमार सभाओं के मंत्रियों से निवेदन है कि वे दोनों वर्षों का शुल्क शीघ्र अति शीघ्र भेजने की कृपा करें। बहुत सी कुमार सभायें पत्रोत्तर नहीं देती हैं इसलिये कभी कभी तो यह जानना भी कठिन हो जाता है कि अमुक कुमार सभा जीवित है या नहीं, अतः आप लोगों से प्रार्थना है कि आप इस विषय पर भविष्य में सावधान रहें।

—देवी दयाल उप मन्त्री

सार्वदेशिक सभा के मासिक पत्र सार्वदेशिक में प्रति मास आर्य कुमार जगत् प्रकाशित होता है, आर्य कुमार सभाओं के मंत्रियों से प्रार्थना है कि वे अपनी २ कुमार सभाओं के विशेष समाचार इस में प्रकाशनार्थ देवीदयाल उप मंत्री भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् के पास भेजने की कृपा करें। और साथ में यह भी प्रार्थना है कि आप सार्वदेशिक के स्थायी ग्राहक भी बनें।

परिषद् की परीक्षाएं

(प्रतिनिधि सभाओं द्वारा स्वीकृत)

भारतवर्षीय-आर्य कुमार-परिषद् द्वारा संचालित परीक्षाओं की भारतवर्ष की अधिकांश आर्य प्रतिनिधि सभाओं ने प्रशंसा की है और उन्हें उपदेशकों के लिए भी स्वीकार किया है।

इस सम्बन्ध में सिन्ध प्रतिनिधि सभा ने जो प्रस्ताव पास किया है उसका आशय यह है:—

"भारत के उत्थान एवं संसार की भलाई के लिए आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है। इस कार्य को ठीक प्रकार से करने के लिए हमारे पास शिक्षित प्रचारकों की एक पूरी सेना होनी चाहिए। वास्तव में हर एक आर्य भाई को इस सेना में भरती होना चाहिए। तथा उत्तम रीति से कार्य करने के लिए विशेष शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् देहली के सुयोग्य संचालकों ने अपनी परीक्षाओं द्वारा इस प्रकार की शिक्षा

के विस्तार के लिए बहुत सुन्दर प्रबन्ध किया है। प्रत्येक उत्साही आर्य नवयुवक को इस योजना का पूरा पूरा लाभ लेना चाहिए तथा परीक्षाओं में बैठना चाहिए।

कुमार-सभाओं की हलचल

व्यायाम शालाएँ

भारतवर्षीय आर्य्य कुमार परिषद् ने गढ़-मुक्तेश्वर सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया था जिसमें सभी आर्य्य कुमार सभाओं से व्यायाम शालाएं खोलने का अनुरोध किया गया है। उसके उत्तर में निम्न कुमार सभाओं से उत्तर आए हैं कि वहां पर व्यायाम शालाएं स्थापित हैं।

आ० कु० स० चित्तौड़गढ़—१७५ विद्यार्थी व्यायाम करते हैं। एक पहलवान शिक्षक भी रखा हुआ है। आ० कु० स० धारूर (हैदराबाद) काफी युवक व्यायाम करने आते हैं।

आ० कु० सभा उरई—व्यायाम शाला मे ३४-३५ युवक व्यायाम करने आते हैं। तलवार लाठी आदि भी सिखाए जाते हैं। कुमार सभा के आधीन एक रात्रि पाठशाला भी चल रही है।

व्यावर—आर्य्य-समाज की ओर से व्यायाम शाला है उसा में आर्य्य कुमार भी व्यायाम करते हैं।

आ० कु० स० कांठ—व्यायाम शाला पहले थी। बीच में बन्द हो गई थी। अब फिर क्रायम हो रही हैं।

शेष कुमार सभाओं से भी निवेदन है कि वे भी शीघ्र ही अपने अपने नगर में व्यायाम शालाएं स्थापित करके परिषद् को सूचना दें।

अन्य कार्य

आर्य कुमार सभा, ज्यौति (मैनपुरी) का वार्षिकोत्सव २-३ जून को मनाया जारहा है।

आर्य कुमार सभा, सुल्तान पुर का तीसरा वार्षिकोत्सव ६, ७, ८ मई को हो गया।

प्रशंसनीय कार्य

आर्य कुमार सभा, ज्यौति (मैनपुरी) के परिश्रम से पिछले दिनों एक अन्तर्जातीय विवाह हुआ। वर तथा कथित कायस्थ जाति के और कन्या ब्राह्मण जाति की थी।

यहां एक बाल-विवाह हो रहा था परन्तु कुमार सभा के प्रयत्नों से रुक गया आशा है कि अन्य कुमार सभाएं भी इसका अनुकरण करेंगी।

आर्य्य कुमार-कैम्प

भारतवर्षीय-आर्य-कुमार परिषद् ने १५ मई से १५ जून तक रामगढ़ में जिस कैम्प का आयोजन किया था वह अब देहरादून के पास बद्रीपुर ग्राम में १ जून से हो रहा है।

कैम्प की योजना की आर्य्य-विद्वानों ने बड़ी सराहना की है। प्रो० सुधाकर जी, पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार, पं० ज्ञानचन्द्र जी, प्रो० धर्मदेव जी शास्त्री, ने कैम्प में समय देने की स्वीकृति दे दी है। आचार्य अभयदेव जी, स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक, श्री नरदेव जी शास्त्री, प्रो० इन्द्र जी के आने की भी पूर्ण आशा है। इसके अतिरिक्त श्री बद्रीदत्त पाण्डे, श्री पंडित आचार्य नरेन्द्रदेव जी ने भी आने की स्वीकृति दे दी है।

कैम्प के लिए बड़े उत्साह-वर्धक पत्र आ रहे हैं। एक आर्य्य-कुमार हैदराबाद दक्षिण से आ रहे हैं। इलाहाबाद और युक्त-प्रान्त के विद्यार्थी संघों के सभापति भी कैम्प में भाग लेने को आ रहे हैं। सभी ने इस योजना को बहुत पसंद किया है।

कैम्प के लिए जिन सज्जनों ने आवेदन पत्र भेजे थे ये स्वीकार कर लिए गए हैं। जिन सज्जनों ने खर्च में सुविधा चाही थी उन्हें भी सुविधा दे दी गई है।

—मंत्री.

Vedic Rituals of Marriage

(*By*—Pandit Ganga Prasad ji Upadhyaya M.A. Allahabad)

Every act receives its legal or social sanction from some form of rituals. For instance. in order to give a legal value to the success in a University Examination, mere passing of the examination is not sufficient. A certain ceremony of holding a convocation meeting declaration in public by the Head of the University and awardal of the certificate with the repetition of a set formula are indispensable. These may be called University rituals. You become full-fledged graduates after having undergone the ceremony, not till then. Similarly there are rituals of coronation. When a person takes legally the sovereignty of a country, he or she has to make public declarations and perform some ceremonies. In order to be a member of a national parliament or assembly, one has to take oath with a certain set of ceremonials. They are necessary.

Marriage is also an important event of one's life. It is not an individual action. It ought not be. It has a social bearing and society must have a say in it. First of all, marriage is a Union between two persons, not one. No body can marry himself or her self. When the action passes to another individual and cannot be consummated without him or her, it is a social action. Secondly married life involves so many social complications. Difference in marriage customs makes all the difference in society. Therefore a society cannot look upon marriages unconcernedly. Thirdly the result of the union is an addition to the society. The future condition of a society so much depends upon the type of the members likely to augment it in future. Children of today are the citizens of to-morrow and what these children are, depends upon what their parents were and how they strove to make them. Therefore it is that marriage should not be a private affair and should obtain social recognition publicly. Marriages in all countries whether savage or civilized are attended with certain public rituals, the type of these rituals depends upon the standard of civilization of a people.

It is not possible in this article to give a comparative statement of

marriage rituals of different peoples. We propose to give here certain features of Vedic marriage, one of the oldest, if not the oldest rituals of human history.

Vedic rituals are elaborate and appear tedious to some. A fully modernised couple, with an air of superiority and self-sufficiency feels that as he or she is fully conscious of the duties and responsibilities of married life, it should be regarded sufficient to dec'are before a marriage court. "I, Mr. so and so take to wife Miss so-and so" or "I, Miss so-and-so, accept Mr. so-and-so as my husband". Here the whole affair should finish. Not more than a minute. Why sermonise?

But these people lose sight of psychological back-ground of human nature. These rituals do leave their impression upon the mind and serve as guide at critical times They do determine our course of action, when we are on cross-ways.

One thing we do admit. Rituals do become dry and spirit-less in a course of time. The Hindus are a very old nation. Their rituals, as they themselves, have undergone various vicissitudes of life. In many cases the spirit has flown away and a skeleton is left. But the very fact that so old a nation still exists speaks volumes in favour of even this long skeleton and there are many who think that it is not impossible to infuse new spirit into it The Aryasamaj is one of such societies that aims at so doing. When we study these rituals, we find that they denote a very high level of civilization—many traits are worth being preserved.

There are five chief parts of the marriage ceremony. We give here mere outlines.

The first part is Mandap Ceremony which begins with Homa and prayers, at the houses of the bride and bride-groom saparately. It is a sort of invocation of God or the blessings for the sacrament which is going to be perfomed soon-after. For theists it is an appropriate beginning to all sacred actions. It denotes a very high stage of society in which marriages are based not upon force but upon good-will and agreeableness of the parties. We leave it here, as Homas and prayers are usual introductions to all ceremonies and they are mostly like in form.

The second part is Madhu-park (मधुपर्क), Commonly known as duar pooja or door-worship which is Synonym to *reception*. Here the bride-groom is received by the bride

and her people at her father's house. The bride-groom is the chief guest and the bride the chief host.

The ceremony is very very impressive. The bride says :—

ओं विष्टरो विष्टरो विष्टरः प्रतिगृह्यताम् ।।

Here is the seat. Kindly accept it.

The bride-groom replies :—

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।

Thanks. I accept it.

Then the bride says:—

ओ३म् पाद्यं पाद्यं पाद्यं प्रतिगृह्यताम् ।

Here is water. Kindly wash your feet,

The bride-groom says :—

ओ३म् प्रतिगृह्णामि ।

"Thanks, I accept it."

The bride says :—

ओं अर्घोऽर्घोऽर्घः प्रतिगृह्यताम् ।

Here is water to wash your face. Kindly acept it.

The bride-groom takes it with the formula ओ३म् प्रतिगृह्णामि । "Thanks, I accept it".

Then,

ओं आचमनीयमाचमनीयमाचमनीयं प्रतिगृह्यताम् ।

"Here is water for yon to drink (literally, sip). Kindly accept it."

The bride-groom accepts it with the same formula.

Then,

मधुपर्को मधुपर्को मधुपर्कः प्रतिगृह्यताम् ।

"Here is Madhupark. Kindly accept it" The bride-groom accepts it.

Be it noted that among Aryas all eating begins with achaman (आचमन) or sipping of water. And Madhupark is a mixture of curd and honey— a sweet thing, offered sweetly and received with equal sweetness. The three verses to be read by the bride-groom at this occasion are so sweet that we can not help giving them :—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । मधुवाताऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः । माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः ॥१॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः । मधुनक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः । मधुद्यौरस्तु नः पिता ॥२॥

ओ३म् भूर्भुवः स्वः मधुमान् नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः । माध्वी र्गावो भवन्तु नः ॥

Om ! Bhur, Bhuvah, Swah are benedictory phrases. Sweet are the breaths of winds. Sweet is the flow of rivers. Let herbs be full of sweetness for us. Night is sweet and so is the dawn. Sweet is earthy sand. Let our fatherly sky be sweet. Let vegetable kingdom be sweet for us and sweet the sun (that helps their vegetation). Let cows be sweet for us.

Here the bride and the bride-groom are tuning the sweetness of their hearts with the sweetness of nature. They are in a sweet mood

and every thing they look upon or think of, appears sweet. Nobody will call this ceremony tedious if he understands the meaning. What song can be sweeter? This hospitality offered by the sweet bride herself, teaches another lesson too. It is thus that the wife should receive her husband in actual family life, when wearied in limbs and worried in mind, he wends his way homeward to find solace in the sweet reception of his wife Verily, sweet are the joys of home, but it is wife that makes home really sweet. There is a difference of chalk and cheese between hotel life and home life

The offer of a cow is the last item of the Reception. A cow is an indispensable member of a Hindu family as all life depends upon milk.

The third or main part is Panigrahan (पाणि-ग्रहण) or Hand-grasping-Ceremony. It is a rather lengthy process consisting of numerous small items. The first thing is the giving-away of the bride by the father, with the formula :

ओ३म् अमुक गोत्रोत्पन्नामिमाममुकनाम्नी मलङ्कृतां कन्यां प्रतिगृह्णातु भवान्।

"Please accept this well-dressed girl, named so and so, born in such and such family, followed by a formal acceptance of the husband by grasping the hand of the bride. Now they become husband and wife in the eye of law and come to the sacred hearth to offer joint oblations to fire. As soon as they reach there, they both jointly recite the following Verse :

ओ३म् समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ। (ऋ० X, 85, 47).

"Let all, present here know that our hearts have mingled together water* like. Let breath, let God, let the instructress (goddess of learning) keep us joined "

(Rig Veda X, 85, 47)

We leave undescribed the details of oblations, which, though significant might sound stale to the reader.

(To be continued)

* Waters flow and mingle. So do the hearts of the spouses. Sneha (स्नेह) is a Sanskrit word for liquid as well as love. What a deep insight into human psychology.

साहित्य समीक्षा

दयानन्द सन्देश का दिलजला अंक

दिल्ली से निकलने वाले दयानन्द सन्देश का एक दिलजला अंक प्रकाशित हुआ है। अंक का उद्देश्य आर्य समाज की त्रुटियें प्रदर्शित करना है। प्रतीत होता है अंक के सब लेखों का झुकाव एक ही ओर है। अपने दोषों का निरूपण उन्नति के लिये आवश्यक है। मनुष्य हो या संस्था जब तक अपने दोषों पर दृष्टिपात करके उन्हें दूर करने का यत्न न हो तब तक आगे बढ़ना असम्भव है। इस दृष्टि से 'दिलजला' अंक का उद्देश्य शुभ है।

उद्देश्य के शुभ होते हुए भी हमें कहना पड़ता है कि उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये जो उपाय काम में लाया गया है, वह दोष पूर्ण है। यदि हम दोष दर्शन के शुभ कार्य में हाथ डालें, तो हमें यह ख्याल रखना चाहिए कि यह कार्य अप्रिय है, इस कारण इसमें बहुत ही संयत भाषा का प्रयोग होना चाहिये, असंयत और आलंकारिक भाषा दोष दर्शन को बहुत कड़वा बना देती है, जिससे दोष दर्शन से जो लाभ हो सकता था, वह नहीं होता। भाषा की उग्रता और अतिशयोक्ति में दोष दर्शन का शुभ लक्ष्य नष्ट हो जाता है। यही कारण है कि इस दिलजले अंक में दिखाये गये अनेक दोषों से सहमत होते हुए भी सम्पूर्ण अंक पढ़ जाने पर पाठक के हृदय में वैसी भावना रह जाती है, जैसी किसी पारिवारिक कलह के पश्चात् रहती है। मिस मेयो की किताब पर टिप्पणी करते हुए महात्मा गांधी जी ने लिखा था कि वह किताब कई अंशों में सत्य होते हुए भी 'बदरौ के निरीक्षक की रिपोर्ट (Drain inspector's Report) मालूम होती है। दिलजला अंक को पढ़ जाने पर भी यह असर मन पर होता है कि यह आर्य समाज की बदरौ के निरीक्षक की अधूरी रिपोर्ट है 'अधूरे' शब्द का प्रयोग हमने इसलिये किया कि यह अंक प्रायः पड़ोसी के घर की बदरौ की रिपोर्ट में ही समाप्त हो गया है, अपने घर की बदरौ पर लेखकों ने दृष्टि नहीं डाली।

दिलजला अंक के लेखकों से हमारा एक निवेदन है, एक बार ईसा मसीह बाजार से गुजर रहे थे, उन्होंने देखा कि चौराहे पर खड़े हुए बहुत से आदमी एक स्त्री पर पत्थर फेंक रहे हैं। ईसा रुक गये और पूछा कि बेचारी पर पत्थर क्यों फेंक रहे हो? लोगों ने उत्तर दिया कि यह औरत चरित्र हीन है, इस कारण हम इस पर पत्थर मार रहे हैं। हजरत ईसा ने सबकी ओर देखकर कहा कि "यदि यह औरत दुश्चरित्रा भी है तो इस पर पत्थर मारने का अधिकार उसी को है जिसकी अन्तरात्मा यह कहे कि वह सर्वथा निर्दोष है।"

ईसा की बात सुनकर सब लोगों ने अपने अन्दर नजर डाली तो वहां निर्दोषता दिखाई न दी। इस कारण किसी को पत्थर मारने की हिम्मत न हुई।

दिलजले लेखकों को यह स्मरण रखना

हमारा प्रण

(ले०—प० शिवगोपाल जी 'साहित्य वाचस्पति' देहली)

(१)

हमने निहारा सदा औरों के मुखों की ओर,
किया प्रण घोर अब कभी न निहारेंगे।
खड़े होंगे पैरों पै स्वयं ही खठेंगे हम,
प्रतापी प्रताप सा प्रताप हिय धारेंगे।
डरेंगे किसी से न मरेंगे मौत से भी हम,
मौत से मरेंगे तो प्रथम मौत मारेंगे।
हारेंगे न हिम्मत बिसारेंगे न ध्रुव ध्येय,
देश जाति लाज काज तन-मन वारेंगे।

(२)

आयें आपदायें पायें कितने ही कष्ट चाहे,
ध्यान जाति जननी का कभी न बिसारेंगे।
पाप और पाखण्ड के पट को निरन्तर ही,
ज्ञान पुञ्ज पावक में पकड़ पजारेंगे।
दीनता मलीनता व दानवीय दासता को.
ठान ठान ली है खण्ड खण्ड कर डारेंगे।
हरेंगे उद्दण्डों का घमण्ड दण्ड से गोपाल,
रखने को लाख लाख लाख शीश वारेंगे।

चाहिये कि केवल दूसरे की राय ही पर दिल को जलाते रहना अच्छा नहीं, कभी अपने दोष पर भी नजर डालनी चाहिये, इस अंक के लेखों में इस प्रवृत्ति का सर्वथा अभाव दिखाई देता है।

—इन्द्र

"पोर्तुगीज पूर्व अफ्रीका में हिन्दुस्थानी"

लेखक—श्री प्रह्लादत्त भवानीदयाल, भूमिका लेखक—श्री सेठ गोविन्ददास जी M. L A. पृष्ठ संख्या लगभग १८०।

यह पुस्तक अफ्रीका इत्यादि उपनिवेशों में अनेक वर्षों तक अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य करने वाले श्री स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी के सुपुत्र श्री प्रह्लादत्त जी ने बड़े मनोरञ्जक रूप से लिखी है। इसमें पोर्तुगीज पूर्व अफ्रीका में भारतीयों के आगमन से लेकर अब तक का रोचक इतिहास दिया गया है। श्री भवानीदयाल जी संन्यासी आदि उत्तम कार्य कर्ताओं ने वहाँ के भारतीय समाज को उन्नत करने के लिये 'भारत समाज' वेद मन्दिर आदि संस्थाओं द्वारा कितना अभिनन्दनीय कार्य किया। किस प्रकार वर्णसङ्कर तथा जन्मतः हबशी इत्यादियों का शुद्धि संस्कार तथा वैदिक धर्म प्रचार वहां किया गया इत्यादि बातों का विस्तृत वर्णन अत्यन्त सरल और रोचक भाषा में इस ग्रन्थ में किया गया है। इस पुस्तक के द्वारा जो हिन्दी में अपने विषय की प्रथम है आधुनिक हिन्दी साहित्य में एक प्रशंसनीय अभिवृद्धि हुई है। 'वर्णसङ्कर' शब्द को सर्वत्र वर्णशङ्कर छापा गया है जो संस्कृतज्ञों को बड़ा अखरता है। पुस्तक सब पुस्तकालयों तथा प्रवासियों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा रखने वालों के लिये उपादेय है।

पताः—

प्रवासी भवन, आदर्श नगर, अजमेर।

समुद्र के किनारे

(लेखक—पं० विद्याधर जी वेदालङ्कार तैनावली)

दिन भर के कार्य से थक कर एक दिन सायं जरा जल्दी ही समुद्र तट पर जा पहुंचा। समुद्र अपनी रंगरलियों में मस्त था। उसके किनारे की ओर बड़ी २ लहरें बलखाती किसी का पर्वाह न करती व उमड़ती चली आ रही थी। गजों लम्बी एक लहर हरे नीले पानी पर, एक सुफैद रेखा खींच देती है जो सतह से २, ३ गज ऊंची है। मां वसुन्धरा का दर्शन करने उसे मोतियों की माला पहिराने लहर पीछे लहर चली आ रही है। पीछे से एक आती है जो दर्शन की उत्सुकता के जोश से भरी है, एक लौट रही है जो दर्शन हो जाने की प्रसन्नता से पूर्ण है। दोनों अभिमान में भरी हैं, एक टक्कर हो गई और कुछ पानी और दो हाथ ऊपर उठ आया। अपने साधारण स्थान से पानी आठ दस गज आगे की ओर एक ही धक्के में आ पहुंचता है।

मैं इस मां वसुन्धरा और वारिधि के मिलन को देखने में तन्मय था। क्या देखा एक बड़ी लहर आई। किनारे को पन्द्रह बीस गज तक सम और साफ कर गई। पानी के चले जाते ही उस स्थान पर अनन्त छिद्र बन गये। एक ही क्षण में उन छिद्रों में से असंख्य सिर ऊपर उठ आए। अरे यह क्या? सहस्रों छोटे बड़े केंकड़ों का चलना फिरना नजर आने लगा। एक तरफ पृथ्वी थी, जिसका किनारा रेतीला होने से पिलपिला था, दूसरी ओर समुद्र था और दोनों जहां मिलते थे या मिलना चाहते थे वहां अनन्त केंकड़े थे। समुद्र का पानी जोश में भरा आता और उन सब को दबा देता वे भी अपना मुख छिपा लेते, वह जाता और फिर निर्भय हो चलने फिरने लग जाते हैं। यह एक पाठ था जो प्रभु ने मुझे उस दिन दिया था। मुख मोड़ा और अपने घर की तरफ लौट पड़ा। सहस्रों का जन समुदाय तट पर उमड़ा पड़ता था और मैं अकेला लौट रहा था।

❀ ❀ ❀ ❀

रात को स्वप्नावस्था में फिर वही दृश्य सामने आ गया।—सिनेमा के चित्र पट की तरह फ़िल्म घूमने लगी।

पृथिवी इहलोक है (आधिभौतिक पदार्थ है) और समुद्र परलोक (अध्यात्म) का प्रतिनिधित्व करता है। उन दोनों के मिलन पर मैं (आत्मा) खड़ा हूँ। एक तरफ निरा अध्यात्म है और दूसरी तरफ निरा आधिभौतिक जगत्। आत्मा जब आधिभौतिक जगत् से ऊब जाता है तो सत्य सुख पाने के लिये अध्यात्म की तरफ जाता है। दिन भर के काम से थका वह कुछ विश्रान्ति चाहता है। उसका जी सांसारिक इच्छाओं से ऊब जाता है। वह नहीं चाहता कि एक क्षण भी संसार में रहे। उसे सब भार मिथ्या मालूम होने लगता है। वह मुड़ता है।

वह दोनों के संगम पर खड़ा है। वह जमीन पिलपिली है। जो न अध्यात्म की नरमी वाली है और न आधिभौतिकवाद की कम रेती वाली। दोनों का विचित्र मिश्रण उसमें है। दोनों प्रकार का खट-मिठा रस उसमे मिलता है।

पर यह वांछनीय नहीं। क्योंकि इसमें वह अपने असलीपन को भूल जाता है। उसे पहिचान नहीं सकता।

अध्यात्म का एक झोंका आता है, उसका सब व्यापार बन्द हो जाता है। उसके जाते ही वह फिर सिर निकाल आधिभौतिक जगत् पर निगाह फिराने लग जाता है।

मानव स्वभाव ऐसा ही है। वह पूरी तरह से किस ओर झुका है कहना कठिन है। कुछ बडे लोग कहते चले आ रहे हैं कि अध्यात्म में पूर्ण विलीनता चरम उद्देश्य है। उनसे कोई पूछे कि कैसे? महाशय जी। कृपया इसकी व्याख्या तो कर दीजिए।

वे बड़ी शान से बिना डरे आधिभौतिक को फूंक मार उड़ा देना चाहते हैं। कह देते हैं यह कुछ है नहीं, यदि है तो 'अध्यात्म' ही।

मानव जाति का इतिहास उठा लो। उसके पन्ने पन्ने से यही पता चलता है कि आत्मा पूर्ण अध्यात्म = चेतन = सवज्ञ नहीं। आत्मा पूर्ण भौतिक = अचेतन = जड़ नहीं। वह मध्य की दशा में है।

❀ ❀ ❀

मैं अब २ समुद्र के किनारे आता हूं। बैठ कर इसी समस्या का हल सोचा करता हूं। यदि कोई इस समुद्र में गोता लगा कर आया हो तो क्यों नहीं २, ४ मोती मेरी तरफ भी लुढ़का देता?

मैं यह ज्ञान की भीख मांग ही रहा था कि विचार की एक और लहर मस्तिष्क भूमि पर उमड़ पड़ी। मेरे सारे विचार जो सिर उठा २ कर बाहर झांक रहे थे, दब गये।

जब मनुष्य प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर आने लगता है और वैराग्य का भाव प्रबल होने लगता है उस समय भावों का एक ऐसा तीव्र झोंका आता है जो मनुष्य की विषयों में इधर उधर फैली इन्द्रियों को एक दम दबा देता है। उन्हें बाधित हो अपना सिर छिपाना पड़ता है। पर ज्योंही वह नशा उतर जाता है, जिसका उतरना वांछनीय नहीं, त्योंही फिर इन्द्रियां अपने २ गोलकों से बाहिर सिर उठा लेती हैं इधर उधर विचरने लगती हैं।

हे कल्याणमय अग्नि! मुझे सुपथ पर ले चल। तुझे मेरे सारे छिद्र पता हैं। इनमें छिपे चोरों का नाश कर दे। मैं तेरे सामने सहस्रों प्रकारों से झुका हूं।

तेरी लहर उतरने न पावे। तेरे प्रेम की बाढ़ की प्रतीक्षा मे खड़ा हूँ। कब आवे आवे और मेरा सर्वस्व नाश कर देवे ताकि इन कंकड़ों को फिर मेरे सामने सिर उठाने का अवसर न आवे। वह दिन धन्य होगा जिस दिन मैं फिर न उठने के लिये तुझ में सदा के लिये डूब जाऊँगा वही डूबना मेरा जन्म होगा, यह जन्म तो मेरे लिए डूबना हो रहा है।

उभार! उभार!! उभार!!!

काश्मीर राज्य में हिन्दी की दुर्दशा

एक सुशिक्षित सज्जन ने काश्मीर राज्य में हिन्दी के सम्बन्ध में जो पत्र हमें लिखा है उसमें से निम्न अंश उद्धृत करना आवश्यक प्रतीत होता है:—

("काश्मीर राज्य में हिन्दू विद्यार्थियों को हिन्दी लेने की सुविधा है परन्तु शिक्षा विभाग के हमारे अधिकारी प्रायः मुसलमान हैं। वे हमारी भाषा को अरबी फारसी से भरना ही नहीं चाहते—किन्तु हमें हमारी चीज भी पढ़ने देना नहीं चाहते। आजकल परीक्षा समाप्त होने के बाद नया साल शुरू हो चुका है किन्तु हिन्दी की पाठ्य पुस्तकें सरकार की ओर से नहीं बताई गईं। इस प्रकाशन में जान बूझकर देरी की जा रही है। हर साल केवल वायदा करके सन्तोष दिलाते हैं।" "ट्रेनिंग स्कूलों की शिक्षा हिन्दी में होती थी पर अब अत्यन्त क्लिष्ट और दुर्बोध उर्दू की पुस्तकें रख दी गई हैं। जब शिक्षा विभाग के संचालक (जो मुसलमान हैं) से शिकायत की गई तो उन पुस्तकों का हिन्दी अनुवाद पढ़ाया जायगा यह वचन दिया गया। परन्तु न अनुवाद हुआ, न पुस्तकें हटीं, अतः जनता अत्यन्त दुखी है।")

यदि इस पत्र में लिखी [illegible] सच हैं जिसमें पत्र लेखक के अत्यन्त विश्वसनीय सुशिक्षित सज्जन होने के कारण सन्देह का कारण नहीं तो काश्मीर रियासत का जिसके महाराज हिन्दू हैं हिन्दी भाषा के प्रति इस प्रकार का उपेक्षा पूर्ण व्यवहार वस्तुतः अत्यन्त अनुचित है। राज्य के अधिकारियों से हम स्पष्ट शब्दों में यह निवेदन करना चाहते हैं कि उन्हें इन उपर्युक्त शिकायतों के विषय में निष्पक्षपात जाँच करा कर तुरन्त दूर कर देना चाहिए अन्यथा हिन्दू प्रजा का इस विषयक असन्तोष उग्ररूप धारण कर लेगा। मुसलमान प्रजा के लिये रियासत में उर्दू फारसी आदि के शिक्षण का जैसा उत्तम प्रबन्ध है वैसे ही उन विद्यार्थियों के लिये जो हिन्दी सीखना चाहते हैं चाहे वे हिन्दू मुसलमान पारसी ईसाई आदि किसी भी जाति के क्यों न हों अवश्य समुचित प्रबन्ध सब विद्यालयों में होना चाहिए। हिन्दी प्रेमी जनता को भी लोकमत को जागृत करके अपने इस विषयक अधिकार की सब समुचित शान्तिपूर्ण साधनों से रक्षा करनी चाहिये। यह जान कर प्रसन्नता हुई है कि श्री प० विद्यानन्द जी वेदालङ्कार पुरोहित आर्य समाज मीरपुर आदि आर्य सज्जन हिन्दी प्रचारार्थ विशेष प्रयत्न कर रहे हैं। अन्य सब संस्थाओं और उदार चित्त सज्जनों को भी इस

विषयक अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये।

सामाजिक विशेष समाचार—

१. दक्षिण भारत में सार्वदेशिक सभा के उत्साही प्रचारक श्री शिवचन्द्र जी ने मई मास में अलगन पट्टी नामक ग्राम में जाकर वहाँ ५०० दलित लोगों को ईसाई होने से बचाया।

श्री राजगोपालाचार्य पाकिस्तान योजना के समर्थनादि विषयक जो आन्दोलन कर रहे हैं उसके विरोध में उन्होंने कई स्थानों पर विराट् सभायें कराईं तथा १५००० की उपस्थिति में श्री राजगोपालाचार्य के मदुरा पहुंचने से एक दिन पूर्व बड़ा प्रभावशाली भाषण इस सम्बन्ध मे दिया। श्री राजगोपालाचार्य से भी उन्होंने वैयक्तिक और सार्वजनिक रूप से पाकिस्तान योजनादि विषयक प्रश्न किये जिनका उनकी तरफ से कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला और जनता में उनके आन्दोलन के प्रति घोर असन्तोष उत्पन्न हो गया।

२. मद्रास (सेन्ट्रल) आर्य समाज के अवैतनिक प्रचारक श्री महालिंग ऐयर एम० ए० ने मद्रास के अतिरिक्त पापनाशम्, कुम्भकोणम्, विष्णुपुरम्, पुदुदुकोट्टा, चेट्टिनाड इत्यादि दक्षिण के स्थानों में प्रचार करके बहुत से ईसाई और मुसलमान युवकों को शुद्धि के लिए तैयार किया। उनके प्रयत्न से लोगों में बड़ी जागृति उत्पन्न हो गई और शीघ्र ही इनमें से कई स्थानों पर आर्यसमाज खुलने तथा शुद्धि आन्दोलन चलने की आशा है।

३. सार्वदेशिक सभा के सुयोग्य उत्साही प्रचारक पं० मदनमोहन जी विद्याधर वेदालङ्कार आन्ध्र प्रान्त में बड़े उत्साह से वैदिक धर्म प्रचार कर रहे हैं। उनके प्रयत्न से मई मास में ८ वैदिक विवाह-संस्कार हुए। वैदिक संस्कारों की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है तथा आर्य समाज के प्रति लोगों का प्रेम बढ़ रहा है। ग्रामों में भी जनता वैदिक धर्म के सन्देश को सुनकर अपना रही है।

४. सार्वदेशिक सभा के आदेशानुसार देश के कोने २ में आर्य वीर दलों का संगठन हो रहा है तथा आर्य जनता रक्षा और सेवा कार्यार्थ व्यवस्था कर रही है। बंगाल आसाम आर्य प्रतिनिधि सभा के तत्वावधान में कलकत्ता में आर्य समाज रिलीफ़ सोसाइटी की स्थापना हो गई है जिसकी कार्य-कारिणी समिति ने २३ मई की बैठक में निम्नलिखित निश्चय किये हैं—

(क बंगाल प्रान्त में आर्य वीर दल के लिये ५००० स्वयं सेवकों की भर्ती की जाए (ख) प्रति दिन न्यूनतः १०० शरणार्थियों के भोजन और आश्रय का प्रबन्ध किया जाए (ग) कम से कम ५० रोगियों को ओषधि और सेवा शुश्रूषा का प्रबन्ध किया जाए (घ) आसाम के स्थानों में जहाँ बर्मा के शरणार्थी भारत में प्रवेश करते हैं कार्य-कर्ताओं के दल भेजे जाएँ (ङ) बेकारी से पीड़ित व्यक्तियों को यथासाध्य रिलीफ़ कार्यों के लिये नियुक्त कर उनका कष्ट दूर किया जाए। इन सब दिशाओं में क्रियात्मक सेवा कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। ऐसे ही प्रशंसनीय सेवा कार्य की सूचनाएँ अन्य स्थानों से आ रही हैं।

एक आवश्यक टिप्पणी

'सार्वदेशिक' के अप्रैल १९४२ के अङ्क में प्रसिद्ध विद्वान् डा० अविनाशचन्द्र दास M A. PHD. के

'वैदिक संस्कृति के सात महान् सन्देश' विषयक लेख को 'विश्ववाणी' पत्रिका से उद्धृत किया गया था। सम्पूर्णतया लेख में वेदों के प्रति बड़ा सम्मान प्रदर्शित किया गया था। और वैदिक संस्कृति के सात महान् सन्देशों का उत्तमता से प्रतिपादन किया गया था किन्तु इस सम्बन्ध में इतना लिख देना आवश्यक है कि हम वैदिक धर्मी आर्य उस लेख के सब अंशों से सहमत नहीं। हम वेदों को संसार के प्रारम्भ में मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए प्रदत्त ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं और इसलिये उन्हें ऋषिकृत नहीं मानते, न उनमें अनित्य इतिहास भूगोल सम्बन्धी वर्णन मानते हैं इस-लिए उस लेख में जो निम्न प्रकार के कई वाक्य प्रयुक्त हुए हैं कि—

"वेदों के मन्त्रों से हमें पता चलता है कि जिस ज़माने में ऋग्वेद की ऋचाएँ लिखी गई उस समय उत्तर भारत की भौगोलिक स्थिति दूसरी तरह की थी।"

"ऋग्वेद को रचना को हम तीन महा कालों मे बॉट सकते हैं। इनमें से तीसरे काल के अन्त में दसवें मण्डल मे केवल एक मन्त्र मिलता है जिसमें चातुर्वर्ण्य का ज़िकर है (१०।६०।१२) "घोषा लोपामुद्रा, विश्ववारा आदि ने वैदिक मन्त्रों की रचना की है।"

"हमें अपने उन पूर्वज आर्यों की करुणा भावनाओं को ध्यान में रखना होगा कि जिन्होंने अनेक मन्त्रों में अपने पशुओं को देवता के सदृश माना है" (ऋग्वेद ६।२८) इत्यादि ये लेखक के अपने विचार हैं जिनसे हम सहमत नहीं। हमारे मन्तव्यानुसार चातुर्वर्ण्य का जो गुण कर्म स्वभाव पर आश्रित होना चाहिए वेदों के अनेक मन्त्रों में प्रतिपादन है तथा ऋषियों और ऋषिकाओं ने वेद मन्त्रों की रचना नहीं की किंतु उन्होंने मन्त्रों के रहस्य को समझ कर उनका सर्वत्र प्रचार किया इसलिए 'ऋषिर्दर्शनात्' स्तोमान् ददर्शेति (निरुक्त) के अनुसार मन्त्र दर्शन के कारण उन्हें ऋषित्व और ऋषिकात्व प्राप्त हुआ।

आशा है इस टिप्पणी को देखने के पश्चात् किसी महानुभाव को यह भ्रम न होगा कि हम आर्य उस लेख में प्रकाशित सब विचारो से सहमत हैं। इस टिप्पणी को स्वय लिखने के पश्चात् श्री हरवंशसिंह शर्मा वकील मेरठ तथा अन्य कई सज्जनों के लेख तथा पत्र इसी विषय में प्रकाशनार्थ 'सार्वदेशिक' कार्यालय में प्राप्त हुए हैं। हम ऐसे सज्जनों को धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने इस आवश्यक विषय में अपने विचार प्रकट करने की कृपा की है, किन्तु इस सम्पादकीय टिप्पणी के देने पर इस विषय में और कुछ प्रकाशित करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

सार्वदेशिक पत्र और पुस्तकालयः—

'सार्वदेशिक' सार्वदेशिक सभा का मुख-पत्र है जिसका चन्दा प्रचार की दृष्टि से केवल २) वार्षिक है। यह निश्चय किया गया है कि शिरोमणि सभा के गौरव के अनुरूप ही इसको अत्यन्त उच्च कोटि का मासिक पत्र बनाया जाए। इसके लिए हमे हिन्दी के सब सुप्रसिद्ध उत्तम लेखकों और कवियों के सहयोग की आवश्यकता है जिसके सम्बन्ध में पृथक् २ पत्र भी लिखे जा चुके हैं। बड़े आशा-जनक उत्तर तथा उत्तम लेख आदि प्राप्त हो रहे हैं। ग्राहक महानुभावों के सहयोग की भी इस शुभ संकल्प की पूर्ति के लिये आवश्यकता है। यदि प्रत्येक ग्राहक महोदय वर्ष में कम-से कम तीन मित्रों को आर्यों की शिरोमणि सभा के इस मुख-पत्र का ग्राहक बनाने का निश्चय कर ले तो बड़ी सुगमता से यह पत्र स्वावलम्बी बन सकता है। हमें निश्चय है कि इस रूप मे हमें ग्राहक महानुभावों का सहयोग अवश्य ही प्राप्त होगा।

सार्वदेशिक सभा के स्थिर पुस्तकालय को वेद, वेदाङ्ग, धर्म और समाज विषयक संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के सब ग्रन्थों का भण्डार बनाकर अत्यन्त उपयोगी बनाने का सभा ने दृढ़ निश्चय कर लिया है। सब पुस्तक लेखकों, प्रकाशकों तथा अन्य सब दानी महोदयों से प्रार्थना है कि वे इस शुभ सङ्कल्प की पूर्ति में पूर्ण सहायक हों जिससे वैदिक अनुसन्धानादि का कार्य भी प्रतिष्ठित सभा की अधीनता में भलीभाति चल सके।

अमानुषिक सामाजिक अत्याचारः—

सार्वदेशिक सभा कार्यालय में श्री सीताराम जी आर्योपदेशक (सा० सभा) श्री बद्रीदत्त जी उपमन्त्री मण्डल कांग्रेस कमेटी नौगावखाल, श्री नत्थीराम जी मन्त्री आर्यसमाज बन्पुरा गढ़वाल इत्यादि ८ सज्जनों के हस्ताक्षरों से श्री मोहन लाल जी आर्य के विवाह का जो ७ ५-४२ को आर्य नगर ओड़ गाँव (गढ़वाल) में हुआ विवरण प्राप्त हुआ है। श्री मोहनलाल जी आर्य का भी एक पत्र इस सम्बन्ध में आया है जिसमे उन्होंने लिखा है—

"मेरी शादी ग्राम चुचिरडा से डोला पालकी सहित सहीसलामत वापिस आ रही थी......कोई आधा मील की दूरी पर ग्राम निवास गिवाली, मेटी और ग्राम नाई वालों ने बरात को रोका और इस पर हमला किया......हमारे एक आदमी पर अधिक चोट आई है। बिट लोगों ने हम पर नाजायज दबाव डाला हमें डराया और धमकाया। जबरदस्ती हम से २५) दण्ड या जुर्माना के लिये। मैंने भी अपनी बारात को खून-खतरे से बचाने के लिए मजबूर होकर दे दिये फिर किसी तरह से बरात वापिस आर्य नगर पहुँची।"

इसके अतिरिक्त उपर्युक्त सयुक्त पत्र में लिखा है कि 'मेटी' ग्राम की तरफ से पत्थरों की वर्षा बरातियों पर हुई।...गिरोह में से जो लोग ज्यादह उत्तेजित थे उन्होंने शान्त कार्य कर्ताओं में से पं० अर्जुन देव जी प्रचारक अखिल भारतीय दयानन्द मुक्ति फौज होशियार पुर को पकड़ कर उनके सिर में डण्डे और लाठी चलाई जिससे उनके सिर पर सख्त चोटें आईं और उनके सिर पर भीड़ वालों ने ६-७ जूते मारे। अगर उन भीड़ वालों से प० अर्जुन देव जी को न छुड़ाया जाता तो उनकी जान का खतरा था। लोग गिरोह वालों के पैरों पर पड़े, उनके आगे हाथ जोड़े लेकिन उन्होंने एक न मानी और यह कहा कि या तो हम मरेंगे या तुम्हारी बोटी २ बनाकर खा जाएंगे।" इत्यादि।

उपर्युक्त घटना उस अमानुषिक सामाजिक अत्याचार की सूचना देती है जो दलित भाइयों के प्रति उच्च जाति का अभिमान रखने वाले धर्म के ठेकेदारों की तरफ से किये जाते हैं। समाज के सब सच्चे हितैषियों का कर्तव्य है कि अस्पृश्यता (अछूतपन) के कलङ्क को सम्पूर्ण रूप से दूर कर दें तथा लोकमत को ऐसा प्रबल बना दें जिससे ऐसे अत्याचार भविष्य मे असम्भव हो जाएँ। ऊपर हमने जिस सयुक्त पत्र का उल्लेख किया है उसमें यह पढ़कर हमें अत्यन्त दुःख और आश्चर्य हुआ कि हरिजन सेवक के प्रधान मन्त्री श्री ठक्कर बापा जी और सघ की उपप्रधाना श्रीमती रामेश्वरी नेहरू जी के प्रयत्न से गढ़वाल में जो डोला पालकी कमेटी बनी थी उसके अधिकतर सदस्य अपने कर्तव्य का पालन नहीं करते जिसका परिणाम यह होता है कि सुधार प्रेमी लोग बराबर मार खाते फिरते हैं। यह अवस्था अत्यन्त शोचनीय तथा निन्दनीय है। सब समाज प्रेमी सज्जनों और अधिकारियों को मिल कर इसका अतिशीघ्र अन्त कर देना चाहिए।

—धर्मदेव

श्री प॰ रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) संस्कृत सत्यार्थप्रकाश अ० ।) स० ।-)
(२) प्राणायाम विधि)॥
(३) वैदिक सिद्धान्त अजिल्द ॥)
सजिल्द १)
(४) विदेशों में आर्य समाज ॥)
(५) यमपितृ परिचय २)
(६) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर १)
(७) आर्य सिद्धान्त विमर्श १॥)
(८) भजन भास्कर ॥)
(९) वेद में असित शब्द -)॥
(१०) वैदिक सूर्य विज्ञान =)
(११) विरजानन्द विजय =)
(१२) हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद (उर्दू में) =)
(१३) हमारे हकीकत (उर्दू में) ॥।=)
(१४) सत्य निर्णय (हिन्दी में) १)
(१५) धर्म और उसकी आवश्यकता ।-)
(१६) आर्यपर्वपद्धति सजिल्द १)
(१७) कथा माला ।=)
(१८) आर्य जीवन और गृहस्थ धर्म ।=)
(१९) आर्यावर्त्त की वाणी -)
(२०) समस्त आर्य समाजों की सूची ॥)
(२१) सार्वदेशिक सभा का इतिहास अ० २)
सजिल्द २॥)
(२२) बलिदान ॥)
(२३) आर्य डायरेक्टरी अ० १।) स० १॥)
(२४) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र २)
(२५) सत्यार्थ निर्णय १॥)
(२६) कायाकल्प सजिल्द ।)
(२७) पञ्चयज्ञ प्रकाश ॥।)
(२८) आर्य समाज का इतिहास ॥।)
(२९) बहनों की बातें ॥)
(३०) Agnihotra
Well Bound २॥)
(३१) Crucifixion by an eye
witness ।-)
(३२) Truth and Vedas ।=)
(३३) Truth Bedrocks of Aryan
Culture ॥)
(३४) Vedic Teachings १)
(३५) Voice of Arya Varta =)
(३६) Christianity ॥)
(३७) The Scopes M s i n of Ary
Samaj Bound १)
Unbound ॥)

स्वाध्याय योग्य साहित्य

आर्य डायरेक्टरी

अर्थात् आर्य जगत् का समस्त संस्थाओं सभाओं और समाजों का सन् १९४१ ई० की विश्व व्यापी विविध प्रगतियों का वर्णन आर्य समाज के नियम, आर्य विवाह कानून, आर्य वीर दल आदि अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातों का संग्रह। आज ही आर्डर भेजिये।

मूल्य अजिल्द १।) पोस्टेज ।)
मूल्य सजिल्द १॥) पोस्टेज ।=)

मिलने का पता—
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र

इस पुस्तक में आर्यसमाज के विद्वान् श्री प० प्रियरत्न जी आर्ष ने अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा सूत्र स्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान और चिकित्सा स्थान का प्रतिपादन किया है। चिकित्सा स्थान में आश्वासन चिकित्सा, उपचार चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, होम चिकित्सा शल्य चिकित्सा, सर्पादि विष चिकित्सा, कृमि चिकित्सा, रोग चिकित्सा और पशु चिकित्सा दी है। इन प्रकरणों में वेद के अनेक महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्‌घाटन किया गया है। पुस्तक २०×२६ आठ पेजी पृष्ठ संख्या ३१२ मूल्य केवल २) मात्र है। पोस्टेज अलग) प्रति।

१९५२ ई०
१९०९ सं०

सम्पादक मण्डल—

वार्षिक मूल्य
विदेश ५ शि०

विषय--सूची

सार्वदेशिक पत्र का नमूना मँगाने के लिये ।) का टिकट भेजना जरूरी है ।

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १७ | आषाढ़ १९९९ | जुलाई, १९४२ ई०] | [दयानन्दाब्द ११८ | अङ्क ५

ओ३म् इन्द्र क्रतु न आभर पिता पुत्रेभ्यो यथा।
शिक्षाणो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥

शब्दार्थ—(इन्द्र) हे परमैश्वर्य युक्त प्रभो। (न) हमारे (क्रतुम) शुभ सकल्प को (आभर) पूर्ण कीजिये अथवा हमे उत्तम बुद्धि तथा कम करने की शक्ति को प्राप्त कराइये (यथा पिता पुत्रेभ्य) जैसे पिता पुत्रों को सदा उत्तम धम माग की ओर ले जाता है वैसे ही (पुरुहूत) बहुत से उपासकों तथा भक्तों द्वारा पुकारे गये हे परमेश्वर। (अस्मिन् यामनि) इस जीवन यात्रा मे (न शिक्ष) हमे आप शिक्षा प्रदान करें जिससे (जीवा) हम जीव (ज्योति अशीमहि) ज्ञानरूप ज्योति का सेवन करें।

हे सर्व शक्ति युक्त प्रभो। आप हमारे सच्चे पिता हैं। सब भक्तजन सदा आपको ही पुकारते हैं। हम सब आपके पुत्र सच्चे ज्ञान को प्राप्त करना चाहते हैं। आप हम सब पर ऐसी कृपा करें कि हम ज्ञान रूप ज्योति को प्राप्त करके सारे अज्ञान अन्धकार को दूर कर सके। हम सच्चे आय बनकर समाज, देश और जगत् की सेवा करना चाहते हैं हमारे इस शुभ सङ्कल्प को आप पूर्ण करें। हमे उत्तम बुद्धि और शुभ कर्म करने की शक्ति प्रदान करें यही हमारी प्राथना है।

वेदामृत

शान्ति के साधन

(१) ओ३म् इयं या परमेष्ठिनी वाग्देवी ब्रह्मसंशिता। ययैव ससृजे घोरं तयैव शान्तिरस्तु नः ॥ अथर्व १६।६।३

(२) ओ३म् इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्। येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः ॥ अथर्व १६।६।४

(३) ओ३म् इमानि यानि पञ्चेन्द्रियाणि मनः षष्ठानि मे हृदि ब्रह्मणा संशितानि। यैरेव ससृजे घोरं तैरेव शान्तिरस्तु नः ॥

(४) ओ३म् पृथिवी शान्तिरन्तरिक्षं शान्ति द्यौः शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे मेदेवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः शान्तिः शान्तिः शान्तिः शान्तिभिः। ताभिः शान्तिभिः सर्व शान्तिभिः शमयामोहं यदिह-घोरं यदिह क्रूरं यदिह पापं तच्छान्तं तच्छिवं सर्वमेव शमस्तु नः ॥ अथर्व १६।६।१४

(१) शब्दार्थः-(इदम्) यह (या) जो (ब्रह्म-संशिता) ज्ञान से तीक्ष्ण की हुई—बलयुक्त बनाई हुई (परमेष्ठिनी) परमात्मा तथा उत्तम तत्त्वों का प्रतिपादन करने में तत्पर (देवी वाक्) दिव्य गुण और शक्ति युक्त वाणी है (यया एव घोरं ससृजे) जिस वाणी का दुरुपयोग करने से जगत् में घोर अनर्थ उत्पन्न हो जाते हैं (तया एव) उस ज्ञान युक्त दिव्य वाणी के द्वारा ही (नः शान्तिः अस्तु) हमें शान्ति की प्राप्ति हो।

(२) (इदम्) यह (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों—गुरु शिष्य, पति पत्नी, राजा प्रजा आदि का (ब्रह्मसंशितम्) ज्ञान से तीक्ष्ण किया हुआ या बलशाली बनाया हुआ (परमेष्ठिनम्) परमात्मा तथा उत्तम तत्त्वों के चिन्तन में तत्पर (मनः) मन है (येन एव घोरं ससृजे) जिस अपवित्र भाव युक्त मन से घोर अनर्थ उत्पन्न होते हैं (तेन एव नः शान्तिः अस्तु) उसी पवित्र ज्ञान युक्त मन के द्वारा हम सब को शान्ति प्राप्त होवे।

(३) (इमानि) ये (यानि) जो (मनः षष्ठानि पञ्च इन्द्रियाणि) मन के साथ मिली हुई पांच ज्ञानेन्द्रियां (हृदि ब्रह्मणा संशितानि। मेरे हृदय में ज्ञान द्वारा तीक्ष्ण की गई या प्रबल बनाई गई हैं (यैः एव घोरं ससृजे) जिनके दुरुपयोग के द्वारा घोर कष्ट और अनर्थ उत्पन्न होता है (तैः एव नः शान्तिः अस्तु) उनके ही शुद्ध उपयोग से हमें शान्ति प्राप्त हो।

(४) पृथिवी, अन्तरिक्ष, आकाश, जल, औषधियां, वनस्पतियां, सब के सब विद्वान्, सब दिव्यगुण युक्त पदार्थ हमें आध्यात्मिक, आधि-भौतिक और आधिदैविक तीनों प्रकार की शान्ति देने वाले हों। उन शान्तियों से, सब प्रकार की शान्ति से हम स्वयं सम्पन्न होकर सब को शांत बनाएं अथवा मोह अज्ञान को दूर करें। जो इस संसार के अन्दर घोर अन्याय, जो क्रूरता, जो

पाप है वह सब शान्त हो जाए। वह सब अन्याय अत्याचार तथा पाप दूर होकर सब कुछ मङ्गलदायक हो जाए। हम सबको शान्ति प्राप्त हो।

वेद के इन चार मंत्रों में शान्ति की प्राप्ति के साधनों का बड़ा ही उत्तम उपदेश प्रार्थना रूप से किया गया है। आज कल जब कि सर्वत्र अशांति का साम्राज्य छाया हुआ है युद्धाग्नि की कराल ज्वालाएं प्रायः समस्त विश्व को अपने अन्दर लेकर दग्ध करती प्रतीत होती हैं, जब प्रतिदिन करोड़ों पौण्ड युद्ध सामग्री पर व्यय किये जा रहे हैं यह जानने को प्रत्येक विचारशील व्यक्ति आतुर हो रहा है कि व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और जगत् को शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है। वेद भगवान् इन मन्त्रों के द्वारा हमें उपदेश देते हैं कि संसार में कलहों और युद्धों तथा सब प्रकार की अशान्तियों का प्रधान कारण वाणी, मन और इन्द्रियों का दुरुपयोग है। जब हमारी वाणी, मन और इन्द्रियों के अन्दर विकार पैदा होता है तभी परिवार में, समाज में, राष्ट्र में और जगत् में अशान्ति छा जाती है। कौन नहीं जानता कि द्रौपदी के मुख से दुर्योधन के लिये निकले हुए इस आशय के कठोर शब्द कि 'अन्धे के घर अन्धा ही पैदा हुआ। महाभारत जैसे सर्व संहारकारी भयङ्कर युद्ध का कारण बने। जिस वाणी का उपयोग भगवान् और उत्तम तत्त्वों का प्रतिपादन करने में होना चाहिये और इस प्रकार के उचित विशुद्ध प्रयोग से जो वाणी न केवल शक्तिशालिनी बनती है बल्कि शान्ति का सर्वत्र प्रसार करने वाली होती है उसी वाणी द्वारा कठोर, असत्य, विरोध विद्वेष वर्धक अपशब्दों का प्रयोग करने से वह अनर्थों और झगड़ों को पैदा करने वाली हो जाती है। गुरु शिष्य, राजा प्रजा, पति-पत्नी, स्वामी सेवक, भाई भाई, माता पुत्र किसी भी सम्बन्ध में इस वाणी के दुरुपयोग के कारण कटुता आजाती है, अपशब्द तीर की तरह चुभ जाते हैं और उससे अशान्ति फैल जाती है यह बात सब के अनुभव सिद्ध है। किन्तु केवल वाणी द्वारा मधुर और प्रिय वचनों के उच्चारण से भी काम नहीं चल सकता। दुनियां में मीठी छुरी चलाने वाले धोखेबाजों की भी कमी नहीं। इसीलिये 'इदं यत्परमेष्ठिनं मनो वां ब्रह्मसंशितम्' इस मन्त्र द्वारा वेद भगवान् मन को पवित्र बनाने, परमेश्वर और उत्तम तत्त्वों के चिन्तन में उसे लगाने तथा ज्ञान द्वारा उसकी शक्ति को बढ़ाकर सर्वत्र शान्ति प्रसार करने का उपदेश देते हैं। पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, राजा-प्रजा, भाई-भाई सब के मन में जब पवित्र दिव्य भावों का संचार हो जब सब एक दूसरे को सुखी बनाने और एक दूसरे के कष्टों के निवारण के लिये शुभ भावनाएं मन मे रखें तब बाहर भी एक शान्तिमय वातावरण बन जायगा इसमें कोई सन्देह नहीं। यही कारण है कि अहिंसा महाव्रत का पूर्ण रूप से पालन करने वालों के चारों ओर ऐसा प्रेममय वातावरण बन जाता है कि शेर और बकरी, बिल्ली और चूहे को भी प्रेमपूर्वक साथ २ बैठे हुए पाया गया है ऐसा लोग बतलाते हैं महात्मा सिद्ध पुरुषों की संगति में बैठे हुए अद्भुत दिव्य शान्ति का अनुभव तो उन सब को होता ही है जिनको ऐसा सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतः वेद भगवान् का आदेश और सन्देश यह है कि यदि हम स्वयं शान्त बनकर जगत् में शान्ति के साम्राज्य का विस्तार

करना चाहते हैं तो हमें अपने मन को शुद्ध पवित्र और ब्रह्मचिन्तन, ज्ञान आदि के द्वारा शक्तिशाली बनाना चाहिये।

किन्तु केवल वाणी और मन को पवित्र तथा शक्ति सम्पन्न बनाना भी अपर्याप्त है जब तक हमारी इन्द्रिया भी शुद्ध पवित्र और शक्तिशाली न बनें। हमने ज्ञान का सम्पादन पाच ज्ञानेन्द्रियों और कर्म, कर्मेन्द्रियों के द्वारा करना है। 'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत̐ समा।" (यजु० ४०।२) इस वैदिक आदेश के अनुसार १०० वर्षों तक अच्छे कर्मों को करते हुए ही हमें जीने की इच्छा करनी है अत इन्द्रियों को परमार्थ, परोपकार, सेवा, रक्षा, दलितोद्धार, पीडित जन कष्ट निवारण इत्यादि मे हम जितना तत्पर बना एगे उतना ही हम समाज, देश और विश्व मे शान्ति का साम्राज्य स्थापित करने मे सफल हो सकगे। आध्यात्मिक आधिभौतिक, आधिदैविक यह तीन प्रकार की शान्ति है जिसका निर्देश ऊपर उद्धृत चतुर्थ मन्त्र मे तीन वार शान्ति शब्द का पाठ करके दिया गया है। अपनी इन्द्रिय, मन, आत्मा आदि को शान्त बनाना आध्यात्मिक शान्ति या वैयक्तिक शान्ति क अन्तगत है। ब्रह्मचिन्तन, ध्यान, भजन कीर्तन, स्वाध्याय इत्यादि उसके साधन बताये गये हैं। उपनिषत्कार ऋषियों ने वेद की पवित्र शिक्षाओं और अपने निजी अनुभव के आधार पर इस विषय मे स्पष्ट घोषणा की है कि—

नित्यो नित्याना चेतनश्चेतनानाम्, एको बहूना यो विदधाति कामान्। तमात्मस्थ ये ऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषा शान्ति शाश्वती नेतरेषाम् ॥

मुण्डकोपनिषद्

जिस का भाव यह है कि नित्य, सर्वज्ञ एक मङ्गलमय, सर्वान्तर्यामी भगवान को जो ज्ञानी धीर पुरुष अपने अन्दर बाहर सर्वत्र अनुभव करते हैं उन्हे ही नित्य शान्ति प्राप्त होती है अन्यों को नहीं।

आधिभौतिक शान्ति से तात्पर्य सामाजिक शान्ति का है। जब समाज के अन्तर्गत सब प्राणियों मे परस्पर प्रेम, विश्वास और सह नुभूति रहती है, जब वे सब मिलकर समाज की उन्नति मे तन मन धन से तत्पर रहते हैं, सहयोग की पवित्र भावना जब सब के अन्दर विद्यमान रहती है तब समाज को जिस शान्ति का अनुभव होता है उसे आधिभौतिक शान्ति का नाम दिया जाता है। 'विश्वे मे देवा शान्ति, ब्रह्म शान्ति' इत्यादि द्वारा वेद भगवान यह आदेश करते है कि शुद्ध ज्ञान और सत्यनिष्ठ विद्वानों द्वारा ऐसी ही सामाजिक शान्ति को स्थापित करने का सबको प्रयत्न करना चाहिये।

आधिदैविक शान्ति वह है जो सारे जगत् मे रहती है अर्थात् पृथिवी, जल, वायु, अग्नि विद्युत इत्यादि के प्रकोप के कारण जब भूकम्प, बाढ, प्रचण्ड झञ्झावात, ज्वालामुखी इत्यादि के रूप मे उत्पात नहीं होते जो जगत् मे अशान्ति और कष्ट को लाने वाले हों। कम नियम के सिद्धान्तानुसार मनुष्यों के वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन पवित्र होने से ऐसे उत्पात तथा अनर्थों की सम्भावना भी बहुत कम हो जाती है, इसलिए चतुर्थ मन्त्र में सब मनुष्यों को यह पवित्र सङ्कल्प करने का आदेश दिया गया है कि सब पापों, अत्याचारों तथा

क्रूरताओं का हम अन्त करदें, मङ्गलमय भावनाएँ मन में रखकर सदा शुभ कर्मों के करने में ही हम तत्पर रहें इस प्रकार सब प्रकार की शान्ति हम प्राप्त कर सकते हैं।

विश्व व्यापी संग्राम के कारण अशान्ति पीड़ित जगत् जब स्वार्थ मय लड़ाई के पागलपन से अपना पीछा छुड़ा लेगा तो उसे वेदों के इन उपदेशों द्वारा ही सची शान्ति प्राप्त होगी इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता। भारतवर्ष के ही नहीं. सुप्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक भी गम्भीर विचार के पश्चात इसी परिणाम पर पहुँच रहे हैं कि वैदिक आदर्श और शिक्षाओं पर चलने से ही भूमि को स्वर्ग रूप बनाया जा सकेगा। उदाहरणार्थ डाक्टर जेम्स कज़िन्स D. Litt. ने जो आयर्लैंड के एक सुप्रसिद्ध विचारक, शिल्पकार और कवि हैं और जो वैदिक आदर्शों से इतने अधिक प्रभावित हुए हैं कि आर्य धर्म की दीक्षा ग्रहण करके अब कुलपति जयराम के नाम से प्रख्यात हैं। Path to Peace या शान्ति का मार्ग नामक छोटी सी पुस्तक लिखी है उसमें जीवन के वैदिक आदर्श का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने लिखा है:-

"On that Vedic ideal alone, with its inclusiveness which absorbs and annihilates the causes of antogonisms, its sympathy which wins hatred away from itself, it is possible to rear a new earth in the image and likeness of the Eternal heavens."

अर्थात उस वैदिक आदर्श पर ही जिसमें सबका समावेश है जो विरोध के कारणों को दूर करने वाला है, उसकी इस सहानुभूति के द्वारा जो सारी घृणा को दूर भगा देने वाली है, यह सम्भव है कि स्वर्ग समान एक नई भूमि का निर्माण किया जा सके।"

सब वैदिक धर्मी आर्यों का कर्तव्य है कि इन उपर्युक्त वैदिक आदेशों का पालन करते हुए अपने जीवनों को शान्तिमय बनाएं तथा अशान्ति पीड़ित जगत् में जो वस्तुतः शान्ति को प्राप्त करने के लिये तड़प रहा है शान्ति के साम्राज्य को फिर से स्थापित करने का प्रयत्न करें। —धर्मदेव वि.वा.

सुमन-संचय

(१)

कर्तव्य-धर्म्म

यूनान और ईरान में घमासान युद्ध हो रहा था। यूनान का एक वीर योद्धा ईरान की एक सुन्दरी के प्रेम पाश में फंस कर शत्रु से जा मिला। यूनानियों को उसके कपट-प्रबन्ध का पता लगने में देर न हुई और वे उसका प्राण लेकर उसके अपराध का दण्ड देने की चेष्टा करने लगे। वह एक दिन ईरान की एक सड़क पर खड़ा था। उसे देखते ही यूनानियों ने उस पर आक्रमण कर दिया। वह अपनी जान बचाने के लिए भागा और जंगल में एक देवालय में जा घुसा। उन दिनों यूनान में यह प्रथा थी कि देवालयों में त्राण पाने वाले व्यक्ति अवध्य समझे जाते थे अतः यूनानियों ने देवालय में प्रवेश न किया। उन्होंने देवालय के छप्पर को तोड़ डाला जिससे वह धूप, सर्दी और वर्षा में दुःख पाकर मर जाय। जब यूनानियों का यह उपाय भी सिद्ध न हुआ और वह योद्धा देवालय से बाहर न निकला तो उन्होंने उस देवालय का द्वार ईंटों से बंद करके उसको मारने का उपाय किया। किसी प्रकार उस सुन्दरी को इस उपाय का पता लग गया।

आधी रात का समय था। घनघोर वर्षा हो रही थी। अंधेरी रात थी। ऐसे कुसमय में वह सुन्दरी यूनानियों की आंखों से बचकर चुपके से देवालय में प्रविष्ट हुई और अपने प्रेमी योद्धा को साथ लेकर बाहर निकली। इसी समय एक बुढ़िया देवालय के द्वार पर आई और उसने उन दोनों को रोककर कहा "तुम मेरे पहरे से छुटकारा नहीं पा सकते।" उस परिचित स्वर को पहचान कर योद्धा ठहरा और रोते हुए मां के चरणों में लोट गया और कहा 'माता! अबकी बार मुझे बचालो।"

पुत्र की दयनीय अवस्था देखकर माता का हृदय पिघला परन्तु दूसरे ही क्षण उसने कहा, 'हरगिज नहीं। तुम जैसे पुत्र से तो मै निपूती ही अच्छी थी। यूनान की माताएँ अपना कर्त्तव्य जानती हैं।" उनकी पारस्परिक बात चीत से अन्य यूनानी जाग गए और उस योद्धा को बलात् देवालय में बँद करके देवालय का द्वार बन्द किए जाने का कार्य प्रारम्भ हुआ। उस दीवार के चिने जाने का सबसे पहला पत्थर एक बुढ़िया ने रखा और यह बुढ़िया उस योद्धा की माता ही थी।

(२)

स्त्री का हृदय

प्रातः स्मरणीय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के पिता ठाकुरदास जी का बाल-काल बड़ी निर्धनता और कष्टों में व्यतीत हुआ था। उन्हें अपने भाई बहिनों और माता के पालन पोषण के लिए १२

वर्ष की अवस्था में ही नौकरी के लिए कलकत्ते की गलियों की खाक छाननी पड़ी थी। वहाँ काम की तलाश में उनको तीन तीन चार-चार दिन बिना अन्न जल के व्यतीत करने पड़े थे।

एक दिन दो पहर को भूख के मारे बालक ठाकुरदास से रहा न गया। किस प्रकार भूख की ज्वाला मिटे, इसी चिन्ता से व्याकुल होकर वे घर के बाहर निकल कर घूमने लगे। घूमते घूमते वे बड़े बाजार तक चले गये। पर खाने का कुछ ठीक न लगा। भूख के मारे ठाकुरदास को चक्कर सा आ गया। इसी समय वे एक दूकान के सामने आकर खड़े हो गये। उस दूकान पर एक अधेड़ विधवा चबैना बेच रही थी। उस विधवा ने ठाकुरदास को यों खड़े देखकर कहा,

"भैया, खड़े क्यों हो?"

ठाकुरदास ने पीने के लिए थोड़ा पानी माँगा, वह विधवा ठाकुरदास को आदर और स्नेह के साथ बिठलाकर पानी ले आई।

बालक को केवल जल देना उचित न समझ कर उसने थोड़ा चबैना भी दिया। ठाकुरदास ने जिस ढंग से चबैना चबाया उसे देखकर वह विधवा समझ गई कि आज इस बालक ने कुछ भी भोजन नहीं किया। तब उस स्त्री ने कहा— 'भैया, जान पड़ता है आज तुमने कुछ भी भोजन नहीं किया' ठाकुरदास ने कहा—'मैया, आज मैंने अभी तक कुछ भी नहीं खाया' तब उस स्त्री ने पास की अहीर की दूकान से थोड़ा सा दही लाकर दिया।

भोजन के उपरान्त ठाकुरदास के मुँह से उनका सारा हाल सुनकर उस दयामयी स्त्री ने विशेष आग्रह करके कहा 'जिस दिन तुम्हारे भोजन का सुभीता न हो तुम मेरे यहाँ आकर भोजन कर जाना।' इस विधवा ने केवल अनुरोध ही नहीं किया बल्कि बालक ठाकुरदास से इस बात की प्रतिज्ञा भी कराली।

(३)

आत्म-त्याग

राजपूताने का इतिहास आत्म-त्याग और वीरता की विशद कहानियों से भरा हुआ है जिस पर आर्य जाति गर्व से अपना सिर ऊँचा रख सकती है।

मेवाड़ के राणा राजसिंह के भीमसिंह और जयसिंह नामक दो पुत्र थे। ये दोनों सौतेले भाई थे। धर्म और नीति के अनुसार राजपद के अधिकारी भीमसिंह थे। वे स्वयं पिता के बड़े भक्त और आज्ञाकारी थे परन्तु किसी कारण वश राणा अपने छोटे पुत्र जयसिंह को गद्दी पर बिठाना चाहते थे। जब जयसिंह की माता ने यह बात सुनी तब उन्होंने राणा को इस अन्याय से रोकने का यत्न किया और कहा "अन्याय से प्राप्त किए हुए सुख वैभव और राज्य को मैं हेय समझती हूँ। मैं अपने पुत्र जयसिंह को कदापि इसका उपभोग न करने दूँगी"

रानी के विशेष आग्रह पर राणा ने पक्षपात करने का विचार छोड़ दिया परन्तु अपने इस विचार पर उन्हें बहुत दुःख हुआ।

एक दिन राणा बड़े दुःखी और चिन्तित थे। दूत भेजकर उन्होंने भीमसिंह को अपने पास बुलवाया। वह दूत बहुत प्रसन्न था। उसे प्रसन्न रूप में आता हुआ देखकर भीमसिंह अपने मन

में अनेक विचार करने लगे। वे सोचने लगे कि आज अनहोनी बात कैसे हुई ? महाराज ने मुझे स्मरण क्यों किया है ?" दूत का सन्देश सुनकर उन्होंने क्रोध में भरकर दूत से कहा "मैं अपनी हँसी कराने के लिए राणा के पास हर्गिज न जाऊँगा" यह उत्तर सुनकर दूत वापस चला गया।

कुछ क्षण के पश्चात् क्रोधाग्नि के शान्त हो जाने पर भीमसिंह ने अपने मन में विचार करके जाने का निश्चय किया और महाराज के पास चले गए। उस समय भी उनकी मुखाकृति क्रोध से व्याप्त थी परन्तु महाराज की दशा को देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। महाराज सिर नीचा किए बड़े चिन्तित बैठे थे। उनकी मुख-मुद्रा और भाव भंगी से भीमसिंह को उनके मन की बात जानते हुए तनिक भी देर न हुई और बात की बात में उनका क्रोध जाता रहा।

महाराणा ने भीमसिंह को अपने सम्मुख देखकर नीचा मुंह करके "प्रिय भीमसिंह" कहकर पुकारा। इस स्नेह भरी वाणी को सुनकर भीम-सिंह का शरीर पुलकित हो गया। उन्होंने भी 'पिताजी ! क्या बात है ?' यह कह कर अपने हृदय को हल्का किया।

भीमसिंह के इस सुखद परिवर्तन को देख-कर राणा ने प्रेम भरी वाणी में कहा–भीमसिंह ! मुझे धिक्कार है। मैंने भ्रम में पड़कर तुम्हारे प्रति बड़ा अन्याय किया है ?"

पिता के ये वचन सुनकर भीमसिंह की आंखों में आंसू आ गए। उन्होंने ईश्वर को मन ही मन धन्यवाद दिया कि उनकी कृपा से पिता का अज्ञान दूर हो गया। राजा ने पुनः कहा पुत्र अब तुम निश्चिन्त रहो। मैं कल तुम्हें राज्याधिकार दूँगा परन्तु, यहाँ एक बड़ी कठिनाई उपस्थित हो गई है। जयसिंह का जिस वस्तु पर जरा भी अधिकार नहीं है वह मेरी भूल से उसे अपने गले का हार समझता है। यदि वह सहसा ही निराश हो जायगा तो न मालूम क्या २ विपत्ति खड़ी कर दे और न मालूम व्यर्थ ही कितने प्राणियों की जानें नष्ट हों" राणा की यह बात सुन कर भीमसिंह को बड़ा हर्ष हुआ। राणा की न्याय-निष्ठा और पुत्र-प्रेम ने तो उन्हें आनन्द विभोर कर दिया। उन्होंने पिता के निकट अपनी तलवार रखकर कहा 'पिता जी ! जयसिंह मेरा छोटा और प्यारा भाई है। सुख-दुख में वह मेरा साथी और सहारा है। मैं तो उसके लिए अपने प्राण भी दे सकता हूँ। फिर इस तुच्छ राज्य के देने की बात ही कौनसी बड़ी है। यदि जयसिंह कपट छोड़कर मेरा सिर भी मांगेगा तो मुझे देने में इन्कार न होगा परन्तु यदि वह अन्याय से कुल की नीति का परित्याग करेगा तो मैं पाँडवों की नीति का आश्रय लेने के लिए विवश हूँगा" यह उत्तर सुनकर राणा गद्गद् हो गए। भीमसिंह ने कुछ क्षण चुप रहने के पश्चात् कहा—"मैं आज से मेवाड़ की भूमि का भी परि-त्याग करता हूँ। यहां रहने से कदाचित् कभी राज्य का लोभ आजाय।"

यह प्रतिज्ञा करके भीमसिंह ने मेवाड़ का परित्याग कर दिया। कुछ समय के पश्चात् उनके साथी घोड़ों और हाथियों के साथ देश को लौट आए परन्तु भीमसिंह लौट कर न आए। आया तो उनके मरने का समाचार हो आया।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

समर्थ गुरु रामदास और मुक्ति के तीन उपाय

(लेखक—श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज रामगढ़)

समर्थ महोदय ने मुक्ति शब्द में व्यक्ति और समाज दोनों की मुक्तियों का समावेश किया है। उनके बतलाये हुये तीन उपाय यह हैं:— (१) सद्वर्तन-सदाचार, शुद्ध व्यवहार, (२) हरि-कथा निरूपण, (३) राजकारण-राज्य का स्थापन। इन तीन उपायों को स्पष्ट करने के लिये समर्थ महोदय ने, अपनी सम्मति इस प्रकार प्रकट की है:—

(१) सद्वर्तन से समर्थ का अभिप्राय जनता में सुनीति का समावेश है। वे कहते हैं कि वद्ध जन समुदाय में, नीति लुप्त होती है, उसका स्थान निन्दा, द्वेष अनाचार, आलस, कपट, कलह, क्रूरता, पाखण्ड आदि दुर्गुण, ले लिया करते हैं। सुनीति की स्थापना से, समर्थ की सम्मति में, मलिन वृत्तियां विमल हो जाया करती हैं।

(२) हरि कथा निरूपण से अभिप्राय ईश्वरोपासना है। समर्थ ने प्रकट किया है कि भक्ति ९ प्रकार की होती है। इनमें से अन्तिम भक्ति "आत्म निवेदन" सर्व श्रेष्ठ है। पहली भक्तियों में भक्त और ईश्वर के मध्य में भेद भाव रहा करता है परन्तु आत्म निवेदन में, भक्त और ईश्वर में उपर्युक्त भेदभाव बाकी नहीं रहता। भक्त का मन विभक्ति के भावों से ऊपर हो जाता है।

(३) राज्य का स्थापन—समर्थ के मतानुसार पहले दो साधनों से मोक्ष, मुक्ति या स्वतन्त्रता की, अंशतः प्राप्ति हुआ करती है। उसकी पूर्णता के लिये, या इस लाभ को अप्रतिबद्ध और चिर स्थायी करने के लिये स्वराज्य का स्थापन अनिवार्य्य है।

उपासना के प्रकरण में, समर्थ की सम्मति में खंडोबा, विठोबा (देवताओं के मराठी नाम) नारायण, राम, कृष्ण, लक्ष्मी, शिव, विष्णु, सरस्वती इत्यादि एक ही परब्रह्म के नाम हैं। मानो ये एक ईश्वर के अनेक पौराणिक नाम हैं। समर्थ का प्रयुक्त भक्ति शब्द भी, संकुचित नहीं है उसमें स्वधर्म, वर्णाश्रम धर्म, इत्यादि सभी का समावेष है।

समर्थ गुरु के धर्म में, धर्म-नीति, आचार नीति और राज-नीति तीनों समाविष्ट हैं। उपर्युक्त विचारों पर दृष्टि प्राप्त करने से, साफ़ जाहिर हो जाता है कि समर्थ की यह शिक्षा बड़ा महत्त्व रखती है। राज योग के आठ अंगों में सबसे पहला अंग यम है जिसका सम्बन्ध सामाजिकोन्नति से है। अभिप्राय यह है कि सामाजिकोन्नति के बिना व्यक्तिगत उन्नति नहीं हो सकती। योगाभ्यासी के लिये भी अच्छे समाज में होने की जरूरत है तभी वह सफलता के साथ अपने अभ्यासों की पूर्ति कर सकता है। परतंत्रता समस्त बन्धनों, समस्त क्लेशों की जननी है। तत्कालीन सुधारकों में से, समर्थ ही ने, इस सचाई को पूर्णतया व्यक्त किया था

वैदिक धर्म के मुख्यतत्व

(लेखक—पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति उपमन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली)

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का एक मुख्य उद्देश्य "आर्यावर्त तथा अन्य देश देशान्तरों और द्वीप द्वीपान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार का प्रबन्ध करना है। उस सत्य सनातन वैदिक धर्म के कुछ मुख्य तत्वों का उल्लेख तुलनात्मक दृष्टि से मैं इस लेख में करना चाहता हूँ जैसे कि गत मास के अङ्क में मैंने सूचित किया था।

(१) वैदिक धर्म का प्रथम मूलतत्व एक ईश्वर की उपासना है जो सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, निराकार, निर्विकार और जगत का कर्ता है। इस विषय में वेदों का स्पष्ट उपदेश है कि—

य एक इत् तमुष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः।
पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥ (ऋग्वेद ६।४५।१६)

और इसी लिये वे शिवाजी को, शिवाजी बनाने में समर्थ हो सके। परतंत्रता से व्यक्ति तथा समाज गत दोनों जीवन नीरस रहा करते हैं। इस सचाई को बहुत कम लोग अनुभव किया करते हैं। इसीलिये यह नीरसता बढ़ती ही जाती है। यह नीरसता कब किसी को, मुक्ति की ओर बढ़ने के लिये, उत्साहित होने देती है? इसीलिये, उचित रीति से, समर्थ ने मुक्ति के उपायों में, स्वराज्य की आवश्यकता को, अनुभव किया था।

अर्थात् जो सर्वज्ञ, सर्व शक्तिमान्, सारे संसार का एक स्वामी परमात्मा है हे मनुष्य! तू सदा उसी की स्तुति कर।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्ययस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः। तं त्वायौमि ब्रह्मणा दिव्यदेव नमस्ते अस्तु दिविते सधस्थम्॥ (अथर्व २।२।१)

इत्यादि मन्त्रों में उस संसार के स्वामी, वेद ज्ञान के दाता भगवान् को ही (एक एव नमस्यः) अर्थात् एक मात्र पूजनीय बताया गया है।

मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत। इन्द्रमित् स्तोतावृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ (ऋ० ८।१।१)

इत्यादि मन्त्रों में स्पष्ट उपदेश किया गया है कि हे मित्रो! अन्य किसी की स्तुति करके कष्ट मत उठाओ। हर समय उस एक परमेश्वर की ही स्तुति करो।

इन्द्र मित्र, वरुण, अग्नि आदि नाम (जो वेदों में पाये जाते हैं और जिन्हें देखकर वेद तत्वानभिज्ञ लोग वेदों को बहुदेवतावाद (Poly theism) अथवा (Heno-theism) का प्रतिपादक समझते हैं) मुख्यतया उस एक ही परमेश्वर के नाम हैं इस बात को 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्। एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥

(ऋ० १।१६४।४६)

"यो देवानां नामध एक एव।"

(अथर्व २।१।३)

इत्यादि वेद मन्त्रों में अत्यन्त स्पष्ट रूप से बताया गया है। ऐनेस्टवुड् नामक एक अंग्रेज सज्जन ने "An English man defends mother India" नामक पुस्तक में 'इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः' इस मन्त्र का निर्देश करते हुए ठीक लिखा था "In the eyes of Hindus, there is but One Supreme God. This was stated long ago in the Rigveda in the following words :—

'एकं सद्विप्रा बहुधावदन्ति' which may be translated as 'The sages name the One Being variously." अर्थात् हिन्दुओं की दृष्टि में एक ही पर ब्रह्म है जिसका ऋग्वेद में 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' कह कर प्रतिपादन किया गया था कि ज्ञानी लोग उस एक को अनेक नामों से पुकारते हैं। प्रो० मैक्समूलर ने भी अपने जीवन के अन्तिम दिनों में (विशेषतः ऋषि दयानन्दकृत 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' पढ़ने के पश्चात्) इस वैदिक सत्य को स्वीकार किया था यद्यपि अपने पूर्व निर्मित ग्रन्थों में उन्होंने वेदों का अनुवाद करते हुए बहु देवतावादी अथवा हीन देवतावादी (Heno theistic) बताने का प्रयत्न किया था। अपने अन्तिम ग्रन्थ 'Six Systems of Philosophy' में उन्होंने लिखा—ऋग्वेद काल में ऋषियों ने इस तत्व को जान लिया था कि "There is but One Being that was really meant by all such names as Indra, Agni, Matarishvan and by name of Prajapati—Lord of Creetures. "इत्यादि

अर्थात् वस्तुतः एक ही परमेश्वर है जिसके अग्नि, इन्द्र, मातरिश्वा, प्रजापति इत्यादि विविध नाम हैं। The Superiority of the Vedic Religion नामक ग्रन्थ के लेखक W. D. Brown नामक अंग्रेज विद्वान् ने भी इस विषय में स्पष्ट शब्दों में लिखा :—

"It (Vedic religion) recognises but One God. It is a thoroughly scientific religion where religion and science meet hand in hand. Here theology is based upon science and philosophy."

अर्थात् वैदिक धर्म एक ही ईश्वर को मानता है। यह एक सम्पूर्णतया वैज्ञानिक धर्म है जहां धर्म और विज्ञान हाथ में हाथ मिलाये परस्पर मिलते हैं। इसके धार्मिक सिद्धान्त विज्ञान और तत्व ज्ञान पर आश्रित हैं।" ऐसे ही उद्धरण जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक श्लीगल, इङ्गलैण्ड के कोलब्रुक, रूस के कौन्ट जौर्न्संजर्ना इत्यादि के पाश्चात्य विद्वानों के ग्रन्थों से दिये जासकते हैं किन्तु विस्तारभय से उन्हें यहां देना उचित नहीं प्रतीत होता।

(२) वैदिक धर्म का दूसरा मुख्य तत्व ब्रह्म, जीव, प्रकृति इन तीन अनादि पदार्थों की सत्ता को स्वीकार करना है।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥ (ऋ० १।१६४।२२)

"यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे। तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद् यः पितरं न वेद ॥" (ऋ० १।१६४।२२)

"बालादेक मणीयस्कमुतैकं नेव दृश्यते। ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया ॥"

(अथर्व १०।८।२५)

इत्यादि वेद मन्त्रों में इसी तत्व का स्पष्ट प्रतिपादन है। इनमें से नित्य प्रकृति ही जगत का उपादान कारण है (जैसे मट्टी घडे की होती है)। परमात्मा सृष्टि का निमित्त कारण है इसीलिये वेदों में उसके लिये 'सुरूपकृत्नु' 'य इमे द्यावापृथिवी जनित्री रूपैरपिंशद् भुवनानि विश्वा।'

(ऋग्वेद १०।११०।९)

इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया गया है जिन का भाव यह है कि वह अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं करता किन्तु प्रकृति में गति देकर उसके द्वारा वस्तुओं को रूप देता है।

"जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिः, अमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ॥ (ऋ० १।१६४।३०) अपश्यं गोपाम् अनिपद्यमानम् (ऋ० १।१७७।३) इत्यादि मन्त्रों में जीवात्मा की नित्यता और अमरता का स्पष्ट प्रतिपादन है।

(३) वैदिक धर्म का तृतीय मुख्य तत्त्व कर्म नियम और पुनर्जन्म का है। जीव की नित्यता के सम्बन्ध में जिन वेदमन्त्रों को ऊपर उद्धृत किया गया है उनमें 'स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानः आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः' (ऋ० १।१७७।३) इत्यादि द्वारा पुनर्जन्म का निर्देश स्पष्ट है कि अमर (अमर्त्यः) जीव अपने कर्मानुसार उच्च नीच योनियों में जाता है। "यदास्वं प्राण जिन्वसि, अथ सजायते पुनः ॥ (अथर्व ११।४।६।४) "पुनर्मनः पुनरायुर्म आगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा म आगन्।" (यजु० ४।१५) इत्यादि मन्त्रों में भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन है जो कर्म नियम के सिद्धान्त पर आश्रित है। "उत यो द्यामतिसर्पात परस्तान्नस मुच्याते वरुणस्य राज्ञः। दिवस्पशः प्रचरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अतिपश्यन्ति भूमिम ॥ (अथर्व ४।१६।४) इन सुन्दर शब्दों द्वारा किया गया है जिनमें कहा है कि यदि कोई द्युलोक के भी ऊपर चला जाए तो भी वह सर्वज्ञ, सर्वश्रेष्ठ (वरुण राजा) भगवान् के कर्म फल नियम रूप बन्धनों से मुक्त नहीं हो सकता मानो वरुण राजा (परमात्मा) के गुप्तचर हजारों आंखों से उसे देखते रहते हैं और असत्यवादी को सैकड़ों पाशों से बांध कर सत्यवादी को उनसे मुक्त रखते हुए आनन्द देते हैं जैसे कि:—

"शतेन पाशैरभिधेहि वरुणैनं मा ते मोच्यनृत वाङ् नृचक्षः। (४।१६।७) (छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं यः सत्यवाद्यति तं सृजन्तु।" (अ० ४।१६।८) इत्यादि मन्त्रों में बताया गया है। वेद के इन्हीं मन्त्रों का मानो अनुवाद श्री गौतम बुद्ध के निम्न उपदेशों में पाया जाता है:—

'न अन्तलिक्खे न समुद्दमज्झे, न पब्बतानं विवरं पविस्स। न विज्जती सो जगतिप्पदेसो, यत्र ट्ठितो मुञ्चेय पाप कम्मा ॥'

(धम्मपद)

संस्कृत अनुवादः—

न अन्तरिक्षे न समुद्र मध्ये, न पर्वतानां

आर्यसमाज में रोचकता

कृतज्ञता का अनुभव ही, एकमात्र उपाय

(लेखक—श्री पण्डित हरिश्चन्द्र जी विद्यालङ्कार)

आर्यसमाज की ओर आज का नवयुवक समाज क्यों आकृष्ट नहीं होता, यह एक प्रश्न है, जो प्रायः आर्यसमाज के शुभ चिन्तकों और प्रेमियों के कानों को परेशान करता रहता है। इसके उत्तर में यह कहा जाता है कि आर्यसमाज के लिए कोई आकर्षक प्रोग्राम बनाना चाहिए, हमको साप्ताहिक अधिवेशनों को अधिक रोचक बनाना चाहिए, आदि।

परन्तु, प्रश्न यह है कि यह सरसता और रोचकता किस रूप में हो ? आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने एक बार अपने एक पत्र में सेठ कालीचरण रामचरण को बख्तावर सिंह के हिसाब-किताब के सम्बन्ध में लिखते हुए लिखा—"हमने केवल परमार्थ और स्वदेशोन्नति के कारण अपने समाधि और ब्रह्मानन्द को छोड़ कर यह कार्य ग्रहण किया है।" ब्रह्मानन्द और समाधि में जो रोचकता और सरसता सम्भवित थी, उससे भी अधिक उपयोगी होने के कारण ऋषि ने वैदिक धर्म प्रचार में अपनी रोचकता और लगन लगाई। ऋषि अपने पश्चात् अपना उद्देश्य और कार्य आर्यसमाज के रूप में ही हमें विरासत में दे गये हैं। इस आर्यसमाज के प्रति रोचकता और सरसता उत्पन्न करने का साधन या प्रकार सिवा इस के और क्या हो सकता है कि हम अपने हृदय में ऋषि दयानन्द-सी कृतज्ञता पूर्ण वृत्ति को स्थान दें। ऋषि ने मृत्यु को जीतने की राह ढूँढने के लिए धन-धान्य और बन्धु बान्धवों से भरा-पूरा घर-बार छोड़ा था। इस राह की खोज में वे दर-दर के भिखारी बने, दुर्गम पर्वतों, बीहड़ जंगलों और हिंसक पशुओं की भयंकरता में विषमताओं को सहन करते रहे। सच्चे गुरु की खोज में कितने ही बनावटी महात्माओं की भी सेवा की। अन्त में गुरु विरजानन्द के रूप

विवरं प्रविश्य। न विद्यते स जगति प्रदेशो यत्र स्थितोमुच्येत पाप कर्मा ॥

अर्थात् न अन्तरिक्ष में, न समुद्र के मध्य में, न पर्वतों की गुफा अथवा अन्यत्र ऐसा कोई स्थान है जहां पापी छूट सकता है।

पुनर्जन्म का अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन धम्मपद १५३ के 'अनेक जाति संसार सन्धाविस्सं अनिब्बिसम्। गह कारकं गवेस्सन्तो दुक्खा जाति पुनप्पुनम् ॥ इत्यादि श्लोकों द्वारा बुद्ध भगवान् ने किया जिनका अर्थ यह है कि मैं अनेक जन्मों तक संसार में निरन्तर दौड़ता रहा। इस काया रूप कोठरी के बनाने वाले को ढूंढते हुए मैं बार २ जन्म और दुःख में पड़ा रहा।

(शेष फिर)

में उन्हें उनका अभीष्ट देवता मिल गया और उनकी अनथक सेवा से उन्हें वह प्रकाश मिल गया जिसकी खोज में वे घर से निकले थे। परन्तु मार्ग और मार्ग का दीपक लेकर भी, गुरु दक्षिणा के रूप में उसका उपयोग करने के लिए उन्हें अपना उद्देश्य कुछ बदलना पड़ा। जो मार्ग और प्रकाश उन्होंने अपनी मुक्ति और आनन्द के लिए खोज निकाला था, परम कृपालु गुरु की आज्ञा से उसका उपयोग उन्हें अपने चारों ओर बिखरी आर्य-जाति और भारत देश की मुक्ति के प्रयत्न में करना पड़ा। ऊपर दिए उनके एक पत्र के उद्धरण से यह साफ़ प्रकट होता है कि उनकी वह प्रसुप्त अभिलाषा कितनी प्रबल थी। परन्तु गुरु की आज्ञा, गुरु के वचन स्मरण कर वे अपने इस कर्तव्य से मुंह नहीं मोड़ सकते थे। सर्व-व्यापी भगवान् के सम्मुख अकृतज्ञ नहीं बन सकते थे। यदि वे चाहते भी, और अकृतज्ञ हो कर अपनी निजू मुक्ति के आनन्द में लीन होने का प्रयत्न करते तो भी यह अकृतज्ञता बराबर उनके मन को वहां भी सताती और मुक्ति का आनन्द नहीं मिल पाता।

बस, यही हल आज के आर्यसमाजी नव-युवक की समस्या का है। यदि वह सचमुच भगवान् की सृष्टि में अपना सही कर्तव्य पहचानता है, भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता को अनुभव करता है तब तो परमार्थ की प्रवृत्ति में उसका स्वाभाविक रस होना चाहिए, अन्यथा उसे कोई भी शक्ति परमार्थ के उद्देश्य से लगाये गये आर्यसमाज के पौधे को सींचने के लिए प्रेरित नहीं कर सकती। हमें यह लिखते हुए बड़ा संकोच होता है कि आज के आर्यसमाज में विशुद्ध परमार्थ की भावना से प्रेरित आर्ययुवकों और आर्यपुरुषों की संख्या अत्यन्त अल्प है। पद, अधिकार और प्रभाव-वृद्धि की भावना ने हमारे मनों पर प्रभुत्व जमा लिया है। इसी लिए दल बन्दियों का विष वृथा जड़ जमाये दीख पड़ने लगा है। यह सब तभी दूर हो सकता है जबकि हमारे मन विशुद्ध परमार्थ की भावना से प्रेरित हों, भगवान् एवं आर्यसमाज के संस्थापक गुरुवर ऋषि दयानन्द के प्रति कृतज्ञता के विचार हमारे मन को बारम्बार आर्यसमाज की उन्नति एवं अभिवृद्धि के लिए आगे ढेलते हों। रस तो उसी में है, जिसमें किसी का मन लगता हो। कुत्ता हड्डी को चूसने में रस कहां से लाता है? आर्य जाति, आर्य संस्कृति और आर्यधर्म की रक्षा के प्रति हमारी रोचकता और सरसता तभी हो सकती है जबकि हम इन द्वारा अपने एवं मानव समाज के प्रति होने वाले उपकारों को सोचें, समझें और इस दृष्टि से उनके प्रति हमारे मन कृतज्ञता का कर्तव्य अनुभव करें। आर्यसमाज के प्रोग्राम को सरस और रोचक बनाने का दूसरा कोई निर्दोष उपाय नहीं हो सकता।

हमारा पतन

[लेखक—श्री निरंजन लाल 'विशारद']

मैंने देखा तो नहीं किन्तु सुना है कि अब से ५० वर्ष पूर्व आर्यसमाज के प्रत्येक सदस्य की एक अपनी अलग सत्ता होती थी और वह हजारों में अपनी, वेश, भूषा और सत्य आचरण के कारण, मोती की भांति चमक जाता था। आर्य समाजी को लोग सच्चा और सेवक समझते थे और वह सर्वसाधारण में सम्मान की दृष्टि से महाशय जी की पदवी पाता था। उन दिनों महाशय का अर्थ आजकल की भांति दूषित रूप में व्यवहृत न होता था (आजकल प्रायः चुस्त चालाक तथा धोखेबाज को महाशय नाम से सम्बोधित किया जाता है)।

परन्तु आर्य समाजी की वह सत्ता अब नहीं रही ऐसा कुछ लगता है। ऐसा क्यों है यह निश्चित रूप से तो कहा नहीं जासकता परन्तु हां, एक बात अवश्य है कि जिन गुणों के कारण आर्य समाजी जनता की दृष्टि में एक आर्य माना जाता था वे गुण आर्य समाज से तिरोहित हो रहे हैं। जिस संस्था में गुणों की अपेक्षा संख्या की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगता है उसकी दशा होती भी यही है और अन्त में वह भेड़िया धसान से बढ़कर नहीं रह जाती। यहां मेरा उद्देश्य यह नहीं कि मैं इस बात का प्रतिपादन करूँ कि आर्य समाज में सच्चे आर्य नहीं रहे वरन् कहने का तात्पर्य यह है कि सच्चे आर्यों की संख्या काल के साथ २ घट रही है और अनार्यत्व बढ़ रहा है।

इस दोष का मूल कारण हमारा दुहेरा जीवन है। हम अपने को आर्य कहते हुए भी अपने क्रिया कलाप से आर्यत्व से गिर जाते हैं। हम नमस्ते के हामी हैं परन्तु जब किसी मुसलमान से मिलेंगे तो तपाक से हाथ बढ़ाकर बड़े गर्व से कहेंगे "आदाब अर्ज़, जनाब, कहिये किबला मिजाज तो ख़ुश, मेरे लायक कारे खिदमत।"

ऐसा करते हुए या तो वे किसी स्वार्थ वश अपने आर्यत्व का बलिदान करते हैं या उनमें एक सच्चे आर्य की वह निर्भीकता नहीं होती, जिसके कारण वह अब से ५० वर्ष पूर्व सर्वसाधारण में निर्भीक और बहादुर कहाता था। वह यह भी भूल जाता है कि मुसलमान चाहे कितना भी छोटा हो और कितने भी बड़े आदमी से मिले परन्तु सलाम, बन्दगी या आदाब अर्ज़ के अतिरिक्त उसके मुँह से कुछ न निकलेगा। चाहे वह कितनी ही चापलूसी करेगा परन्तु अपनी इस्लामी सभ्यता को नहीं छोड़ेगा। उसे नमस्ते से चिढ़ है और राम राम या जैरामजी उसे पसन्द नहीं। यदि आप किसी मुसलमान से नमस्ते कहिये तो वह सुनकर यदि उत्तर दिया तो, वही सलाम, आदबअर्ज़ या बन्दगी में उत्तर देगा। इसके विरुद्ध हिन्दुओं को जाने दें। अपने को आर्य

कहलाने वाले भी अपनी सभ्यता अपनी विशेषता को तुरन्त भुला देते हैं। तनिक सोचिये कि आर्य समाज के प्रचार के कारण "नमस्ते" सभ्य समाज का सम्बोधन शब्द समझा जाता है और सिनेमा तक में प्रायः नमस्ते शब्द ऐक्टर्स के मुख से सुनने में आने लगा है। तब आर्य अपने शब्द को भुलाकर अब पुनः 'आदाब अर्ज' का प्रचार करते हों तो इसमें दोष किसका ?

आज से ५० वर्ष पूर्व बुड्ढे लोगों ने भी अपना कर्तव्य समझ कर हिन्दी स्वय पढ़कर अपने परिवार में एक आदर्श उपस्थित किया परन्तु आज अपने बच्चों को उर्दू द्वारा शिक्षा दिलाने में ही आर्य अपना हित समझते हैं। यदि आज आर्य समाज के वकीलों और औफिसर्स ने यह दृढ़ निश्चय किया होता कि उनके सब कार्य हिन्दी में होंगे। उनके यहां मुहर्रर हिन्दी जानने वाले होंगे तो निश्चय ही आज किसी को भी हिन्दुस्तानी बनाने की हिम्मत न होती।

ईसाइयत का हम बड़े ज़ोरदार शब्दों में खंडन करते हैं परन्तु जब भाषण देने खड़े होते हैं तो मुँह से अरबी, फारसी, मिश्रित उर्दू हमारी भाषा होती है और कोट, पैन्ट, नैकटाई हमारी पोशाक। बड़े २ आर्य समाजियों के परिवारों में घुस जाइये उनका घरेलू वातावरण ईसाइयत से भरा मिलेगा। उनके बच्चों की वेश भूषा देखिये तो लड़कियां फ्राक में और लड़के सूट में डटे मिलेंगे। यदि माता को बुलाने की आवश्यकता पड़े तो माता शब्द उन्हें याद न आवेगा "मदर सुनना" ही कहेंगे और पिता जी को यही पसन्द है कि उनके बच्चे उन्हें 'बाबू जी' कहें।

हमारा व्यवहारिक जीवन क्या है, हम अपने वचन के कितने पक्के हैं, हम कितने सच्चे व्यापारी हैं, सन्ध्या हवन से हम अपने पड़ौसी को कितना प्रभावित करते हैं। हमारी सेवाओं से हमारे पड़ौसी को कितना लाभ होता है यह बताने की यहां आवश्यकता नहीं। यह तो प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है कि वह अपने गरेबान में मुंह डाल कर आत्मनिरीक्षण करे, तभी उसे इन प्रश्नों का उत्तर मिल सकेगा। परन्तु यह अटल सत्य है कि बिना एक वेश, एक भाषा और अपने शिष्टाचार के हमें हमारा पुराना गौरव न मिलेगा।

समुद्र के किनारे

(ले०—पं० मदनमोहन जी विद्याधर वेदालङ्कार प्रेम मन्दिर तेनाली मद्रास प्रान्त)

मद्रास नगर का समुद्र का किनारा बहुत सुन्दर है। मीलों तक समुद्र के किनारे २ शहर चला गया है। बीच में सड़क है। उसमें मोटरें इधर-उधर दौड़ा फिरा करती हैं। मनुष्यों की बेहद बड़ी भीड़ रहा करती है।

हमारे साथी ने हमें उदास, एक दिन, देख कहा, चलो यार चलें समुद्र की सैर कर आवें।

चारों तरफ़ अनन्त समुद्र लहलहा रहा था। शाम का समय था। सूर्यास्त हो रहा था, चन्द्रोदय की प्रतीक्षा थी। निस्तब्धता, परम शान्ति, शीतल समीर, ऊँची २ लहरें, विवाह वेदी पर आने वाली नव वधू के समान फूलों से लदी.... मैं बैठ गया, एक लहर आई। उसमें कुछ लाली का आभास दिखाई दिया। मैंने पूछा, यह लाली कहां से आई ?

समुद्र तरंग ने कहा—क्या तुम दसवीं शताब्दी के हो ?

मैं आश्चर्य में भर गया। क्यों क्या बात है ?

'यह बीसवीं सदी है। आज स्वतन्त्रता के नाम से पराधीनता बढ़ रही है।'

'हैं ! हैं ! तुम यह क्या कह रही हो ? तुम्हें क्या दुःख ? तुम्हारे ऊपर से तो सदा स्वतन्त्रता की वायु निकला करती है। तुम तो सदा स्वतन्त्रता की प्रसन्नता से नाचती रहती हो ?

"हां ! हां ! तुम्हारी बात तो ठीक है। नाचता तो बन्दर भी है, भालू भी है। सर्कस में शेर जैसे भयानक, हाथी जैसे भीम विशालकाय भी आराम से टहलते मालूम पड़ते हैं। परन्तु वे सब परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े हैं।"

"तो तुम्हें किसने बांधा है, ज़रा अपनी कहानी खोल कर कहो।"

वह एक दम पीछे हट गई। मुझे कहती गई, "मैं अपनी साथिनों से पूछ आऊँ कि तुम्हें अपना रहस्य बताऊँ।"

"अरे ! इतना अविश्वास।"

हाँ ! "तुम इन्सान हो न ?" इतना कह बिना मेरी पर्वाह किये वह जैसे आई थी वैसे ही लौट गई। मैं अपना सा मुख लिए बैठा रह गया।

\+ + +

समुद्र की तरंग लौट आई। मैं प्रसन्नता से नाच उठा। मैंने पूछा, 'तुम आगईं अच्छा हुआ।'

"हम जहाँ जाती हैं, वहाँ जाती रहती हैं, रुकती नहीं। जिससे एक बार सम्बन्ध-सन्धि, करनी है उसे अनन्त काल तक निभाती हैं। हम इन्सान नहीं कि प्रति दिन सन्धियां स्थापित कर सम्बन्ध स्थापित करें और छोड़ें।"

मैं चौंक उठा, "कहा ज़रा सम्हल कर बात करो, अभिमान में न फूलो। पानी उतार दूंगा।"

लहर नाच उठी, खिलखिला उठी। मेरा मन बैठ गया। उसने कहना आरम्भ किया, "इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम मनुष्य की भूला हैं, हवा मनुष्य को झुलाने को है, उषा उस पर प्रसन्नता

बिखेरने के निमित्त, प्रकृति का कण-कण मनुष्य को रिझाने के लिये है। हमारा निर्माण कर्तृत्व मनुष्य के लिये है। पशु-पक्षी भी हमें उपभोग में लाते हैं, परन्तु उसमें वे उस आनन्द का अनुभव नहीं कर सकते जो मनुष्य करता है।"

'अनादि-काल से हम मनुष्य के काम आ रही हैं। हमने न जाने कितनों को मणि-मुक्ता के थाल बिना माँगे दिये हैं। न जाने कितनी जातियों की सीमाओं को मिलाया है। न जाने कितना ज्ञान मानव को दिया है। न जाने कितना जीवन रस पिलाया है। न जाने कितना अनन्त नाद दिया है। हमने मानव को कविता दी है। जब दो दुःखी विरही दुःख के मारे पागलों की तरह घूमते हैं, उस समय हमीं अपने पास आश्रय देती हैं। जब जीवन से दुःखी कोई अन्तिम शरण चाहता है, हम अपनी भुजायें फैला उसे अपने अङ्क में स्थान दे देती हैं।

मैं बड़े ध्यान से सुध-बुध खोये सब बातें सुनता चला आ रहा था।

'तुम्हीं कहो, ऐसी कौन सी बात है जो हमने मानव सङ्घ को नहीं दी ?"

मैं कृतज्ञता से गद्-गद् हो गया—

परन्तु आज ?

मैं सहम गया। न जाने कौन सा बम गिरे और मैं उसमें अपने को खो बैठूँ ?

"जिन हमने इतना भला किया था, उन्हीं पर आज तुमने अधिकार जमा रक्खा है। उस पर लड़ाइयां हो रही हैं। हमारी इच्छा के विरुद्ध तुम हमारे खण्ड कर रहे हो। जिस तरह भूमि पर रह तुम दाने दाने को कुत्तों की तरह लड़ते हो, समय आयेगा जब तुम समुद्र में मछली मछली पर लड़ोगे।"

मुझे तो मानों काठ मार गया।

यह प्रकृति भगवान् की देन है। प्राणी मात्र पर इसका हक है। इसका सदुपयोग विश्व में शान्ति की धार बहा देता है दुरुपयोग खून की नदियां। मेरे में लाली का आभास उसी का परिणाम है। आज हमारे पिता समुद्र की गोद में भीषण रक्तपात है। उसी का यह चिन्ह है।

मेरा हृदय धक् धक् करने लगा। मैंने साहस बटोर कुछ कहना चाहा कि—समुद्र की तरंग ने आह भर कहा मानव ने समुद्र का भी कलेजा टूक टूक कर दिया। अब तक तुमने मनुष्य का गला दबाया, पशुओं के गले काटे, पक्षियों को निशाना बनाया आज तुम इतने नीच ······

अभी वह वाक्य पूरा ही करना चाहती थी कि चाँद की एक किरन ने उसका मुख चूम लिया। दूसरी तरंग ने आकर कहा चल री बहिन! प्रस्थान का समय आगया······

तरंग आई थी, चली गई। मेरे मन पर एक अमिट छाप छोड़ गई और "मानव" क्या है मैं अच्छी तरह से समझ गया हूँ। उसकी नस में खून बहता है न ?

❀ ❀ ❀ ❀

मेरे मित्र ने झकझोर कहा, "मित्र किस सोच में हो। क्या घर की याद आगई ?" मैं, घर की क्या याद, क्या, कैसे, वहाँ भी नहीं युद्ध ·····। मेरा मित्र मुसकरा पड़ा, चाँद हमारे पर ज्योत्स्ना बिखेर रहा था और मैं वापिस लौट रहा था।

———

कालसी में अशोक-आश्रम की प्रस्तावित योजना

[ले०—श्रीयुत प्रो० धर्मदेव जी शास्त्री दर्शन केसरी न्याय वेदान्त तीर्थ देहरादून]

एक महत्त्वपूर्ण रचनात्मक कार्यक्रम

[वैदिक धर्म का सच्चा प्रचार क्रियात्मक जीवन और सेवा द्वारा ही हो सकता है केवल व्याख्यानों और लेखों से नहीं। इस समय रचनात्मक कार्यों की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है इस दृष्टि से हम श्री पं० धर्मदेव जी शास्त्री की निम्न योजना का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि सभी समाजों द्वारा उन्हें इस योजना को क्रियात्मक रूप देने म पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। —सम्पादक]

प्राक्कथन

छः साल पहले जब मैं देहरादून आया था, तब समझता था, देहरादून एक सभ्यतम प्रदेश है। भौगोलिक दृष्टि से भी मैं देहरादून को ऊँचा समझता था। वस्तुतः देहरादून का अतीत है भी बहुत भव्य। आचार्य द्रोण के ही नाम से इस जिले का और मसूरी की ऊँची पर्वत-श्रेणी—द्रोणाचल—का नामकरण हुआ है। देहरादून के एक ओर गंगा और दूसरी ओर यमुना बहती हैं, जिनसे इस प्रदेश की पावनता प्रकट होती है। प्राकृतिक झरनों, दृश्यों और सुन्दर छोटी-छोटी वनस्थलियों से यह प्रदेश स्वर्ग-सम प्रतीत होता है। देहरादून-जिले के साथ राम, लक्ष्मण और भरत के पावन चरित्र का सम्बन्ध है। हृषीकेश में भरत-मंदिर और लक्ष्मण-झूला जैसे पुरातन स्मारक इसके प्रमाण हैं। पाण्डवों ने इसी प्रदेश में ऐहलौकिक लीला समाप्त की। जौनसार बावर में पाण्डवों के अनेक स्मारक मिलते हैं। मध्य-युग के सम्राट् अशोक ने कालसी-नामक स्थान पर शिला-लेख खुदवाकर देहरादून की ऐतिहासिक महत्ता और सांस्कृतिक विशेषता स्थिर रक्खी।

आज जब विश्व वंद्य, युग पुरुष महात्मा गांधी संसार को वर्तमान क्रांति-काल में, मानवता के इतिहास में, बलवान की अहिंसा के उच्चतम आदर्श की देन दे रहे हैं, तब सम्राट् अशोक का कालसीवाला शिला लेख महत्व-पूर्ण हो जाता है। संसार के इतिहास में शायद अशोक ही ऐसा उदाहरण है, जिसने बलवान् की अहिंसा उपस्थित की है। विजयी सम्राट् होकर भी हिंसा द्वारा प्राप्त विजय को पराजय कहकर स्वयं शस्त्र-त्याग का जो आदर्श सम्राट् अशोक ने कलिंग-विजय के बाद रक्खा, वह ससार के इतिहास में अभूतपूर्व घटना है। ये भाव अशोक ने कालसी के त्रयोदश शिला-लेख में व्यक्त किये हैं। इस शिला-लेख में अहिंसा और नैतिकता के आधार पर अफ़ग़ानिस्तान तक की विजय का वर्णन है। वास्तव में भारतवर्ष की सीमा अफ़ग़ानिस्तान तक ही है। खैर।

परन्तु बहुत कम व्यक्ति यह जानते होंगे कि कालसी जौनसार बावर का ही एक हिस्सा है, और जौनसार बावर असभ्य तथा बहिष्कृत प्रदेश है।

१९३५ के गवर्नमेंट आफ् इंडिया-ऐक्ट में भारत के जो प्रदेश शासन-सुधार से वंचित रक्खे गये, उनमें यह प्रदेश भी है।

यमुना के तट पर स्थित अशोक का शिला-लेख देखकर मुझे आज से छः वर्ष पूर्व जब मैं सर्व प्रथम कालसी देखने गया था यह ध्यान हुआ कि यहां बौद्ध और आर्य-संस्कृतियों का संगम बन सकता है। इसके बाद कालसी का शिला-लेख देखने का कई बार अवसर मिला। प्रतिब र आत्मा पर इसे सांस्कृतिक क्षेत्र बनाने के सम्बन्ध में अदृश्य संस्कार पड़ते रहे हैं—यह इसलिये भी कि हमारे देश में सांस्कृतिक स्थान हैं भी बहुत कम।

पिछले दिनों जब एक कार्य-वश पूज्य बापूजी के पास जाने का अवसर हुआ, तब तो यह भाव स्पष्ट हो गया कि मुझे सब कुछ छोड़कर, कालसी में एक आश्रम बनाकर पिछड़े हुए ८० हजार नर-नारायण की सेवा को ही जीवन की एकमात्र साधना बनाना चाहिये। महात्मा जी ने जब मुझसे पूछा—"तुम क्या करते हो?" तब आत्मा को बहुत कष्ट हुआ कि सचमुच मैंने कोई स्थायी कार्य नहीं किया। मुझे ऐसा लगा कि पूज्य बापूजी मुझे यह प्रेरणा कर रहे हैं कि मैं देहरादून शहर छोड़ दूँ, और कालसी में एक आश्रम बनाकर जा बैठूँ, और वहाँ सेवा करते-करते जीवन खपा दूँ। पूज्य महात्माजी के प्रश्न का उत्तर मैंने यह दिया—"मेरी इच्छा यह होती है कि मैं कालसी में एक आश्रम बनाकर बैठ जाऊँ।" मेरा उत्तर सुनकर जब गांधी जी ने ये शब्द कहे—"हाँ, मेरी इच्छा भी कालसी का शिला-लेख देखने की है।" तब मुझे ऐसा लगा कि अब तो विश्व के महान् पुरुष का यही आदेश है कि मैं कालसी में जाकर बैठूँ।

मैं देखता हूँ, मैं एक साधारण-सा व्यक्ति हूँ। यह कार्य महान् है और पवित्र भी। आजकल सार्वजनिक जागृति के साथ ही अनेक संस्थाएँ बन जाने से जनता पर बोझ भी बहुत बढ़ गया है। परन्तु यह भी ठीक है कि पिछड़ी हुई जातियों में सेवा की दृष्टि से जो कुछ कार्य हो रहा है, वह नगण्य है। जौनसार बावर में तो कुछ भी कार्य नहीं हुआ।

मेरा विश्वास है, देश में आज ऐसे व्यक्ति अनेक हैं, जो कार्य के औचित्य पर विचार करके दान करते हैं। मेरा विचार जगह-जगह घूमने का नहीं। मैं यहाँ जौनसार बावर का संक्षिप्त परिचय लिख रहा हूँ। मैं पाठकों के उत्तर की प्रतीक्षा करूँगा। आशा है, पाठक इस योजना पर विचार करके निम्न लिखित पते पर मुझे लिखेंगे—

भारती-मन्दिर
६६, राजपुर रोड, देहरादून

जौनसार बावर

सन् १९३५ के गवर्नमेंट आफ् इंडिया ऐक्ट में भारत के जिन प्रदेशों को शासन सुधार से वंचित रक्खा गया, जहां आज भी ऐसेम्बली के क़ानून लागू नहीं होते, बल्कि जो सीधे गवर्नर के शासन में हैं, उनमें जौनसार बावर का इलाक़ा भी मुख्य है। जौनसार बावर छोटा-सा प्रदेश या क़स्बा नहीं। इसका क्षेत्रफल २५, ११४ वर्गमील है, और जन-संख्या ८०,००० से अधिक। देहरा-दून का आधा ज़िला इस प्रदेश के अंतर्गत है।

देहरादून की दो तहसीलों में एक तहसील चकरौता है जो जौनसार बावर का केन्द्र-स्थान है। सारी तहसील का ही नाम जौनसार बावर है।

कालसी से यह प्रदेश आरम्भ होता है, जहाँ अशोक का शिला-लेख यमुना के किनारे स्थित है। कालसी प्राकृतिक दृष्टि से बहुत ही सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद स्थान है। यहां यमुना नदी में ऊपर अमला और नीचे टौंस, ये दो नदियां मिलती हैं। चकरौता के उन्नतम हिशिखर के ठीक नीचे बसा होने से यह प्रदेश पाण्डवों के हिमपात का द्वार प्रतीत होता है। यहाँ बौद्ध और आर्य-संस्कृतियों का सांस्कृतिक संगम बन सकता है, और दोनों संस्कृतियों के उन्नतम आदर्श—शूरवीरों की अहिंसा का प्रयोगात्मक केन्द्र बनाया जा सकता है।

जौनसार बावर में तो जो कुछ भी कार्य हुआ, और हो रहा है, वह ईसाई-मिशनरियों द्वारा ही हुआ है। इसलिये वह एक विस्तृत सेवा का क्षेत्र है। यहां शिक्षा-सम्बन्धी सामाजिक, सांस्कृतिक, सभी दृष्टियों से कार्य किया जा सकता है।

संक्षिप्त परिचय

जौनसार बावर के उत्तर-पूर्व में यमुना के संगम तक टौंस-नदी का धूमिल प्रवाह है। ठीक उत्तर में टिहरी-राज्य और पूर्व में जुब्बल और सिरमोर (नाहन स्टेट) है।

जन-संख्या और धर्म

सन् १८८७ में २३,२२८, सन् १९०१ में ६१,१०१ और सन् १९३१ में ८०,००० जनसंख्या में हिन्दुओं का प्राधान्य है। यहाँ मुसलमान बहुत कम हैं। हिन्दुओं में भी हरिजन कहलाने वाली जातियों की अत्यधिक संख्या है। हिन्दुओं की मुख्य जातियाँ चौहान, तोमर, नेगी, विष्ट, रावत-ब्राह्मण आदि हैं।

यहाँ अधिकतर लोग महासू या परशुराम के पुजारी हैं। लख-मंडल में परशुराम का एक प्रसिद्ध मन्दिर भी है। पूर्वीय भाग में सूर्य की पूजा करने वाले भी कुछ पाए जाते हैं। जौनसार बावर में चार देवताओं की पूजा होती है, जिन्हें महासू के नाम से पुकारा जाता है। बासक, पिवसक, बुथिया या बैथ और चाल्टा या चाल्दा, ये इनके वैयक्तिक नाम हैं। ये सब देवता ५०० वर्ष पूर्व काश्मीर से आए बताए जाते हैं। इनके सम्बन्ध की अनेक दंत-कथाएँ यहां प्रचलित हैं।

व्यवसाय

जौनसार बावर के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती है। बड़ी मुश्किल से छोटे-छोटे टुकड़ों में लोग खेती करते हैं, जिन्हें बरसात के बाद फिर ठीक करना पड़ता है। यहां का प्रधान अनाज मड़ुआ, गेहूँ और चावल है। अदरक, हल्दी और आलू की भी खेती होती है। सहायक उद्योग के रूप में ऊन वाले पशुओं का पालन भी होता है, परन्तु इसका कोई संगठित व्यावसायिक केन्द्र नहीं। घरों में पुराने ढंग से मधुमक्खी के छत्ते भी पाए जाते हैं। इस दिशा में भी वैज्ञानिक दृष्टि से कोई कार्य नहीं हुआ।

सामाजिक दशा

यहां की सामाजिक दशा बहुत बुरी है। यहाँ के लोग अपने आपको पांडवों का अनुयायी कहते

हैं। यहां बहुपति-प्रथा प्रचलित है। घर में सब भाइयों की एक ही पत्नी होती है। शायद इसका कारण यह भी हो कि यहाँ स्त्रियों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। सन् १९०० में बच्चों की जन-संख्या-सम्बन्धी रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि एक हजार लड़कों के मुक़ाबिले में केवल ७६२ लड़कियों का जन्म हुआ। जो कुछ भी हो, यह निर्विवाद है कि बहुपति-प्रथा इस प्रदेश के जंगलीपन का ही नतीजा है। यहां शराब बनाने पर कोई रुकावट नहीं। घर-घर में शराब बनती है। शराब के मटके-के-मटके घरों में भरे रहते हैं। यहां छोटी जातियों के साथ—विशेषतः हरिजनों के साथ पशुओं का-सा व्यवहार होता है। हरिजन अथवा छोटी जाति के लोग जमीन नहीं खरीद सकते। ब्राह्मण और राजपूत ही जमीन खरीद और बेच सकते हैं।

शिक्षा

शिक्षा और संस्कृति की दृष्टि से यह प्रदेश बहुत ही पिछड़ा है। दो-चार इने-गिने स्थानों पर डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की तरफ़ से प्राइमरी स्कूल चलते हैं, जिनमें छोटी कहलाने वाली जातियों के लड़के नहीं पढ़ सकते। यहां की भाषा जौनसारी है, पर हिन्दी प्रायः सभी समझ लेते हैं।

राजनैतिक स्थिति

जौनसार बावर में वे सब क़ानून लागू नहीं होते, जो ब्रिटिश भारत में लागू होते हैं। वहां आज भी पुराने जमाने का दक़ियानूसी शासन चलता है। हरएक गांव में समुदाय खेट कहलाता है। खेट का सरकारी मुखिया 'सदर सयाना' होता है। 'सयाना' छोटी जाति का कोई व्यक्ति नहीं हो सकता। जौनसार बावर में वस्तुतः सयानों का ही शासन है।

आश्रम की आवश्यकता

इस प्रकार देखने से प्रतीत होगा कि इस प्रदेश में एक बहुत बड़ा सेवा-क्षेत्र बन सकता है। हमें पूरा विश्वास है, यदि कालसी में एक केन्द्रीय आश्रम चलाया जाय, और उसकी शाखाएँ जौनसार बावर के छोटे-छोटे ग्राम-केन्द्रों में स्थापित हों, तो इस प्रदेश को शीघ्र ही कुछ वर्षों में असभ्यता के पाश से मुक्त करके सुसंस्कृत बनाया जा सकता है। फ़िलहाल कालसी में एक केन्द्रीय आश्रम स्थापित करना चाहिए। कालसी में इसलिए कि यहाँ अशोक का ऐतिहासिक शिलालेख है, यमुना का किनारा है और पास ही चूहड़पुर-नामक एक बहुत बड़ी मंडी भी है। यहां से जौनसार बावर और नाहन-स्टेट का व्यापारिक आयात-निर्यात होता है। सहारनपुर से चकरौता तक जाने वाली पक्की सड़क पर कालसी स्थित है। कालसी में पोस्टऑफ़िस और कचहरी भी है। स्वास्थ्य की दृष्टि से कालसी में सारा वर्ष रहा जा सकता है। सब से बढ़कर कालसी सांस्कृतिक दृष्टि से एक ऐतिहासिक स्थान है।

आश्रम की नीति

आश्रम का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से जौनसार बावर को सभ्य बनाकर राजनैतिक दृष्टि से भारत के अन्य प्रदेशों के समकक्ष बनाना होगा। आश्रम का कार्य-क्षेत्र शुद्ध सामाजिक और आर्थिक होना चाहिए। चलती हुई

राजनीति से आश्रम के कार्यकर्ता अपने आपको पृथक् रक्खें। समाज-सुधार के कार्यों में आश्रम की नीति हरिजन-सेवक-संघ और आर्य-समाज की नीति का अनुसरण करे। आश्रम के प्रयोगात्मक केन्द्रों में अधिक-से-अधिक साक्षर बालक और बालिकाएँ हों। अधिक-से-अधिक बालक और बालिकाओं के संस्कार हों। प्रत्येक घर पीछे कम-से-कम एक चर्खा चले। वस्त्र की दृष्टि से गांव अथवा ग्राम-केन्द्र स्वावलम्बी हों। आश्रम के अधीन ऊन का एक व्यावसायिक केन्द्र चलाया जाय। यहाँ जौनसार बावर के लोग ऊन या ऊन के वस्त्र 'चर्खा-संघ' की मजदूरी पर बेच और खरीद सकें। ऊन और सूत कातने और बुनने के लिए एक शिक्षण-केन्द्र खोला जाय। हमारा विश्वास है कि यदि ऊन का व्यवसाय व्यवस्थित ढंग से चलाया जाय, तो जौनसार बावर के इलाक़े की आय बहुत बढ़ सकती है। जौनसार बावर में वैज्ञानिक ढंग से मधुमक्खी पालने के व्यवसाय के सम्बन्ध में प्रोत्साहन और शिक्षा देने से भी आर्थिक दशा बहुत कुछ सुधर सकती है। इसके लिये कालसी-आश्रम में मधुमक्खी पालन के शिक्षण का भी एक विभाग हो। जौनसार बावर के पवतों में जड़ी-बूटियाँ और वनस्पतियाँ बहुतायत से पाई जाती हैं। आश्रम में इस प्रकार का भी एक विभाग खोला जाय, जो जौनसार बावर के लोगों को उपयोगी जड़ी-बूटियों का ज्ञान प्राप्त कराये। साथ ही वहां के लोगों से अच्छी जड़ी-बूटियां और वनस्पतियाँ खरीद कर जनता तक पहुँचाई जासकें। हमे विश्वास है, देश के धनी मानी और विवेकशील व्यक्ति जौनसार बावर के पिछड़े हुए अस्सी हजार देशवासियों की भलाई के लिये इस योजना का स्वागत करेंगे।

ऋषि-महिमा

(ले०—कविरत्न पं० सिद्धगोपाल 'साहित्य वाचस्पति' देहली)

ऋषि का सु-ध्यान जब आता है।
तो सबकी याद भुलाता है ॥

(१)

जग में अगणित विद्वान हुए,
ऋषि सन्त महन्त महान् हुए।
दार्शनिक गुणों की खान हुए,
तत्वज्ञ महा मतिमान हुए,
जिनका जग यश नित गाता है ॥

(२)

लेकर के कोई प्रकृतिवाद,
कोई लेकर के ब्रह्मवाद ।
कोई लेकर अद्वैतवाद,
कोई लेकर के शून्यवाद,
दुनिया में धूम मचाता है ॥

(३)

ले सबने एक विषय अपना,
की निज निज ग्रन्थों की रचना।
कह दिया किसी ने जग सपना,
जग नित्य, किसी का है जपना,
कोई अनित्य बतलाता है ॥

(४)

पर, दयानन्द ऋषि का विचार,
था चतुर्मुखी अनुपम अपार ।
जग विस्मित था प्रतिभा निहार,
लेकर सुधार का सुधा-सार,
मुर्दों को आन जिलाता है ॥

(५)

कहिं किया आत्मा पर विचार,
कहिं किया धर्म का दृढ़ प्रचार।
कहिं देश जाति की धुन सवार,
होवे स्वतन्त्र होकर सुधार,
यह भाव प्रबल प्रकटाता है ॥

(६)

सुख दुख की कुछ परवाह न थी,
धन-दौलत की कुछ चाह न थी।
वैदिक पथ दूजी राह न थी,
बल विद्या की कुछ थाह न थी,
कुमतों को तोड़ गिराता है ॥

(७)

ऋषिवर तेरे हैं गुण महान्,
नहिं शक्ति करे 'गोपाल' गान।
कर लिया जाति हित गरल पान,
घातक को देकर अभय-दान,
जग जीवन-ज्योति जगाता है ॥

प्रौढ़ शिक्षा योजना

श्री प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति का वक्तव्य

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद ने प्रौढ शिक्षा की जो योजना बनाई है उसके समर्थन में प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति, मन्त्री सार्वदेशिक सभा ने निम्न वक्तव्य दिया है —

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् द्वारा प्रकाशित प्रौढ शिक्षा की योजना को मैंने देखा। विचार बहुत उत्तम है। इससे देश में शिक्षा का प्रचार बढेगा और आर्य कुमारों के समय का सदुपयोग होगा। योजना इतनी सुन्दर है कि इसकी सफलता मे मुझे सन्देह नहीं। सब आर्यसमाजों, विद्यार्थियों तथा आर्यकुमारों से मेरा अनुरोध है कि वह इस स्कीम को कार्य रूप मे परिणत करने में पूरा सहयोग दें।

श्री हरिभाऊ उपाध्याय की सम्मति

परिषद् की प्रौढ शिक्षा योजना के सम्बन्ध मे राजपूताने के प्रसिद्ध नेता श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय लिखते हैं—

प्रियवर परमेश्वरदयाल जी, आपकी प्रौढ़ शिक्षा की योजना मुझे बहुत पसन्द हुई है। ऐसी योजना का सर्वत्र प्रचार व पालन होना चाहिए। मुझे विश्वास है कि आपकी योजना सफल होगी।

कुमार-सभाओं की हलचलें

हापुड़—कुमार सभा की ओर से एक व्यायाम-शाला चल रही है जिसमे २० के लगभग सदस्य व्यायाम करते है। एक अवैतनिक शिक्षक शिक्षा देते हैं।

सगठन और धार्मिक-प्रवृत्ति पैदा करने के लिए विशेष प्रयत्न किया जाता है। लगभग ४० दिन से एक रात्रि पाठशाला चल रही है।

जमालपुर (गोठारी —कुमार सभा की ओर से एक पुस्तकालय और एक सुन्दर वाचनालय जारी है। परिषद् की विज्ञप्ति के अनुसार कुमार सभा ने प्रौढ़ शिक्षा क इस समय दो केन्द्र बनाए हैं। सभा के प्रधान श्रीयुत उमाकान्त गुप्त 'किरण' सभा की उन्नति मे विशेष उत्साह से भाग लेते है। इस वर्ष का चुनाव इस प्रकार है—

प्रधान—श्रीयुत उमाकान्त गुप्त किरण।
मन्त्री—श्रीयुत आनन्देश्वर प्रसाद सिंह।
सयुक्त मन्त्री—श्री शुकदेव।

पुस्तकाध्यक्ष—श्री प्रभाकर सिंह।

बाराबंकी—कुमार-सभा की ओर से एक व्यायाम शाला है। कुमार-सभा के लगभग १५० सदस्य हैं। वे समाज के आन्दोलनों के अवसर पर उत्साह-पूर्वक कार्य करते हैं।

निम्न स्थानों में हाल ही में कुमार सभाओं की स्थापना हुई है। शीघ्र ही इनका परिषद् से सम्बन्ध कर दिया जाएगा। आशा है कि कुमार सभाएँ दिन-प्रति-दिन उन्नति करेंगी।

भोपाल—२० जून को कुमार सभा की स्थापना हुई इसके निम्न पदाधिकारी चुने गए। सर्वश्री महिपाल पथिक-प्रधान, आनन्दस्वरूप जी मन्त्री, विक्रमादित्य-कोषाध्यक्ष,

पसरूर—आर्य-युवक-समाज पसरूर ने एक व्यायाम शाला खोली हुई है।

बरई—यहाँ की व्यायाम-शाला उन्नति कर रही है। व्यायाम-शाला में आने वाले सदस्यों की संख्या अब बढ़कर ५० हो गई है। आशा है अन्य कुमार सभाएँ भी इसका अनुकरण करेंगी। प्रत्येक मास में व्यायाम प्रतियोगिताएँ हुआ करती हैं।

सरोज व रत्न की परीक्षाएँ भी अगस्त में

परीक्षार्थियों की सुविधा के लिए और विशेष कर पर्वतीय भाइयों की सुविधा के लिए भारत-वर्षीय आर्य कुमार परिषद् ने सिद्धान्त सरोज और सिद्धान्त रत्न की परीक्षाएँ भी अगस्त मास में करने का निश्चय किया है। पर्वतीय स्थानों में तो सरोज व रत्न के पाँच परीक्षार्थी होने पर ही केन्द्र स्थापित हो सकता है। परन्तु अन्य स्थानों में चारों परीक्षाओं के २० परीक्षार्थी होने पर ही केन्द्र की स्थापना हो सकेगी, किन्तु यदि किसी स्थान पर सिद्धान्त भास्कर और सिद्धान्त शास्त्री के ५ परीक्षार्थी हों तो वहाँ सरोज व रत्न का केन्द्र भी स्थापित हो सकेगा, चाहे परीक्षार्थियों की संख्या कुल मिलाकर २० हो या न हो।

परिषद् की परीक्षाओं का परीक्षा-फल

श्री पं० देवव्रत धर्मेन्दु परीक्षा मंत्री भारत-वर्षीय आर्यकुमार परिषद् सूचित करते हैं कि जनवरी १९५२ में भारत के समस्त केन्द्रों से हुई परिषद् की विविध परीक्षाओं के परीक्षा फल घोषित कर दिये गये हैं। सिद्धान्त सरोज में कुल ७७० परीक्षार्थी बैठे जिसमें से ६६० उत्तीर्ण हुए इसका परीक्षा फल ८५ प्रतिशतक रहा। सिद्धान्त रत्न में ५४४ बैठे, जिसमें से ४३० उत्तीर्ण अतः परीक्षा फल ७९ प्रतिशतक। सिद्धान्त भास्कर में १३९ बैठे १२२ पास हुए जिसमें परीक्षा फल ८७ प्रतिशत रहा। इसी प्रकार सिद्धान्त शास्त्री में ७३ बैठे और उनमें से ४३ पास अतः परीक्षाफल ५८ प्रतिशत रहा। परीक्षा फल की पूरी-पूरी नकल नाम स्थिति तथा केन्द्रादि के हिसाब से छपी हुई कार्यालय से ≠)॥ के टिकट भेजकर मगाई जा सकती है।

आर्य समाज स्थापना निधि

आर्यों में अनुशासन

(लेखक--पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, उपमन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली)

आर्य जनता को यह ज्ञात ही है कि गत अनेक वर्षों से आर्यों की शिरोमणि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाज स्थापना निधि की स्थापना सब प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं की सहमति से कर रखी है जो सभा की स्थिर आय का एक साधन है। आर्य समाज स्थापना दिवस का कार्यक्रम प्रति वर्ष के समान इस वर्ष भी प्रतिनिधि सभा की ओर से सब आर्य समाजों को भेज कर निवेदन किया गया था कि उस पवित्र दिवस के उपलक्ष्य में अपने सदस्यों और सहायकों से धन संग्रह करके सभा कार्यालय में भिजवा दें। जिन आर्य समाजों ने सभा के आदेश का पालन करते हुए धन संग्रह करके सभा कार्यालय में भिजवाया है, वे धन्यवाद के पात्र हैं किन्तु मुझे यह लिखते हुए खेद होता है कि अनेक सुप्रसिद्ध और बड़ी बड़ी आर्य समाजों ने इस विषयक अपने कर्त्तव्य की ओर अभी तक जरा भी ध्यान नहीं दिया। कई बड़ी समाजों के पत्र आये हैं कि उन्होंने स्थापना दिवस को बड़ी धूम-धाम और उत्साह के साथ मनाया। हजारों नर-नारी सभा में सम्मिलित हुए किन्तु धन कुछ भी एकत्रित नहीं किया गया। इसका स्पष्ट अर्थ यह निकलता है कि अभी तक सब आर्यों में अपनी शिरोमणि सभा के आदेश के पालन वा अनुशासन (Discipline) की प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं हुई जिसका परिणाम सारे आर्य जगत पर पड़ेगा क्योंकि आर्य समाजों और प्रान्तीय प्रतिनिधि सभाओं के सहयोग से ही सार्वदेशिक सभा अपने महान् उद्देश्य "देशदेशान्तरों, द्वीप द्वीपान्तरों में वैदिक धर्म प्रचार" में सफलता प्राप्त कर सकती है। कई बड़ी बड़ी आर्यसमाजों को जब इस विषय में स्मरण पत्र भेजे गए तो उन्होंने लिखा क्योंकि आर्य समाज स्थापना दिवस पर धन एकत्रित नहीं किया गया था अतः भेजने में असमर्थ हैं किन्तु अन्य अनेक आय समाजों ने जो किसी कारणवश उस अवसर पर धन एकत्रित न कर सकी थीं अब सभासदों से चन्दा करके अथवा अपने कोष से धन भेजकर सभा के आदेश का पालन किया है। यह खेद और आश्चर्य की बात है कि जून के अन्त तक इस निधि में केवल ६१) प्राप्त हुए हैं जब कि इस वर्ष के बजट में कम से कम २२००) आय की इस निधि में आशा की गई थी। जिन समाजों ने अभी तक इस निधि का रुपया सभा कार्यालय में नहीं भेजा उनको चाहिए कि 'Better late than never' अर्थात् काम न करने की अपेक्षा देर में करना अच्छा है, इस उक्ति के अनुसार अपने सदस्यों से धन एकत्रित

करके अन्यथा अपने कोष से सार्वदेशिक सभा, बलिदान भवन, देहली के पते पर अतिशीघ्र भिजवा कर अपने कर्तव्य का पालन करें। प्रान्तों की बड़ी समाजों को तो विशेषकर इस अनुशासन और शिरोमणि सभा के आदेश पालन के विषय में अन्य समाजों के आगे एक आदर्श रखना चाहिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि सब आर्य समाजें अपने इस विषयक कर्तव्य का तत्परता से पालन करेंगी और इस सम्बन्ध में मुझे फिर लिखने की आवश्यकता न पड़ेगी। आर्यसमाजों से इस निधि में प्राप्त धन की सूची 'सार्वदेशिक' पत्र में धन्यवाद सहित प्रकाशित की जायगी।

नोट—अप्रैल तक की सूची मई के 'सार्वदेशिक' मे प्रकाशित हो चुकी है।

आर्यसमाज स्थापना दिवस का धन मई जून १९४२ में प्राप्त

संयुक्तप्रान्त की समाजें

क्र० स०	नाम आर्यसमाज	राशि प्राप्त
१.	जौनपुर	१३=)
२.	शिकोहाबाद	१०)
३.	देहरादून	७५)
४.	बहराइच	६)
५.	नगीना (बिजनौर)	६)
६.	पूरनपुर (पीलीभीत)	७)
७.	आज़मगढ़	२०)
८.	हरदोई	१०)

पंजाब प्रान्त की समाजें (गुरुकुल विभाग)

९.	क्वेटा	५०)
१०.	भलवाल (सरगोधा)	५)
११.	रावलपिंडी	८।=)
१२.	करौलबाग़, देहली	५)

राजस्थान की समाजें

१३.	मडावा (जयपुर)	२१)

मध्यप्रान्त की समाजें

१४.	होशंगाबाद	२=)

बिहार प्रान्त की समाजें

१५.	दानापुर, पटना	८=)

बंगाल प्रान्त की समाजें

१६.	Kaukinara (२४ पर्गना)	५)

बम्बई प्रान्त की समाजें

१७.	बार्शी (शोलापुर)	५)

सिंध प्रान्त की समाजें

१८.	शिकारपुर (सिन्ध)	६=)

मद्रास प्रान्त की समाजें

१९.	पालघाट	४)

विश्वव्यापी मुस्लिम राज्य की योजना

पाकिस्तान भारतीय राष्ट्र के लिये आत्मघातक होगा

श्री कन्हैयालाल मुंशी भू० गृह सचिव बम्बई सरकार द्वारा ब्रिटिश सरकार को चेतावनी

जिस दिन मुस्लिम लीग ने पाकिस्तान को अपना ध्येय घोषित किया था, उसी दिन उसने भारतीय नीति के खिलाफ़ युद्ध की घोषणा कर दी थी। इस सम्बन्ध में किसी भी समझदार आदमी को कोई संशय नहीं हो सकता।

अधिक या कम अंशों में अधिकृत क्षेत्रों के वक्तव्यों से यह ध्वनि सुनाई पड़ती है कि प्रजातन्त्र के नाम पर पाकिस्तान को भारत पर लादा जायगा। हैदराबाद की ६५ प्रतिशत हिन्दू जनता शेष भारत से अलग कर दी जायगी और एक मुस्लिम राजवंश की दास बना दी जायगी। इसके अलावा काश्मीर जैसी रियासतों और प्रान्तों में जहां मुसलमान लोग अधिक संख्या में हैं, प्रजा-तन्त्र के नाम पर हिन्दू-अल्पसंख्यकों को मुस्लिम राज्य के अधीन होकर रहना होगा।

अभी हाल में ही चौधरी खली कुज्जमान ने बम्बई में एक भाषण दिया। आपने फरमाया कि—"विगत ५ वर्षों में कांग्रेस और लीग की नीति का विकास यह प्रदर्शित करता है कि हिन्दू जाति और नेतृत्व कोई बड़ी चीज प्राप्त करने में अब असमर्थ है। इसलिए मुसलमान ही अब भारत के भावी शासक बनेंगे।

यह अन्तिम मांग नहीं

"पाकिस्तान मुसलमानों की अन्तिम मांग नहीं है। विश्वव्यापी इस्लाम की योजना का यह पहला कदम है। हिन्दुओं को लीग की पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करना ही पड़ेगा। यदि मुसलमान एक हो गये तो वे अफ़गानिस्तान, ईरान, ईराक, फिलिस्तीन, मिश्र और टर्की को भारतीय मुसलमानों का साथ देने के लिए अपनी संयुक्त शक्ति का प्रयोग करेंगे। तब मिश्र से भारत और चीन तक इस्लाम का झण्डा फहरायेगा और मुसलमान एक बड़ी ताकत हो जायेंगे।"

जो लोग यह ख्याल करते हैं कि शान्तिमय उपायों से पाकिस्तान का प्रश्न हल किया जा सकता है, वे मूर्खों के संसार में बसते हैं। पाकिस्तान के पीछे सारे भारत को पाकिस्तान बनाने और शेष हिन्दुओं को दास बनाने की महत्वाकांक्षा है।

युद्ध द्वारा उत्पन्न हुई वतमान संकटपूर्ण परिस्थितियों में इन पाकिस्तान वालों से समझौते की बात-चीत करना भारत के लिए आत्मघात करने के बराबर होगा। पाकिस्तान के लिए हमारे पास एक ही उत्तर है, जोकि अब्राहमलिंकन ने अमेरिका की दक्षिणी रियासतों को दिया था और वह है—'तुम्हें नहीं मिलेगा।'

यदि मि० एमरी के निर्देश पर ब्रिटिश सरकार ने पाकिस्तान की मांग स्वीकार करली तो उसे भारतीय राष्ट्र का क्रोध सहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

—

महिला-जगत्

डरबन (अफ्रिका) में आर्य स्त्री समाज की स्थापना

प्रधाना श्रीमती लालसिंह के भाषण के आवश्यक अंश

एक दूसरे से मिलने और विचार परिवर्तन करने से हम अपनी स्त्री जाति की दशा उन्नत करने की आशा और इस प्रकार समाज में अपना वास्तविक स्थान ग्रहण कर सकती हैं। अपनी बुद्धि के विकास के लिए हमे पूरी २ आशा रखनी चाहिए क्योंकि धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी क्षेत्रों में बड़ी उन्नति की जा सकती है और इन विचारों के विकास में स्त्रियाँ बढ़ बढ़कर भाग ले सकती हैं।

समाज में आर्य्य महिलाओं की क्या स्थिति थी और जाति की उन्नति में उनका क्या भाग रहता था इसके परिज्ञान के लिए हमें अपने भूतकाल पर दृष्टि डालनी चाहिए और अपनी वर्तमान स्थिति की उसके साथ तुलना करनी चाहिए। तुलना करने से हमें ज्ञात होगा कि हमारी दशा बड़ी हीन है और हममे व्याप्त विविध त्रुटियाँ इस दशा की द्योतक हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम प्राचीन आदर्शों का प्रचार करके उनकी स्थापना का यत्न करें जिनके अनुसार स्त्रियां पुरुषों के समान समझी जाती हैं।

आप किसी भी देश के इतिहास को उठाकर देखें। आप को ज्ञात होते देर न लगेगी कि जिन देशों ने अपनी स्त्रियों को अनपढ़ और दास बनाकर रखा है उनके विनाश और पतन में देर नहीं लगी है।

हमारे समाज को बहुत कार्य्य करना है और समस्त सदस्याओं के उत्साह पूर्वक दिए हुए सहयोग से ही हम उद्देश्य की पूर्ति की आशा कर सकती हैं।

श्री स्व० गीताबाई जी

माताजी श्री पू० पं० विनायक रावजी विद्यालङ्कार उपप्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

ता० १ जून १६४२ को आपका देहान्त हुआ

माता

लेखिका—श्रीमती राधादेवी जी दवन (दक्षिण अफ्रीका)

मै 'माता' के विषय पर कुछ विचार प्रकट करना चाहती हूँ। 'मां' शब्द में निहित सौन्दर्य का कवियों और दार्शनिकों ने सदैव गुणगान किया है। मुझ जैसा तुच्छ व्यक्ति इसकी क्या प्रशंसा कर सकता है? बच्चा सब से पहले 'मां' शब्द सीखता है और बड़ा व्यक्ति दुःख में स्वभावतः मां को ही याद करता है।

अपनी सुन्दर भाषा में हम 'मां' शब्द को अधिक सम्मान का स्थान प्रदान करते हैं क्योंकि हम पिता के नाम के पहिले माता के नाम का उच्चारण करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में आर्य परिवार में माता का बहुत ऊँचा स्थान था।

कहा जाता है कि 'जो हाथ पालने को चलाता है वही हाथ संसार को चलाता है।' यह कहावत बड़ी सच्ची है। संसार के सब ही महान् व्यक्ति किसी समय छोटे २ बच्चे थे और उनकी माताओं ने उनका पालन पोषण वैसे ही किया होगा जैसा अन्य माताएँ अपने बच्चों का करती हैं। उदाहरणार्थ हिटलर को ले लीजिए। उसने समस्त संसार को हिला दिया है। क्या यह नहीं कह सकते कि इस चमत्कार के लिए उसकी माता भी कुछ अंशों में जिम्मेवार है।

बच्चे का चरित्र निर्माण औरों की अपेक्षा माता से अधिक सम्बन्धित है। विचारों की उदारता और सद्व्यवहार इत्यादि बहुत से गुण और विशेषताएँ माता के चरित्र से बच्चों में आते हैं। बच्चे का सब से प्रथम शिक्षण माता की गोद में होता है।

स्कूल जाने पर भी सुमाता का अपने बच्चों पर नियंत्रण होता है और चरित्र निर्माण का कार्य घर पर जारी रहता है। अध्यापक तो प्राय; बच्चे को पुस्तकीय ज्ञान देता है परन्तु माता अपने अनुभव से उत्पन्न हुआ बहुत सा ज्ञान दे सकती है। पाठशाला का जीवन व्यतीत हो जाने पर भी बच्चों पर माता के प्रभाव का अनुभव होता है। संसार के बहुत से महान् पुरुषों ने इस बात को और अपनी माताओं के प्रभाव को कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार किया है।

उपर्युक्त लेख से यह नहीं समझना चाहिए कि स्त्री का स्थान केवल घर ही है। इतिहासकार हमें बताते हैं कि स्त्रियों ने जिनमें कई माताएँ भी थीं, बहुत प्राचीन काल से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपना महत्व स्थापित किया था। हम स्त्रियों को सेनाओं का संचालन करते हुए तत्व ज्ञान और अध्यात्म ज्ञान पर आश्चर्य में डालने वाली व्याख्याएँ प्रस्तुत करते हुए पढ़ते हैं। अतः यह नहीं कहा जासकता कि स्त्रियों ने केवल मात्र पारिवारिक जीवन में सफलता प्राप्त की थी।

सुमाता बनने के लिए माता का सुशिक्षित होना आवश्यक है। उत्तम बच्चों का पालन-

पोषण बहुत ही असन्तोष जनक रीति से हो रहा है। मेरी दृढ़ सम्मति है कि मातृभाषा में शिक्षा का दिया जाना अन्य भाषाओं के शिक्षण से कहीं अधिक आवश्यक है। इससे मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि अंग्रेजी की अवहेलना की जाय। हम स्त्रियों को अपने बच्चों को हिन्दी-भाषा द्वारा शिक्षण पर बल देना चाहिए। मेरा विश्वास है कि अब हम उन महान् परम्पराओं और मर्यादाओं को अनुभव करेंगे जो कि हमें भारत माता के द्वारा मिली हैं तब हमारी बहुत सी त्रुटियां दूर हो जायेंगी।

श्री स्व० गोखले 'स्त्री-शिक्षा' के विषय पर कहते हैं शिक्षा ज्ञानमय स्वाधीनता और समाज में सम्मानित स्थान-पर्दा और अज्ञान नहीं-हिन्दू देवियों की वास्तविक वपौती है।

प्रचलित विषय

युद्ध, रूस, साम्यवाद, वर्गवाद

(ले०—श्री रघुनाथप्रसाद पाठक देहली)

वर्तमान रूस-जर्मन युद्ध इतिहास की एक अत्यन्त महत्व-पूर्ण घटना बना हुआ है। इसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो। इतिहासकार रूसियों की वीरता की प्रशंसा किए बिना न रहेंगे इस युद्ध से जहां रूसियों का यह पक्ष हमारे सामने उपस्थित हुआ है वहाँ उनकी साम्यवाद और वर्गवाद की नीति का ढीलापन भी उपस्थित हो गया है।

रूसियों ने अपनी साम्यवाद की योजना के अनुसार परमात्मा का बहिष्कार किया हुआ है। इस नीति के फल स्वरूप रूस में सहस्रों धर्म-मन्दिर आज क्लबों और क्रीड़ा-गृहों के रूप में प्रयुक्त हो रहे हैं। आज इस युद्ध में हम क्या देखते हैं? रूस की माताएँ जिन्हें रेडियो पर युद्ध-भूमि में गए हुए अपने पुत्रों के नाम ब्राडकास्ट (भाषण-विस्तार) करने की आज्ञा मिलती है अपने पुत्रों की रक्षार्थ परमात्मा का आशीर्वाद मांग रही हैं। यह सब क्यों? इसलिए कि रूस के निवासी इस समय यह अनुभव करते प्रतीत होते हैं कि अपनी प्रगतियों को अलौकिक सत्ता के साथ प्रथित किए बिना उनकी रक्षा सम्भव नहीं है। इस विषय में श्रीयुत प० जवाहरलाल नेहरू के कलकत्ता में दिए और २८ फरवरी १६४२ के फ़ार्वर्ड में प्रकाशित हुए भाषणके निम्न अश पठनीय हैं:—

"Russian mothers, who were allowed to broadcast to their sons on the front, even invoked the blessings of God for the safety of their dear sons."

इससे स्पष्ट है कि रूसी साम्यवाद की परमात्मा के बहिष्कार की योजना वैसे ही असफल रही है जैसी कि शिक्षादि की, एक दो योजनाओं को छोड़कर अन्य योजनाएँ असफल रही हैं क्योंकि वे अक्रियात्मक और मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति के विरुद्ध हैं।

वर्तमान साम्यवाद के जो रूस में प्रचलित है निम्न २ रूप हैं:—

(१) सोशियलिज्म (साम्यवाद)
(२) कम्यूनिज्म (वर्गवाद)

१—साम्यवाद चाहता है कि जिन साधनों से पैदावार हुआ करती है उनका स्वस्वाधिकारी समाज को होना चाहिए।

२—वर्गवाद का सिद्धान्त है कि निज की जो सम्पत्ति कही जाती है उसे नष्ट कर देना चाहिए।

वर्गवादियों का विचार है कि न किसी की अपनी सम्पत्ति हो और न आयका विभाग किसी की सेवा के उपलक्ष्य में हो। बल्कि आवश्यकता के अनुसार प्रत्येक को धन दिया जाय और इस प्रकार अमीरी-ग़रीबी के भेद और श्रेणी के अन्तर्गत छुटाई बड़ाई के विचार सब जाते रहेंगे और संसार के सभी स्त्री-पुरुष एक लेविल पर आ जायेंगे।

रूस के वर्तमान समाचारों और श्री० स्टैलिन प्रभृति रूस के भाग्य विधाताओं के भाषण-विस्तार को सुनने अथवा समाचार-पत्रों में प्रकाशित उनकी रिपोर्टें पढ़ने वालों को विदित है कि इन दिनों उपर्युक्त दोनों वाद रूस की प्रजा को इतना अपील नहीं कर रहे हैं जितनी देश प्रेम की उदात्त भावना उन्हें प्रेरणा दे रही है। स्वयं स्टैलिन महोदय के भाषण विस्तार देश-प्रेम सूचक अधिक और साम्यवाद तथा वर्गवाद सूचक कम हैं। इस रीति से रूस के साम्यवाद से मत-भेद रखने वालों को, इस परिवर्तन से, उस की असफलता के प्रचुर प्रमाण मिल जाते हैं।

हमारे बहुत से नव-युवक और नव-युवतियां रूस के साम्यवाद वा वर्गवाद के बड़े प्रशंसक पाए जाते हैं और वे अपने उत्साह में जिसे हम अन्धा उत्साह कह सकते हैं इस देशकी परम्पराओं और मर्यादाओं को जाने बिना इस देशको रूसी साम्यवाद और वर्गवाद के रंग में रंगा देखने की इच्छा और प्रयत्न करते हैं। उन्हें इन विचारों का ध्यान-पूर्वक पढ़कर अपनी विचार धारा में परिवर्तन और श्री० प० जवाहर लाल जी के जो देश के अग्रगण्य नेता हैं और जिनकी सहानुभूति रूस के साम्यवादी विचारों और प्रगति के साथ प्रसिद्ध है, निम्न विचारों को हृदयङ्गम करना चाहिए:—

"So for as the question of adoption of the Russian policy was concerned, he could say that not only was this policy wrong, but even approach to it was wrong. If he has learnt any thing from communism it was that its principles and methods could not be applied to any place in utter disiegard of the onditionsc obtaining there. It would be dangerous to tag all national policies to that conception"

(Extract from his speech at Calcutta as reported in the forward, Dated 28-2-42)

अर्थात् रूसकी पालिसी न केवल अशुद्ध है वरन् उसकी भावना भी अशुद्ध है वर्गवाद से उन्होंने जो सीखा है, वह यह है कि इसके सिद्धान्त और प्रणालियां किसी भी स्थान पर उसकी परिस्थितियों की नितान्त अवहेलना-पूर्वक व्यवहृत नहीं हो सकती। समस्त राष्ट्रीय राजनीति को साम्यवाद वा वर्गवाद के साथ ग्रथित करना घातक है।"

जननी

(लेखक—श्री पं० विद्यानिधि जी सिद्धान्तालङ्कार "नरवरी")

मातृ भूमि, हे जननी!

चिर कल्याण सुधा का वर दे,
खाली श्री-लक्ष्मी से भर दे।
ज्ञान-दीप से मुझको करदे,
द्योतित, काव्य-मयी जननी॥ १

ग्राम ग्राम में, वनों वनों में,
युद्ध भूमि में, गिरि नगरों में।
सभा स्थलों में, सभ्य जनों मे,
तेरे ही गुण गावें, जननी॥ २

शिशिर-ग्रीष्म मे, प्रिय पावस में,
सुभग शरद में, मधु-माधव मे।
हम पर नित रजनी में दिन में,
तेरा अमृत बरसे, जननी॥ ३

शान्ति मयी हे, सुरभि मयी हे,
सुख दायिनि हे, दुग्ध मयी है।
अन्न मयी–रस मयी–मही हे,
मै तेरासुत, तू मम जननी॥ ४

Vedic Rituals of Marriage

(*By*—Pandit Ganga Prasad ji Upadhyaya M. A.)

(*Concluded*)

The next important item is four perambulations round the sacred fire preceded by stone-climbing ceremony (अश्मारोहण) There is a stone-slate on which the bride is asked to put her foot. The bride groom reads : -

ओ३म् आरोहेयमश्मानमश्मेव त्वं स्थिरा भव। अभितिष्ठ पृतन्यतो ऽवबाधस्व पृतनायतः॥

"Ascend this stone and be firm like a rock. Be firm against enmity-sowers. Overcome quarrel-some people " And also,

ओं कन्यला पितृभ्यः पतिलोकं पतीयमप दीक्षामयष्ट। कन्या उत त्वया वयं धारा उदन्या इवाति गाहेमहि द्विषः॥

The girlie (पितृभ्यः अप) leaving parents, has accepted (पतिलोकं) the husband's family and (पतीयम् दीक्षाम्) the husband's creed. We may dip deep—as if in a mingled stream, O girl, with thee. Let us be away from jealousies.

T h e hair-loosening ceremony which is also one of the minor items is worth noting The bride-groom takes the bride to a private room and there unties the knot of the hair of her head with these verses.—

ओ३म् प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वा बध्नात् सविता सुशेवः। ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टाँ त्वा सह पत्या दधामि।

ओ३म् प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्। यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगा सती।

(Reg. X 85; 24 25)

"I free thee from the restrictions of the law by which thy good father (सविता सुशेवः) hitherto bound thee (meaning life of celibacy). Now I am marrying thee and thy maidenhood comes to an end by my touch of thy hair). With me thy husband thou shalt live a life of righteousness and charity. I free thee from the obligations of *here* (meaning her father's family), of course, not of *there* (meaning thy husband's family) Now she stands, well-tied, that she, with her valiant husband might have good luck in worthy progeny "

Now the husband and the wife come again to the sacred hearth and walk seven steps together in the presence of the people with significant vows. The husband says :

मा सव्येन दक्षिणमतिक्राम।

"Let not thy left foot out-do thy right foot (i. e., be constant and consistent).

Each step has separate vows :—

ओ३म् इष एकपदी भव सा मामनुव्रता भव विष्णुस्त्वा नयतु पुत्रान् विन्दावहै। बहूँस्ते सन्तु जरदष्टयः।

Take the first step for the sake of food (livelihood).

Follow me in my vows Let God be thy guide. May me get children. Let thy progeny be manifold and long-lived.

(२) ओ३म् ऊर्ज्जे द्विपदीभव। सा मामनुव्रता.................

Take the second step for power. Follow me in my vows and etc

(३) ओ३म् रायस्पोषाय त्रिपदीभव। सा.....

Take the third step for wealth and prosperity. Follow me in my vows and etc.

(४) ओ३म् मयोभवाय चतुष्पदीभव....

Take the fourth step for happiness. Follow me and etc.

ओ३म् प्रजाभ्यः पंचपदीभव........

Take the fifth step for progeny. Follow me and etc.

(६) ओ३म् ऋतुभ्यः षट् पदीभव.....

Take the sixth step for seasonal equipment. Follow me and etc.

(७) ओ३म् सखे सप्तपदीभवा। सा.....

Take the seventh step for close union. Follow me and etc

Now they touch the heart of each other with the following verse:-

ओ३म् मम व्रते ते हृदयं दधामि । मम चित्तमनुचित्तं ते अस्तु । मम वाचमेकमना जुषस्व प्रजापतिष्ट्वा नियुनक्तु मह्यम्।

I put thy heart into my vow. Let my mind be in accordance with thy mind. Follow my word with pointed attention. Let God join thee with me."

This part of the ceremony being over, the husband touches the bride's forehead and addresses the people attending :—

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत । सौभाग्यमस्यै दत्त्वा याथास्तं विपरेतन।

"Here is my auspicious wife. Come ye and see Bless her before you go. Be not unfriendly to her"

(Rig. X-85-33)

People, there upon, say :—

ओ३म् सौभाग्यमस्तु। ओ३म शुभं भवतु।

"Let fortune attend you. Let everything be all right."

Then takes place the Pole-seeing ceremony (ध्रुवदर्शन)

The bride-groom points at the Pole star ध्रुवं पश्य (Look at the Pole Star)

The bride:—पश्यामि (1 See).

ओ३म् ध्रुवमसि ध्रुवाहं पति कुले भूयासम्।

"Thou are Dhruva or constant. May I be constant in my husband's family."

Bride-groom:—अरुन्धतीं पश्य, "Now look at the arundhati (a small star of this name)."

Bride :— पश्यामि (1 See)

ओ३म् अरुन्धत्यसि रुद्धाहमस्मि,

"Thou are arundhati (Literally, not under a check) but I am ruddha (under control ."

(How poetic! How beautiful! marriage takes away freedom).

Now the bride-groom exclaims:—

"ओ३म् ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत्। ध्रुवासः पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्।

"Constant is the sky, constant this earth, constant this universe. Constant are these mountains,

Constant is this woman in the husband's house."

The next part, the last one, is when the wife comes to the husband's house. Here again she is brought to the sacred fire and the husband most beautifully confers upon her all the rights of her family Just mark :—

ओ३म् सम्राज्ञी श्वशुरे भव। सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु।
(Rig. X 85-46).

"Be co-ruler with thy father-in-law, be co-ruler with thy mother-in-law. Be co-ruler with thy sister-in-law, and co-ruler with thy brothers'-in-law*". The significance of this declaration is very great. The bride was uptill now a member of father's family. Now marriage has brought her in a new home. Here she is quite a stranger. The husband consoles her and says that her marriage with him has made this home her own. She is the mistress of the house. She has the same rights here as his father, mother, brother, or sister. She is verily the queen Those who say that woman's position is low in a Hindu family are wrong.

* I have translated सम्राज्ञी as co-ruler. सम्राज्ञी is feminine of सम्राट्। सम्राट् means shining together (from prefix सम् together, and root राज् to shine). A king is called सम्राट् because he enlighten-all his subjects, not by ruling despotically over them, but by co-ruling and giving them a due share in the self-government.

—+—

Mother India

Still I trust some purpose yet will crown,
These struggles of this ancient land ;
Still I trust this nation's sorrows
Will bloom to beauty in the coming days.

For yet with us are some, made in a mighty mould—
Prophets, Poets, Patriots, Servants of the truth which stays ;
And in the World's enormous emptiness of greed and gain,
The wealth of ancient wisdom yet remains.

Yes India still has Sages left
Who summon to the mount of calm a fever-smitten World.
And 'tis my faith her Dead are not dead ;
They speak from beyond the veil,
And a new civilisation sings in India's Heart,
Arise ! Sons and daughters of an ancient race !
Arise ! and worship Her, Your Mother
Who yet has a morning face !

—*Prof. T. L. Vaswant M.A.*

साहित्य समीक्षा

अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र—

लेखक—श्री प्रियरत्न जी आर्ष, पृष्ठ संख्या ३००, मूल्य २) आकार रॉयल अठपेजी, प्रकाशक—श्रीमती सार्वदेशिक सभा, देहली।

यह पुस्तक आर्य समाज के साहित्य में अपने ढंग की निराली है। श्री आर्ष जी ने समस्त चिकित्साशास्त्र को वेदमूलक सिद्ध करने का सप्रमाण, सफल प्रयत्न किया है। कौन कौन से रोग किस किस कारण से होते हैं और उनको दूर करने के उपाय क्या हैं इसका भी ऊहापोह किया है। साक्षात् वैदिक औषधियाँ कौन सी हैं यह भी सप्रमाण दिखलाया है। वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है यह बात इस "अथर्ववेदीय चिकित्साशास्त्र" को आद्योपान्त पढ़ जाने से स्पष्ट हो जाती है।

सूत्रस्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान, चिकित्सास्थान ये चारों प्रकरण इतने मनोरञ्जक हैं कि जो व्यक्ति भी इस पुस्तक को एक बार प्रारम्भ करेगा, वह जब तक इस पुस्तक को समाप्त न कर लेगा, चैन से नहीं बैठ सकेगा। इस 'चिकित्साशास्त्र' में लगभग ८०० मन्त्रों की व्याख्या सोपपत्तिक होने के अतिरिक्त-सरल, सुन्दर, भावपूर्ण है। वस्तुतः ऐसे ही ग्रन्थों से वैदिक धर्म का महत्व बढ़ सकता है, श्री प्रियरत्न जी आर्ष जी साधु-स्वभाव सरल प्रकृति के पुरुष हैं। उनकी ग्रन्थ लेखन की प्रवृत्ति लोभमूलक नहीं है। आप स्वाध्यायशील पुरुष हैं और निष्कारण धर्म समझ कर ही स्वाध्याय करते रहते हैं। ग्रन्थों को तैयार करके बिना किसी प्रतिफल की इच्छा के उन ग्रन्थों को किसी न किसी संस्था को सौंप देते हैं जो कि उनको प्रकाशित किया करती हैं। इस प्रकार के कार्य में ऐसे स्वाध्यायशील पुरुष को यही सन्तोष रहता है कि उनका ग्रन्थ प्रकाशित होगया और उसके विचार जनता तक पहुँच गये। अपना ग्रन्थ प्रकाशित होकर जब वह जनता के हाथों में पहुँचता है तब ग्रन्थ लेखक को जो प्रसन्नता होती है उसको वही अनुभव करता है। यह पुस्तक वैसे सब के काम की है ही पर मैं यह बात लिखे बिना नहीं रह सकता कि वैद्यक शास्त्र के अध्येताओं को अन्य वैद्यक ग्रन्थों के साथ साथ इस ग्रन्थ का भी अध्ययन करना चाहिये। इससे उनको लौकिक वैद्यक के साथ साथ वैदिक वैद्यक शास्त्र का भी बोध हो जायगा।

अथर्ववेद के विषय में चिरकाल से वैदिक विद्वानों में अनेक विप्रतिपत्तियाँ प्रसरित हैं। इस "चिकित्सा शास्त्र" से कम से कम एक विप्रतिपत्ति को मिटाने का श्रेय थोड़े बहुत अंशों में "आर्ष" जी को भी देना पड़ेगा। क्योंकि हिन्दी में इस प्रकार के अनुवादात्मक, विवेचनात्मक वैदिक साहित्य का निर्माण बहुत कम देखने में आता है। आशा है "आर्ष" जी अपने इधर उधर बिखरे हुए पुरुषार्थ को किसी एक ही विषय में केन्द्रित करेंगे तो भविष्य में भी उत्कृष्ट हिन्दी वैदिक साहित्य द्वारा वे आर्य समाज तथा वैदिक धर्म का अत्यधिक हित साधन कर सकेंगे।

[महाविद्यालय ज्वालापुर] नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ

वाणी निबन्ध मणि-माला (संस्कृत)—

लेखक श्री पण्डित कर्णवीर नागेश्वर राव संस्कृत मनीषी 'हिन्दी भवन'। जान्डू पेट पो० चिराला जिला, गुन्टुर (मद्रास) पृ० ७५।

यह एक संस्कृत की पुस्तक है जिसमें आन्ध्र प्रान्त वासी पं० नागेश्वर राव जी ने संस्कृत भाषा के महत्त्व, खादी प्रचार, समय का सदुपयोग, प० जवाहरलाल नेहरू, बाटू, कवि कार्य, गो मातृ रक्षा आदि विषयों पर अत्यन्त सरल भाषा में लिखे अपने निबन्धों को संगृहीत किया है। उनका यह प्रयत्न प्रशंसनीय है। सस्कृत प्रेमियों के लिये पुस्तक अच्छी उपयोगी है। सस्कृत भाषा को लोक प्रिय बनाने के लिए ऐसी सरल रीति से ही आधुनिक उपयोगी विषयों पर निबन्ध प्रकाशित कराने की आवश्यकता है। लिङ्ग तथा भाषा सम्बन्धी (नगराः पृ० ४, मन्त्रं स्थापनं बभूव पृ० ६, पुष्पाञ्जलयः समर्पयन्ति पृ० ७, सर्वान् सुखान् परित्यज्य पृ० ६) इत्यादि कुछ अशुद्धियां प्रमादवश पुस्तक मे रह गई हैं जिनको आशा है अगले संस्करण मे ठीक कर दिया जायगा और तब यह विद्यालयों मे सस्कृत की पाठ्य पुस्तक बनने योग्य भी हो जायगी। इस प्रशसनीय परिश्रम के लिये हम लेखक महोदय का अभिनन्दन करते हैं।

—धर्मदेव विद्या वाचस्पति

Daily Homa or Agnihotra

By Shri Pt Ganga Prasad ji Upadhaya M A Published by Arya Samaj Chowk Allahabad

Price As. 2 only.

श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् हैं जो आस्तिकवाद, अद्वैत वाद, जीवात्मा आदि हिन्दी और Reason & Religion, I and my God, Worship इत्यादि अत्युत्तम अंग्रेजी पुस्तकों के कारण विशेष प्रख्याति प्राप्त कर चुके हैं। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षित जनता के उपयोगार्थ हवन मन्त्रों का यह अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित कराया है जिसमें प्रार्थना मन्त्र तथा सामान्य प्रकरण और दैनिक हवन के सब मन्त्रों का अंग्रेजी अनुवाद सरल और सुबोध रीति से किया गया है। यह पुस्तक अंग्रेजी शिक्षित जनता के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। इसी प्रकार आशा है मान्य पंडित जी स्वस्तिवाचन, शान्ति प्रकरण तथा सस्कार विधि का भी उत्तम अंग्रेजी अनुवाद शीघ्र प्रकाशित करेंगे।

—धर्मदेव वि० वा०

वेद तत्त्व प्रकाश—

सम्पादक प० सुखदेव जी विद्या वाचस्पति दर्शन भूषण। प्रकाशक—श्री गोविन्दराम हासानन्द जी आर्य साहित्य भवन नई सड़क देहली। पृ० ६२७ मू० २॥) रु०।

यह ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का सरल तथा पूरा भाषा भाष्य है जिसमें स्पष्टी करणार्थ अनेक स्थानों पर टीका टिप्पणिया करदी गई हैं। प्रत्येक वैदिक धर्म प्रेमी के लिये यह ग्रन्थ तथा इसका यह उत्तम सस्करण उपादेय है। भाषानुवाद करते हुए ऋषि दयानन्द कृत मूल सस्कृत ग्रन्थ का पूरा पूरा अनुसरण किया गया है जैसा कि पूर्व के सस्करणों मे अनेक स्थानों पर न था।

—धर्मदेव

परोपकारिणी सभा का नियम संशोधन

(लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी M. A. रिटायर्ड चीफ़ जज्)

[श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के मान्य उपप्रधान पं० गङ्गाप्रसाद जी एम० ए० रिटायर्ड चीफ़ जज् ने श्री परोपकारिणी सभा के नियमों मे संशोधन विषयक एक विस्तृत उत्तम लेख भेजा है। खेद है कि लेख देर में मिलने और स्थानाभाव के कारण उसके निम्न अशों को ही हम इस अंक में प्रकाशित कर सकते हैं—सम्पादक]

श्रीमती परोपकारिणी सभा के नियम संशोधन के सम्बन्ध में मेरा नीचे लिखा प्रस्ताव २ वर्ष से सभा में विचाराधीन है। गत वर्ष २०-१०-४१ को अजमेर में वार्षिक अधिवेशन के समय वाद-विवाद होकर उक्त प्रस्ताव विचार तथा निश्चय के वास्ते आगामी अधिवेशन के लिए स्थगित हुआ था जो आगामी दीपमालिका पर होगा। नियम संशोधन का प्रस्ताव वा ड्राफ्ट तैयार करने के लिए जो उपसमिति बनाई गई थी। उसका संयोजक मैं था और उसके दो अन्य सदस्य श्री दी० ब० हरबिलास शारदा, मंत्री सभा, और श्री प्रो० घीसूलाल जी ऐडवोकेट अजमेर थे। उक्त महोदय मेरे प्रस्ताव से सहमत न थे, परन्तु उन्होंने अपनी ओर से कोई और प्रस्ताव भी पेश नहीं किया। प्रस्ताव के साथ मेरे उस नोट का संक्षिप्त आशय भी नीचे दिया जाता है जो मैंने अपने प्रस्ताव के समर्थन के लिये सभा में पेश किया था। इसके प्रकाशित करने से मेरा अभिप्राय यह है कि आर्य समाजे तथा आर्य नेता उक्त प्रस्ताव पर विचार कर सकें और यदि मेरे प्रस्ताव से सहमत न हों परन्तु श्रीमती सभा के संगठन वा नियमों में परिवर्तन आवश्यक समझते हों तो अन्य संशोधन के प्रस्ताव सभा वा आर्य-जनता के सामने रख सकें। सभा के नियमों के अनुसार सब आर्य समाजों को अधिकार है कि ऐसे विषयों पर अपना मत प्रकट करें और सभा का कर्तव्य है कि उन पर विचार करें। यह दुर्भाग्य की बात है कि बहुत सी आर्य समाजें सभा की ओर से उदासीन रहती हैं और यह उदासीनता बढ़ती जाती है। इसका एक मुख्य कारण मेरी समझ में यही है कि श्रीमती परोपकारिणी सभा के संगठन में आर्य समाजों अथवा

सत्यार्थ प्रकाश—

सम्पादक—श्री गोविन्दराम हासानन्द जी।

ऋषि दयानन्द की इस अमरकृति का श्री गोविन्दराम हासानन्द जी द्वारा सम्पादित यह संस्करण अपनी कई विशेषताएँ रखता है। प्रत्येक पृष्ठ पर प्रतिपाद्य विषय दिया गया है, विषयों और प्रमाणों तथा मुख्य शब्दों की पूरी सूची अन्त में दी गई है तथा अनेक शङ्काओं का भी समाधान कर दिया गया है। इस प्रकार यह संस्करण अत्यन्त उपयोगी बन गया है इसमें सन्देह नहीं। मू० सादी जिल्द १=) कपड़े की जिल्द १।) रु०। —धर्मदेव

उनकी प्रतिनिधि सभाओं का कोई हाथ नहीं है। इसी कमी को दूर करने के उद्देश्य से मैंने नीचे लिखा प्रस्ताव सभा मे उपस्थित किया है।

श्रीमती परोपकारिणी सभा को महर्षि दयानन्द ने अपने स्वत्व तथा कार्य की उत्तराधिकारिणी सभा के रूप से स्थापित किया था। उसके उद्देश्य महान् हैं। यदि उसको आर्यसमाजों का सहयोग प्राप्त हो तो वह सार्वदेशिक तथा प्रान्तिक प्रतिनिधि सभाओं के होते हुए भी बहुत कुछ उपयोगी कार्य कर सकती है। ऐसा सहयोग उसको किस प्रकार प्राप्त हो सकता है यही प्रश्न विचारणीय है आशा है कि इस पर आर्य समाज के नेता अपने विचार सार्वदेशिक अथवा अन्य पत्रों द्वारा प्रकट करने की कृपा करेंगे।

ड्राफ्ट प्रस्ताव

उपनियम३—इस प्रकार परिवर्तित किया जाय। इस परोपकारिणी सभा में २५ सभासद् निम्न प्रकार से होंगे—

(क) दो सार्वदेशिक आ० प्र० नि० सभा के प्रतिनिधि जिनको उक्त सभा प्रति वर्ष निर्वाचित करेगी।

(ख) १५ प्रान्तीय सभाओं के प्रतिनिधि जिनका विवरण इस प्रकार होगा।

युक्त प्रान्त आर्य प्रतिनिधि सभा ३, पंजाब आ० प्र० नि० सभा २, पंजाब आ० प्रादेशिक सभा २, बम्बई आ० प्र० नि० सभा २, बंगाल आ० प्र० नि० सभा १, बिहार आ० प्र० नि० सभा १, मध्यदेश आ० प्र० नि० सभा १, मद्रास आ० प्र० नि० सभा १, भारत के बाहर से आ० प्र० नि० सभा १, राजपूताना आ० प्र० नि० सभा १।

(ग) आठ अन्य जिनको यह सभा स्थान रिक्त होने पर चुना करेगी परन्तु शर्त यह है कि उनमे कम से कम दो अजमेर नगर के और दो राजपूताने के अवश्य होंगे।

नोट

जब तक पंजाब आर्य प्रादेशिक सभा सार्वदेशिक सभा से पृथक् रहेगी वह अपने प्रतिनिधियों के नाम इस सभा में स्वयं भेजेगी शेष सब प्रान्तीय सभाओं के प्रतिनिधियों के नाम इस सभा में सार्वदेशिक सभा के द्वारा ही आवेंगे।

उपनियम २८ के स्थान में निम्नलिखित परिवर्तित नियम रक्खा जाय।

(क) उन सभासदों के अतिरिक्त जो श्री स्वामी जी के स्वीकार पत्र के साथ नियत किये गये थे शेष सब सभासदों की अवधि ७ वर्ष वा ५ वर्ष होगी परन्तु अवधि ७ वा ५ वर्ष समाप्त होने पर वही सभासद् दोबारा चुना जासकेगा।

(ख) सभासदों के स्थान रिक्त होने पर नवीन सभासद् इस प्रकार निर्वाचित वा नियत होंगे कि उपनियम ३ (ख) के अनुसार प्रा० प्र० सभा के प्रतिनिधि जितना शीघ्र हो सके पूरे हो जावें।

सामाजिक विशेष समाचार

दक्षिण भारत में जागृतिः आदर्श क्रान्तिकारी विवाह

कार्कल (दक्षिण कर्णाटक) से एक विश्वसनीय संवाददाता ने निम्नलिखित समाचार 'सार्वदेशिक' में प्रकाशनार्थ भेजा है:—

"कार्कल आर्य समाज की ओर से गत ७-६-४२ रविवार प्रातः ० बजे यहां के आर्य दम्पती श्री अच्युतपई जी और उनकी धर्म पत्नी जी के प्रयत्न से जन्मतः ईसाई पूर्व नाम जॉन डी सोजा) होकर नवम्बर सन् १९२७ में श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति द्वारा कराये शुद्धि संस्कार से सकुटुम्ब आर्य धर्म में आये हुए तीर्थ हल्ली (मैसूर राज्य) के सुप्रसिद्ध आर्य श्री ज्ञानेन्द्र प्रभु जी (भू० पू० उपप्रधान दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा) के सुपुत्र श्री वीरेन्द्र का शुभ विवाहोत्सव यहां के श्रीयुत श्रीनिवास कामथ (जन्मतः ब्राह्मण कुलोत्पन्न) की सुपुत्री सौ० गिरिजादेवी के साथ सार्वदेशिक सभा देहली के प्रचारक श्री मञ्जुनाथ जी के पौरोहित्य में धूम धाम से सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर मैसूर, मंगलौर, उडपी, पुत्तूर इत्यादि विभिन्न स्थानों से आर्य भाई अधिक संख्या में पधारे हुए थे। विवाह समारम्भ यहां की हिन्दू बालिका पाठशाला के भवन में हुआ। शाला भवन नर नारियों से खचाखच भरा हुआ था। हिन्दू समाज के सभी सम्प्रदायों और सभी विचारों के प्रतिष्ठित सज्जनों ने इस में भाग लिया था। उपस्थिति लगभग ७०० थी। संस्कार पूर्ण वैदिक विधि से व्याख्या सहित हुआ। आमन्त्रित नर नारियों का फलाहार से सत्कार किया गया। इस अवसर पर श्री ज्ञानेन्द्र प्रभु जी ने शुद्ध होने के बाद विरोधियों ने उन्हें जो कष्ट दिये उनका वर्णन करके आज जो आर्य (हिन्दू) भाइयों ने अपने सच्चे बन्धु की तरह अपना कर हिन्दू समाज में उनके परिवार को सम्पूर्णतया मिला लिया और इस प्रकार उनकी शुद्धि सफल हुई इस आशय का मार्मिक भाषण दिया। सभी लोग प्रभु जी के भाषण से अत्यन्त प्रभावित हुए। इसके बाद आर्य समाज कार्कल के उत्साही मन्त्री श्री केशव रामचन्द्र जी ने हिन्दू समाज की रक्षा के लिये शुद्धि और संघटन की आवश्यकता, अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह इत्यादि कार्यों पर जोर देते हुए शुद्ध हुए २ भाइयों के साथ रोटी बेटी का सम्बन्ध स्थापित किये बिना शुद्धि निरर्थक है और इसके बिना हिन्दू जाति जीवित भी नहीं रह सकती

इस विषय पर जोरदार भाषण दिया। धन्यवाद के पश्चात् सभा समाप्त हुई । इस सम्बन्ध मे श्री अच्युतपई ज (भू० पू० आर्य समाज कार्कल) के घर एक आय (हिन्दू) अन्तर्जातीय सहभोज भी हुआ। श्री ज्ञानेन्द्र प्रभु जी ने कार्कल आर्य समाज भवन निर्माण के लिये (००) और सार्वदेशिक सभा देहली के लिये १०) दान दिये विवाह समारम्भ सभी दृष्टियों से अत्यन्त सफल और परिणामकारी हुआ। जनता पर इस क्रान्तिकारी विवाह का अच्छा प्रभाव पड़ा। सारे प्रान्त मे इससे क्रान्ति मच गई है।"

इस समाचार पर अधिक टीका की आवश्यकता नहीं। सावदेशिक सभा के प्रचारकों तथा अन्य आर्यों के प्रयत्न से दक्षिण भारत जैसे जाति भेद भूतग्रस्त प्रान्त मे भी कैसी धार्मिक जागृति इस समय उत्पन्न हो रही है इसका यह एक उत्तम उदाहरण है। श्री केशव रामचन्द्र जी के इस विचार से हम सम्पूर्णतया सहमत हैं कि जब तक हम आर्य शुद्ध हुए योग्य व्यक्तियों के साथ रोटी बेटी का सम्बद्ध करने के लिये उद्यत न हों, तब तक शुद्धि का आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। आवश्यकता इस बात की है कि जाति भेद और अस्पृश्यता की जंजीरों से आय नर नारी अपना छुटकारा करा कर आर्योचित उदारता का परिचय दें। जब तक ऐसी उदारता आर्य नर नारियों मे नहीं आ जाती तब तक लाख प्रयत्न करने पर भी शुद्धि तथा सगठन का आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। हम श्री ज्ञानेन्द्र प्रभु जी और उनके परिवार को इस शुभ मङ्गलोत्सव के उपलक्ष्य मे हार्दिक बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि श्री वीरेन्द्र आर्य गृहस्थ जीवन का आदर्श जनता के सन्मुख रख कर यज्ञमय जीवन व्यतीत करेंगे।

आन्ध्र प्रान्त में एक आदर्श अन्तर्जातीय विवाह—

सार्वदेशिक सभा के उत्साही सुयोग्य प्रचारक श्री प० मदनमोहन जी विद्याधर वेदालङ्कार के प्रयत्न से एक आदर्श अन्तर्जातीय विवाह ३१ मई को आन्ध्र प्रान्त के गुन्टुर जिले मे बड़ी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। वर श्री सुब्बाराव जी नामक एक ब्राह्मण सज्जन हैं जो एक पाठशाला म अध्यापक हैं। वधू श्रीमती हनुमायम्मा कन्या पाठशाला मे मुख्याध्यापिका हैं। आप का जन्म एक ऐसे जकुल नामक कुल मे हुआ जिसे पौराणिक लोग नीच समझते हैं। वैदिक सिद्धान्तानुसार आप ब्राह्मणी हैं। इस प्रकार कल्पित जातिबन्धन को तोड़कर जो यह विवाह सस्कार श्री प० मदनमोहन जी विद्याधर वेदालङ्कार के पौरोहित्य मे सम्पन्न हुआ इसको हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। मङ्गलमय भगवान् की कृपा से यह जोड़ी फले फूले और जनता के सामने आय जीवन का आदर्श रक्खे यही हमारी हार्दिक कामना है। यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि इस विवाह का जनता पर अत्युत्तम प्रभाव पड़ा।

आर्यवीर दल शिक्षण केन्द्र

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरंग सभा का ५-७-४२ का महत्वपूर्ण निश्चय।

१. यह शिक्षण केन्द्र देहली से १२ मील दूर बदरपुर गांव के समीप तुग़लकाबाद स्टेशन पर गुरुकुल की धर्मशाला में खोला जाय।

२. उसमें निम्नलिखित शिक्षा दी जाय:—

(क) शारीरिक व्यायाम (ख) संघ व्यायाम (ग) हवाई आक्रमणों से संरक्षण की शिक्षा (घ) प्रारम्भिक चिकित्सा (च) चरित्र-निर्माण।

३. प्रारम्भ में सब प्रांतों से ५, ५ विद्यार्थी बुलाए जांय जिनका १ मास तक शिक्षण हो। ये विद्यार्थी अपने प्रान्त की प्रतिनिधि सभा की सिफ़ारिश पर लिये जांय। १ मास के पश्चात् उसी प्रकार के दूसरे शिक्षार्थियों को शिक्षा दी जाय।

४. प्रत्येक विद्यार्थी को १५) मासिक के हिसाब से अपना भोजनादि व्यय देना होगा। शिक्षा का सब काम सार्वदेशिक सभा की ओर से होगा।

५. शिक्षण केन्द्र में एक प्रधान शिक्षक और एक सहायक शिक्षक रखे जावें। इनकी दक्षिणा तथा अन्य आवश्यक सामग्री के लिए रक्षा निधि से इस समय १५०) मासिक तक का खर्च स्वीकार किया जाय।

६. केन्द्र का उद्‌घाटन २६ जुलाई १६४२ को कर दिया जाय।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की युद्ध विषयक रक्षा कार्यार्थ दान सूची

१००) श्री राधाकृष्ण ओ३म् प्रकाश जी गुड़ बाज़ार अमृतसर।

२) श्री शिवनन्द शर्मा लेडी विलिंगडन हस्पताल जयपुर।

१०) रा० ब० डा० हरिप्रसाद जी भेरा होशियार पुर।

१५) आ० स० पुसद।

५) श्री धर्मपाल जी जार पाली।

१३२)

२००) गुप्त दान

३३२) कुल योग

इन दानी महोदयों को धन्यवाद देते हुए हम आशा करते हैं कि अन्य सब आर्य सज्जन तथा समाजें भी इनका अनुकरण करके उदार सहायता शीघ्र भेजेंगे।

शोक समाचार—

यह जानकर अत्यन्त दुःख हुआ कि गत १ जून को आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद राज्य के प्रधान और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के उपप्रधान दक्षिण-केसरी श्री पं० विनायक रावजी विद्यालंकार बार-ऐट्-लॉ की धर्मपरायण पूज्य माता श्री गीताबाई जी का मंथनी में देहान्त हो गया। हम श्रीयुत मान्य पण्डित जी और उनके परिवार के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं तथा भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि वे उन्हें इस कठिन दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करें।

सेठ बैजनाथ जी—

श्री सेठ बैजनाथ जी भरथिया भिवानी निवासी देहली प्रवासी की मृत्यु का समाचार देते हुए हमें दुःख हो रहा है। श्री सेठ जी आर्य समाज के अनन्य भक्त थे और आर्य समाज के लिए उनका तन, मन, धन सभी कुछ अर्पण था। इस समय हम अधिक न लिखकर परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें तथा उनके दुःखी परिवार को इस दुःख के सहन करने में समर्थ बनाएँ।

श्री पं॰ रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) संस्कृत सत्यार्थप्रकाश अ० ।) स० ।-)
(२) प्राणायाम विधि)॥
(३) वैदिक सिद्धान्त अजिल्द ।॥)
सजिल्द १)
(४) विदेशों में आर्य समाज ॥)
(५) यमपितृ परिचय २)
(६) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर १।)
(७) आर्य सिद्धान्त विमर्श १॥)
(८) मत्रम भास्कर ॥)
(९) वेद में असित शब्द -)॥
(१०) वैदिक सूर्य विज्ञान =)
(११) विरजानन्द विजय =)
(१२) हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद (उर्दू में) =)
(१३) इबहारे हक़ीक़त (उर्दू में) ॥=)
(१४) सत्य निर्णय (हिन्दी में) १।)
(१५) धर्म और उसकी आवश्यकता ।-)
(१६) आर्यपर्वपद्धति सजिल्द १)
(१७) कथा माला ।=)
(१८) आर्य जीवन और गृहस्थ धर्म ।=)
(१९) आर्यावर्त की बाबी -)
(२०) समस्त आर्य समाजों की सूची ॥)
(२१) सार्वदेशिक सभा का इतिहास अ० २)
सजिल्द २॥)
(२२) बलिदान ॥)
(२३) आर्य डायरेक्टरी अ० १।) स० १॥)
(२४) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र २)
(२५) सत्यार्थ निर्णय १॥)
(२६) कायाकल्प सजिल्द ५।)
(२७) पञ्चयज्ञ प्रकाश ।॥)
(२८) आर्य समाज का इतिहास ।॥)
(२९) बहिनों की बातें ॥)
(३०) Agnihotra
Well Bound २॥)
(३१) Crucifixion by an eye
witness ।-)
(३२) Truth and Vedas ।=)
(३३) Truth-bedrock of Aryan
Culture ॥)
(३४) Vedic Teaching १।)
(३५) Voice of Arya Varta =)
(३६) Christianity ॥)
(३७) The Scopes and Mission of
Arya Samaj Bound १)
Unbound ॥)

अर्थात् आर्य जगत् का समस्त संस्थाओं सभाओं और समाजों का सन् १९४१ ई० की विश्व व्यापी विविध प्रगतियों का वर्णन आर्य समाज के नियम, आर्य विवाह कानून, आर्य वीर दल आदि अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातों का संग्रह। आज ही आर्डर भेजिये।

मूल्य अजिल्द १।) पोस्टेज ।)
मूल्य सजिल्द १॥) पोस्टेज ।=)
मिलने का पता—
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

इस पुस्तक में आर्यसमाज के विद्वान् श्री प० प्रियरत्न जी आर्ष ने अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा सूत्र स्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान और चिकित्सा स्थान का प्रतिपादन किया है। चिकित्सा स्थान में आश्वासन चिकित्सा, उपचार चिकित्सा सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, होम चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, सर्पादि विष चिकित्सा, कृमि चिकित्सा, रोग चिकित्सा और पशु चिकित्सा दी है। इन प्रकरणों में वेद के अनेक महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। पुस्तक २०×२६ अठ पेजी पृष्ठ संख्या ३१२ मूल्य केवल २) मात्र है। पोस्टेज व्यय ।) प्रति।

अगस्त
१९५२ ई०
श्रावण
१९९९ सं०

सम्पादक मण्डल — प्रा० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति
पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति
श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक

वार्षिक मूल्य
स्वदेश)
विदेश ५ शि०
एक प्र

विषय--सूची

सार्वदेशिक पत्र का नमूना मँगाने के लिये ।) का टिकट भेजना जरूरी है।

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वष १७ } श्रावण १९९९ अगस्त, १९४२ ई०] [दयानन्दाब्द ११८ } अङ्क ६

ओ३म् सोम गीर्भिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः ।
सुमृडीको न आविश ॥

भावानुवाद—

प्रभु ! मेरी वाणी मे ऐसा, तू अनुपम बल भर दे।
मेरा कीर्तन सकल विश्व को, तेरा भक्त प्रवर कर दे।
तेरी स्तुतियों से मुखरित कर, दें हम नभका वक्ष स्थल।
तेरी महिमा गा गाकर हम, मूक विश्व करदें चञ्चल।

मेरे गानोंमे, गीतों मे, तानों मे ध्वनि बन आओ।
मेरे प्राणों मे, आत्मा मे, बन नि श्वास समा जाओ।
मेरे रोम रोम से प्रति पल, ऐसी मृदु झंकार उठे।
सारा जग प्रेमाकुल होकर, तेरा नाम पुकार उठे।

—सत्यकाम विद्यालङ्कार

वेदामृत—

निर्भयता और वीरता

(ले०—पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति)

१—ओ३म् सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते । त्वामभि प्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ ऋ० १।११।२

२—ओ३म् अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरोयः । अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ॥
ऋ० १९।१५।६

३—ओ३म् इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृडीको भवतु विश्ववेदाः । बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥
ऋ० ६।४७।१२

४—यथा सूर्यश्च चन्द्रश्च न बिभीतो न रिष्यतः । एवा मे प्राण मा बिभेः ॥
अथर्व २।१५।३

शब्दार्थ १—(शवसः पते इन्द्र) हे बल के स्वामी परमेश्वर ! (ते सख्ये) तेरी मित्रता में (वाजिनः) ज्ञान और बल से सम्पन्न होकर हम (मा भेम) कभी भयभीत न हों (जेतारम्) सबको जीतने वाले (अपराजितम्) कभी किसी से न हारने वाले सर्वशक्तिमान् (त्वाम् अभिप्रणोनुमः) आपको ही हम चारों ओर से प्रणाम करते हैं।

२—(मित्रात् अभयम्) मित्रों से हमें निर्भयता हो (अमित्रात् अभयम्) विरोधियों से हमें निर्भयता हो (ज्ञातात् अभयम्) परिचितों से हमें निर्भयता हो (यः पुरः अभयम्) जो हमारे सामने हो उससे भी हमें भय न हो। (नक्तम् अभयम्) रात में हमें निर्भयता हो (नः दिवा अभयम्) दिन में भी हमें निर्भयता हो (सर्वाः आशाः) सब दिशाएँ वा उन में रहने वाले प्राणी (मम मित्रं भवन्तु) मेरे मित्र बन जाएँ।

३—(सुत्रामा) उत्तम रक्षक (स्ववान्) आत्म शक्ति से युक्त (विश्ववेदाः) सर्वज्ञ (इन्द्रः) परमेश्वर (अवोभिः) अपनी रक्षक शक्तियों से (नः) हमारे लिये (सुमृडीकः भवतु) उत्तम सुख देने वाला हो। वह (द्वेषः बाधताम्) द्वेष भाव का नाश करे (अभयं कृणोतु) हमारे अन्दर निर्भयता को उत्पन्न करे। हम (सुवीर्यस्य पतयः स्याम) उत्तम वीरता के रक्षक वा स्वामी बनें।

४—(यथा) जिस प्रकार (सूर्यः च चन्द्रः च) सूर्य और चन्द्र (न बिभीतः) नहीं डरते और (न रिष्यतः) न क्षीण होते हैं (एव) इसी प्रकार (मे प्राण) हे मेरे प्राण ! (मा बिभेः) तु मत डर।

वेद के इन मन्त्रों में निर्भयता विषयक अत्युत्तम उपदेश और सङ्कल्पों का प्रतिपादन है। निर्भयता के बिना कभी धर्म का आचरण नहीं

किया जा सकता। इसीलिये योगिराज श्रीकृष्ण ने गीता के १६ वें अध्याय में दैवी सम्पत्ति का वर्णन करते हुए 'अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोग व्यवस्थितिः' इत्यादि श्लोकों द्वारा प्रथम स्थान निर्भयता को दिया है। धर्म शास्त्रकार मनु महाराज ने भी धर्म के दस लक्षणों में सबसे प्रथम धृति या धैर्य को गिनाया है जिसके अन्दर निर्भयता का समावेश हो जाता है। निर्भयता के साधनों का भी इन तथा अन्य वेद मंत्रों में बहुत अच्छी तरह से निर्देश किया गया है। इन में से प्रथम 'सख्ये त इन्द्र' इस मन्त्र में बताया गया है कि सर्व शक्तिमान् परमेश्वर को अपना मित्र जान लेने पर भक्त निर्भय हो जाता है। ईश्वर भक्ति सारे भय को दूर भगा देती है। सर्वशक्ति सम्पन्न भगवान् को जो अपना मित्र और सहायक मान लेता है उसके लिये भय नाम की कोई वस्तु ही संसार में नहीं रह जाती। वह निर्भयता की मूर्ति बन जाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती, पं० लेख राम जी, धर्म वीर श्रद्धानन्द जी महात्मा गांधी इत्यादि महानुभावों ने सच्ची ईश्वर भक्ति और विश्वास के द्वारा ही निर्भयता प्राप्त की। 'अभयं मित्रादभयममित्रात्' इस मन्त्र में मित्र, शत्रु, परिचित, अपरिचित सब प्राणियों से तथा दिन रात हर समय निर्भयता की प्रार्थना है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बहुत बार यह देखा जाता है कि लोग किसी बुरे रीति रिवाज की जैसे बाल विवाह, जाति भेद, अस्पृश्यता (अछूतपन) आदि की हानियों को जानते हुए भी केवल मित्रों और बन्धु बान्धवों के डर से उसे करने में संकोच नहीं करते, अनेक बार समाज सुधार के प्रेमी होते हुए भी लोग केवल मित्रों की नाराजगी के भय से ऐसे सुधार का काम करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। अतः विरोधियों के समान ही मित्रों और बन्धु बान्धवों तथा परिचितों और सामने विद्यमान पुरुषों से भी धर्म कार्य में निर्भय होना अत्यावश्यक है। सूर्य और चन्द्र आदि से भी मनुष्य को शिक्षा लेते हुए उनके समान परोपकारी, शक्तिशाली तथा निर्भय बनने का सदा दृढ़ सङ्कल्प मन में रखना चाहिये। निर्भयता के साथ २ अपने अन्दर सब प्रकार की वीरता लानी चाहिये इस बात का उपदेश 'सुवीर्यस्य पतयः स्याम' इन स्फूर्ति दायक शब्दों द्वारा दिया गया है। ईश्वर विश्वास के साथ २ आत्म विश्वास रखना चाहिये तभी आत्मा की अन्तर्गत अद्भुत शक्तियों का पूर्ण विकास हो सकता है।

आत्मा अजर अमर और अविनाशी है इस तत्त्व को समझ कर आचरण करने से भी मनुष्य निर्भय बन जाता है। उसे मृत्यु का भी भय नहीं रहता जिसने अपने आत्मा की अमरता के उत्तम तत्त्व को पूर्ण रूप से जान लिया हो। वेद भगवान् 'अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः। तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्।' (अथर्ववेद) इन शब्दों के द्वारा परमात्मा और आत्मा की अमरता को जानने वाला मृत्यु से भी भयभीत नहीं होता इस बात का स्पष्ट उपदेश करते हैं। योगिराज श्री कृष्ण ने आत्मा की अमरता के इस तत्त्व का 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनंदहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।" गीता। इत्यादि श्लोकों द्वारा बड़ी

उत्तमता से प्रतिपादन किया है जिनमें कहा है कि कोई शस्त्र इस आत्मा को काट नहीं सकता, कोई आग इसे जला नहीं सकती, कोई जल इसे गीला नहीं कर सकता और कोई हवा इसे सुखा नहीं सकती। जिसने अपने आत्मा के इस यथार्थ स्वरूप को समझ लिया, भय कभी उसके पास फटक नहीं सकता। यह बात सुकरात (जिसने विष के प्याले को पीने के पश्चात् भी इसी आत्मा की अमरता के तत्त्व का शिष्यों को अन्तिम उपदेश दिया) वीर हकीक़त राय धर्मी, गुरु-गोविन्दसिंह के वीर पुत्र, महर्षि दयानन्द सरस्वती, धर्म वीर स्वा० श्रद्धानन्द जी, पं० लेखराम जी तथा अन्य धर्म वीरों के चरित्रों से जिन्होंने हँसते २ धर्म की वेदी पर अपने प्राणों की आहुति दे दी स्पष्टतया ज्ञात होती है। ऐसे महात्माओं के चरण चिह्नों पर चलते हुए सच्ची ईश्वर भक्ति, आत्मज्ञान और आत्म विश्वास द्वारा प्रत्येक आर्य नर नारी को अपने अन्दर निर्भयता और वीरता को धारण करके पीड़ित जनता की रक्षा और सेवा में अपने को समर्पित करना चाहिये।

सुमन-संचय

कंकण

राजपुत्र जयसिंह का विवाह हुए ६ दिन हुए थे। विवाह का कंकण अभी उनके हाथ में बँधा हुआ था। पति और पत्नी एक नूतन जगत् की सुखद-कल्पनाओं में विभोर थे कि इतने में ही जयसिंह को विक्रम शाह का आदेश मिला कि तत्काल युद्धि-भूमि में जाओ। इस आदेश से जयसिंह की आशा लताओं और उमंगों पर मानो तुषारपात हो गया। वे आज्ञा-पत्र को लेकर अपनी पत्नी के पास गए और उससे विदा मांगने लगे।

आज्ञा-पत्र को पढ़ कर उनकी पत्नी देवकी व्याकुल हो गई और पतिदेव जयसिंह से लिपट कर रोने लगी परन्तु अचानक ही उसके हृदय से मोह का पर्दा हटा और उसका भाव बदल गया। उसने पतिदेव के आदेश को प्रेम पूर्वक सुना इससे उनके हृदय की चिन्ता दूर हो गई। जब विदा होने का समय आया तो दोनों बहुत अधीर और दुःखी हुए परन्तु इस बार भी उन्होंने मोह के संकेत की उपेक्षा कर दी।

पतिदेव को छोड़ कर देवकी अपने महल में गई और वहाँ से एक सुन्दर रण-कंकण लाकर अपने पति के हाथ में बांध दिया। कंकण को बांधते समय रोते हुए बड़े २ मोती उसकी आँखों से टपक ही पड़े।

दोनों कंकणों को हाथ में बांधे हुए जयसिंह उत्साह पूर्वक रण-क्षेत्र में जा रहे हैं। मार्ग में अवश्य उन्हें अपनी धर्म पत्नी की याद आई परन्तु रण-क्षेत्र में तो वे उसे सर्वथा ही भूल गए। युद्ध भूमि में उनका ध्यान किसी और वस्तु की ओर था। वहां तो उनका हृदय देशाभिमान से परिपूर्ण था। वे सोचते थे कि हमारे प्राणों पर एकमात्र देश का अधिकार है। देश को खोकर जीना मरने के समान है। इस प्रकार देश प्रेम में सावित होकर जयसिंह उत्साह से युद्ध करने लगे।

आकाश, जल थल सर्वत्र ही युद्धमय हुआ था। रात दिन अग्नि वर्षा होती थी और पृथ्वी नर मुंडों से छाई हुई थी। युद्ध के फल से कदाचित् ही कोई बचा हो।

एक दिन जयसिंह घमासान युद्ध में व्यस्त थे और अपनी टुकड़ी के सहित रण-केन्द्र पर धावा बोल रहे थे कि उन्हें घायलों के बीच में खून से लथपथ एक परिचारिका पड़ी हुई देख पड़ी। जयसिंह ने उसे ध्यान पूर्वक देख कर उसकी छाती पर अपना हाथ रखा और अधीर होकर उसको जगाने लगे। परन्तु वह तो मर चुकी थी उसको जगाने से क्या लाभ था? वह घायलों की सेवा में निरत थी। शत्रु की गोलियां उसको कर्तव्य से च्युत नहीं कर सकी थीं। इस दृश्य को देखकर जयसिंह को इतना शोक हुआ कि वे जहाँ के तहाँ बैठे रह गए। दुःख के साथ २ उन्हें यह चिंता हुई कि उनकी प्रियतमा वहां कैसे और क्योंकर पहुंची।

इसी समय वहां प्रधान सेना पति आ गए और उसकी नारी की शुभ-गति देखकर उन्हें

सत्य सनातन आर्य धर्म के मुख्य तत्व-वैदिक यज्ञ

(ले —प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति उपमन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली)

'सार्वदेशिक' के गत अङ्क मे मैने वैदिक धर्म के कुछ तत्त्वों पर थोड़ा प्रकाश डाला था। इस लेख मे कुछ अन्य मुख्य तत्त्वों पर सत्क्षेप से प्रकाश डालने का यत्न करूँगा। सत्य सनातन आर्य धर्म का चतुर्थ मुख्य तत्त्व यज्ञ है। यज्ञ का महत्त्व प्रकट करते हुए वेदों मे कहा गया है कि 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्या सन्. ते ह नाक महिमान सचन्त यत्र पूर्वे साध्या सन्ति देवा ॥ ऋग्वेद १०।६० यजु० ३१।१६ अर्थात् सत्यनिष्ठ ज्ञानी लोग यज्ञ के द्वारा पूजनीय परमेश्वर की (यज्ञो वै विष्णु–शतपथ) पूजा करते हैं। उस यज्ञ शब्द के द्वारा सूचित धर्म अत्यन्त उत्तम हैं। यज्ञ करने वाले ज्ञानी मोक्ष को प्राप्त करते हैं। यज्ञ शब्द यज् धातु से बनता है जिसके अर्थ धातु पाठ मे देव पूजा, सङ्गति-करण, दान बताये गये है। देव अर्थात् परमेश्वर और सत्यनिष्ठ विद्वानों की पूजा जनता का सगठन करके शुभ कार्य करना और दीन अनाथ तथा दुःखितों की सहायता करना ये तीनों मुख्य भाव यज्ञ के अन्दर आते हैं जिनमे हमारे अपने

भी कुछ व्यथा हुई। उन्होंने देवकी के युद्ध क्षेत्र मे आने की कथा सुनाते हुए कहा कि आपके दल के लिए मुझे कुछ परिचारिकाओं की आवश्यकता थी। इसकी मैने सूचना प्रचारित की और सर्व प्रथम प्रार्थना पत्र भेजने वाली यह वीर नारी थी। इस रीति से देवकी परिचारिकाओं मे प्रविष्ट हुई थी और अन्त तक इन्होंने अपना कार्य बडी उत्तमता से किया है। मुझे दुःख है कि शत्रु ने इन्हें अन्याय पूर्वक मारा है परन्तु निश्चय है कि वह अपनी इस दुष्टता का शीघ्र ही फल पायगा।

देवकी के बलिदान की कहानी से जयसिह का क्रोध उमड गया और देवकी के शव को सेना पति को सौंपकर उन्होंने प्रण किया कि शत्रु के नगर को भस्म कर चुकने पर ही इस शव का दाह किया जायगा और यदि मै शत्रु के हाथ से मारा जाऊँ तो मुझे भी प्रियतमा के साथ भस्म किया जाय।

दूसरे दिन जयसिह ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया परन्तु आकाश यान मे शत्रु के गोले से आग लगी और वह केन्द्र से कुछ हट कर पृथ्वी पर गिरा। इसमे से सैनिकों ने देश-दीपक जयसिह को खींचा परन्तु वह दीपक पहले ही बुझ चुका था।

दोनों वीरों की लाशे एक स्थान पर रखकर जलाई गईं। यहा वे एक कङ्कण से बधे थे और दूसरे से दोनों वहा जाकर बध गए।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

से बड़े—अपने समान और अपने से हीन तीनों प्रकार के कर्तव्यों का समावेश हो जाता है। वैदिक परिभाषा में आत्मोद्धार तथा परोपकारार्थ किये गये प्रत्येक शुभ कर्म को यज्ञ के नाम से पुकारा गया है। इसीलिये उसके द्रव्य यज्ञ, तपोयज्ञ, ज्ञान यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, योग यज्ञ आदि अनेक भेद बताये गये हैं जैसे कि भगवद्गीता के "द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञाः, योग यज्ञास्तथा परे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च, यतयः संशितव्रताः ॥" (गीता ४।२८) इत्यादि श्लोकों में वर्णन है। ये द्रव्ययज्ञ जो अग्नि में घी, चन्दन कर्पूर, गिलोय जावित्री, जायफल आदि सुगन्धित और पुष्टिकारक पदार्थों की आहुति देकर किये जाते हैं आध्यात्मिक लाभ के अतिरिक्त शारीरिक आरोग्य प्राप्त कराते हैं क्योंकि इनके द्वारा वायु शुद्धि होती है इस बात को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रयाग विश्वविद्यालय में विज्ञान विषय के व्याख्याता डा० सत्यप्रकाश जी D Sc. ने "Agnihotra an ancient process of fumigation" नामक अंग्रेजी पुस्तक में (जो सार्वदेशिक सभा ने छपवाई है) स्वर्गीय डा० बालकृष्ण जी M. A. Ph D. ने 'अग्निहोत्र व्याख्या' में तथा अन्य विद्वानों ने विस्तार से अनेक परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया है। डा० फुन्दनलाल जी M D. D. S. L., M. R. A S. ने 'हवन यज्ञ और राजयक्ष्मा' विषयक अनेक लेखों में अपने अनुभव से यज्ञ चिकित्सा की क्षय रोग जैसे भयंकर रोगों में भी सफलता को सूचित किया है जिसके विस्तार में मैं इस समय नहीं जा सकता। किन्तु इतना स्पष्ट करना अत्यावश्यक है कि ये सब यज्ञ अहिंसात्मक होने चाहियें इस बात को वेदों के हजारों मन्त्र यज्ञ के लिये बार२ 'अध्वर' शब्द का प्रयोग करते हुए जिसकी व्याख्या में श्री यास्काचार्य ने निरुक्त में कहा है कि 'अध्वर इति यज्ञ नाम ध्वरतिर्हिंसा कर्मातत्प्रतिषेधः।' (निरुक्त) स्पष्ट करते हैं। उदाहरणार्थ ऋग्वेद १।१।४ में बताया है "अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि। स इद् देवेषु गच्छति।" जिसका भावार्थ यह है कि अहिंसात्मक यज्ञ को ही भगवान् और विद्वान् स्वीकार करते हैं।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे ॥ ऋ० १।१।८ त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि। सेमं नो अध्वरं यज्ञ ॥ ऋ० १।१४।११ प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्रहूयसे। मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ऋ० १।१९।१ "स सुक्रतुः पुरोहितो दमे दमेऽग्निर्यज्ञस्याध्वरस्य चेतति। क्रत्वा यज्ञस्य चेतति ॥ १।१२८।४

इत्यादि हजारों मन्त्रों को इस विषय में उद्धृत किया जा सकता है किन्तु विस्तार भय से ऐसा करना उचित नहीं प्रतीत होता। "दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्तां मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ॥" (यजु० ३६।१८) पशून् पाहि (यजु० १।१) "पशूंस्त्रायेथाम् ।" (यजु० ६।११) द्विपादव चतुष्पात् पाहि (यजु० १४।८) इत्यादि सैकड़ों मन्त्र भी पशु रक्षा और अहिंसा का उपदेश करते हैं। 'न कि देवा इनीमसि न

क्यायोपयामसि। मन्त्रश्रुत्यं चरामसि।' (सामवेद छन्द आर्चिक अ० २ ख ७ म २) जिसकी व्याख्या में श्रीसायणाचार्य "हे देवाः युष्मद्विषये (न कि इनीमसि) न किमपि हिंस्मः मन्त्रेषु स्मार्यं विधि वाक्यप्रतिपाद्यं यद् युष्मद् विषये कर्म तत् आचरामः।" तथा सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री सत्यव्रत सामाश्रमी विवरण में "न इनीमसि-प्राणिवधं कर्म पश्वादियागं न कुर्मः' इत्यादि किया है इस विषयक वैदिक सिद्धान्त को अत्यन्त स्पष्ट करते हैं कि यज्ञों में पशुहिंसा वेद सम्मत नहीं किन्तु वेदों की शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध है।

अश्वमेध, गोमेध, अजमेध, पुरुषमेध आदि शब्दों के 'वीर्यं वा अश्वः' 'राष्ट्रं वा अश्वमेधः।' (शत० १३।१।६।३) बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यम्, इति वै वैदिकी श्रुतिः। अजसंज्ञानि बीजानि, छागान् नो हन्तुमर्हथ।" (महाभारत शान्तिपर्व अ० ३३७) मेधृ-मेधासंगमनयोः गौः—भूमिनामसु वाङ् नामसु च निघण्टु १।११ इत्यादि प्रमाणों से वास्तविक अर्थ जाने जा सकते हैं जिनको न समझने के कारण अज्ञानी और धूर्त लोगों ने यज्ञों में पशु हिंसा प्रारम्भ की जैसे कि महाभारत में।

"सुरा मत्स्याः पशोर्मांसम्,
आसवं कृशरौदनम्।
धूर्तैः प्रवर्तितं यज्ञे (ह्येतत्)
नैतद् वेदेषु विद्यते॥"
(शा० प० २६५ ६)

"अव्यवस्थितमर्यादैः,
विमूढैर्नास्तिकैर्नरैः।
संशयात्मभिरव्यक्तैः,
हिंसा समनुवर्णिता॥"२६५।४
लुब्धैर्वित्तपरैर्ब्रह्मन्,
नास्तिकैः संप्रवर्तितम्।
वेदवादानविज्ञाय,
सत्याभासमिवानृतम्॥ २६५।५
सतां वर्त्मानुवर्तन्ते,
यजन्ते त्वविहिंसया॥
शा० प० २६३। ६

इत्यादि श्लोकों द्वारा स्पष्ट बताया गया है कि वेदों में पशु हिंसा का यज्ञादि में कहीं प्रतिपादन नहीं। नास्तिक धूर्त लोभी लोगों ने वेदों के अर्थों को न जानकर (वेदवादानविज्ञाय) लालच और मोह से (मानान्मोहाच्च लोभाच्च, लौल्यमेतत्प्रकल्पितम्। शा० प० २६५। १०) इस घृणित कार्य को शुरू किया। 'आलभते' का अर्थ 'स्पृशति' (स्पर्श करता है) होता है यह बात 'अथास्य दक्षिणांसम् अधिहृदयम् आलभते।' (पारस्कर गृह्यसूत्र उपनयन प्रकरण) अर्थात् गुरु शिष्य के दक्षिण कन्धे और हृदय देश को स्पर्श करता है वरो वध्वा दक्षिणांसम् अधिहृदयम् आलभते' (पारस्कर गृह्यसूत्र विवाह प्रकरण) अर्थात् वर वधू के दक्षिण स्कन्ध और हृदयदेश को छूता है इत्यादि से स्पष्ट है। 'आलभते' का मारना अर्थ मानने पर गुरु द्वारा शिष्य और वर द्वारा वधू की हत्या का अनर्थ उपस्थित हो जाय। इसलिये यज्ञ प्रकरण में 'आलभते' शब्द

को देखकर पशुहिंसा की कल्पना करना भी सर्वथा अनुचित है।

इसी अहिंसात्मक यज्ञ की सचाई को श्री भीष्माचार्य ने निम्न लिखित प्रबल शब्दों में स्पष्ट उद्घोषित किया

ध्रुवं प्राणिवधो यज्ञे,
नास्तियज्ञस्त्वहिंसकः।
ततोऽहिंसात्मकः कार्यः,
सदा यज्ञो युधिष्ठिर॥
यूपं छित्त्वा पशून् हत्वा,
कृत्वा रुधिर कर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गं,
नरकं केन गम्यते॥'

अर्थात् निश्चयपूर्वक हम कहते हैं कि यज्ञों में पशुबलि का विधान नहीं। यज्ञ अहिंसात्मक ही होते हैं और ऐसे ही किये जाने चाहियें। ग़रीब पशुओं के रुधिर की धारा बहाकर यदि स्वर्ग जा सकते हैं तो नरक जाने का मार्ग कौन सा है?

पशुबलि के खण्डन में इनसे अधिक प्रबल शब्द और क्या हो सकते हैं जिनसे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि यज्ञों में पशुहिंसा से स्वर्ग की नहीं अपितु नरक (दुःख) की प्राप्ति निश्चित है।

इस प्रकार की पशुहिंसा अज्ञान और लोभ वश महाभारत से कुछ समय पूव भी प्रचलित हो चुकी थी ऐसे स्पष्ट प्रतीत होता है। फ़ारस में पारसी मत के प्रवर्तक महात्मा ज़रदुश्त ने भी इसके विरुद्ध आवाज़ उठाई जैसे कि 'वैदिक धर्म और पारसी मत' पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए दिखाया जायगा। भारत में श्री गौतम बुद्ध ने इसके विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया किन्तु जैसे कि आगे सप्रमाण बताया जायगा वे यज्ञ मात्र के विरोधी न थे तथा ब्राह्मण धम्मिक सुत्त आदि में उन्होंने इस बात को भी स्पष्ट किया कि प्राचीन ब्राह्मण यज्ञों में पशुहिंसा न करते थे। मध्यकाल में लोभी ब्राह्मणों ने इस विषयक कल्पित वचन घड़कर राजाओं से पशु हिंसात्मक यज्ञ कराये जिसका परिणाम बहुत बुरा हुआ। जैन मत के आचार्यों ने भी इस पशु हिंसा को वैदिक धर्म के नाम से प्रचलित देखकर उसका विरोध किया। वस्तुतः यह दोष उन लोगों का था जो वेदों के यथार्थ तात्पर्य को न समझ कर ऐसा निन्दित कार्य करते थे न कि स्वयं वैदिक धर्म का, यह बात ऊपर के लेख से विचारशील निष्पक्षपात पाठकों को स्पष्ट ज्ञात हो जायगी। वैदिक यज्ञ की भावना स्वार्थ त्याग और सेवा की भावना है जो अत्यन्त उत्तम है। (शेष फिर)

अध्यात्म सुधा

मेरा भगवान्

(कवयित्री—श्रीमती विद्यावती देवी धर्मपत्नी पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति)

(१)

मेरा तो बस भगवान् मुझे,
हर समय खिलाता रहता है।
मेरे जीवन की उलझन को,
वह ही सुलझाता रहता है॥

(२)

मम लोहे रूपी मानस में,
वह बैठ रहा पारस बन कर।
कर कर के हर्ष से स्पर्श उसे,
वह स्वर्ण बनाता रहता है॥

(३)

भोली बाला की भूलों को,
वह सरल विमल है भूल रहा।
निज आश्वासन झूलन में,
वह नित्य झुलाता रहता है॥

(४)

जिसके भूलन में मरन मिले,
जिस सुमिरन से जीवन सुधरे।
ऐसे प्रिय नाम की नींव सदा,
इस जीव में डालता रहता है॥

(५)

जो श्रद्धारूपी फूलों की,
माला से मालिक को सिमरे।
उसके होकर अनुकूल सदा,
हर समय हँसाता रहता है॥

सन्ध्या का दिव्यानन्द

मैं क्या बतलाऊँ कैसा दिव्या-नन्द, ध्यान में आता है।
जो क्लेश, शोक, अज्ञान, मोह को, भय को दूर भगाता है॥
वह परम सूर्य जब मेरे सन्मुख, उदित तीव्र हो जाता है।
नहिं उसके आगे अन्धकार का, नाम कहीं रह जाता है॥१॥

मैं दिव्य भानु के परम तेज से, तेजस्वी बन जाता हूँ।
हो मस्त भक्ति से परमपिता के, अनुपम गुण-गण गाता हूँ॥
उस अन्त रहित गुण सागर को स्मर, निज सीमा खो जाता हूँ।
नहिं पार कहीं पाता महिमा का, फिर भी गाता जाता हूँ॥२॥

तब उसकी मुझ को सब जग में, लीला दिखलाई देती है।
अति घोर विपत भी तब मुझ को, इक खेल दिखाई देती है॥
जब गोद मिली आनन्द मयी, माँ की तो क्या मुझ को है डर?
मैं निर्भय चिन्ता रहित हुआ, विचरण करता जगती तल पर॥३॥

वह प्रेम मयी मां साथ रहे, सब ओर सदा रक्षण करती।
माता मेरी चिन्ता करती, वह नित मेरा पोषण करती॥
जब बैठूँ उसकी गोदी में, वह अमृत मुझे पिलाती है।
मेरी निर्बलता को, भय को, अपने बल से विनसाती है॥४॥

मुझ निर्धन पर करुणा करके, वह शुभ अनुपम धन देती है।
नहिं चोर चुरा सकते जिसको, ऐसा अक्षय धन देती है॥
उसको पाकर मैं तन मन की, अपनी सब सुध बिसराता हूँ।
बस मस्त हुआ मैं माता के, चरणों में सीस नमाता हूँ॥५॥

मुझ को जो एक खजाना दे, यह शर्त लगा तुम भजन तजो।
मैं थूकूँगा ऐसे धन पर, माता से मुझे हटाता जो॥
जो रत्न मुझे अनमोल मिला, सन्तोष मुझे उससे ही है।
लौकिक धन की परवाह नहीं, मुझको आमोद उसी से है॥६॥

आनन्द तरङ्गो आवो तुम, मेरे भीतर तुम भर जाओ।
मुझ को आनन्द निधान पिता, माता के साथ मिला जाओ॥
मैं हँसूं हँसाऊँ इस जग के, सारे दुःखों को दूर करूँ।
मुझ में मां जादू वो भर दे, आनन्दित दुनियां को कर दूँ॥७॥

"ध्रुव"

वेदार्थ करने में भूल

(लेखक—पूज्यपाद श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज)

श्रीयुत परम शिव अय्यर ने अपने रचे ऋक्स (Riks) नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखा है कि "वेदों और वेदाश्रित ब्राह्मणों का शुद्ध अनुवाद वही कर सकता है जिसका दिमाग लचकदार हो जिनकी कल्पना शक्ति वैज्ञानिक आधार रखती हो जो भूगर्भ, खनिज, रसायन कृषि तथा ज्योतिष का गहरा क्रियात्मक ज्ञान रखता हो।" इसमें इतनी वृद्धि और करने की जरूरत है कि जो वैदिक भाषा और तत्कालीन ज्ञान साहित्य की जानकारी रखता हो। इस वृद्धि करने के हेतु ये हैं:—

(१) ऋषि शब्द आज व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त होता है परन्तु वैदिक साहित्य में ऋषि वेद को भी कहते हैं। प्रमाण लीजिए—(क) भोजराजकृत उणादि सूत्र २।१।२५६ की वृत्ति में दण्डनाथ नारायण लिखते हैं "ऋषिः वेदः" अर्थात् ऋषि वेद को कहते हैं।

(ख) हरदत्त मिश्र पाणिनीय सूत्र १।१।८ की अपनी पद मञ्जरी व्याख्या में लिखते हैं "ऋषिर्वेदः तदुक्तमृषिणा इत्यादौदर्शनात्।"

(ग) मनुस्मृति १।१ की टीका में मेधातिथि "महर्षयः" पद के भाष्य में लिखते हैं कि "ऋषिर्वेदः"।

(२) गोपथ ब्राह्मण में जल के ४ विभाग और चार ही नाम हैं:—एक भाग तो खारी होने से अपेय (आपः) कहा गया है। शुद्ध पेय जल के तीन भाग हैं:—उनके नाम भृगु, अङ्गिरा और अथर्व हैं। इनमें भृगु के द्वारा अथर्वा और अङ्गिरा नाम वाले जलों की उत्पत्ति कही गई है। सब स्थानों से प्राप्त होने से जल की आपः और ऋषि संज्ञा भी है।

(३) ताण्ड्य महा ब्राह्मण (२५।१८।१) में लिखा है कि पहले २५० वर्ष में त्रिवृत् स्तोम यज्ञ करे दूसरे २५० वर्ष में पंच दश स्तोम, तीसरे २५० वर्ष में सप्त दश स्तोम और चौथे २५० वर्ष में एक विंश स्तोम साधारणतया होता है। इस पर मीमांसा शास्त्र में विचार चला कि १००० वर्ष की आयु मनुष्य की नहीं होती फिर कोई किस प्रकार इस यज्ञ को पूरा कर सकता है। "कार्ष्णाजिनि" आचार्यने (देखो मीमाँसा ६।२।२७) कुल कल्प की विधि बतलाई अर्थात् पिता यज्ञ शुरू करे और पुत्र पौत्रादि उस समय तक उसे करते चले जावें जब तक १००० वर्ष पूरे होकर यज्ञ पूरा न हो जावे। दर्शनकार ने इस पर आपत्ति उठाई कि जिस व्यक्ति ने यज्ञ शुरू किया है उसी का कर्तव्य होता है कि उसे पूरा करे। इस पर "लावुकायन" आचार्य का मत है कि इस ब्राह्मण वाक्य में संवत्सर शब्द गौण मानना पड़ेगा। अन्त में मीमांसाकार ने सिद्धान्त स्थिर किया "अहानिवाभि संख्यत्वात्!" (पूर्व मीमांसा ६।७।४०) अर्थात संवत्सर शब्द यहां दिन के अर्थ में है।

(४) इन उपर्युक्त उदाहरणों के सिवा निम्न शब्दों और जिन अर्थों में वे प्रयुक्त हुये हैं उन पर विचार करें:—

शब्द	किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।	पता
आशा	दिग्=दिशा	निघटु १।६
पर्वत	मेघ	" १।१०
अमृत	हिरण्य	शतपथ ७।३।१।१५
ऋतु	पितर	" २।५।८।३२
अर्जुन	इन्द्र	" ५।४।३ ७
ऋतु	कर्म	निघंटु २।१
रुद्र	स्तोता	" ३।१६
पृथिवी	अन्तरिक्ष	" १।३

इत्यादि इत्यादि। जितने शब्द यहां दिए गये हैं इन सब के आज और ही अर्थ प्रचलित हैं। जब शैक्सपियर की अंग्रेज़ी समझने के लिये पृथक् Dictionary बनानी पड़ी तो वेद के शब्दों को जो शैक्सपियर की अपेक्षा करोड़ों वर्ष पुराने हैं, किस प्रकार आज के प्रचलित कोषों से समझा जा सकता है? यही कारण है कि मैक्समूलर ने हिरण्य गर्भ के अर्थ Golden egg=सुनहरी अंडा और ग्रिफिथ ने "अज एक पाद्" के अर्थ one footed Goat अर्थात् एक पाँव की बकरी किये हैं। ऋक्स के लेखक ने भी जिनका ऊपर नाम लिया गया है, ग्रिफिथ ही का अनुकरण किया है। इसलिए आवश्यक है कि वेदार्थ करने में जो भूलें पश्चिमीय विद्वानों ने की हैं उनसे बचा जावे।

शतपथ ब्राह्मण के कुछ लोकोपयोगी शब्द

(ले० श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० प्रधान संयुक्त प्रान्त आर्य प्रतिनिधि सभा)

प्राय: भाषान्तर करने में हमको हिन्दी के शब्द गढ़ने पड़ते हैं हम समझते हैं कि संस्कृत भाषा में उनके पर्याय हैं ही नहीं। हम यहाँ शतपथ ब्राह्मण से उद्‌धृत करके कुछ शब्द देते हैं:—

(१)	उपद्रष्टा	गवाह (Witness)	कस्योपद्रष्टु रिति (श० ३।४।२।५)
(२)	पुरोग	अगुआ (Leader)	वज्रमेवैतत् पुरोगां कुरुते। (श० ४।२।४।२७)
(३)	परिचर:	चाकर (Attendant)	अथयोऽन्य: परिचरो भवति। (श० ४।३।५।१)
(४)	अपित्वी	साझी (Sharer)	यमलोक एवैनमेतदपित्विनं करोति। (श० ४।३।४।२७)
(५)	स्वगाकार	विदा (Farewell)	एष एवैतस्य स्वगाकार:। (४।४।५।३)
(६)	प्रायणीय	पहला (First or opening)	तवैव प्रायणीयस्तवोदनीय:। (श० ४।५।१।१)
(७)	उदनीय	पिछला (Last or concluding)	
(८)	वरुण्य	नियम का भंगी करण (Criminal)	सर्वस्माद् वरुण्यात् प्रमुञ्चति। (श० ४।४।५।११)
(९)	पथ्यास्वस्ति	मार्ग के लिये सद्भावना (Wishing happy journey)	वाग्वै पथ्यास्वस्ति। (श० ४।५।१।४)
(१०)	स्विष्ट	इच्छानुकूल—अच्छा (Desirable)	यद्वा ईजानस्य स्विष्टं भवति
(११)	दुरिष्ट	प्रतिकूल, बुरा (Undesirable)	मित्रोऽस्य तद् गृह्णाति यद्वास्य दुरिष्टं भवति वरुणोऽस्य तद् गृह्णाति। (श० ४।५।१।६)
(१२)	पुरस्ताद् वहनं	भूमिका या प्राक्कथन (Preliminary remarks)	इति नु पुरस्ताद् वहनम्। (श० ४।६।८।२)
(१३)	आसंग	चढ़ाई (Attack)	ते ऽसुररक्षसेभ्य आसङ्गाद् बिभयां चक्रु:। (श० ४।६।५।५)
(१४)	प्रतिगर	उत्तर (Response)	अथाध्वर्यो: प्रतिगर: (श० ४।६।६।१६)
(१५)	वाकोवाक्य	वाद प्रतिवाद (Dialogue)	अथ वाकोवाक्ये ब्रह्मोद्यं वदन्ति।
(१६)	प्रतिप्रति	प्रतिद्वन्द्वी (Rival)	

आर्य समाज क्रियात्मक कैसे बने ?

(ले०—प० विद्यानन्द जी वेदालङ्कार लायलपुर)

वर्तमान में केवल चन्दा—निर्भर संस्था खड़ी करना कठिन है। मैंने एक बार गोशालाओं के विषय में एक प्रस्ताव कलकत्ता समाज के उत्सव पर पास करवा कर सरकार को भिजवाया था। बिहार और बंगाल में गांव वालों के पास चरागाह नहीं हैं। यदि सरकार चरागाहों की जमीन का लगान रोक दे, तो, हजारों किसानों को गौ पालने में सुविधा हो जाय। एक तरफ गांव वालों का गला घोटा जाय और दूसरी तरफ गोशाला के लिये शोर किया जाय, बे मतलब है। गो भक्तों का प्रथम कर्तव्य है कि पशु पालकों को हर प्रकार की सुविधा और शिक्षा दिलाना। यह काम बिना या कम चन्दा से चल सकता है। परन्तु प्रचार द्वारा जनता तथा सरकार का सहयोग पाकर किया जा सकता है। इसी प्रकार विधवाश्रम का प्रश्न है। बिहार में विधवा स्त्रियां चर्खा, कोल्हू, चक्की, धान कूटने आदि का काम करती हैं। यदि मशीनों द्वारा इनको बेरोजगार न किया गया होता तो हजारों विधवाओं की भयंकर दुर्दशा और भिक्षुक स्त्रियों और बालकों की वृद्धि नहीं हुई होती। हम एक तरफ लोगों को कुछ धनियों के लिये बेरोजगार करते हैं। फिर उनके प्रति उठने वाले असन्तोष को मिटाने के लिये आश्रम कायम करते हैं।

अभी तक मेरा अनुभव है कि विधवाश्रम तरुण स्त्रियों को बसाते हैं। वृद्धा स्त्रियों का कोई प्रबन्ध नहीं हुआ।

कलकत्ता में एक बार एक सज्जन ने पूछा—कि खादी प्रचार से क्या लाभ है ? मैंने उत्तर दिया हम धोबी से कपड़े नहीं धुलाते लॉण्ड्री में धुलाते हैं। हम बढ़ई से सामान नहीं बनवाते, किन्तु फर्नीचर के कारखानों से माल खरीदते हैं। चमार से जूते नहीं बनवाते, किन्तु जूता कम्पनी से जूता खरीदते हैं। इसी प्रकार छाता आदि। इस प्रकार हम धोबी, बढ़ई, चमार आदि लोगों को इन पूंजीपतियों का गुलाम बनने को लाचार करते हैं। हम गरीब की जगह धनियों को पालते हैं। यदि हम गरीब को दान नहीं दे सकते, तो रोजगार तो अवश्य दें।

इसी प्रकार हम बर्मा से लौटे लोगों की सेवा करना चाहते हैं। इसके लिये पंजाब के जो हिन्दू अपने खेतों के लिये हिन्दू काश्तकार चाहते थे उनको तैयार कर बसायें। सिंध में नौकर, काश्तकार, तथा लेखक आदि हिन्दू अपने यहां हिन्दू रखना चाहते थे। उनको तैयार कर बसादें। परन्तु पुरानी आदत होने से चन्दा निर्भर केवल पूंजी पतियों के सहारे जीने वाली संस्था खड़ी करने लगे।

यदि हम क्रियात्मक कदम बढ़ाना चाहते हैं। तो Training camp शिक्षण शिविर प्रत्येक कार्य के लिये कायम करने होंगे। Dairy farm, कोल्हू, कपड़े की बुनाई आदि चमार धोबी इन सब के लिये वसु (बसाने वाला) बनना पड़ेगा।

प्रचार शैली में परिवर्तन की आवश्यकता

(लेखक—निरंजन लाल गौतम "विशारद")

आर्य समाज ने अब से ६० वर्ष पूर्व जिस प्रचार शैली का अनुसरण किया था उसके द्वारा प्राप्त सफलता से कोई भी इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु अब ऐसा दीख पड़ता है कि आर्य समाज का वर्तमान प्रचार शैली की जड़ में दीमक लग गई है जो इस वृक्ष की बढ़वार में बाधक है। अब से ५०-६० वष पूर्व की परिस्थितियों को देखते हुए वतमान शैली से अधिक उपयुक्त कोई अन्य सफलता का मार्ग हो सकता था, इसमें सन्देह है किन्तु समय के साथ देश की परिस्थितियां भी बदल चुकी हैं। आय समाज के प्रचार से पूर्व ईसाई मिशनरी बीच बाजार में, रास्तों पर, मेलों में और रास्ता चलते अपने ईसाई मत के प्रचारार्थ शास्त्रार्थ करते और भोले-भाले हिन्दुओं की तो बात ही क्या दिग्गज पंडितों को भी बात की बात में मैदान छोड़ने पर बाध्य कर देते थे। बेचारे मन्दिर के पुजारियों को उनके प्रश्नों के उत्तर सूझते ही न थे। दिन-दहाड़े बहला फुसला कर अथवा लालच और दबाव से भोले हिन्दुओं को विधर्मी बना लिया जाता था। अतः आर्य समाज ने विधर्मियों के इस जाल से बचाने के लिए खण्डनात्मक प्रचार, शास्त्राथ और शुद्धि के खड्ग से ईसाइयों और मुसलमान प्रचारकों का मुँह मोड़ा। जब विधर्मियों ने देखा कि उनके जादू का काट आर्य समाज के पास है, तो उन्होंने अपनी प्रचार शैली मे परिवतन कर दिया। दिन पर दिन शास्त्रार्थों की संख्या घटने लगी और अन्त में प्रचार मच केवल आर्य समाज के हाथ रह गया। अब आर्य समाज से शास्त्रार्थ करने वालों की सख्या नगण्य ही कही जासकती है।

अब विधर्मियों ने हिन्दुओं की कमजोरियों में घुसकर अपना उल्लू सीधा करना आरम्भ किया है। ईसाइयों का केवल एक ही उद्देश्य दीख पड़त है कि हिन्दुओं को पद-दलित जातियों को अपनी सेवा द्वारा अपनी ओर आकर्षित किया जाये। वैसे तो ईसाइयत में ऐसी कोई विशेषता नहीं जो हिन्दू धम के लिए आकर्षण की वस्तु हो परन्तु उनकी सेवा भावना

जनता तथा सरकार के उचित सहयोग मे विश्वास पात्र, दक्ष तथा कर्मठ बनकर काम करना पड़ेगा। हम बी. ए. की जगह B. A. B. T को अध्यापक चाहते हैं। ठीक इसी तरह हम शास्त्री स्नातक की जगह Trained (किसी कार्य को कराने में न केवल बोलने में दक्ष) उपदेशक चाहते हैं। यह आवाज आज आय समाज में पैदा हो चुकी है। श्रोता-(सुनने वाले कुछ न करने वाले) वक्ता (बोलने वाले कुछ न कराने वाले) से जनता ऊब चुकी है। नवयुवक आर्य समाजी आज इस समझौते पर श्रोता और वक्ता का सम्बन्ध कायम नहीं रखना चाहते।

निःसन्देह अनुकरणीय है। ईसाई मिशनरी विशाल पहाड़ों की कन्दरा में, घने जंगलों और गन्दे से गन्दे स्थानों पर पिछड़ी जातियों में हिल-मिल कर उनकी सेवा करता है। कोढ़ियों के घाव साफ करता है। बीमारों की औषधि तथा उपचार का प्रबन्ध करता है। उनके ऊपर आई अन्य आपत्तियों में उनका सहायक बनता है। बच्चों की शिक्षा में शिक्षक का काम, मुकद्दमे में वकील का काम, बीमारी में डाक्टर का काम, भूख में अन्न-दाता के काम ही उसे अपने धर्म प्रचार का अवसर देते हैं, लोग उसकी सुनते भी हैं। उन्हें उस पर विश्वास होता है, उसकी भ्रममूलक बातों पर भी सन्देह नहीं होता, क्योंकि वह मनसा, वाचा, कर्मणा उनका सहायक और सेवक है। वह सब प्रकार की सेवा करता हुआ भी केवल प्रभु ईसा के गुण-गान कराने और अपनी संस्कृति प्रसार के और कुछ वह बदले में नहीं चाहता। लोग उसकी ओर आकर्षित होकर ही अपने को ईसाई कहने में गौरवान्वित समझते हैं और इसी में उनका हित है वे ऐसा समझते हैं।

अब तो ईसाई कहते हुए भी लोगों के नाम वही हैं जो पूर्व थे, चोटी रखते हुए भी ईसाई हो सकता है। केवल मात्र ईसाई कहना ही पर्याप्त है। प्रत्येक ईसाई मिशनरी का अपना प्रचार केन्द्र है उसके आस पास के ग्राम और कस्बे उसके प्रचार क्षेत्र में होते हैं। प्रति दिन इन्हीं ग्रामों में उसकी साइकिल का पहिया बड़ी तेज़ी से घूमता रहता है। वह अपनी टोपी पृथ्वी पर रखकर पिछड़ी जातियों के लिये प्रभु-ईशा से दुआ मांगता है और इसके बदले में उसे कुछ अनाज, पैसे आदि मिल जाते हैं और परिवार के भरण पोषण के लिये मिशन से कुछ सहायता पाता है।

वह अपने प्रचार केन्द्र का एक मात्र प्रचारक होता है और कभी २ अपने जिले के बड़े मिशनरी द्वारा अपने क्षेत्र का निरीक्षण कराता रहता है। बड़े पादरी के निरीक्षण के समय उसके प्रचार से प्रभावित पुरुष उसके साथ मिल कर प्रार्थना करते हैं। विदाई के समय बड़ा पादरी कुछ मिठाई खिलौने आदि बच्चों में बांट कर अपनी मुसकराहट के साथ नम्रता एवं कृतज्ञता भरी दृष्टि से सब को देखते हुये अगले केन्द्र के निरीक्षण के लिये जाता है। कभी २ निरीक्षण केन्द्र से १-२ बच्चों को पढ़ाने के लिये अपने साथ ले जाता है ये बच्चे साफ सुथरे कपड़ों में कभी २ बड़े पादरी के साथ मोटर में अपने घर आते हैं जो अपनी जाति और मुहल्ले के लिये एक आकर्षण होते हैं। हठात् अन्य लोग भी अपने बच्चों को मिशन में भेजने को उत्सुक रहते हैं।

कुछ ईसाई मिशनरी शिक्षित वर्ग या कालेजों में अपना कार्य करते हैं। उनकी प्रचार शैली लेक्चर बाज़ी नहीं है वरन् विद्यार्थियों से मित्रता बढ़ाने की है। वे विद्यार्थियों के अवकाश काल में उनसे मिलते हैं। कभी २ कुछ साहित्य भी वितरण करते हैं और राजनैतिक साहित्य, स्कूल, कालेज, खेल तमाशों की चर्चा के साथ धर्म सम्बन्धी चर्चा छेड़ कर अपने मत की विशेषता बताते हैं। परन्तु कभी किसी को यह

नहीं कहता कि वे ईसाई बनें। हां! अपनी बातों से कुछ छात्रों को इसके लिये तैयार करते रहते हैं कि वे मिशन कालेजों में पढ़ें और इस कार्य में वे उनके परम सहायक बनते हैं।

अब तनिक आर्य प्रचारकों को देखिये। यदि कोई उपदेशक हैं तो प्रायः निश्चित समय पर घर से निकलकर प्लैटफार्म पर उपदेश देकर कर्तव्य की इति श्री समझ बैठते हैं। वह इस बात का प्रयत्न करता है कि उसका भाषण कथित बड़े २ तथा धनी मानी लोगों के बीच हो। इस प्रकार दलित-वर्ग को हमारे भाषण से आशानुसार लाभ नहीं होता। उपदेशक महाशय अपना काम समाप्त समझ अगले प्रोग्राम का रास्ता पकड़ते हैं। जो सज्जन उपदेशक महाशय के परिचित होते हैं वे तो उनके उपदेश को सुनने की अपेक्षा यह देखते हैं कि श्रोता कितने हैं। लोग ताली पीटते हैं या जो श्रोता होते हैं उन पर उनके उपदेश का प्रभाव क्षणिक होता है। एक स्थान पर एक बार भाषण होने के बाद प्रायः साल छः मास तक जनता को उपदेशामृत पान का अवसर ही नहीं आता। अतः इस बीच में पुराना सुना उपदेश भूल सा जाता है। यदि प्रचारक महोदय भजनीक हुए तो वे सिनेमा की तर्ज के ४-६ गीत, भजन या गजल तराने सुनाकर अपने दैनिक कर्तव्य की इति-श्री समझते हैं। फिर वही पुराने राग और वही एक विषय पुराने ढर्रे के साथ, यदि उपदेशक की आवाज सुरीली हुई तो ठीक अन्यथा श्रोता ठहरना भी पसन्द नहीं करते। फिर प्रचार बढ़े कैसे।

(१) हमारे प्रचार की सबसे बड़ी कमी यही है कि एक बार अधिकतम जनता को अपना उपदेश सुनाकर बहुत समय तक उसकी सुधि नहीं लेते। अतः इस बीच में विरोधी हमारे प्रचार के प्रभाव को नष्ट करने का यत्न करते हैं।

(२) उपदेशकों का प्रचार क्षेत्र बहुत अधिक विस्तृत होने से या अनिश्चित होने से उनके प्रचार का प्रभाव बहुत कम पड़ता है।

(३) केवल भाषण देना और जनता से मिलते रहने की उपेक्षा के कारण जनता का ज्ञान बहुत अल्प होता है अतः ठोस और स्थायी कार्य बहुत कम होता है।

(४) साथ ही वर्तमान प्रचार शैली अधिक खर्चीली और कम लाभप्रद है।

(५) उपदेशकों के कार्य का निरीक्षण भार अवैतनिक निरीक्षकों पर होने से कार्य सुचारु रूप से नहीं होता।

कुछ सज्जनों का यह विचार है कि ईसाई मिशन के पास अधिक धन होने से वे अपने कार्य में सफल होते हैं और हमारे पास धन नहीं है। परन्तु आर्थिक संकट इतना अधिक नहीं है जितना कि उसका भूत हमें डरा रहा है।

उपदेशक जनता में घुलमिल कर अपने केन्द्र के प्रत्येक दूकानदार के यहां एक एक दान पात्र रखकर प्रति मास उसकी आय उसकी सभा को भेजें। यदि इस प्रकार एक केन्द्र में केवल १०० दानी भी दान पात्र रखना स्वीकार करलें और आठ आना मासिक ही दान पात्र में डाल दें तो ५०) मासिक की आय प्रत्येक केन्द्र से हो सकती है। इसके अतिरिक्त फुटकर दान अलग रहा। इस प्रकार कुछ ही दिनों में हमारा प्रत्येक केन्द्र स्वावलम्बी हो सकता है। इन केन्द्रों की संख्या

बढ़ाई जा सकती है। प्रारम्भ में जितने भी केन्द्र खोले जायें वे अधिकतर ग्रामों और पिछड़ी हुई जातियों में होने चाहिये। शहरों और सभ्य कहाने वाली जातियों में अधिक शिक्षित विद्वान् और संन्यासी वर्ग प्रचार करें तो बहुत उत्तम हो। क्योंकि शहरी और शिक्षित जनता अल्प वेतन भोगी उपदेशकों की इज्जत करती है या उनके उपदेशों से लाभ उठाती है इसमें सन्देह है। वर्तमान प्रचार शैली के कारण जितना माग व्यय एक उपदेशकका होता है उसमें थोड़ीसी धन राशि और जोड़ देने पर भी प्रत्येक केन्द्र स्वावलम्बी हो सकता है। और हमारा प्रचार शहरों के साथ २ ७० लाख ग्रामों में भी फैल सकता है। कुछ लोग तो ईसाई मिशन के प्रचार को देखकर कह देते हैं कि जब हिन्दुओं में से छुआछूत मिट जायेगी तो अछूतोद्धार स्वयं हो जायेगा। परन्तु तनिक सोचिये कि वतमान छुआछूत के भूत को मिटाने के लिये कम से कम आधी सदी नहीं तो २५ साल से कम का समय न लगेगा और इस बीच में इन हरिजनों अथवा पिछड़ी हुई जातियों का क्या बनेगा उससे आंखें बन्द नहीं की जा सकती अतः गम्भीरता पूर्वक हमें इस ओर ध्यान देना होगा।

अ० भा० आर्य वीर शिक्षण केन्द्र का प्रारम्भोत्सव

पं० इन्द्र जी का ओजस्वी भाषण

तुगलकाबाद, २७ जुलाई।

कल सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से तुगलकाबाद में आर्य वीर शिक्षण शिविर पं० ओ३म्प्रकाश जी शिक्षक आर्यवीर दल के दलपतित्व में बड़े समारोह के साथ प्रारम्भ हुआ। शिविर में भाग लेने के लिए देहली, बंगाल, मद्रास, राजस्थान, युक्तप्रान्त और पंजाब के सज्जन आए हुए हैं।

शिविर का उद्घाटन करते हुए प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति ने आर्य वीर दल के उद्देश्य और कार्य समझाए। आपने कहा कि आज आर्य वीर दल की आवश्यकता आर्य्यावर्त, आर्य जाति और आर्य-धर्म की रक्षा करने के लिए है। तीनों में से हम एक को भी नहीं छोड़ सकते। आर्य समाज ने ब्राह्मण तो बहुत पैदा किए परन्तु क्षत्रिय नहीं। आर्य वीर दल उस कमी को पूरा करेगा। वह आर्य समाज में क्षत्रिय वर्ण पैदा करेगा। इसी कार्य का बीजारोपण आज किया गया है और आप में से प्रत्येक का कर्तव्य है कि आप इस काम को आगे बढ़ाएँ। आप लोग दिवाली के दीपकों की तरह हैं जो अपने अपने प्रान्तों में जाकर सैंकड़ों दीपक जला देंगे। आप को देश में प्रत्येक व्यक्ति को यह काम सिखा देना चाहिए अगर आपने इसी प्रकार काम किया तो १ मास में ही १ लाख आर्य वीर तैयार हो सकते हैं। आपको दो चीजें लेकर यहां से जाना चाहिये शक्ति और आर्य देश, जाति व धर्म की रक्षा की भावना।

अन्त में आपने आर्य वीरों को आदेश दिया कि वे इसी समय तीन व्रत ग्रहण करलें। (१) यह कि वे आर्य धर्म, देश व जाति के लिए सदा प्राणोत्सर्ग करने को तैयार रहेंगे। (२) आर्य वीर दल संगठन में भक्ति के साथ काम करेंगे। (३) जब तक इस शिक्षण में रहेंगे अपने दलपति की आज्ञा को बिना ननुनच किए पालन करेंगे। इस सम्बन्ध में आपने कहा कि सैनिक शिक्षा में प्रजातन्त्र से काम नहीं चल सकता। सार्वजनिक संस्थाओं और आर्य समाज में भी इस अनुशासन की कमी से बहुत धक्का पहुँचा है।

पं० धर्मदेव जी विद्या वाचस्पति उपमन्त्री सार्वदेशिक सभा ने श्री पं० इन्द्र जी को सभा की ओर से उनके बहुमूल्य उपदेश के लिए धन्यवाद देते हुए आर्य वीर शिक्षण केन्द्र का दैनिक समय-विभाग और कार्य क्रम सुनाया। वैयक्तिक और सङ्घ तथा सैनिक व्यायाम लाठी शिक्षादि के अतिरिक्त प्रारम्भिक चिकित्सा, हवाई हमलों से बचाव आदि सामयिक और आर्य धर्म, आर्य संस्कृति, आर्य देश आदि सांस्कृतिक विषयों पर इनके विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा व्याख्यानों का भी प्रबन्ध किया गया है।

क्षात्रधर्म के पुनरुद्धार का अपूर्व अवसर

३ मास में कम से कम १ लाख आर्य वीर हों

आर्य जनता से अपील

श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने आर्य जनता के नाम निम्न अपील जारी की है।

"मनुष्य जाति एक भयानक संकट में पड़ी हुई है। उसका कोई भी हिस्सा संकट से नहीं बच सकता। जो विनाशक शक्तियां संसार का संहार करने में लगी हुई हैं वे न किसी देश को छोड़ेंगी और न किसी जाति को क्षमा करेंगी। इस संघर्ष मे से वही जाति बच कर निकल सकेगी जिसने अपने आप को संघर्ष के लिये तैयार किया है। कमजोर या कायर जातियां या तो सर्वथा नष्ट हो जायेंगी अथवा इतनी निर्बल हो जायेंगी कि फिर उनके उठने की कोई आशा न रहेगी।

संसार पर आये हुये उस महान् संकट से आर्य जाति भी नहीं बच सकती। अब भी वह काफी निर्बल है और यदि आते हुये संकट के लिये वह तैयार न हुई तो सम्भव है उसका नाम भी शेष न रहे।

आर्य समाज अपने जन्म काल से ही आर्य जाति का पथदर्शक और सेवक रहा है। इस समय भी वह अपने इस कर्तव्य से मुक्त नहीं हो सकता। आर्य समाज का कर्तव्य है कि वह न केवल आर्य जाति को सावधान होने के लिये सचेत करे अपितु यह भी आवश्यक है कि वह उसे जीवित रहने का उपाय बताये।

वैदिक धर्म मनुष्य जाति मे चारों वर्णों की आवश्यकता को स्वीकार करता है। जाति की हरेक आवश्यकता को पूरा करने के लिये वर्णों की रचना की गई है। जिस प्रकार का राजनैतिक संकट सामने से आता दिखाई दे रहा है उसका मुकाबला करने के लिये क्षात्रधर्म की आवश्यकता है। आततायियों के आक्रमण को रोकने और दस्युओं का नाश करने के लिये क्षत्रियों का जन्म होता है। हमारी जाति में सच्चे क्षत्रियों का अभाव सा हो गया है। यही कारण है कि हमारा देश राजनैतिक दृष्टि से बिल्कुल हीन और हमारी जाति हर प्रकार से अत्यन्त निर्बल दशा को पहुँच गई है। समय चाहता है कि आर्य जाति मे क्षात्र धर्म का फिर से प्रादुर्भाव किया जाये। क्षात्रधर्म के प्रादुर्भाव से मेरा यह अभिप्राय नहीं है कि ऐसे सिपाही तैयार किये जायें जिनका पेशा लड़ाई करना है मेरा अभिप्राय यह है कि जाति में क्षात्रधर्म की भावना पैदा हो। प्रत्येक जवान और प्रत्येक नवयुवती अपने देश, जाति और धर्म के लिये क्षात्रधर्म के अनुसार युद्ध करने को तैयार हो।

आर्य वीर दल के संगठन की जो योजना सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने प्रारम्भ की है उसका यही लक्ष्य है। वह केवल स्वयं सेवकों की भर्ती नहीं है। उसका उद्देश्य एक भावना को जन्म देकर जाति के अन्दर मानसिक क्रान्ति

औराद शाह जानी का भयंकर अग्नि काण्ड

निष्पक्ष जांच कमीशन की मांग

[ले०—श्री प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति उपमन्त्री-सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली]

हैदराबाद रियासत में आर्य सत्याग्रह को समाप्त करने के अवसर पर यह आशा की गई थी कि भविष्य में रियासत की ओर से ऐसा उत्तम प्रबन्ध रहेगा कि हिन्दुओं को जिनकी संख्या वहां ८८ प्रतिशत के लगभग है किसी प्रकार की शिकायत का अवसर न मिलेगा। किन्तु गत मासों से जो दुर्घटनाएँ हैदराबाद रियासत में हो रही हैं और जिनके विषय में राज्य के अनेक अधिकारियों ने अपने कर्तव्य का पालन नहीं किया प्रतीत होता; वे अत्यन्त हृदय विदारक हैं। उनमें से एक का संक्षिप्त वर्णन जनता की सूचनार्थ हम अत्यन्त विश्वसनीय सूत्रों द्वारा प्राप्त समाचारों के आधार पर देते हैं।

२९ मई सन् १९४२ ई० को जुम्मे की नमाज

पैदा करना है। उस क्रान्ति का यह रूप होगा कि जो जाति अब तक अपने को निबल समझे हुये है वह बलिष्ठ बनने का संकल्प करे। जाति यह भी सकल्प करे कि वह आततायियों का उत्तर देने, अपने उचित अधिकारों की रक्षा करने और न्याय के विरोधियों का दमन करने के लिये क्षात्र धर्म का पालन करने को उद्यत रहेगी।

इस लक्ष्य को सामने रखकर आर्य वीर दल की योजना का प्रारम्भ किया गया है। सभा की इच्छा है कि आगामी ३ महीने के अन्दर अन्दर देश भर में कम से कम १ लाख आर्य वीरों का संगठन हो जाये। ग्राम ग्राम और नगर नगर में आर्य वीर दलों की स्थापना होनी चाहिये। जिस स्थान पर कम से कम ११ आर्य वीर भर्ती हो जायें वहां दल स्थापित किया जा सकता है। स्थापित होने की सूचना सार्वदेशिक सभा को शीघ्र देनी चाहिये।

आर्य वीर दलों के नियम सार्वदेशिक सभा के कार्यालय से प्राप्त हो सकते हैं। एक बड़ी कठिनाई यह थी कि आर्य वीरों के शिक्षण के लिये शिक्षक नहीं मिलते थे। इस अभाव की पूर्ति के लिये सार्वदेशिक सभा ने दिल्ली के समीप आर्य वीर दल शिक्षण केन्द्र स्थापित कर दिया है जिसमें अभी एक मास का शिक्षण काल रखा गया है। आर्य वीर दलों को उस केन्द्र से लाभ उठाना चाहिये।

इस समय केवल तीन मास का कार्य-क्रम आर्य जनता के सामने रखा गया है। यह विश्वास है कि दयानन्द निर्वाण दिवस (दीवाली) तक एक लाख आर्य वीरों की भर्ती अवश्य हो जायेगी। उसके पश्चात् दूसरी तिमाही के लिये हम कम से कम इससे ५ गुना भर्ती का कार्यक्रम अपने जिम्मे ले सकेंगे।

मुझे विश्वास है कि समय की विकटता और कार्य की आवश्यकता को देखते हुये आर्य नर नारी पूरे उत्साह और तत्परता के साथ आर्य वीर दलों के संगठन के कार्य में लग जावेंगे।

के पश्चात् औराद शाह जानी (हैदराबाद रियासत) में दोपहर १ और दो बजे के बीच में १०० से अधिक मुसलमानों की सशस्त्र एक टोली ने सैनिक ढंग पर 'शाहे उस्मान जिन्दाबाद' 'इत्तेहादुल मुस्लिम जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए बाजार उत्तरी दरवाजे में प्रविष्ट हो गोरैया भद्रैया की दुकान से एक साथ गोलियां चलाना आरम्भ कर दिया। जिससे उस दिन बाजार में आये हुए देहाती परेशान हो जान बचाने के लिये सामान को छोड़कर भाग निकले। आर्य युवकों ने बड़ी ही दृढ़ता से मुसलमानों के इस समूह को रोका। पं० देशबन्धु जी उपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा हैदराबाद ने आपस में समझौते के प्रयत्न के लिये नायब तहसीलदार (जो मुसलमान हैं) की सेवा में जाकर कहा 'मुसलमानों को समझाया जाय।' परन्तु नायब तहसीलदार ने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया। इसी समय एक रुकमोद्दीन नामक मुसलमान ने गोली चलाई जिससे वेंकट नामक हिन्दू की तत्क्षण मृत्यु हो गई। सायं ६ बजे के लगभग मुसलमानों ने हिन्दुओं की दुकानों को लूटना और आग लगाना शुरू किया जिससे हुए नुकसान का विवरण निम्नलिखित है।

(१) ३६ दुकानें जिन्हें आग लगाई गई लगभग २५०००) हाली रुपये (२) ६ मकानात मूल्य लगभग ४०००० हाली रुपये (३) ३८ दुकानदारों का सामान लूटा गया जो लगभग ३५ हजार रुपये का था। इस प्रकार लगभग एक लाख रुपये का नुकसान हुआ। यह आश्चर्य की बात है कि दंगे के दो दिन पश्चात् ही मोहतमीम साहेब (अध्यक्ष पुलिस-विभाग) कुछ सिपाहियों के साथ वहां पहुंचे स्थानीय हिन्दुओं ने नायब तहसीलदार साहब को सूचना भी दी थी कि २५ दिन पूर्व ही मुसलमान हिन्दुओं को यह धमकी दे रहे थे कि "औराद को बीदर बना देंगे। किन्तु आश्चर्य और दुःख की बात है कि इनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया। इन सब बातों की की निष्पक्ष जांच होना अत्यन्त आवश्यक है। दुःख है कि आज लगभग २ मास बीत जाने पर भी हैदराबाद रियासत ने किसी निष्पक्ष कमीशन द्वारा इस भयंकर अग्निकांड की जांच नहीं करवाई। इसलिए प्रत्येक आर्यसमाज, आर्य प्रतिनिधि सभा, हिन्दू महासभा, कांग्रेस तथा अन्य न्याय प्रिय सर्व संस्थाओं को निम्न आशय का प्रस्ताव पासकर हैदराबाद रियासतके प्रधान-मन्त्री तथा भारत सरकार देहली के पास भेजनी चाहिए और उसकी एक प्रति सार्वदेशिक सभा कार्यालय में भेजनी चाहिए। प्रस्ताव का आशय इस प्रकार का हो:—

"इस सभा (समाज या संस्था) ने हुमनाबाद और औराद की हृदय-द्रावक घटनाओं के विवरणों को बहुत ही ध्यान पूर्वक पढ़ा। उन पर विचार करने और अतीतकाल में हैदराबाद रियासत के बीदर गुरुमट-कल इत्यादि स्थानों में जो घटनाएँ हो चुकी हैं उन पर दृष्टिपात करने के बाद इस सभा (समाज या संस्था) की यह दृढ़ सम्मति है कि हैदराबाद सरकार को इसके विषय मे केवल पुलिस की तहकीकात पर निर्भर न रहना चाहिए अपितु इन घटनाओं की तहकीकात के लिए निष्पक्ष कमीशन को नियत कराकर

महिला-जगत्

माता की पदवी प्राप्त करने वाली देवियों के जानने योग्य बातें

मातृत्व और देश प्रेम

वार्षिक परीक्षा समाप्त होकर परीक्षा परिणाम सुनाया जा चुका था। सुशीला और दमयन्ती को मातृत्व पर सर्वोत्तम निबन्ध लिखने के उपलक्ष्य में कई पुरस्कार मिले थे। कमला बहिन को दिखाने के लिये दोनों बहिनें अपने पुरस्कारों को बहुत सुरक्षित रखती थीं। स्कूल के बन्द होने का ज्यों ज्यों समय निकट आता था त्यों त्यों दोनों बहिनों की प्रसन्नता और उत्सुकता बढ़ती जाती थी। अन्त मे नियत दिन आया और सुशीला व दमयन्ती अपने उपहारों और उत्तर पुस्तकों को साथ लेकर घर को रवाना हुई।

२ मास के अवकाश पर कमला भी घर पर आई हुई थी। वह स्वय भी दोनों बहिनों के आने की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। जब से उसे उपहारों के मिलने का समाचार मिला था तब से ही दोनों बहिनों से शीघ्र से शीघ्र मिलने के लिए उसकी उत्कण्ठा बढ़ गई थी। इस बार वह स्वय बहिनों को लेने के लिये अपने पिता जी के साथ रेलवे स्टेशन पर गई। बडे चाव और स्नेह से उसने स्टेशन पर दोनों बहिनों का स्वागत किया और तीनों बहिने प्रसन्नता से भरे हुए हृदयों के साथ घर गईं।

ठीक २ जाच करानी चाहिए जिससे भविष्य मे ऐसी दुर्घटना न होने पावे।"

प्रस्ताव का अंग्रेजी अनुवाद

This General meeting of the Arya Samaj has very carefully studied the allegations of heart-rending incidents of Humnabad and Aurad and on full condideration of the alleged incidents particularly in the light of what happened in the past at Bidar and Gurmatkal in the Hyderabad State, this meeting of is confirmed in its opinion, that the Government of His Exalted Highness The Nizam of Hyderabad must not be content merely with a police enquiry into the matter, but that an independent commission must be appointed for a complete and thorough enquiry into the allegations, with a view particularly to prevent the recurrence of such disgraceful events.

दोपहर को भोजनादि से निवृत्त होने पर कमला ने दोनों बहिनों को अपने कमरे में बुलाया और उनको उत्तर पुस्तकें और उपहार भी मंगवाए। उपहारों को देखकर कमला बड़ी प्रसन्न हुई और प्रश्न पत्रों के साथ उनकी कापियाँ देखने लग गई। कापियों को ध्यान से देखने के पश्चात् कमला ने दोनों बहिनों से कहा 'तुम दोनों ने वस्तुतः पुरस्कार के योग्य ही प्रश्नों के उत्तर लिखे हैं। मुझे खुशी है हम तीनों की मेहनत अकारथ नहीं गई परन्तु तुमने 'मातृत्व और देश-भक्ति" का विषय छुआ तक नहीं। प्रतीत होता है स्कूल में तुम्हें यह विषय पढ़ाया नहीं गया।

दमयन्ती ने लजाते हुए कहा—

"बहिन! स्कूल में हमें मातृत्व पर कुछ भी नहीं पढ़ाया गया था। हमने आपसे जो कुछ इस विषय में सीखा था उसी के आधार पर हमने अपने पर्चे कर दिये थे। यदि आप आज इस विषय पर हमें कुछ बतावें तो बड़ी कृपा हो।"

कमला ने कहा—"मै अधिक तो इस विषय पर नहीं जानती परन्तु जो कुछ जानती हूँ उसको संक्षेप में बताने का यत्न करूँगी।"

"माता की सबसे बड़ी देश-भक्ति यही है कि वह सुयोग्य सन्तान तय्यार करके देश के अर्पण करे जो न्याय और सत्य की सीमाओं के भीतर रहकर अपने देश की सेवा करे और आवश्यकता पड़ने पर देश के लिए अपने सर्वस्व की आहुति दे दे।"

सुशीला ने गम्भीर होकर कहा—

"बहिन तब तो युरोप की माताएँ हम लोगों से अधिक देश भक्त हैं जो अपने बच्चों को खुशी खुशी युद्धों में बलि चढ़ा देती हैं।"

कमला ने कहा—"शीला! यदि तुम यह बात न उठातीं तो अच्छा था। युरोप की माताओं का अपने बच्चों पर प्रायः अधिकार नहीं होता। उन पर राष्ट्र का अधिकार होता है। वे देश वा राष्ट्र राज विस्तार और दोहन शोषण के लिये लड़े जाने वाले युद्धों में उन बच्चों का प्रयोग करते हैं जिनमें न्याय और मनुष्यत्व का घोर निरादर होता है। यदि युरोप की माताएँ स्वयं अपने बच्चों का लालन पालन और शिक्षण करतीं। संसार के प्राणी मात्र से उन्हें प्रेम करना सिखातीं और दूसरों को लूटने और दास बनाने के लिए लड़े जाने वाले युद्धों में जाने से उन्हें रोकतीं तो यह संसार सुख धाम बन जाता। यदि वे बल-पूर्वक यह आवाज उठातीं कि दूसरी माताओं के बच्चों के गले काटने के लिए हमने बच्चे पैदा नहीं किए हैं तो आज संसार का मान चित्र कुछ और ही होता। अन्धे होकर देश के लिए मर जाना देश भक्ति नहीं कहलाती, वरन् विवेक-पूर्वक देश की सेवा करना ही देश-भक्ति कहलाती है।

दमयन्ती ने कहा 'बहिन! मातृत्व और देश भक्ति को जरा विस्तार पूर्वक समझाएँ तो अच्छा हो।"

कमला ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा, "माता का सबसे बड़ा कर्त्तव्य यह है कि वह अपने बच्चों मे अपने घर वालों के प्रति प्रेम और सेवा-सहायता के भाव भरे। उनमे अपने घर और अपने बन्धुओं और हितैषियों को उन्नत

करने की लग्न और चाव हो। माता का दूसरा काम यह है कि वह अपने बच्चों में अपने पड़ोसियों और नगर के लोगों से प्रेम करने का भाव उत्पन्न करे और वे आवश्यकतानुसार उनकी सेवा-सहायता करें। इस रीति से चतुर माताएँ अपने बच्चों में समाज और देश-सेवा का भाव अंकुरित कर देती हैं और ये बच्चे बड़े होकर समाज और देश के लिये बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं। सेवा के भी कई रूप हैं। यह विषय जरा गम्भीर हो रहा है मुझे भय है कि तुम कहीं उकता न जाओ।'

दोनों बहिनों ने उत्सुकता से कहा 'नहीं बहिन, आप पाठ जारी रक्खें हमें बड़ा रस आ रहा है।'

कमला ने कहा 'कोई अपने शरीर से, कोई अपने धन से, कोई अपनी विद्या बुद्धि से और कोई अपने विमल चरित्र से देश की सेवा करता है। ये सब अपने स्थान पर समाज वा देश के सेवक होते हैं।'

सबको उत्साह और लगन के साथ अपने कुल, नगर, देश और प्राणी मात्र का हित करना चाहिए। साथ ही ऐसे काम करने चाहिएँ जिनसे सब नगरों के रहने वालों को सुख मिले और अन्त में देश के धनी और दरिद्री सुख भोगें। देश में बड़े बड़े कारखाने खुलें। देश की उपज अधिक और उत्तम हो। देश की उत्तम वस्तुएँ परदेश में जहां उनकी कमी हो, भेजी जायँ और देश में सदाचार और विज्ञान विद्या का प्रसार हो। इसी को देशाभिमान कहते हैं।

यों देश-भक्त कहलाने वाले तो बहुत हैं पर काम पड़ने पर वे बग़लें झांकने लगते हैं। बहुत से केवल नाम पाने की इच्छा से काम करते हैं। यह सुनकर सुशीला हँसी और कहा:—

जैसे रामूबाबू! पारसाल शहर में प्लेग हुई तो चुपके से देहात में चले गये। वैसे देश-सेवा की डींग हांकते थे।"

यह सुनकर कमला कुछ मुस्कराई और अपनी बात जारी रखते हुए कहा "तू बड़ी नटखट है। लोगों का मजाक बनाने में बड़ी चतुर हो गई है।"

"जो लोग नाम पैदा करने के लिए विद्याभ्यास, रोजगार वा धर्म के काम करता है वह अपने कुटुम्ब और नगर में अच्छा कहला सकता है पर वह देश भक्त नहीं कहला सकता। जब तक कि कुटुम्ब, नगर, समाज, और देश का उससे कुछ भला न हो। देश को विदेशियों के आक्रमण से बचाने के लिए राजा और शूरवीर लड़ते हैं, परन्तु यह न समझना चाहिए कि केवल वे ही सच्चे देशाभिमानी हैं। जो निर्धन विद्वान् जंगल के बीच एक झोंपड़े के कोने में बैठकर वृक्षों के पत्तों पर ऐसी बातें लिखता है जिनसे देश और विश्व का कल्याण हो और उन्हें जगत् में छोड़ जाता है उसे भी बड़ा भारी देश भक्त समझना चाहिये। संसार का उपकारी होना देश भक्त का मुख्य धर्म और कर्म है। जैसे मक्खियां शहद इकठ्ठा करती हैं और वह सबके काम आता है वैसे ही मनुष्य के आचार, बल, बुद्धि और विद्या के द्वारा अनेक परिणाम निकलते हैं और वे ही देश की संपदा हैं। इस सम्पदा की रक्षा और उसकी सहायता से हजार

गुनी अचल और उपयोगी सम्पदा पैदा करने के लिए जो मनुष्य अपने हिस्से का काम सहर्ष करते हुए अपने देश और संसार के भाइयों का कल्याण करते हैं वे ही सच्चे देश प्रेमी समझे जाते हैं।

"संसार का इतिहास देश-प्रेम विषयक अनेक ज्वलन्त उदाहरणों से प्रकाशमान है। उसकी किञ्चित् झांकी से अनायास ही 'धन्य' शब्द मुँह से निकल पड़ता है। राजपूताने के इतिहास को उठाओ। उसमें जन्म भूमि की रक्षा और प्रेम की ऐसी कहानियाँ भरी हुई हैं जिन्हें पढ़ और सुनकर हृदय गद्‌गद हो जाता है। जब देश प्रेमियों के सामने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' माता और देश स्वर्ग से भी बढ़िया हैं" ऐसे विशुद्ध आदर्श थे। तभी तो उनका देश प्रेम आज अभिमान की वस्तु बना हुआ है।

प्रातः-स्मरणीय महाराणा प्रताप और उनके परिवार ने जन्म-भूमि चित्तौड़ के उद्धार के लिए कौन सा त्याग है जो नहीं किया? कौन सा कष्ट है जो उन्होंने सहन नहीं किया? उनकी करुण कथा आज भी भारत सन्तान के लिये अनुपम सम्पदा बनी हुई है। महाराणा प्रताप के बूढ़े खजाँची भामाशाह की उदारता से कौन परिचित न होगा। जिन्होंने अपने देश की रक्षार्थ अपनी अतुल सम्पत्ति आड़े समय में प्रताप के अर्पण कर दी थी। देश-प्रेम के अनेकों उदाहरण दिए जा सकते हैं।

इङ्गलैंड के राजा तीसरे ऐडवर्ड ने फ्रांस पर चढ़ाई की और कैले शहर को घेर लिया। शहर वालों को भय हुआ कि अंग्रेज शहर में आग लगा देंगे और सब का वध करेंगे। इसलिए उन्होंने ऐडवर्ड के साथ संधि कर ली परन्तु शर्त यह ठहरी कि ६ फ्रांसीसी गले में रस्सी का फंदा लगाकर नंगे पांव फांसी पाने आवें। तत्काल ही युस्टेस डी० सेंट पीअर नाम का एक फरांसीसी अपने शहर के भले के लिए आगे बढ़ा। उसे देखकर पांच आदमी और भी तैयार हो गए। सब के सब शर्त के अनुसार नंगे पांव फांसी की रस्सी गले में डालकर ऐडवर्ड के सामने खड़े हुए। यह दृश्य एडवर्ड की रानी से देखा न गया और उसने राजा के पैरों पर गिरकर उन फरांसीसियों के लिये क्षमा प्रार्थना की। पास ही अंग्रेज सरदार खड़े थे उनकी आंखों में से आंसू बहने लगे। अपने भाइयों के प्राण बचाने के लिए अपने प्राण को तिनके के समान गिनने वाले इन वीर पुरुषों को राजा ने तुरन्त छोड़ दिया और शहर पर से घेरा उठा लिया।

कमला ने ठहर कर कहा कि इस विषय पर बहुत कुछ कहा जा चुका है। अब अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। हमारा सौभाग्य है कि हम इस भारत देश में उत्पन्न हुए हैं जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है इसीलिए इस भूमि को स्वर्ग भूमि कहते हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम मन, वचन और कर्म से अपने देश की सेवा करें और उसकी महिमा पर गर्व करें।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

नाविक से

(लेखिका—कुमारी शैलबाला 'शैल')

ओ नाविक ! नैया खेता चल !
उत्ताल लहर—डगमग नैया !
है डूब रही जीवन नैया !
पर आशा अरे अब भी बाकी,
बस आगे आगे बढ़ता चल !
ओ नाविक ! नैया खेता चल !
क्या कहा ? न दिखता आर पार !
छाया है मग में अन्धकार !
नैराश्य निशा बढ़ती आती,
आशा है तेरी रही मचल !
ओ नाविक ! नैया खेता चल !

है टूट गई पतवार अरे,
उर में छाया नैराश्य अरे !
नाविक ! मत तब भी छोड़ आश,
निश्चय ही होगा आज सफल !
ओ नाविक ! नैया खेता चल !
आशायें जातीं जाने दे,
बाधायें आतीं आने दे !
तू ध्यान लगा अपने पथ पर,
बाधायें होंगी तुझे सरल !
ओ नाविक ! नैया खेता चल !!

अखिल भारतीय आर्य सम्मेलन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ने निश्चय किया है कि प्रति वर्ष देश के किसी-न-किसी भाग में सभा की ओर से अखिल भारतीय आर्य सम्मेलन हुआ करेगा। यह सम्मेलन दीपावली तक हो जाना चाहिये। इस वर्ष के लिये जो प्रान्त अथवा नगर उसे अपने यहां बुलाना चाहें, वह अगस्त की १५ तारीख तक सभा को लिखें। उसके पश्चात् अन्तरंग सभा तारीख तथा स्थान का निर्णय करेगी।

—इन्द्र
मन्त्री सार्वदेशिक सभा

GRANDEUR OR SANSKRIT
"Wonder-Language of World-Culture"

[By Pandit Dhareshvar B.A., Retired Professor of Sanskrit Usmania Univercity, Hyderabad (Deccan.)]

III

"We hardly consider how mysterious is that instinct which suggested to the first poets the extraordinary variety of rhythm which we find in the Veda. "But there is a charm in these primitive strains discoverable in no other class of poetry". Every word retains something of its radical meaning; every epithet tells; "every thought"........if we once disentangle it, "is true correct and camplete" (Prof. Max Muller's Hist. Anct. Sansk. Literature, pp. 552-553).

In the opening article of this series, we placed before the reader three great concepts of 'Ila', Bharati, and Sarsvati (Mother-land, Mother-Language, Mother-culture) i.e. India, Sanskrit, and Veda, which have wielded a wonderful influence upon the unity of World-Culture. We pointed out therein, that in future too they can be depended upon in unifying ennobling and harmonising the different conflicting sections of distracted humanity In the second article, we placed before the reader a few pairs of tiny Sanskrit (Vedic) roots, and showed to what acme of human culture, to what heights of human glory, and to what breadth of out-look on Life and Destiny of Mankind those tiny roots could take us. In this third article we have placed at the head the never-to-be-forgotten remarks of Prof, MaxMuller about the *charm* of Sanskrit (Vedic) words, carrying radical meanings of great value, as they present ideas which "are true correct and complete".

Veda, A Mighty Lever

Thus, if we want to raise and unify humanity, we have in Sanskrit and the Veda, the mightiest levers and links. The unique beauty of Sanskrit rests on the fact, that it is both a philosophic and scientific language of universal human culture. Not only every word gives you a true, correct and complete idea, but also every word defines itself and its sense. We shall give here a few more examples in addition to what we have already given. In the Yajur Veda it is said "Vena sees the Supreme Being". Now the word: *Vena* tells you at once the several qualifications that are required in man to see God. It comes from a root which means activity, knowledge (wisdom), love (devotion) and the splendour of joy. Out of these

several senses, the Latin word Venus (Vedic, Venas-h) has retained only one sense, of love. Men of great activity, wisdom, love and joy can see God; to see God all the four Yogas of Karma, Jnana, Bhakti and Ananda are required, says the Veda, by using the one word Vena. When we have to interpret the Veda we have to look to the root-meanings of Vedic words and then we are on sure ground. Next we take—Man is not only body but mind and soul also. So a fully cultured man is one who trains his body, mind and soul harmoniously. The Vedic word Dharma (from *Dhri* to sustain, to nourish) means the harmony that is necessary to sustain and nourish any organism; be it a plant or a planet, a worm or a world, an animal or a clan, a society or a State, a nation or Nature.

Dharma

Dharma is thus simply the harmony that is needed to sustain an organism, say, the human society; and to keep up this harmony, a perfect balance based on right proportion and proper perspective is absolutely essential. To understand fully what is meant by Dharma, we must know all that is meant by harmony, balance, proportion and perspective. *Manava Dharma* teaches man how to become a real 'whole' man and how to evolve a perfect human society. For this purpose, all the component parts which go to make man and his society are to be trained well so as to work harmoniously. Man is more mind than body, and more soul than mind; hence to have a real man and a perfect society we must train our mind more than the body, and our soul more than our mind, so that our physical and mental powers can be well-directed, and neither allowed to run to waste nor to run wild and be perverted. True education conceived and conducted along these lines of harmony balance and proportion can give us a well-balanced human society. But the un-balanced crude sort of so-called education that mankind now receives is responsible for the unmanning of men and de-humanising of humanity. Ravana, it is said, had ten heads, (i.e.) vast learning; but as he had not trained his heart and soul proportionately to hold in check his wild passions, he with all his "enlightened civilisation" perished, as all un-balanced ds-harmonious civilisations have to.

Body-Mind-Soul

Vid-Div (Veda-Deva)—To illus rate the above truths we take two tiny Sanskrit (Vedic) roots: *Vid-Div*, How small are these; and yet how great and sublime are the truths

they reveal Wonderful is the lesson they teach First root Vid, means Be, Know, Realise It signifies what is known to Indian Philosophy as Sat-Chit-Ananda (Being-Wisdom-Joy), which, again represent Body-Mind-Soul Man is three-in-one (tri-une) as we have already said Veda (from Vid) is the art science and philosophy of Being-Knowing - Becoming (Sat Chit-Ananda) and hence it leads us to Deva, God, *Div* means give, love, win, shine From this root the word Deva (Latin, Deu, Greek, Theo) comes and it means one who gives, loves, wins and shines These are the attributes of divinity, of godly person, of true sages Thus the connection of Vid and Div implies that before a man (the tri-une man of body-mind-soul) can aspire to be godly and divine (Div, Deva) he must go through the training suggested by Vid (Veda) i e he must develop his body mind soul harmoniously, each latter more than the former Veda takes man to Deva (God. Even if we take only one mening of Vid-Div (take-give) we know that without taking, securing and possessing we cannot give, and that to take is human but to give is divine. We point out the fact that the Ashrama-Dharma of Brahmacharya. Grihastha, Vanaprastha, and Sannyasa was based on this same principle of Vid-Div (take-give) During the first perod of 25 years the Aryans had to lead the life of Brahmacharya (Subjective Economy) trying to take, secure assimilate and possess everything that is desirable, such as, knowledge (*Jnana, wisdom*) virtue (*veerya.* manliness, from Sansk Vir, Latin, Vir, a noble brave man) During the next 25 years he had to be a Grihastha, house-holder, both taking and giving (Lena-Dena, as it is known in Hindi) After 50 years he hed to retire as a hermit-teacher into the forest, giving and imparting more—far more, a good deal more to society, that he got from it And lastly, after 50 years, he had to become a true Sam-Nyas-ee, a wandering preacher, giving to the society every thing he got from it, and striving to be a god (giver Deva, divine) loving all life, benefitting all beings, winning all hearts, and shining in all divine glory, thus becoming a truly super-man, a sage, a god, a ministering angel a true servant of God and man! Thus the Aryans led their glorious lives

Varnashrama Dharma

Let us pause here and ponder The Ancient Aryans reducod life and Society to a beautiful scientific order and precision in the form of their Varna-Ashrama-Dharma If we study

the ancient, medieval and classical Sanskrit literature of India we notice three great characteristics of the Indian people 1st, their deep spirituality, 2nd, their scientific and philosophic bent of mind, and 3rd, their essentially poetic temperament. In fact Spirituality, Science-philosophy and poetry can be said to be the very soul, mind and body of the Aryans of India They saw the spirit deeply hid in every thing, with the keen eye of Science-Philosophy, and clothed it in the charming garb of poetry. They were not a people who would rest satisfied with the superficial; because superficiality would never satisfy the real man who is himself the hidden spirit They were a bold brave most original and courageous people who would not rest content until they reached the very root-essence of a thing or problem, 'Ila Bharati, Sarasvati (India, Sanskrit and Veda) made the Aryans reach the pinnacle of virtue nobility and glory !

Inglorious Contrast

Let us again pause and ponder This time over our present plight What an inglorious cantrast does our plight to-day present. We were once the most thoughtful, wise, noble, the most original bold sturdy, the most truth-justice freedom-adoring people; for we than prized, 'Ila', Bharati, Sarasvaati, our mother-land mother-language and mother-culture (Ind-Sanskrit-Veda).

Take only one thing as a woeful contrast, *Brahma-Charya*, the foundation of every thing noble, we have given up, and we have taken to the silly and wily ways of Bhrama Charya (Folly) we have given up Veda and Deva, we have given up the Amara Vak, Sanskrit, we have given up the very things that can make us men and angels and gods in the true sense of these words

---

National Prayer

God bless our ancient Hind,
Ancient Hind, once glorious Hind,
From Sagar Island to the Sind,
From Kashmir to Cape Cormorin,
May perfect peace e'er reign therein,
God bless our peaceful Hind,

Let all her sons in love unite,
And make them do their duty aright,
Fill them with knowledge ever true,
And let their virtue shine anew,
Your Hand the country doth implore,
Give her a hearing, oh ! once more,
National spirit in her do pour,
Extend her frame from shore to shore,
God bless once powerful Hind

Swami Ramtirtha M. A.

आर्य्य-जनता से

'सार्वदेशिक' के गत अङ्क में श्री पण्डित इन्द्र जी का भारत वर्षीय आर्य कुमार परिषद् की प्रौढ़ शिक्षा योजना के सम्बन्ध में एक वक्तव्य दिया जा चुका है। इस आयोजन को सफल बनाने में आर्य-जनता के सहयोग की नितान्त आवश्यकता है। अतः सभी आर्य-बन्धुओं से साग्रह अनुरोध है कि वे परिषद् की इस योजना को अवश्य कार्य-रूप में परिणत करें। आर्य-समाज के मन्त्री-महोदयों, आर्य-स्कूलों, कालेजों व गुरुकुलों के अध्यापकों, सञ्चालकों एवं व्यवस्थापकों से आग्रह-पूर्वक अनुरोध है कि वे इस योजना को अपने समाज और संस्था की ओर से चलायें। भारतवर्ष मे शिक्षा के क्षेत्र मे आर्य-समाज ने सबसे आगे कदम रक्खा है। हमे आशा है कि प्रौढ़ शिक्षा के कार्य मे भी वह किसी से पीछे न रहेगा।

परमेश्वरदयाल विद्यार्थी
बी०ए०, एल०एल०बी० मन्त्री, आ० कु० परिषद्

कुमार-सभाओं का नवीन कार्य्य क्रम

किसी भी जागृत संस्था का चिह्न यह है कि उसके पास समयानुकूल नवीन कार्य-क्रम हो। ऐसा कार्य-क्रम जिससे देश मे जागृति हो, जिससे देश की व समाज की उन्नति हो और जिसके द्वारा देश की समुचित सेवा हो सके। आर्य कुमार सभाओं के वर्तमान कार्य्य क्रम में इस प्रकार की समयानुकूलता का अभाव प्रायः सभी को खटकता है। अतः आर्य-कुमारों एवं आर्य-विद्वानों से हमारा नम्र निवेदन है कि वे कुमार सभाओं के लिए नया कार्यक्रम बनाएँ।

परिषद् ने सभी कुमार सभाओं को लिखा था कि वे अपनी मासिक कार्य की रिपोर्ट परिषद् के कार्यालय में भेजा करें। परन्तु खेद है कि अधिकांश कुमार सभाओं ने अभी तक अपनी मासिक रिपोर्ट नहीं भेजी है। कुमार सभा के मन्त्रियों को चाहिए कि वे हर महीने की १० ता० तक अपने कार्यालय से मासिक रिपोर्ट भेज दिया करें। जिन कुमार सभाओं की मासिक रिपोर्टें प्राप्त हुई हैं। उनका मुख्य कार्य विवरण नीचे दिया जाता है: -

उरई—

अधिवेशनों में भाग लेने वाले सदस्यों की औसत उपस्थिति ५० रही, जो प्रशंसनीय है। एक व्यायाम-शाला व अखाड़ा भी है जिसमे १० युवक

प्रतिदिन लाठी सीखते हैं। २०-६-४२ को कुमार-सभा का मासिक पारितोषिक वितरण दिवस धूम-धाम से मनाया गया। १५ जुलाई से प्रौढ़ पाठशाला के लिये रात्रि-पाठशाला आरम्भ हो रही है।

हापुड़—

कुमार-सभा की ओर से समाज मन्दिर मे व्यायाम-शाला चल रही है जिसमे ७० सदस्य प्रतिदिन आते हैं। एक शिक्षक भी रखा हुआ है। शाम को सम्मिलित रूप से सध्या होती है। प्रौढ़ परिषद् की प्रौढ़ शिक्षा योजना के अनुसार २० दिन से रात्रि पाठशाला आरम्भ हो गई है।

जमालपुर गागरी (बिहार)

कुमार सभा की ओर से एक पुस्तकालय और वाचनालय तथा व्यायाम-शाला चल रही है जिस मे १५ कुमार प्रतिदिन व्यायाम करते हैं। लाठी, तलवार आदि की शिक्षा भी दी जाती है। प्रौढ़ शिक्षा के दो केन्द्र बनाए गये हैं। श्री उमाकान्त गुप्त 'किरण' तथा श्री शुकदेव प्रसाद जी इसके लिए विशेष प्रयत्न कर रहे हैं। बिहार की कुमार-सभाए जिस लगन व उत्साह से काम कर रही हैं वह दूसरी कुमार सभाओं के लिये अनु-करणीय है।

पसरूर—

आर्ययुवक समाज की ओर से एक व्यायाम शाला खुल रही है। प्रौढ़ पाठशाला का आयोजन भी किया गया है। यहा के उत्साही मत्री श्री देवीदास जी ने इधूचक मे एक आर्य-युवक समाज की स्थापना की है।

भोपाल—

गत २० जून को श्री मास्टर कालिका प्रसाद जी के सभापतित्व में एक आर्य्य-कुमार-सभा स्थापित हो गई है। इसके निम्न पदाधिकारी चुने गए है—

प्रधान—प० महिपाल पथिक।

मन्त्री—श्री आनन्द स्वरूप जी।

कोषाध्यक्ष—श्री विक्रमादित्य जी।

बुरहानपुर—

सभा की ओर से ४ साप्ताहिक सत्सग हुए जिनमे लेख-पठन-भाषण, वाद विवाद प्रतियोगिता तथा वेद पाठ आदि हुए। एक गाव मे एक युवक का यज्ञोपवीत किया और ग्राम-वासियों की एक सभा की जिसमे प्रचार किया गया। १६ जून को एक महिला की शुद्धि की गई।

आगामी परीक्षायें

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की ओर से भारत के भिन्न २ केन्द्रों मे इस वर्ष अगस्त १६४२ तथा जनवरी १६४३ मे सिद्धान्त सरोज, रत्न, भास्कर और शास्त्री आदि परीक्षाएँ होंगी। इस वर्ष परीक्षाओं की पाठ विधि सरल तथा कम कर दी गई है और परीक्षा शुल्क भी घटा दिया गया है। परीक्षाओं की तिथियों की सूचना समय पर पत्रों द्वारा दे दी जावेगी। परीक्षाओं में सम्मिलित होने के इच्छुकों को कार्यालय से आवेदन पत्र बिना मूल्य मगा कर शीघ्र भर देने चाहिए जिस से वे इसी वर्ष परीक्षाओं मे बैठ सकें।

देवव्रत धर्मेन्दु
परीक्षा मन्त्री

आर्य कुमार परिषद् की परीक्षाओं के विषय में श्री बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट उपप्रधान आर्य्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० का

वक्तव्य

स्वाध्याय मनुष्य का परम कर्तव्य है। पातजल योग दर्शन मे आत्मा के उत्थान के लिए जो पांच

सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा (देहली) के निश्चयानुसार हैदराबाद सत्याग्रह मे अपने प्राणों की आहुति देने वाले आर्य्य वीरों की पुण्य-स्मृति मे श्रावण शुक्ला पूर्ण मासी तदनुसार २६ अगस्त १९४२ को सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस मनाया जायेगा इसी दिन श्रावणी का पुण्य पर्व है। इसका कार्यक्रम श्रावणी उपाकर्म के साथ मिलाकर निम्न प्रकार किया जाय:—

[१]

प्रात.काल ७ बजे आर्यसमाज मन्दिरों में सभायें की जाये जिनमें उपाकर्म कार्यवाही के पश्चात् सब उपस्थित भद्र पुरुष तथा देवियां मिलकर निम्न प्रकार पाठ करें:—

(१) ओ३म् ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः। तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे वयं स्याम ये च सूरयः ॥ ऋग्वेद

(२) ओ३म् अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ॥ यजुर्वेद

(३) ओ३म् इन्द्रं वर्धन्तो अप्तुरः कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अराव्णः ॥ सामवेद

(४) ओ३म् उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः। दीर्घं न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम ॥ अथर्ववेद

आर्य समाजों के पुरोहित अथवा अन्य कोई वेदज्ञ विद्वान् इन मन्त्रों का तात्पर्य निम्न शब्दों में पढ़कर प्रार्थनादि कराएँ।

(१) जो विद्वान् सदा सत्य के माग पर चलते

नियम दिए हैं उनमें एक स्वाध्याय भी है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में धार्मिक पुस्तकों के स्वाध्याय व उनके पठन पाठन के लिए स्थान बिल्कुल नही है और प्रारम्भिक काल की यह त्रुटि जीवन भर बनी रहती है। यह इसका ही परिणाम है कि आर्य समाज में मनुष्य वर्षों से सम्मिलित हैं परन्तु न स्वाध्याय की ओर रुचि है और न सिद्धान्तों का ज्ञान।

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् ने जो परीक्षाएँ प्रचलित की हैं वे अत्यन्त उपयोगी हैं। उनमें बालक और बालिकाएँ भी सम्मिलित हो सकते हैं और उनसे बड़ी आयु वाले भी लाभ उठा सकते हैं। इनकी चार परीक्षाएँ हैं—सिद्धान्त सरोज, सिद्धान्त रत्न, सिद्धान्त भास्कर, और सिद्धान्त शास्त्री।

यह बात निस्सन्देह कही जा सकती है कि ये परीक्षाएँ वैदिक साहित्य के प्रचार का अपूर्व आयोजन हैं प्रत्येक आर्य (हिन्दू) नर नारी, बालक, बालिकाओं को इनसे लाभ उठाना चाहिए।

हुए सत्य की निरन्तर वृद्धि और असत्य के विरोध में तत्पर रहते हैं उनके सुखदायक उत्तम आश्रय में हम सब सदा रहें तथा हम भी उनकी तरह मन, वचन और कर्म से पूर्ण सत्यनिष्ठ बनें।

(२) हे ज्ञान स्वरूप, सब उत्तम सङ्कल्पों और कर्मों के स्वामी परमेश्वर! हम आज से एक उत्तम व्रत ग्रहण करते हैं जिसके पूर्ण करने की शक्ति आप हमें प्रदान करें ताकि उस व्रत के ग्रहण से हमारी सब तरह से उन्नति हो। वह व्रत यह है कि असत्य का सर्वथा परित्याग करके हम सत्य की ही शरण में आते हैं। आप हमें शक्ति दें कि हम अपने जीवनों को पूर्ण सत्यमय बना सकें।

(३) हे मनुष्यो! तुम सब आत्मिक शक्ति तथा उत्तम ऐश्वर्य को बढ़ाते हुए कर्मशील बनकर उन्नति में बाधक आलस्य प्रमादादि दुर्गुणों का परित्याग करते हुए सारे संसार को आर्य अर्थात् श्रेष्ठ सदाचारी धर्मात्मा बनाओ।

(४) हे प्रिय मातृ भूमे! हम सब तेरे पुत्र और पुत्रियां तेरी सेवा में उपस्थित होते हैं। सर्वथा नीरोग स्वस्थ तथा ज्ञान सम्पन्न होते हुए हम दीर्घ आयु को प्राप्त हों और तेरी तथा धर्म की रक्षा के लिये आवश्यकता पड़ने पर अपने प्राणों की बलि देने को भी तैयार रहें।

इसके पश्चात् मिलकर निम्न कविता का गान किया जावे:—

धर्मवीरों के प्रति श्रद्धाञ्जलि

श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हम,
करके उन वीरों का मान!
धार्मिक स्वतन्त्रता पाने को,
किया जिन्होंने निज बलिदान॥
परिवारों के सुख को त्यागा,
युवक अनेकों वीरों ने।
कष्ट अनेकों सहन किये पर,
धर्म न छोड़ा धीरों ने॥
ऐसे सभी धर्मवीरों के,
आगे सीस झुकाते हैं।
उनके उत्तम गुण गण को हम,
निज जीवन में लाते हैं॥
अमर रहेगा नाम जगत में,
इन वीरों का निश्चय से।
उनका स्मरण बनाएगा फिर,
वीर जाति को निश्चय से॥
करें कृपा प्रभु आर्य जाति में,
कोटि कोटि हों ऐसे वीर।
धर्म देश हित जोकि खुशी से,
प्राणों की आहुति दें धीर॥
जगदीश्वर को साक्षि जानकर,
यही प्रतिज्ञा करते हैं।
इन वीरों के चरण चिन्ह पर,
चलने का व्रत धरते हैं॥
सर्व शक्तिमय दें बल ऐसा,
धीर वीर सब आर्य बनें।
पर उपकार परायण निशि दिन,
शुभ गुण धारी आर्य बनें॥

धर्मवीर नामावली

श्यामलाल जी महादेव जी,
रामा जी श्री परमानन्द।

माधव राव विष्णु भगवन्ता,
श्री स्वामी कल्याणानन्द ॥
स्वामी सत्यानन्द महाशय-मल-
खाना श्री वेद प्रकाश।
धर्म प्रकाश राम नाथ जी,
पाण्डुरङ्ग श्री शान्ति प्रकाश ॥
पुरुषोत्तम जी ज्ञानी लक्ष्मणराव
सुनहरा वेंकट राव।
भक्त अरूडा मातु राम जी,
नन्हूसिंह श्री गोविन्द राव ॥
वदन सिंह जी रत्तीराव जी,
मान्य सदा शिव ताराचन्द।
श्रीयुत छोटेलाल अशर्फीलाल,
तथा श्री फकीरे चन्द ॥
माणिकराव भीमराम जी,
महादेव जी अर्जुनसिंह।
सत्यनारायण, बैजनाथ ब्रह्मचारी,
दयानन्द—नर सिंह ॥
राधाकृष्ण सरीखे निर्भय अमर
हुए इन वीरों का।
स्मरण करें विजयोत्सव के दिन,
सब ही वीरों धीरों का ॥

[२]

एक व्याख्यान कराया जावे जिसमें इन वीरों ने जिस प्यारे वैदिक धर्म के लिए अपने प्राणों की आहुति दी है उसका संसार के कोने २ में प्रचार करने के लिये अपील की जाय और धन संग्रह करके सार्वदेशिक सभा को भेजा जावे।

प्रत्येक आर्य नर-नारी का कर्तव्य है कि इस दिन वैदिक धर्म के देशदेशान्तर प्रचार के लिए यथा-शक्ति धन प्रदान करें।

[३]

सायंकाल ६ से ७ तक आर्य वीर दल का सामूहिक प्रदर्शन (Rally) हो जिसमें ओ३म् की ध्वजारोहण के पश्चात् उपरोक्त कविता का गान किया जाए। तत्पश्चात् आर्य वीरों के व्यायाम के करतब दिखाये जायें और यथा सम्भव सर्वोत्तम करतब दिखाने वाले आर्य वीरों को पारतोषिक दिया जाय।

नोट—जिन स्थानों पर आर्य वीर दल नहीं है वहां इस दिन आर्य वीर दलों की स्थापना की जाय और सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित नियमों के अनुसार उनका सङ्गठन किया जाए।

मन्त्री—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

आर्य समाज स्थापना निधि

जुलाई मास में प्राप्त धन राशि

आर्य समाज	मझजर (रोहतक)	३)
” ”	फैजाबाद	५)
” ”	गाजियाबाद	१०)
श्री ज्ञानेन्द्र प्रभुजी	कश्मीरी तीर्थ हल्ली	१०)
आर्य समाज	मेरठ	१६॥)
” ”	पुरवा (उन्नाव)	२॥=)
” ”	सरदार पुर (जोधपुर)	११)
” ”	काकल	१५)

आशा है अन्य आर्य समाजें भी उक्त धन-राशि भेज कर अपने कर्तव्य का पालन अवश्य करेंगी।

सौर पंचांग संशोधन

(ले०—श्री प० गङ्गाप्रसाद जी रिटायर्ड चीफ जस्टिस का० प्रधान सार्वदेशिक सभा देहली)

१—नागरी प्रचारिणी सभा काशी की जयन्ती

नागरी प्रचारिणी सभा काशी ने अपनी स्वर्ण जयन्ती के साथ जो आगामी सम्वत् २००० वि० अर्थात् सन् १९४३ ई० मे होने वाली है, विक्रम की द्वि सहस्राब्दी मनाने की योजना भी की है। इस सम्बन्ध में पचाग सशोधन का काय भी रक्खा गया है जिसके सयोजक श्री सम्पूर्णानन्द जी हैं, जो कि कॉंग्रेस के शासन समय मे शिक्षा-सचिव थे।

२—पंचांग शोध सम्बन्धी मुख्य प्रश्न

माघ १९९८ की नागरी प्रचारिणी पत्रिका मे श्री सम्पूर्णानन्द जी का एक लेख छपा है जिसमे उन्होंने पचाग शोध के सम्बन्ध मे तीन प्रश्नों का उल्लेख किया है और सात विद्वानों की एक समिति बनाने का विचार प्रकट किया है। जो यह निश्चय करें कि उक्त प्रश्नों पर विचार करना कहा तक उचित तथा व्यावहारिक होगा और इस विचार के लिए काशी मे एक सम्मेलन करना ठीक होगा या नहीं, इत्यादि।

३—सौर वर्ष की संक्रांतियों में २१ दिन का अन्तर

पूर्वोक्त तीन प्रश्नों में सबसे पहला प्रश्न यह रक्खा गया है कि हमारे सौर पचॉग में सक्रान्ति की तिथियां दृश्य गणित से नहीं मिलतीं जैसे मेष वा वैशाख की सक्रान्ति १३ अप्रैल को पड़ती है। यह विषुवत सक्रान्ति कहलाती है जो दृश्य गणित के अनुसार २३ मार्च को आनी चाहिये, क्योंकि उसी समय दिन और रात समान होते हैं और विषुवत शब्द का अर्थ भी यही है, जैसा कि अमर काष मे कहा है "समरात्रिंदिवे काले विषुवद्विषुवञ्च तत्" अर्थात् जब दिन और रात समान हों उसको विषुवत् और विषुव कहते हैं। इसी प्रकार मकर सक्रान्ति वर्तमान पचाग के अनुसार १३ जनवरी को आती है जो वास्तव में २४ दिसम्बर को होनी चाहिए, क्योंकि उसी दिन से सूय के उत्तरायण मे आने से दिन का बढ़ना आरम्भ हो जाता है। इस प्रकार हमारे वर्तमान पचाग व दृश्य गणित की सक्रान्ति में २१ दिन का अन्तर है। यह विषय बडे महत्त्व का है और मै इसी पर अपने विचार पूर्वोक्त विद्वत्समिति के लिए और साधारणतया जनता के लिए प्रकट करना चाहता हूँ।

४—यह २१ दिन का अन्तर कैसे हुआ

हमारा सौर वर्ष ३६५ दिन का है परन्तु चौथे वर्ष १ दिन बढ़कर ३६६ दिन का होता है जैसा कि अग्रेजी पचाग मे भी चौथे वर्ष फरवरी मास २८ दिन के स्थान मे २९ दिन का होता है। इस प्रकार सौर वर्ष ३६५½ दिन का हुआ। परन्तु विज्ञान और ज्योतिष के अनुसार सूर्य के चारों ओर पृथिवी की परिक्रमा का समय ३६५ दिन

५ घंटा ४८ मिनट ४६ सेकण्ड है जो तीन सौ सवा पैंसठ दिन से ११ मिनट १४ सेकण्ड कम हुआ। हमारे सूर्य सिद्धान्तादि ज्योतिष के ग्रन्थों में भी सौर वर्ष का मान तीन सौ पैंसठ दिन छः घण्टे से कुछ कम ही माना गया है। यह ११ मिनट १४ सैकण्ड का फर्क प्रति वर्ष बढ़ते बढ़ते सहस्रों वर्षों में बहुत हो जाता है। हमारे वर्तमान सौर पंचांगों में जो २१ दिन का फर्क है वह इसी प्रकार हुआ।

५—भारतीय ज्योतिष के अनुसार उसका कारण

पूर्वोक्त फर्क का कारण हमारे ज्योतिषी अयनांश Precession of Equinoxes को बतलाते हैं। सौर वर्ष वैशाख १ को आरम्भ होता है। हमारे भारतीय ज्योतिष का मत है कि आरम्भ काल में बैशाख १ को ही दिन रात समान थे और इसलिये उसका नाम विषुवत संक्रांति यथार्थ था। परन्तु अयन गति के कारण विषुवत का समय प्रति वर्ष ५४ विकला घटता जाता है। इस प्रकार ६६ वर्ष ८ मास में एक पूरे दिन का अन्तर हो जाता है। इस समय २१॥ दिन से कुछ अधिक का अन्तर है। अब मेष संक्रांति वा वैशाख १ वर्तमान पंचांगों में १३ अप्रैल को दिखाई जाती है। वास्तव में दिन और रात ९ चैत्र अर्थात् २३ मार्च को समान हो जाते हैं और उसी दिन हमारे पंचाङ्गों में 'सायनमेषेऽर्कः' अथवा 'मेषे रव्योर्कः' लिखा रहता है। जिसका अभिप्राय: है कि वास्तव मे सूय ९ चैत्र को मेष राशि में प्रवेश कर गया और देखा गया। यही असली मेष संक्रांति है। क्योंकि संक्रांति शब्द सम् पूर्वक क्रमु (पाद विक्षेपे) धातु से बना है जिसका अर्थ संक्रमण करना है।

६—सायन और निरयण मत

इस विधि को "सायन" विधि कहते हैं। १३ अप्रैल को अर्थात् विषुवत् से २१ दिन पश्चात् जो मेष संक्रांति मानी जाती है उसको 'निरयन' मत कहते हैं। सायन मत ही विज्ञान और वस्तु स्थिति के अनुकूल होने से ठीक है। हमारे ज्योतिषी इस बात को मानते हैं कि यह अन्तर जो इस समय २१॥ दिन का है बढ़ता जायगा। उनके अनुसार आगामी १८८८ शक अर्थात् १९६६ ईस्वी वा २०२३ वि० में पूरे २२ दिन का अन्तर हो जायेगा। और इसी प्रकार बढ़ता रहेगा, जब तक कि २७ दिन अयनांश न हो जावे।

७—योरप के पंचांग का संशोधन

इस प्रकार का अन्तर योरप के पंचांग में भी था और ईसा की १६ वीं शताब्दी में दस दिन का फर्क पड़ गया था। रोम के पोप ग्रेगरी Gregary V ने जो स्वयं भी ज्योतिष में निपुण था उसका संशोधन इस प्रकार किया कि सन् १५८२ ई० में १० दिन छोड़ दिये गये अर्थात् ४ अक्टूबर के पश्चात् १५ अक्टूबर तारीख मानी गई। आगे के लिये इस फर्क को रोकने का उपाय इस प्रकार किया गया।

जैसा ऊपर लिखा गया है विज्ञान के अनुसार सौर वर्ष का सही मान ३६५ दिन ५ घंटा ४८ मिनट ४६ सैकण्ड होता है और सौर वर्ष साधारण रीति से ३६५ दिन ६ घण्टे का होता है। अर्थात् एक वर्ष में ११ मि० १४ सैकण्ड का फर्क हुआ, यह फर्क १२८ वर्ष में १ दिन का,

और ४०० वर्ष में लगभग ३ दिन का हो जाता है। इसलिए पोप ग्रेगरी के संशोधन के अनुसार यह परिवर्तन किया गया कि जो वर्ष १०० से विभाजित हो सके उसमें फरवरी मास २८ दिन का ही होगा परन्तु जो ४०० से विभाजित हो सके उसमें २९ दिन का होगा। इस प्रकार ४०० वर्षों में ३ दिन कम हो गये। कुछ थोड़ा-सा अर्थात् २६ सैकण्ड का अन्तर फिर भी रहता था। उसका संशोधन इस प्रकार किया गया कि जो सन् ४००० से विभाजित हो जावे उसमें फरवरी २८ दिन की ही होगी। इस संशोधित पंचांग को ग्रेगरी का पंचांग Gregarian calender कहते हैं जो अब सारे योरप और अमरीका में माना जाता है।

८—भारतीय पंचांग का संशोधन

हमारे और पंचांग का संशोधन भी इसी प्रकार हो सकता है, अर्थात् आगामी २००० वि० सम्वत् में चैत्र मास के २२ दिन छोड़ दिये जावें और ९ चैत्र के पश्चात् सं० २००१ वि० का प्रथम दिन वैशाख माना जावे, और भविष्य के लिए वही योजना रक्खी जावे जिसका ऊपर वर्णन किया गया। अभिप्राय केवल यह है कि भारतीय पंचांग "सायन विधि" अर्थात् दृश्य गणित के हिसाब से बनाये जांय, जिसको हमारे सब ज्योतिषी जानते व समझते हैं। ऐसा करने से हमारा पंचांग शुद्ध होकर बिल्कुल विज्ञान के अनुकूल हो जावेगा और योरोपीय पंचांग के अनुकूल होते हुए एक प्रकार उससे भी अधिक महत्त्व का होगा। क्यों कि हमारे वर्ष का आरम्भ सदा ठीक ऐसे दिन हुआ करेगा जब रात दिन समान हों अर्थात् असली विषुव Vernal Equinox के दिन, और हमारा वर्षार्द्ध इसी प्रकार दूसरे असली विषुव Autumnal Equinox अर्थात् २३ सितम्बर को होगा। हमारी मकरसंक्रान्ति २४ दिसम्बर को होगी जिस दिन से सूर्य Winter solstice उत्तरायण में जाता है, और दिन का बढ़ना आरम्भ हो जाता है। इसी प्रकार कर्क सक्रांति २३ जून को होगी जिस दिन से सूर्य Summer solstice दक्षिण में जाता है और दिन का घटना आरम्भ होता है।

९—इसके लिए आन्दोलन

मैंने इस विषय पर एक लेख सन् १९३३ में "आर्यमित्र" और 'सार्वदेशिक" में छपवाया था जो काशी के दैनिक "आज" में "विज्ञान" में और लाहौर के "हिन्दी मिलाप" में भी छपा था।" हिन्दी मिलाप में इस विषय में लेखों द्वारा कुछ वादविवाद भी हुआ था। उसी वर्ष अजमेर में "सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा" की ओर से दयानन्द निर्वाण अर्द्ध शताब्दी मनाई गई थी और सभा की आज्ञा से यह विषय धर्मार्थ सभा के सामने रक्खा गया था। उक्त सभा ने अपने १९-१०-३३ के निश्चय संख्या ७ द्वारा पूर्वोक्त योजना को स्वीकार करके यह निश्चय किया कि उसकी एक प्रति पंचांगों के सम्पादकों को भेजी जाय और मुख्य पत्रों को भेजकर इस विषय की ओर ज्योतिष के विद्वानों और जनता का ध्यान आकर्षित किया जावे।

मैंने उसी समय अपने पूर्वोक्त लेख की एक प्रति श्री शिवप्रसाद जी गुप्त के पास भेजी थी जिनकी ओर से ज्ञान मण्डल प्रेस काशी से और

पंचांग प्रकाशित होता है। उन्होंने मेरे प्रस्ताव से सहानुभूति प्रकट की थी। मैंने अपने पत्र के साथ एक प्रति श्री पूज्य महामना पं० मदनमोहन मालवीय जी के पास भी भेजी थी उन्होंने उस पर विचार करने की आशा दिलाई थी।

१०—सन् १६३५ में इन्दौर के ज्योतिर्वित सम्मेलन में इस पर विचार और निश्चय

सन् १६३५ में १०, ११ तथा १२ नवम्बर को इन्दौर में अखिल भारतवर्षीय ज्योतिर्वित् सम्मेलन श्री पूज्य मालवीय जी की अध्यक्षता में हुआ था। उसमें यह विषय भी रक्खा गया था। टेहरी राज्य के प्रमुख ज्योतिषी श्री पं० मेदिनीधर शर्मा जो राज्य की तरफ से पञ्चाग निर्माण करते हैं, उस सम्मेलन में उपस्थित हुए थे। उनसे मुझको ज्ञात हुआ कि पूर्वोक्त प्रस्ताव का कुछ ज्योतिषियों ने समर्थन किया, परन्तु वह बहुमत से गिर गया। और इस विषय पर जो निश्चय संख्या ८ निर्धारित हुआ वह इस प्रकार था, "इस सम्मेलन के मत में धर्मकृत्योपयोगी पंचांग के लिए निरयन मानही ग्रहण करना चाहिये तथा सायन संक्रान्ति भी लिखी जानी चाहिए।"

११ उक्त निश्चय के सम्बन्ध में मेरे विचार

प्रस्तुत संशोधन का अभिप्राय केवल यही है कि हमारे पञ्चाग सायन मत के अनुसार बनाये जावें। मुझे कुछ ज्योतिषियों से इस विषय पर वार्तालाप करने का अवसर हुआ, वे उपर्युक्त संशोधन के महत्त्व को मानते हुए उसमें बहुधा केवल यही आपत्ति बतलाते हैं कि सायन विधि के अनुसार संक्रान्ति मानने से उनमें वह पुण्योत्पन्न करने की शक्ति नहीं होगी जो निरयण मत के अनुसार होती है। यही अभिप्राय पूर्वोक्त इन्दौर के ज्योतिर्वित् सम्मेलन के प्रस्ताव का भी प्रतीत होता है। यह विषय फलित ज्योतिष का है। दुःख की बात है कि फलित के झूठे विचारों के कारण गणित के स्पष्ट सत्य और वस्तु स्थिति का तिरस्कार किया जाता है। यह भी लिखना आवश्यक है कि हमारे त्यौहार और पर्व बहुत संख्या में चान्द्र वर्ष अर्थात् तिथियों के अनुसार होते हैं। सौर पञ्चाग के पूर्वोक्त संशोधन से उनमें कोई अन्तर नहीं आवेगा।

चान्द्र वर्ष ३५५ दिन का होता है। उसका सौर वर्ष से मिलान करने के लिये तीसरे वर्ष एक अधिमास जोड़ा जाता है। उसका भी हमारे ज्योतिषी उसी प्रकार संशोधित सौर पंचांग के साथ मिलान करते रहेंगे। कुछ थोड़े पर्व सौर पंचांग के अनुसार भी होते हैं, जैसे विषुवत् संक्रांति आदि, इन में अवश्य यह अन्तर पड़ेगा कि वर्तमान में यह बहुधा 'निरयण' विधि के अनुसार माने जाते हैं तब सायन विधि के अनुसार होंगे। क्रमशः

आर्य वीर दल संगठन—

पाठक इसी अंक में अन्यत्र सार्वदेशिक सभा के मान्य मन्त्री श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति की आर्य वीर दल संगठन विषयक अपील पढ़ चुके हैं। देश की वर्तमान तथा भविष्य संकटमय परिस्थिति को देखते हुए इस समय आर्य वीर दल के संगठन की अत्यधिक आवश्यकता है। इससे कोई विचारशील आर्य इन्कार नहीं कर सकता। आर्य समाजों और प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभाओं ने सार्वदेशिक सभा की इस विषयक योजना का स्वागत किया है तथा आर्य वीर दलों की स्थापना अनेक स्थानों पर हो गई है यह हर्ष की बात है। लायलपुर इत्यादि कई स्थानों में तो आर्य वीर दल ही नहीं बल्कि आर्य वीरांगना दल और आर्य बाल दल का भी संगठन हो चुका है। आर्य वीरों ने अनेक स्थानों पर रात में पहरा तथा अन्य प्रकार से जनता की रक्षा और सेवा का कार्य शुरू कर दिया है यह जानकर प्रसन्नता होती है किन्तु अभी इस आर्य वीर दल के संगठन की प्रगति को बहुत तेज करने की आवश्यकता है। सार्वदेशिक सभा कार्यालय में प्राप्त सूचनाओं के अनुसार अब तक लगभग दस हजार आर्य वीर विविध दलों में सम्मिलित हो चुके हैं। इस संख्या को शीघ्र ही कम से कम एक लाख तक पहुँचाना चाहिए और यत्न करना चाहिये कि आर्य वीर अपने को भावी संकट के समय दुःखितों की सहायता, अनाथों और विधवाओं तथा आपद् ग्रस्तों की रक्षा और सेवा के पवित्र कार्य के लिए सब प्रकार से योग्य बनायें। आशा है सब आर्य समाजें और आर्य प्रतिनिधि सभाएँ समय की विशेष आवश्यकता को दृष्टि में रखती हुई इस संगठन को दृढ़ करने में कटिबद्ध हो जाएँगी तथा सार्वदेशिक सभा द्वारा बदरपुर में संचालित आर्य वीर शिक्षण केन्द्र (बदरपुर, तुग़लकाबाद स्टेशन के समीप) से अधिकतम लाभ उठाएँगी।

अंग्रेज़ी में आर्य साहित्य—वैदिक मैगज़ीन का पुनरुज्जीवन

आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है जिसका एक प्रधान साधन सत्य सनातन सार्व भौम वैदिक धर्म का देशदेशान्तर में प्रचार करना है। यह महान् उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता जब तक देश और विदेशों की प्रसिद्ध भाषाओं में वेदादि सत्य शास्त्रों की व्याख्या परक उत्तम ग्रन्थ तथा पत्र न हों। उत्तम साहित्य के बिना धर्म का प्रचार शिक्षित जनता में होना असम्भव है। यह खेद की बात है कि इस अत्यावश्यक विषय की ओर अभी तक पर्याप्त ध्यान

नहीं दिया गया जिसका परिणाम यह है कि अब तक चारों वेदों के शुद्ध अनुवाद की तो बात ही क्या है एक भी वेद का शुद्ध अनुवाद अंग्रेजी में विद्यमान नहीं है और शुद्ध रूप में आर्य सिद्धान्तों का प्रचारक एक भी उच्च कोटि का अंग्रेजी पत्र नहीं है। वैदिक धर्म की सार्व भौमता का दावा करने वाली आर्य समाजों के लिये यह अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। हमें यह जान-कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने स्व० मेधावी आर्य विद्वान् श्री पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी द्वारा प्रवर्तित और सुयोग्य आर्य नेता श्री आचार्य रामदेव जी तथा पं० चमूपति जी द्वारा सम्पा-दित 'वैदिक मेगज़ीन' के पुनरुज्जीवन का निश्चय कर लिया है यदि प्रारम्भ में कम से कम २०० ग्राहक ५) वार्षिक चन्दा देने वाले मिल जायें। लगभग ४० लाख आर्यों में २०० ग्राहक मिलना ज़रा भी कठिन नहीं है आशा है यह अत्यावश्यक कार्य अति शीघ्र योग्यता-पूर्वक प्रारम्भ कर दिया जाएगा। इस पत्र के द्वारा वेदों के शुद्ध अंग्रेज़ी अनुवाद के कार्य के प्रकाशित होने और जनता के सामने आने में भी सहायता मिलेगी। स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी के देहावसान पर उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हुए भी मैंने लिखा था कि "वैदिक मैगज़ीन" का पुनरु-जीवन उनका एक अत्युत्तम स्मारक होगा। आर्यजनता को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि सार्वदेशिक सभा की ओर से सामवेद का अंग्रेज़ी अनुवाद मैंने प्रारम्भ कर दिया है। आशा है अन्य सुयोग्य आर्य विद्वान् अन्य वेदों का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रारम्भ करने का शुभ सङ्कल्प करेंगे जिससे सब के सहयोग से इस अत्यावश्यक कार्य की जो निस्सन्देह जगत् के पुनर्निर्माण कार्य में विशेष सहायक होगा, पूर्ति शीघ्र हो जाए। सार्वदेशिक सभा के स्थिर पुस्तकालय को भी इस दृष्टि से उन्नत किया जारहा है कि वेद-वेदाङ्ग विषयक सब उत्तम ग्रन्थों का संग्रह उसमें हो। इस कार्यार्थ भी वेदप्रेमी दानी महोदयों की उदार सहायता की आवश्यकता है। सभा के निवेदन पर गुरुकुल कांगड़ी, संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, परोपकारिणी सभा अजमेर, स्वाध्याय मण्डल औंध इत्यादि जिन संस्थाओं ने अपने उत्तम प्रकाशनों को सार्वदेशिक सभा पुस्त-कालयार्थ उपहार स्वरूप भेजने की कृपा की है उन्हें सभा की ओर से धन्यवाद समर्पण करते हुए हम आशा करते हैं कि अन्य आर्य संस्थायें तथा प्रकाशक भी वेद, वेदाङ्ग, धर्म और समाज विषयक अपने प्रकाशनों को सभा पुस्तकालयार्थ उपहार रूप भेज कर पुण्य के भागी बनेंगे।

अशोकाश्रम की स्थापना

'सार्वदेशिक' के गत अङ्क में हमने श्री पं० धर्मदेव जी शास्त्री दर्शन केसरी का कौन सार बावर की पिछड़ी जातियों के उद्धार तथा उनमें वैदिक धर्म प्रचारादि विषयक आयोजना प्रकाशित करते हुए उसका अभि-नन्दन किया था। यह प्रसन्नता की बात है कि गत मास अशोकाश्रम की स्थापना करदी गई है और धर्मा-र्थ चिकित्सालय इत्यादि द्वारा सच्ची सेवा का कार्य प्रारम्भ कर दिया गया है। इस प्रकार की सेवा से ही धर्म का यथार्थ प्रचार हो सकता है यह हमारा दृढ़ विश्वास है। अपने मान्य मित्र श्री पं० धर्मदेव जी शास्त्री का हम इस क्रियात्मक सेवा कार्य के लिये पुनः अभिनन्दन करते हुए आशा करते हैं कि उन्हें जनता का सहयोग अपने शुभ संकल्प के लिये प्राप्त होगा।

—धर्मदेव विद्यावाचस्पति

शोक समाचार

गत जुलाई मास में निम्नलिखित प्रसिद्ध आर्य सज्जनों और आर्य महिलाओं का देहावसान हुआ जिस पर हम आर्य जगत् की ओर से शोक और उनके सम्बन्धियों से सहानुभूति प्रकाशित करते हैं।

(१) आर्य प्रतिनिधि सभा मध्यप्रान्त और विदर्भ के उत्साही मन्त्री श्री दुर्गैया जी।

(२) सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्क शिरोमणि मेरठ की धर्म परायणा देश-भक्ता धर्मपत्नी श्रीमती उर्मिलादेवी जी।

(३) सार्वदेशिक पत्र के सहायक सम्पादक श्री रघुनाथप्रसाद पाठक जी की पूज्या माता श्रीमती हरदेवी जी।

(४) आन्ध्र प्रान्त के सर्व प्रथम आर्य सज्जन श्री नागभूषणम् आर्य जी के होनहार सुपुत्र उपदेशक विद्यालय लाहौर के सुयोग्य विद्यार्थी ब्र० धर्मेन्द्र।

(५) श्री प्रो० शिवदयालु जी एम० ए० की धर्म परायणा धर्म पत्नी जी।

परमात्मा इन सब की पवित्र आत्माओं को सद्गति और इनके सम्बन्धियों को शांति प्रदान करें।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली की

अन्तरंग सभा ता० ५-७ ४२ का नि० सं० १७

बड़ौदा से प्रकाशित होने वाले 'आर्य संदेश' नामक गुजराती पत्र के २३-७-४२ के अंक में पृष्ठ ५ पर इस सभा की अन्तरंग सभा के नि० सं० १७ ति० ५-७-४२ को भ्रम मूलक एवं अशुद्ध रूप में छापा गया है। अतः आर्य जनता की भ्रान्ति निवारणार्थ प्रस्ताव की सत्य प्रतिलिपि प्रकाशित की जाती है।

"विज्ञापन का विषय सं० १५ में कन्या महाविद्यालय बड़ौदा का विषय पेश होकर निश्चय हुआ कि उक्त विद्यालय के सम्बन्ध मे आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई १६-३-४२ को अपना निश्चय दे चुकी है और आर्य प्रतिनिधि सभा बम्बई के निश्चय के विरुद्ध हमारे पास कोई अपील नहीं है अतः अब इस सभा को इस विषय पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है।"

धर्मदेव विद्यावाचस्पति उपमंत्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

'आर्य' से जमानत की मांग

"सार्वदेशिक" को प्रेस में देते हुए यह समाचार पाकर हमें अत्यन्त दुःख और आश्चर्य हुआ कि पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा के उत्तम मुख पत्र 'आर्य' से पंजाब सरकार ने १०००) की जमानत मांगी है। आर्य जनता इस जमानत के रु० की अति शीघ्र पूर्ति करके 'आर्य' पत्र को पूर्ववत् आर्य जगत् की सेवा करने का अवसर देगी इस में हमें जरा भी सन्देह नहीं।

श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित।

१९५२ ई०
भाद्रपद
१९९९ सं०

सम्पादक मण्डल—

वार्षिक मूल्य
स्वदेश २
विदेश ५ शि०

विषय-सूची

सार्वदेशिक पत्र का नमूना मँगाने के लिये ।) का टिकट भेजना जरूरी है ।

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १७ | भाद्रपद १९९९ | सितम्बर, १९४२ ई० | [दयानन्दाब्द ११८ | अङ्क ७

ओ३म् ते घेदग्ने स्वाध्यो अहा विश्वा नृचक्षसः ।
तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥ ऋग्वेद ८ । ४३ । १० ॥

शब्दार्थ—(अग्ने) हे ज्ञान स्वरूप परमात्मन् हम (विश्वा अहा) सब दिन, सदा (घ) निश्चय से (ते इत्) तेरे ही लिये (स्वाध्यः) उत्तम कर्म करने वाले हों (नृचक्षसः) मनुष्यों को ठीक ठीक पहचानने वाले हों और इस तरह (दुर्गहा) दुर्गाहनीय, कठिन प्रसङ्गों को (तरन्तः) तरते जाने वाले (स्याम) होवें ।

पद्यानुवाद—

नाथ! करें शुभ कर्म स्मरण कर, सदा तुम्हारा नाम।
उसे तुम्हें ही अर्पित कर दें, स्वय बनें निष्काम ॥
दो सुबुद्धि मानव हृदयों को, ठीक ठीक पहिचानें।
पार करें जीवन पथ दुर्गम, कुछ भी कठिन न मानें ॥

—सत्यकाम विद्यालङ्कार

वेदामृत—

देश सेवा और देशोन्नति साधन

(१) ओं सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षातपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु॥ अथर्व० १२।१।१

(२) ओं विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणा धृताम्। शिवां स्योनामनुचरेम विश्वहा॥ अ० १२।१।१७

(३) ओं ये ग्रामा यदरण्यं याः सभा अधिभूम्याम्। ये संग्रामाः समितयस्तेषु चारु वदेम ते॥ अ० १२।१।५६

(४) ओ३म् उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः। दीर्घं न आयुः प्रति बुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम॥ अ० १२।१।६२

शब्दार्थ—(सत्यं) सत्य निष्ठता (बृहत् ऋतम्) विस्तृत ज्ञान वा शिक्षा (उग्रम्) तेजस्विता (दीक्षा) ब्रह्मचर्यादि व्रतों की दीक्षा तथा कार्य दक्षता (तपः) शीत उष्ण, सुख दुःख, मान अपमान, निन्दा स्तुति आदि द्वन्द्व सहिष्णुता (ब्रह्म) ज्ञान, धन और अन्न (यज्ञः) परोपकार, स्वार्थ त्याग और सेवा भाव ये गुण (पृथिवीं धारयन्ति) पृथिवी को धारण करते हैं, देशोन्नति के साधक हैं। (नः) हमारे (भूतस्य भव्यस्य सा पत्नी पृथिवी) भूत और वर्तमान काल की सब चीजों की रक्षा करने वाली वह पृथिवी (नः) हमारे लिए (उरुं लोकं कृणोतु) विस्तृत कर्म क्षेत्र को तय्यार करे।

२—(विश्वस्वम्) धान्यादि सब कुछ उत्पन्न करने वाली अथवा हमारा सर्वस्व (ओषधीनां मातरम्) ओषधि वनस्पतियों की उत्पादिका माता (धर्मणा धृताम्) धर्म द्वारा धारण की हुई (ध्रुवाम्) स्थिर (शिवाम्) कल्याण करने वाली (स्योनाम्) सुख देने वाली (पृथिवीम्) पृथिवी की-मातृ भूमि की या देश की (विश्वहा) सदा (अनुचरेम) हम सेवा करें।

३—हे मातृ भूमे! (ये ग्रामाः) जो हमारे ग्राम हैं (यद् अरण्यम्) जो जगल हैं (भूम्याम् अधि याः सभाः) भूमि के ऊपर जो सभाएँ हैं (ये संग्रामाः) जो युद्ध क्षेत्र हैं (समितयः) जो नियमादि बनाने वाली विशेष सभाएँ, कौंसिल आदि हैं (तेषु) उन सब स्थानों में (ते चारु वदेम) तेरे विषय मे सदा उत्तम भाषण करें—तेरे हित का सदा विचार रखें।

४—(पृथिवि) हे मातृ भूमे! हम (अनमीवाः) रोग रहित (अयक्ष्माः) क्षय रोगादि से सर्वथा रहित-स्वस्थ होकर (ते उपस्थाः) तेरी सेवा मे सदा उपस्थित रहे (ते प्रसूताः) तेरे में उत्पन्न वा तय्यार किये गये पदार्थ ही (अस्मभ्यं सन्तु) हमारे उपयोग के लिए हों—स्वदेशी वस्तुओं का

हम उपयोग करें। (न दीर्घम् आयु) हमारी दीर्घ आयु हो (वयम्) हम (प्रति बुध्यमाना) ज्ञानी, विद्वान् बनकर (तुभ्य बलिहृत स्याम) तेरे लिये आवश्यकता पड़ने पर प्राणों तक की बलि देने के लिए तय्यार रहें।

इन वेद मन्त्रों मे जिन्हें अथर्व वेद के सुप्रसिद्ध पृथिवी सूक्त (का० १२ सू० १) मे से लिया गया है देश की उन्नति के साधनों और देश प्रेम का बड़ा उत्तम उपदेश है। वेद भगवान् उपदेश करते है कि किसी भी देश की सच्ची उन्नति नहीं हो सकती जब तक लोग सत्यनिष्ठ, सरलता और विस्तृत ज्ञान, तेज, ब्रह्मचर्यादि व्रत, तप, धन और अन्न तथा यज्ञ (स्वार्थ त्याग और सेवा भाव) को धारण करने वाले न हों। (सत्यम्) पृथिवी सूक्त तथा "सत्येनोत्तभिता-भूमि" (ऋग्वेद १०।८५।१) इत्यादि अन्य वेद मन्त्रों मे सत्य द्वारा पृथिवी के धारण किये जाने का बार बार उपदेश है। जब तक किसी देश के निवासी सत्यनिष्ठ न हों तब तक उनमे परस्पर विश्वास नहीं हो सकता और परस्पर विश्वास के बिना मिलकर प्रेम से किसी भी कार्य को करना असम्भव है। इसलिए यदि हम सचमुच अपने देश की उन्नति चाहते हैं तो हमे सत्यनिष्ठ बनने का दृढ़ निश्चय करना चाहिये। (बृहद् ऋतम्) विस्तृत शिक्षा देश की उन्नतिके लिए अत्यावश्यक है इससे कोई विचार शील इन्कार नहीं कर सकता। शिक्षा के अभाव मे मनुष्य न समाज के हित का विचार कर सकता है न देश के कल्याण का। इसलिए राज्य की ओर से अनि-वार्य शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये, ऐसा ऋषि दयानन्द जी ने वेद मन्त्रों के आधार पर ठीक ही लिखा है। विदेशी राज्य के कारण हमारे देश की वर्तमान दशा इस विषय मे कितनी शोचनीय है जहाँ पुरुषों मे कठिनता से ८ प्रति-शतक और स्त्रियों मे १ प्रतिशतक शिक्षितों की सख्या है इस विषय मे कुछ लिखने की आवश्य-कता नहीं। विस्तृत शिक्षा के साथ सरलता की भी जरूरत है ताकि परस्पर विश्वास दृढ हो सके।

(उग्रम्) तेजस्विता—क्षात्र बल तथा पराक्रम भी देश की उन्नति के लिये आवश्यक है। सच्चे तेजस्वी क्षत्रियों के बिना देश की उन्नति और रक्षा नहीं हो सकती यह बात अत्यन्त स्पष्ट है।

(दीक्षा) ब्रह्मचर्यादि व्रत तथा कार्य दक्षता—देशवासियों को शारीरिक, मानसिक और आत्मिक बल की प्राप्ति हो इसके लिये आवश्यक है कि वे ब्रह्मचर्यादि व्रतों की दीक्षा ग्रहण करके पुरुष कम से कम २५ और कन्याए कम से कम १६ वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का भली भान्ति पालन करें और उसके द्वारा कार्य दक्षता सम्पादन करें। ब्रह्मचर्य घातक बाल विवाहादि कुप्रथाओं के कारण देश का कितना नाश होता है इस विषय के विस्तार मे जाने की यहा आवश्यकता नहीं।

तप) सर्दी गर्मी, सुख दुःख, निन्दा स्तुति इत्यादि द्वन्द्वों की पर्वाह न करते हुए सदा उत्तम धर्म कार्यों के करने मे तत्पर रहना तप कहाता है। जो समाज और देश की उन्नति के साधक कार्य करना चाहते हैं उनके लिये तपस्वी बनना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ऐसे कार्यों मे अनेक विघ्न बाधाए आती हैं, अनेक प्रकार के भयङ्कर

कष्ट उठाने पड़ते हैं उनसे जो घबरा जाते हैं वे देश की सेवा नहीं कर सकते।

(ब्रह्म) ब्रह्म का अर्थ वेद अथवा ज्ञान यह प्रसिद्ध है। उसके अतिरिक्त निरुक्त में उसके अर्थ धन और अन्न भी दिये हैं जिनका यहां ग्रहण किया गया है। ज्ञान, धन और अन्न ये तीनों देश की उन्नति और उसके संरक्षण के लिये अत्यावश्यक हैं। देश में सुव्यवस्था तभी रह सकती है जब इन तीनों की ओर उचित ध्यान दिया जाए।

(यज्ञः) यज्ञ शब्द जिस यज् धातु से बनता है उसके ३ अर्थ देव पूजा, सङ्गति करण और दान ये धातु पाठादि में बताये गये हैं जिन में हमारे तीनों प्रकार के मनुष्यों (अपने से उच्च कोटि के, अपने समान तथा अपने से हीन कोटि के) के प्रति कर्तव्यों का समावेश हो जाता है। जो अपने से उच्च कोटि के सत्यनिष्ठ विद्वान लोग (देव) हैं उनकी पूजा वा सत्कार, बराबर वालों के साथ सङ्गति करण वा मेल जोल और अपने से हीन कोटि के अनाथ दीन दलित इत्यादि को दान देना ये तीन भाव यज्ञ शब्द के अन्दर स्पष्टतया आते हैं। स्वार्थ त्याग और सेवा का भाव यज्ञ में ओत प्रोत है। इन कर्तव्यों का पालन करने से देश की उन्नति किस प्रकार हो सकती है यह बात अत्यन्त स्पष्ट है। वेद भगवान् "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ।।" "नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्यै" इत्यादि वाक्यों द्वारा मातृ भूमि के साथ प्रेम करने का हमें उपदेश देते हैं। ग्राम, सभा समिति (Councils) रणक्षेत्र हम कहीं भी क्यों न हों मातृभूमि के हित का विचार हमारे अन्दर सदा रहना चाहिये, कोई हम ऐसा कार्य न करें जिससे उसका अहित होता हो, यह वेद का पवित्र उपदेश है। मातृभूमि की सेवा में यदि प्राणों की भी आहुति देनी पड़े तो उसके लिये भी हमें सदा तय्यार रहना चाहिये यह 'उपस्थास्ते वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम' इत्यादि ऊपर उद्धृत मन्त्रों में कहा है। स्वराज्य के बिना वस्तुतः किसी भी देश का हित साधन नहीं हो सकता इसी लिये वेद भगवान् 'आयद् वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः । व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ।" (ऋग्वेद ५ । ६६ । ६) स ह तत्स्वराज्यमियाय यस्मान्नान्यत् परमस्ति भूतम् ।। (अ० १०।७।३१) इत्यादि वेद मन्त्रों द्वारा स्वराज्य का महत्त्व बतलाते हुए कि उससे उत्तम कोई चीज़ नहीं व्यापक दृष्टि (उदारता) परस्पर मित्रता (प्रेम) और ज्ञान के द्वारा अत्यन्त व्यापक (व्यचिष्ठे) बहुतों के प्रयत्न से रक्षणीय (बहु पाय्ये) स्वराज्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने का उपदेश देते हैं। 'अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः" (अ० १२।१।६२) इत्यादि में स्वदेशी वस्तुओं के ही उपयोग का भाव भी स्पष्ट है। इस प्रकार प्रत्येक देशवासी को अपनी शक्ति, योग्यता और प्रवृत्ति के अनुसार देश सेवा तथा देशोन्नति के कार्य में तत्पर होना चाहिये।

'ध्रुव'

दार्शनिक भूल भुलैय्याँ

(ले०—श्री प० गगाप्रसाद जी उपाध्याय M A प्रयाग)

ससार में अनेक दर्शन हैं, अनेक दर्शनकार हैं, अनेक दार्शनिक हैं और अनेक दर्शन-इतिहास के वेत्ता हैं। हमने यहाँ चार कोटियाँ गिनाई हैं और यदि पाठक गण विचार करेंगे तो पता लगेगा कि ये कोटियाँ बिल्कुल अलग हैं। इन अनेकों मे समानता और असमानता भी भिन्न २ परिमाण मे पाई जाती है, अर्थात् एक दर्शन दूसरे दर्शन से किन्हीं बातों मे समान है और किन्हीं मे असमान। कोई दो दर्शन अधिकाश मे मिलते है। कोई बहुत भिन्न है।

इतने बडे दर्शनकार आपस मे एक क्यों नहीं हो जाते? साधारण जनता के लिए यह एक विचित्र समस्या है। क्योंकि सभी बडे हैं और जनता चाहती है कि सभी पर हमारी श्रद्धा बनी रहे। यदि ससार के दार्शनिक एक हो जाते तो आगे की बात सरल हो जाती और हम उन छोटी २ बातों को दूर कर सकते जिनसे ससार मे शाति भग होती है। परन्तु यह सुगम नहीं है। दर्शनकारों की कृतियों मे ऐसी भूल भुलैय्याँ मिलती हैं जिनका निराकरण न करने से आगे बहुत कुछ अड़चनें पड़ जाती हैं।

हम यहा एक वाक्य मात्र की मीमासा करना चाहते हैं। वह वाक्य है ससार के बहुत प्रसिद्ध दर्शनकार श्री स्वामी शकराचार्य का। यह वेदात दर्शन के शाकरभाष्य का पहला वाक्य है –

युष्मदस्मत् प्रत्ययगोचरयोर्विषय विषयिणोस्तम प्रकाशवद् विरुद्ध स्वभावयोरितरेतर भावानुपपत्तौ सिद्धाया, तद् धर्माणामपि सुतरामितरेतर भावानुपपत्ति । इत्यतो ऽस्मत् प्रत्ययगोचरे विषयिणि चिदात्मके युष्मत् प्रत्ययगोचरस्य विषयस्य तद् धर्माणा चाध्यास ।

मीमासा से पहले दो कठिन शब्दों का विश्लेषण करदें जिससे साधारण पाठक वर्ग का आगे चलकर सुगमता हो सके।

दो शब्द हैं युष्मत् और अस्मत्। युष्मत् का अर्थ है 'तुम' और अस्मत् का अथ है 'मै'। मै जब 'तुम' का प्रयोग करता हूँ, तब अपने से इतर किसी अन्य वस्तु के लिए करता हूँ, स्वय अपने लिए नहीं। यदि मै अकेला ही ससार मे होता। मेर सिवाय और कोई न होता तो तू, या तुम शब्द भी न होते। केवल "मैं" ही "मै" काफ़ी था।

यहाँ एक बात सिद्ध हो गई कि 'युष्मत्' या 'तुम' का प्रयोग दूसरों के लिए होता है अपने लिए नहीं। परन्तु एक बात और है। हम युष्मत् का प्रयोग उसी अन्य वस्तु के लिए करते हैं जिससे हमारा सम्बन्ध है। जो हमारे सामने बैठा है या जिसम हम बात कर रहे हैं। ससार मे सैकड़ों और हजारों मनुष्य हैं जो हमारे ही नगर मे रहते हैं परन्तु जिनके विषय मे हम कुछ नहीं जानते। हमे यह भी मालूम नहीं कि वे हैं भी या नहीं'। उनका विषय हमारे ज्ञान से सर्वथा

बाहर है। अतः उनके लिए 'युष्मत्' या 'तुम' का प्रयोग नहीं होता।

अब यह मालूम हो गया कि 'युष्मत्' या 'तुन' का प्रयोग उनके लिए होता है जो हमसे इतर हैं परन्तु जिनके साथ हमारा घनिष्ठ सबंध है। अंगरेजी में युष्मत् को सैकण्ड पसन (second person) और फारसी या अरबी में 'मुखातिब' कहते हैं अर्थात् वह जिसके साथ इस समय हम बात कर रहे हैं जो साक्षात् हमारे सामने है, जो हमारे ज्ञान का निकटतम विषय है।

इसलिए युष्मत् का अर्थ हुआ 'विषय'। श्री शंकर स्वामी कहते हैं 'युष्मत् प्रत्यय गोचरस्य विषयस्य'। अर्थात् युष्मत् वह प्रत्यय है जिसका वास्तविक अर्थ है विषय। जो कुछ हमारे ज्ञान में है वह सब विषय है। आप अगरेजी में उसे Contents of Knowledge कह सकते हैं।

अब चलिए 'अस्मत्' शब्द की ओर अस्मत् का अथ है 'मैं' मै कौन ? ज्ञानी। अर्थात् जो बात कर रहा है। जिसको ज्ञान है। युष्मत् का अर्थ है 'विषय'। इसलिये स्वामी शंकर महाराज ने अस्मत् का अर्थ किया विषयी अर्थात् जिसको विषय का ज्ञान हो। 'अस्मत् प्रत्ययगोचरे विषयिणि'।

अब सारा संसार दो कोटियों में विभक्त हो गया। ज्ञानी अर्थात् विषयी जिसको मैं या अस्मत् कहा। और ज्ञात' या विषय जिसको युष्मत् तुम कहा। इन दो कोटियों मे सभी का समावेश हो जाता है। 'आलिम' और 'मालूम' (मै और तुम)

यहाँ तक तो सब ठीक है। झमेला कुछ आगे है। प्रश्न यह है कि विषयी और विषय में क्या सम्बन्ध है ? यदि सम्बन्ध न हो तो न विषयी हो न विषय। जब मै घोर निद्रा में सोता हूँ और मेरी चारपाई के पास कोई मनुष्य बैठा रहे। मुझे मालूम नहीं होता। वह मनुष्य मेरे ज्ञान में नहीं। मेरा विषय नहीं। इसलिये उसका मै ज्ञाता या विषयी भी नही। इसलिये इतना तो सिद्ध है कि विषय और विषयी का कुछ सम्बन्ध है। देखना यह है कि क्या सम्बन्ध है।

श्री शंकराचार्य जी ने बिना प्रमाण दिए ही पहली बात यह मान ली—'तमः प्रकाशवद् विरुद्ध स्वभावयोः' अर्थात् विषय और विषयी में वह सम्बन्ध है जो अन्धकार और प्रकाश में है। हम को आपत्ति इसी प्रतिपत्ति मे है। प्रथमे ग्रासे मक्षिका पातः।

आप देखिये। यह ठीक है कि अन्धकार और प्रकाश विरुद्ध स्वभाव के हैं। इतने विरुद्ध स्वभाव के कि एक के रहते हुए दूसरे का भाव संभव नहीं। अन्धकार तभी होगा जब प्रकाश न हो। प्रकाश की एक किरण भी आई और अन्धकार महाशय चम्पत् हुए! क्षण की देरी नहीं, क्षण के करोड़वें भाग की देरी नहीं। अन्धकार है ही प्रकाश के अभाव का नाम। हम पूछते हैं कि क्या यही सम्बन्ध विषय और विषयी का है ? क्या विषय आते ही विषयी भाग जाता है ? क्या विषयी के अभाव का नाम ही विषय है ? ऐसा तो नहीं है। यदि विषय के आते ही विषयी भाग जाता तो हम कैसे कहते कि विषयी को विषय का ज्ञान है। मालूम नहीं कि शंकर स्वामी ने इस

उपमा को क्यों पसन्द किया और किस सादृश्य को देखकर पसन्द किया। इनके पास क्या प्रमाण था। मेरी समझ में तो यह एक बड़ी भूल-भुलय्या है।

अब आगे चलिए। 'इतरेतर भावानुपपत्तौ'। अर्थात् एक के भाव की दूसरे के भाव मे उपपत्ति नहीं है। इतना तो ठीक है। क्यों कि विषय और विषयी अलग अलग हैं। विषय विषयी नहीं। विषयी विषय नहीं। विषयी का जो धर्म है वह विषय का धर्म नही। जो विषय का धर्म है वह विषयी का धर्म नहीं। परन्तु प्रश्न यह है कि विषयी और विषय मे अलग होते हुए भी कोई सम्बन्ध है या नहीं।

याद रखना चाहिए कि सम्बन्ध उन्ही वस्तुओं में होता है जो अलग अलग हों परन्तु निकट हों। कलकत्ते के बाग मे लगा हुआ गुलाब का फूल पेरिस के बाग मे लगे हुये गुलाब के फूल के साथ माला मे पुरोया नहीं जा सकता जब तक वे पास न आवें। सम्बन्ध के लिए दो चीजें जरूरी हैं। एक तो इतर इतर होना, दूसरे निकट होना। यदि दो वस्तुएं इतर इतर न हों केवल एक ही हो तो सम्बन्ध नहीं। और यदि दो हों परन्तु निकट न हो तो भी सम्बध नहीं। इसलिये यह मान लेने पर भी कि विषय का धर्म और है और विषयी का और यह नहीं कहा जासकता कि विषय और विषयी मे अन्धकार और प्रकाश का सम्बध है अर्थात् कुछ सम्बन्ध है ही नहीं। ग्रीनलैण्डका एक कीड़ा और बाली द्वीपका एक पहाड़। ये दोनों अलग अलग हैं और इनके धर्म भी अलग २ हैं। उनमे सम्बध नहीं। ग्रीनलैण्ड के कीडे को बालीद्वीप के पहाड़ का कुछ ज्ञान नहीं। परन्तु विषय और विषयी मे इतरेतर धर्म की अनुपपत्ति होते हुए भी इतनी दूरी नहीं। अत इस दूरी का आश्रय लेकर अध्यास की भावना आरम्भ करना किसी प्रकार ठीक नहीं। 'अध्यास' का प्रश्न हम आगे लेंगे।

आर्य समाज के चमकते रत्न

(लेखक—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी दीना नगर)

सरदार सुचेतसिंह जी

सरदार सुचेतसिंह जी जिला गुरदासपुर में छीना ग्राम के निवासी थे इस ग्राम में प्रधानता जाटों की है और उनका गोत्र छीना है इसी कारण ग्राम का नाम भी छीना ही है।

आप नम्बरदार, जेलदार, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्य, आनरेरी मैजिस्ट्रट के पद पर रहे। अत जिले में प्रख्यात थे। इस जिले में सरदार विशन सिंह जी रईस भागोवाल आरम्भ समय के आर्य समाजियों में से थे। उनके सग से ही आप आर्य समाजी बने थे और गुरदासपुर जिले के प्रचार मंडल के अध्यक्ष थे। आपकी रुचि वेद प्रचार में अधिक थी। आप प्रायः आर्य समाज के उत्सवों में सम्मिलित हुआ करते थे और आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब के सदस्य भी थे।

आपके सन्तान न थी और स्त्री के देहांत होने पर आपने दूसरा विवाह भी नहीं किया था। आपके एक भ्राता थे जिनका स्वर्गवास हो गया था। गृह कृत्य उनकी भावज ही संभालती थी। उसके भी कोई सन्तान न थी।

सम्बन्धियों ने उनकी सम्पत्ति के लोभ से उनको मार दिया और शव को नष्ट कर दिया। परन्तु पुलिस ने परिश्रम करके पूरा पूरा पता लगा लिया। उनके मारे जाने पर उनकी भावज भी अपने भाई के पास चली गई वहाँ आते समय वह सम्पत्ति भी अपने साथ ले गई। उस सम्पत्ति में उनके कागज पत्रादि भी थे। उनके पत्रों में एक पत्र उनके हाथ का लिखा मिला जो उनकी इच्छा को प्रकट करता था।

उसकी भावज और भावज के भाई अनपढ़ थे। उन्होंने वे कागज एक व्यक्ति को दिखाये ताकि पता हो उनमे क्या लिखा है उस व्यक्ति ने जब कागज पढ़े उसे वह कागज भी मिला, जिसमे उनकी इच्छा लिखी थी। उसने आकर आर्य प्रतिनिधि सभा मे सूचना दी। सभा ने वह पत्र प्राप्त कर लिया और जब देखा तो उसमे लिखा था मेरी सब सम्पति (चल तथा अचल) आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब को मिले और वह इसकी आय से जिले मे वेद प्रचार करे और दो व्यक्तियों को जो उसकी सेवा किया करते थे पांच पाँच रुपये प्रतिमास उनके जीवन पर्यन्त दिये जाएँ।

उनकी भूमि का सर फ़ज़ल हुसैन जी ८० सहस्र देते थे। वह उस समय एक लाख माँगते थे इस प्रकार एक लाख या ८० सहस्र की सपत्ति सरदार सचेतसिह जी आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब को वेद प्रचार के लिये लिखकर दे गए।

तब उस भूमि आदि सपत्ति की प्राप्ति के लिये सभा ने न्यायालय की शरण लेकर प्राप्त की।

सरदार जी का एक बाग छीना स्टेशन के साथ ही है जो जिले में अच्छे बागों में समझा

अध्यात्म सुधा

अपना घर

(लेखक—श्री प्रो० लालचन्द्रजी एम० ए० उपाचार्य गुरुकुल काङ्गड़ी)

पिछले दिनों श्री अरबिन्दजी का The Secret of the Veda' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसमें एक बात बहुत अच्छी लगी, वह थी वेद के चार शब्दों की चर्चा।

।। सत्यम्, ऋतम्, बृहत्, स्वे दमे ।।

सत्य अर्थात् असलियत सम्यक्-ज्ञान, यथार्थ बोध। ऋत, उस बोध, उस ज्ञान, उस सत्य के अनुसार आचरण। (बृहत्) विस्तृत लोक जो ऋत से मिलता है।

स्वे दमे यह विस्तृत लोक ही अपना घर है। जब इस लोक में आत्मा स्थिर तौर पर रहने लगता है तो यही अपना घर बन जाता है।

❀ ❀ ❀ ❀

मनुष्यों के अन्दर, जातियों के अन्दर एक छिपी हुई इच्छा है कि अपनी भूमि को बढ़ाएँ, बड़े जमीदार बनें, बड़े राजा बनें, बल्कि राजाधिराज बनें। हमारे पास काफी आकाश हो; जहाँ हम बे रोक-टोक विचर सकें। ये सब चीजें सूचित करती हैं कि हम अभी तक अपने घर नहीं पहुँचे। क्या अजीब बात है जो चीज इतनी पास है वही इतनी दूर है।

तद्दूरे तद्वन्तिके, वह दूर है, वह नजदीक है दूर है, उनसे जिन्हें बोध नहीं, पास है उनके जिन्हें उसका अनुभव है।

❀ ❀ ❀ ❀

अपने घर में बैठे हैं अपने घर के बाहर अज्ञान का पर्दा है।

मिस्ल आहु के मैं सर गर्दां फिरा सहरा में।
नाफ़ में नाफ़ छिपा था मुझे मालूम न था ।।

हिरन की तरह मैं परेशान भटकता फिरा

जाता था। छीना अमृतसर से पठान कोट को आते समय बटाला और धारीवाल के बीच का स्टेशन है।

इस प्रकार सरदार सुचेतसिंह जो अपनी सारी सम्पत्ति सभा को दे गए और जीवन भर आर्य समाज के प्रचार में भाग लेते रहे। साधारण रीति से पंजाब में ग्रामों में प्रचार अम्बाला कमिश्नरी में ही अधिक है। शेष पंजाब में ग्रामों में प्रचार की ओर किसी का ध्यान ही नहीं है और यदि प्रचार किया जाय तो प्रत्येक जिले में सफलता हो सकती है। पर सफलता उसी समय होगी जब दयानन्द के प्रचारक दयानन्द के चरण चिन्हों पर चल कर काम करें अथवा सरदार सुचेतसिंह जी जैसे वेद प्रचार के प्रेमी हों जो अपना समय और संपत्ति वेद प्रचार पर निछावर करने वाले हों।

सहरा में, नाभी में कस्तूरी छिपी थी मुझे मालूम न था।

❀ ❀ ❀ ❀

बात आसान मालूम होती है अज्ञान का पर्दा है, ज्ञान प्राप्त कर लो, वेद शास्त्र पढ़लो, और कुछ नहीं तो सत्यार्थ प्रकाश ही पढ़लो और अच्छी तरह उसे समझ लो, फिर क्या अज्ञान हट जायेगा ? कुछ तो हटेगा ही पर अपने घर फिर भी नहीं पहुँच सकोगे। उसके लिए एक बड़ी जबरदस्त शर्त बीच में है। वह है ऋत, जो यम नियम का पालन नहीं करता। जिसका आचरण सत्य के अनुसार नहीं है, जो कहता कुछ है, करता कुछ है, जो व्याख्यानों में, बहसों में तो आसमान की बातें करता है मगर आचार में असत्य का व्यवहार करता है वह चाहे दुनियां की सारी पुस्तकें पढ़ले फिर भी अपने घर नहीं पहुँच सकता। घर का दर तो धर्मी को ही खुलता है, सच्चा ही प्रभु के दरबार में जा सकता है, झूठा नष्ट हो जाता है।

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति, न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्। हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥

सोम रूप परमेश्वर निस्सन्देह न तो वर्जनीय पाप को बढ़ाता है न दुहरी बात धारण करने वाले बलवान् को बढ़ाता है। वह तो पाप राक्षस का हनन करता है और असत्य बोलने वाले का हनन करता है। ये दोनों ही इस इन्द्र रूप परमेश्वर के बन्धन में पड़ते हैं। कैदी घर नहीं जा सकता।

❀ ❀ ❀ ❀

अमल बड़ा या इल्म, कर्म बड़ा या ज्ञान, ईश उपनिषद् में बड़े जोर से लिखा है कि जो केवल कर्म पर जोर देते हैं वे तो अँधेरे में हैं ही पर जो केवल विद्या पर जोर देते हैं, वे और भी गहरे अँधेरे में हैं। इससे स्पष्ट है कि कर्म का दर्जा ऊपर है। यद्यपि सबसे उत्तम चीज तो है ज्ञान के अनुसार कर्म। थोड़ा ज्ञान और पूरा अमल, बहुत ज्ञान और थोड़े अमल की अपेक्षा बेहतर है।

❀ ❀ ❀ ❀

श्री अरविन्द जी का एक बहुत सुन्दर वाक्य है।

Whatever has to come as outward going energy or action must proceed from the truth once discovered and not from the lower mental or vital motives, from the divine will and not from personal choice or preference of the ego. इस वाक्य का भावार्थ यह है कि जो कुछ बाह्य शक्ति अथवा कर्म के रूप में आता है वह साक्षात्कृत सत्य से प्रकट होना चाहिये न कि हीन मानसिक या प्राण सम्बन्धी वासनाओं से, वह दिव्य इच्छा से प्रकाशित होना चाहिये न कि स्वार्थ भावना से।

❀ ❀ ❀ ❀

शास्त्र का ज्ञान तो मिलना आसान है पर जब तक आचार ठीक न हो अन्दर का प्रकाश नहीं मिलता, नहीं बढ़ता। अन्दर का प्रकाश तो ऋत से बढ़ता है। वेद में एक बड़ा सुन्दर मन्त्र है।

उरुं नो लोकमनुनेषि विद्वान् स्वर्वत् ज्योतिरभयं स्वस्ति। ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू, उपस्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥

हे इन्द्र तू सर्वज्ञ हमें उस महान् विस्तृत लोक में पहुँचा देता है जहां आनन्द, प्रकाश अभय और कल्याण ही है। हे परमेश्वर तुम महान् देव के बाहू सब विघ्नबाधाओं का नाश करने वाले हैं हम उस तुम्हारी अपार शरण में बैठ जावें। यहां जो उरं लोकं आया है, इसका इशारा बृहत् की तरफ ही है। Varieties of religious experiences में इसी को Expanded Consciousness या विस्तृत चेतना कहा है। जब मनुष्य अपने आप को सब ब्रह्माण्ड के साथ एक हुआ अनुभव करता है, उस अवस्था में पूरी आजादी है, कोई रोक टोक नहीं है। आनन्द है, प्रकाश है, अभय है कल्याण है; वह ही आत्मा का अपना घर है।

❀ ❀ ❀ ❀

ऋत या righteousness कोई मखौल नहीं है, आसुरी प्रवृत्तियों से लड़ना पड़ता है। लोहे के चने चबाने पड़ते हैं; ठीक क्या है यह तो झट पता लग जाता है पर उस पर डटने के लिये, ताकि कहीं कभी पथच्युत या मार्ग-भ्रष्ट न हों; बड़ी दृढ़ता की जरूरत है, जो लड़ने से घबराता नहीं है जो अपनी तलवार सदा म्यान से बाहर रखता है और जहां अन्दर किसी असुर ने सिर उठाया कि उसे फौरन काट के रख दिया। जो प्रलोभनों में फंसता नहीं और लहरों में चट्टान की तरह दृढ़ रहता है, जो कठिनाइयों से नहीं घबराता; बल्कि उनके साथ युद्ध करने में उसे बड़ा आनन्द आता है, वह ही बृहत् तक पहुँचता है, और जब वहां पहुँच कर वहां ही टिकने का अभ्यास करता है वहां से प्रेरित होकर सत् प्रवृत्ति में लगता है वह ही अपने घर में रहता है।

❀ ❀ ❀ ❀

अमीर अगर तो राजा जनक की तरह हों तो कहना ही क्या, वह तो हर तरह से अपने घर में रहते हैं, पर साधारण तौर पर अपने घर में रहते हुए भी जेल में रहते हैं या सराय में रहते हैं, वह घर अपना होता है जिसमें जब तक हम चाहें हम रह सकें मगर यहां तो किसी समय भी notice मिल सकता है, घर खाली करो तो अमीरी कैसी और अपना घर कैसा? दूसरी ओर एक गरीब तो मामूली झोंपड़ी में रहता है या किराए के मकान में रहता है पर जो ज्ञानी है, धर्मात्मा है, वह अपने घर में रहता है, जहां उदारता है विस्तार है, प्रकाश है, अभय है, कल्याण है।

महरम हो सो जाने साधु ऐसा लोक हमारा।
बिना बादरी बूंदें बरसें बिन सूरज उज्यारा॥

सुमन-संचय

सच्ची साधुता
(१)

बलख का बादशाह सुल्तान इब्राहीम जो इब्न आदम के नाम से प्रसिद्ध है, अपने बुढ़ापे मे फ़कीरों की तरह रहता था। उसके आस-पास सैकड़ों शिष्य इकट्ठे रहते थे और उन सब को उसका एक मुख्य उपदेश यह था कि जो कुछ खाओ मेहनत से कमाकर खाओ। वह स्वय सदैव त्याग और सयम का जीवन व्यतीत करता था और जंगल से लकड़ी काट कर और उसे बेचकर रोटी और खजूर खाता था।

एक बार उसको रास्ते में एक मनुष्य शराब पिए हुए पड़ा देख पड़ा। उसका मुँह कीचड़ में सना हुआ था और उसे अपने शरीर की कोई सुध न थी। सुल्तान से उस मनुष्य की दुर्दशा देखी न गई और उसने जलादि के उपचार से उसे होश में लाने का यत्न किया। जब उस मनुष्य को कुछ होश हुआ तो सुल्तान शुद्ध जल से उसके मुँह की कीचड़ धोने लग गए। उस पर उस शराबी मनुष्य ने पूछा, "सुल्तान! आप ऐसा क्यों करते हैं?" सुल्तान ने उत्तर दिया "ईश्वर का नाम लेने योग्य मुँह में से शराब की बदबू आना ठीक नहीं है।" इस उत्तर से वह शराबी मनुष्य बड़ा लज्जित हुआ और उसने उसी दिन से शराब का पीना छोड़ दिया।

एक बार इस त्यागी सुल्तान से किसी ने पूछा, "'साई साहब, आपको आज तक बड़े से बड़ा धर्मात्मा कौन मिला।" सुल्तान ने उत्तर दिया, 'एक नाई। उस नाई से मैंने कहा कि भाई खुदा के वास्ते मेरी हजामत बना दे। उसने इतने प्रेम से मेरी हजामत बनाई जितने प्रेम से कि वह शायद बादशाह और अमीर की भी न बनाता होगा। मैंने कहा कि अभी तो मेरे पास कुछ है नहीं। लेकिन जो कुछ मुझे सबसे पहले मिलेगा वह तुझे दे दूंगा। इतने में मेरे किसी शिष्य ने मेरे पास सोने की मोहरों की थैली भेजी। वह मैं उस नाई को देने लगा तो उसने कहा, 'साई' क्या तुमने यह न कहा था कि खुदा के वास्ते हजामत बना दो?—लेकिन मैंने कहा 'भाई, देखतो सही। यह तो हजार मुहरों की थैली है" नाई ने हँस कर जवाब दिया, 'साई' असली मोहरे इस थैली में नहीं हैं। वे खुदा के वास्ते किये हुए काम में ही हैं।"

देश-सेवा
(२)

युरोप के पश्चिम में हालैण्ड नाम का एक देश है। यह देश कहीं कहीं पर समुद्र के धरातल से नीचा है। समुद्र के पानी को रोकने के लिए वहां लकड़ी के तख्तों के बाध बाँधे जाते हैं।

एक बार इसी देश का एक बालक जिसकी अवस्था ६-१० वर्ष की थी अपने पिता के पास जा रहा था। उसका पिता एक कारखाने में नौकर था। बालक जब एक बाँध के पास से निकला तब उसने देखा कि बांध का एक तख्ता

एक जगह पर गल गया है और उसमें एक छेद हो गया है। इस छेद से धीरे धीरे पानी निकल रहा था। बालक ने सोचा कि यदि यह पानी इसी प्रकार निकलता रहा तो छेद बड़ा हो जायेगा और कहीं ऐसा न हो कि अधिक पानी के आ जाने से यह देश ही डूब जाय। यह सोचकर उस बालक ने अपनी हथेली उस सूराख पर लगा दी। हथेली के सूराख पर लगाने से पानी रुक गया।

बालक को सूराख पर हथेली लगाए बहुत देर हो गई परन्तु कोई मनुष्य उधर से न निकला। थोड़ी देर बाद रात हो गई। जाड़ा पड़ रहा था। उस वीर बालक के पास ओढ़ने या पहनने के लिए काफ़ी गरम वस्त्र न थे किन्तु फिर भी वह अपने देश की रक्षा के लिए अपने आराम की फ़िक्र न कर वहीं डटा रहा और रात भर उसी प्रकार सूराख को हाथ से बन्द किये रहा।

सुबह एक मनुष्य उधर से निकला। उसने देखा कि बालक मारे जाड़े के कांप रहा है और तख्ते पर अपना हाथ लगाए खड़ा है। उसने बालक से पूछा 'क्यों खड़े हो'?

बालक ने सारा मामला उस मनुष्य को बता दिया। बालक की बातें सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि यदि तुमने इसे न रोका होता तो आज हालैण्ड का एक बड़ा भाग पानी में डूब जाता। तुम सच्चे देश भक्त हो, और तुमने देश की एक बहुत बड़ी सेवा की है। उस मनुष्य ने इसकी सूचना बाँध के अफ़सर को दी और उसने आकर फ़ौरन बांध को ठीक कर दिया।

यह खबर सारे हालैण्ड में फैल गई। चारों ओर उस बालक की देश-सेवा की प्रशंसा होने लगी और समाचार पत्रों में उसके चित्र छापे गये।

— रघुनाथ प्रसाद पाठक

उद्बोधन

(ले०—प० सिद्धगोपाल जी कविरत्न साहित्य-वाचस्पति देहली)

१

व्यर्थ में क्यों मर रहे हो ?
काम डर का कुछ नहीं है फिर अकारण डर रहे हो।
बात विस्मय की यही तुम विश्व में मानव कहाते,
होरहे भयभीत फिर भी क्यों नहीं मन में लजाते।
काम था मौलिक तुम्हारा विश्व से भय को भगाते,
आप निर्भय बन निरन्तर और को निर्भय बनाते।
तुम हुये विपरीत इसके भाव भय का भर रहे हो,
व्यर्थ में क्यो मर रहे हो ?

२

भीरु बन जाओ भले क्या मौत तुमको छोड़ देगी,
किन्तु पौरुष और साहस धीरता को छीन लेगी।
तुम निडर होके रहे तो मौत भी तुमसे डरेगी,
यह अभयता ही तुम्हारी मृत्यु की पीड़ा हरेगी।
क्यों हृदय दौर्बल्य का आदर्श जग में धर रहे हो,
व्यर्थ में क्यों मर रहे हो ?

३

वास्तव में आत्मा को तुम नहीं पहिचानते हो,
इसलिये अज्ञानता वश मृत्यु का भय मानते हो।
खेद है तुम आत्मा इस देह को ही 'जानते हो,
इसलिये दुख दासता की खाक दर २ छानते हो।
और को कब तार सकते जब स्वयं नहीं तर रहे हो,
व्यर्थ में क्यों मर रहे हो ?

४

तन नहीं हो आत्मा तुम शस्त्र से कटते नहीं हो,
अग्नि से जल के हवा से सूख के घटते नहीं हो।
नीर से गलते न हो तुम भाग में बंटते नहीं हो,
वस्त्र सम तन है फटे पर तुम कभी फटते नहीं हो।
भूल में भूले सदा तुम सत्य शिव-सुन्दर रहे हो,
व्यर्थ में क्यों मर रहे हो ?

५

स्वाभिमानी स्वावलम्बी बन जमाने को बना दो,
प्राप्तकर निज आत्म परिचय और संसृतिको करा दो
वीर हो तुम भीरुता का भाव जग से अब भगा दो,
ज्योति जीवन की स्वजीवन से हृदय पथमें जगादो।
सिंह हो तुम बकरियों के झुण्ड में क्यों चर रहे हो,
व्यर्थ में क्यों मर रहे हो ?

६

तन मिला मानव तुम्हें यह अमर होने के लिये है,
एकता में प्रेम का प्रिय बीज बोने के लिये है।
लक्ष्य के पहिचानने को पाप धोने के लिये है,
व्यर्थ का नहि भार ढोने को न रोने के लिये है।
तत्त्व सारा जान फिर 'गोपाल' कवि क्या कररहे हो।
व्यर्थ में क्यों मर रहे हो ?

योगिराज श्रीकृष्ण स्मरण

कृष्ण जयन्ती के शुभ अवसर पर,
हम खुशी मनाते हैं।
उनको अपने हृदयासन पर,
गौरव सहित बिठाते हैं॥

कर्मयोगिवर वे नेता थे,
त्यागी शत्रु विजेता थे।
उनके अद्भुत गुणगण को हम,
अपने मन में ध्याते हैं॥

यज्ञ रूप था उनका जीवन,
पर उपकार परायण था।
हम भी अपने जीवन को अब,
यज्ञिय शुद्ध बनाते हैं॥

आत्मा अजर अमर अविनाशी.
इस शिक्षा को मन में धार।
निर्भय होकर धर्म कर्म में,
हम तत्पर बन जाते हैं॥

समता बुद्धि सभी में रखना,
ब्राह्मण हों या हों चण्डाल।
इस समानता प्रेम मन्त्र को,
निज जीवन में लाते हैं॥

करो कर्म आसक्ति रहित हो,
फल की नहिं हो मन में चाह।
कर्मयोग का तत्त्व समझ यह,
चिन्ता दूर भगाते हैं॥

योगिराज श्री कृष्ण नम्रता,
सम विकास की प्रतिमा थे।
उनके उन्नत जीवन को हम,
निज आदर्श बनाते हैं॥

कृष्ण महात्मा तुल्य अनेकों,
योगी भारत में जनमें।
मङ्गलमय जगदीश्वर से हम,
यह ही आज मनाते हैं॥

३-९-४२ "ध्रुव"

आज यदि मैं आर्य्य होता!

[श्रीयुत उमाकान्त गुप्त "किरण" आयुर्वेद विशारद, सिद्धान्त शास्त्री, उपमन्त्री बिहार प्रान्त आर्यकुमार परिषद् गोगरी]

आज यदि मैं आर्य्य होता!

(१)

वेद का लेकर निमन्त्रण,
जगमगाती सब दिशाएँ;
भावनाओं के गगन में,
छा रहीं सुन्दर घटायें।
विश्व-वीणा के स्वरों में,
क्यों न ऋषि का राग भरता;
आज यदि मैं आर्य्य होता!

(२)

चीर उर पाखण्डियों का,
आज हम किसको रिझायें;
वायु बहती जब प्रणय की,
क्यों न हम उनको जगायें।
मृदुल हिय की कल्पना का,
मेह क्यों बरबस बरसता!
आज यदि मैं आर्य्य होता!

(३)

देव 'ऋषि' का स्नेह पाकर,
भक्ति बढ़ जाती हृदय की।
भावनाओं से मुदित हो,
याद आती जब उदय की।
उल्लसित हो आज उर में,
वेद का वर ज्ञान होता।
आज यदि मैं आर्य्य होता!

श्री कृष्ण के जीवन पर एक दृष्टि

(ले०—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक)

हिन्दू जगत् में श्री राम और श्री कृष्ण के समान आदर का पात्र कदाचित् ही कोई दूसरा व्यक्ति होगा। हिन्दू समाज की रक्षा की दुहाई इन्हीं दोनों महापुरुषों के नाम पर दी जाती है। इन दोनों में भगवान् कृष्ण अधिक उच्च समझे जाते हैं। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि महात्मा राम ने संसार में कर्तव्य और सदाचार तो प्रतिष्ठित किया परन्तु कोई युगान्तरकारी कार्य उनके हाथों से नहीं हुआ। अवश्य उन्होंने अपने आचरण से संसार को कर्तव्य का मार्ग दिखाकर धर्म राज्य की संस्थापना की थी। परन्तु कृष्ण जी के समान उनकी सर्वाङ्गीणता पूरी नहीं उतरी। श्री कृष्ण ने धर्मराज्य और धर्म क्षेत्र की स्थापना की थी। उन्होंने राज्यक्रान्ति के साथ २ धर्म और समाज में भी क्रान्ति की। राम राजपुत्र थे और कृष्ण कारागृह में उत्पन्न हुये एक सरदार के पुत्र थे। जिस वातावरण में वे पले, वह बिल्कुल सीधा सादा और ग्रामीण जनों का था। उन्होंने अनेक राज्य क्रांतियां कराईं फिर भी स्वयं राजा नहीं हुये। सर्वत्र व्यवस्था निर्माण में लगे रहे। भगवद्गीता के उपदेश द्वारा उन्होंने ज्ञान और कर्मका ऐसा उदात्त रूप प्रस्तुत किया है जिसकी गौरव-गरिमा आज ५ हजार वर्ष से अधिक हो जाने पर भी अक्षुण्ण बनी हुई है और न मालूम कब तक बनी रहेगी। गीता में जिस निष्काम कर्म और यज्ञ मय जीवन का प्रतिपादन किया गया है महाराज कृष्ण उस के साक्षात् प्रतिबिम्ब थे।

योगिराज श्रीकृष्ण के जीवन और जीवन के लक्ष्य को भलीभांति समझने के लिये हमें उनके समय की राजनैतिक और सामाजिक स्थिति का अध्ययन करना चाहिये। उस समय भारतवर्ष बहुत से स्वतन्त्र राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों को एकत्व में बांधने और उनको नियन्त्रण में रखने के लिये कोई चक्रवर्ती राज्य न था। यही कारण था कि बहुत से राजा स्वेच्छाचारी और विलासी बन गये थे और अपनी प्रजा को दुःखी रखते थे। मथुरा के राजा कंस और मगध के राजा जरासंध के अत्याचार तो जगत् प्रसिद्ध हैं ही। कंस तो अपने अत्याचारों में यहां तक बढ़ गया था कि उसने अपने देवता स्वरूप पिता राजा उग्रसेन को भी बन्दीगृह में डाल दिया था। उधर जरासंध ने बहुत से छोटे २ राजाओं को भी कारागृह में डाला हुआ था। कौरवों और पांडवों में गृह-कलह छिड़ा हुआ था। राज शक्ति पर ब्राह्मणों की शक्ति का प्रभाव नाम मात्र को था। धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों का एक पृथक् समुदाय बन गया था जो निवृत्ति मार्ग के पथिक बनकर संसार से उदासीन रहने में सुख मानते थे। ब्राह्मण वर्ग के घोर निवृत्तिवादी होने—और राजवर्ग के घोर प्रवृतिवादी होने से राजसूत्र ऊल जलूल ढंग पर उद्देश्य रहित घूमता था। प्रजा खाने पीने आदि की दृष्टि से सुखी होने के कारण विलासी बन गई थी। इस निरुद्देश्य राजसूत्र के कारण राजाओं का विलासी और अत्याचारी तथा प्रजा का पतित होना अवश्यम्भावी था।

सामाजिक स्थिति खराब होने लग गई थी। यद्यपि वैदिक व्यवस्था का पूर्णतया लोप नहीं हुआ था तथापि उसका ह्रास अवश्य होने लग गया था। उन दिनों क्षात्रधर्म का प्राधान्य हो गया था। हम देखते हैं कि द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदि ब्राह्मणों ने ब्राह्मणवृत्ति को छोड़कर अधिकतर क्षात्रवृत्ति ग्रहण करली थी। यादव वंश वाले क्षत्रिय प्रवृत्ति को छोड़ कर गोपालन आदि वैश्यों का धंधा करते थे और समाज उन्हें शूद्र समझने लग गया था। वर्ण व्यवस्था में प्रायः जन्म का प्राबल्य माना जाने लगा था। हम महाभारत में पढ़ते हैं कि एकलव्य नामक एक व्यक्ति को द्रोणाचार्य के चरणों में बैठकर धनुर्विद्या के सीखने का इसलिये सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका था कि वह जन्म से शूद्र समझा जाता था।

अवश्य उन दिनों स्त्रियों में गिरावट प्रारम्भ नहीं हुई थी। उदाहरणार्थ कौरवों की माता गांधारी को ले लीजिये। अपने पति जन्मान्ध महाराज धृतराष्ट्र के प्रति उन्होंने जिस निष्ठा का परिचय दिया वह सब जानते हैं।

एक शब्द में उस समय राजसूत्र अत्याचारी और आततायी राजाओं के हाथ में था स्त्री, शूद्र और वैश्यों के लिये ज्ञान-मार्ग का द्वार बन्द सा हो गया था। वर्ण व्यवस्था का रूप विकृत होने लग गया था। धर्मजीवी व्यक्तियों का एक पृथक समाज बन गया था और यह समाज निवृत्ति मार्ग का पथिक था। दूसरी ओर अधर्म का प्राबल्य हो रहा था। जो धर्म-जीवी सज्जन धर्म से प्रेम रखते और सांसारिक कार्यों में भी प्रेम रखते थे वे अत्याचारी राजाओं के क्रीतदास बन गये थे। फिर अधर्म के नाश और धर्म की प्रतिष्ठा का सुयोग किस प्रकार सम्भव था। उस समय धर्म की प्रतिष्ठा और अधर्म के विध्वंस की परम आवश्यकता थी। उसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये श्री कृष्ण का प्रादुर्भाव हुआ था, ऐसा कहेंगे तो अत्युक्ति न होगी।

महाराज कृष्ण का सब से पहला कार्य कंस, जरासंध आदि आततायी राजाओं का वध समझा जाता है। उन्होंने इन राजाओं को नष्ट करके प्रजा को उनके अत्याचारों से मुक्त किया। विशेषता यह है कि इन राज्यों को उनके सदाचारी और सुयोग्य उत्तराधिकारियों को ही सौंपा वे स्वयं राजा न बने।

इन छोटे मोटे राज्यों की व्यवस्था ठीक करके उन्होंने युधिष्ठिर को चक्रवर्ती सम्राट् बनाने का उद्योग प्रारम्भ किया। अपने इस कार्य में वे सफल भी हुए परन्तु दुष्ट दुर्योधन के कपट जाल में युधिष्ठिर के फंस जाने के कारण उनके उद्योग में विलम्ब हुआ और अन्त में शान्ति स्थापना का भरसक यत्न करने के पश्चात् इस काय की पूर्ति और उसके लिये धर्म राज्य की स्थापना के लिए उन्हें महाभारत संग्राम का पांडवों द्वारा सूत्र पात कराना पड़ा।

महाभारत से भारत का सर्वनाश हुआ, ऐसा समझदार देशवासी मानते हैं, और उनकी धारणा ठीक भी है परन्तु महाभारत के द्वारा हुए सर्वनाश के लिये कोई भी महाराज कृष्ण को दोषी नहीं ठहराता। महाभारत की समाप्ति पर केवल १० व्यक्ति शेष बचे थे। अखिल भारत का राज्य युधिष्ठिर को प्राप्त हुआ था। बन्धु

बान्धवों और क्षत्रियकुल का संहार कर मिलने वाले रक्त-रंजित राज्य से धर्मराज का मन प्रसन्न नहीं हुआ।

उन्होंने एक दिन अपने भाइयों, श्री कृष्ण और द्रौपदी के सामने उदासीनता प्रकट करते हुए कहा-"जातीय बन्धु बांधव एव भारत के इतने क्षत्रिय कुलों का संहार करके मिलने वाले इस राज्य में मेरी जरा भी प्रवृत्ति नहीं होती। अच्छा होता हम बनवासी रहकर ही जीवन व्यतीत कर देते और यह भीषण सर्वनाश कारी युद्ध न करना पड़ता। राज्य करने की मेरी जरा भी इच्छा नहीं है। मैं यह चाहता हूं आप लोग राज्य सम्भाल लें और मैं बन में जाकर शेष जीवन तपस्या में व्यतीत करूँ।" धर्मराज युधिष्ठिर की यह बात सुनकर पांडव तथा द्रौपदी बड़े असंतुष्ट हुए। अर्जुन और द्रौपदी ने तरह तरह से धर्मराज को समझाया भी परन्तु उनकी समझ में कुछ भी न आया। तब श्रीकृष्ण और व्यासदेव ने कहा "धर्मराज, तुम व्यर्थ ही में शोक-संतप्त हो रहे हो। वास्तव मे तुम में अहं-भाव आ गया है। उसी के कारण इस भारत युद्ध को अपना किया समझने लगे हो। परन्तु तुम उसके कर्ता नहीं हो। इसको तो इस रूप मे होना ही था। फिर दुष्टों का दमन और धर्म राज्य की स्थापना का कार्य कैसे सिद्ध होता।"

महाराज कृष्ण के इन शब्दों से महाभारत का ठीक ठीक महत्त्व समझने में देर नहीं लगती। इसके अतिरिक्त इस युद्ध से गीता के रूप में आध्यात्मिक क्रान्ति भी हमारे सामने आई। महाभारत के शीघ्र पश्चात् यदि कृष्ण जी की इह लीला समाप्त न हुई होती तो आज संसार का मान-चित्र कुछ और ही हुआ होता। दुर्भाग्य से सामाजिक उत्थान की उनकी योजना अधूरी ही रह गई।

दुःख है कि ऐसे महा पुरुष के उदात्त जीवन को विलासी और कलुषित बनाने और प्रस्तुत करने में हमारे हिन्दू समाज को लज्जा नहीं आती। श्री कृष्ण शूरवीर थे, तेजस्वी और यशस्वी थे। व्यभिचार का उनके मत्थे दोषा-रोपण करना उनका अपमान करना है। सबसे बड़ा दुःख यह है कि हिन्दी-साहित्य ने जितना इस महा पुरुष के चरित्र के साथ अन्याय किया है उतना और किसी के साथ नहीं किया।

श्रीकृष्ण की महत्ता के विषय में हम अपने पाठकों का ध्यान इन्द्रप्रस्थ की ओर खींचते हैं; जबकि महाराज युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करा रहे थे। यज्ञ विधि के समाप्त होने पर अवभृथ स्नान का अवसर उपस्थित हुआ। इस स्नान के पूर्व समागत महा पुरुषों के पूजन की तैयारी हुई। परन्तु सबसे पहले यह प्रश्न उठा कि पहले किस की पूजा की जाय। धर्मराज युधिष्ठिर ने पिता-मह भीष्म से पूछा। उन्होंने कहा कि समागत लोगों में सर्व श्रेष्ठ श्री कृष्ण हैं। उन्हीं का पहले पूजन होना चाहिये। पांडवों को तो यह बात पसन्द आनी ही थी सहदेव ने तुरन्त उठकर श्री कृष्ण का पूजन कर दिया, परन्तु पुराने पापी शिशुपाल को यह सह्य न हुआ। वह क्रोध में भर कर बोला "यह कैसी बज्र मूर्खता है। वेदविद्, ज्ञानवान् अनेक लोगों की उपस्थिति में यह अग्रपूजा का सम्मान सर्व प्रथम कृष्ण को

कैसे दिया गया ? वृद्ध भीष्म की बुद्धि मारी गई। यह तो केवल पांडवों को प्रसन्न करना ही जानता है। क्या कृष्ण वयोवृद्ध है ? यहां आचार्य द्रोण और वेदवित व्यासदेव उपस्थित हैं, राज-श्रेष्ठ दुर्योधन, भीष्मक, शल्व, शल्य आदि अनेक महा प्रतापी राजा विद्यमान हैं। फिर कृष्ण ही सर्व श्रेष्ठ क्यों हुआ ? यह न तो आचार्य है न वेदवित्, न राजा है। यह है पांडवों का मित्र, इसीलिए पांडवों ने इसकी पूजा की है।"

तब भीष्म पितामह ने कहा "मैं समझता हूँ यहां एक भी ऐसा राजा नहीं है जिसको श्री कृष्ण ने न जीता हो। वे वयोवृद्ध नहीं हैं, परन्तु ज्ञानवृद्ध, बलवृद्ध एवं धनवृद्ध अवश्य हैं। वे वेद वेदांगविद् और सत्यबल सम्पन्न हैं इसलिए सबके आचार्य, पिता, और गुरु हैं। इसलिए उनकी अग्रपूजा हुई है।"

पूज्यतायां च गोविन्दे हेतू द्वावपि संस्थितौ।
वेद वेदाङ्ग विज्ञानं, बलं चाप्यधिकं तथा ॥

शिशुपाल कृष्ण का सबसे बड़ा विरोधी और शत्रु समझा जाता है परन्तु उसने कहीं भी व्यभिचार वा कदाचार का दोष श्रीकृष्ण के ज़िम्मे नहीं लगाया। हम जो लोग उन्हें विलासी के रूप में प्रस्तुत करने का यत्न करते हैं वे श्री कृष्ण के शिशुपाल से भी अधिक शत्रु हैं।

यदि आज की राजनैतिक और सामाजिक स्थितियों की श्री कृष्ण के काल की इन स्थितियों के साथ तुलना की जाए तो जमीन और आकाश का अन्तर देख पड़ेगा। आज संसार में आसुरी प्रवृत्तियों का बोल बाला है और प्रजा नाना प्रकार के कष्टों और बन्धनों से पीड़ित है। आज का राजसूत्र भी प्रकृति वादियों के हाथ में है और लक्ष्य हीन गति से चल रहा है। आज भी प्रकृति और निवृत्ति वाद के समन्वय पूर्वक राजसूत्र के सञ्चालन और धर्म राज्य की स्थापना की परम आवश्यकता है। वर्तमान महा सग्राम के पश्चात् ऐटलांटिक चार्टरों आदि के द्वारा संसार को सुखधाम बनाए जाने की योजनाएँ प्रकाश में आ रही हैं। देखें इनका क्या फल होता है ? परन्तु इस समय तो लक्षण शुभ नहीं देख पड़ते हैं। आज संसार को श्री कृष्ण के सन्देश को सुनने और क्रिया में लाने की आवश्यकता है। उनका सन्देश यही है कि अधर्म का नाश और धर्म का प्रसार करो इसी में व्यक्ति और समष्टि का कल्याण है।

आज योरुप के बड़े २ बिशप और पादरी यह कहने के लिए बाध्य हुए हैं कि ईसाई धर्म में आवागमन के सिद्धान्त को स्वीकार किए बिना ईसाई राष्ट्रों का जीवन का भौतिक दृष्टि कोण नही बदलेगा और बिना इसके बदले जीवन की प्रतियोगिता और उ के फल स्वरूप कलह अशान्ति और युद्ध बन्द न होंगे। यदि वे बिशप साहस करें, राजसूत्र की दासता से ऊपर उठें और वर्तमान अशान्ति और युद्ध के विरुद्ध आन्दोलन करें तो वे कृष्ण के सन्देश को क्रियान्वित किए जाने में बहुत कुछ योग दे सकते हैं। क्या हम ऐसी आशा करें ?

सत्य सनातन आर्य धर्म के मुख्य तत्व

(ले०—पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति, उपमन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली)

वर्णाश्रम व्यवस्था

सत्य सनातन आर्य धर्म का पंचम मुख्य तत्त्व वर्णाश्रम व्यवस्था है। श्रम विभाग के सिद्धान्तानुसार वेदों में गुण कर्म स्वभाव पर आश्रित ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों का तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास इन चार आश्रमों का विधान किया गया है जिनके कर्तव्यों का उत्तम रीति से पालन करता हुआ प्रत्येक मनुष्य अपनी उन्नति के साथ अपनी शक्ति और योग्यतानुसार समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सकता है। "वर्णो वृणोते:" इस निरुक्त प्रतिपादित व्युत्पत्ति के अनुसार वर्ण शब्द का अर्थ यह है कि 'व्रियन्ते गुणकर्मादिभिरिति वर्णाः' अर्थात् गुण कर्म आदि से जिनका चुनाव किया जाय वे वर्ण हैं।

वेदों के अनुसार मनुष्यों में जन्म से कोई उच्च या नीच नहीं यह बातः—

"अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते संभ्रातरो वावृधुः सौभगाय। युवा पिता स्वपा रुद्र एषां पृश्निर्माता सुदिना मरुद्भ्यः॥" ऋ० ५।६१।५

जिनमें सब मनुष्यों को एक ईश्वर पिता और पृथिवी माता का पुत्र होने के कारण समान रूप से भाई बताया गया है और इस भ्रातृ भावना को धारण करके व्यवहार करने को ही सौभाग्य की वृद्धि का साधन कहा गया है इत्यादि मन्त्रों से स्पष्ट है।

"दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्तां। मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥"

यजुर्वेद ३६।१८

"शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥" यजु० ११।५

इत्यादि वेद मन्त्र जिनमें सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखने का उपदेश दिया गया है और सबको अमर परमेश्वर का पुत्र बताया गया है इसी भ्रातृ भाव, विश्व प्रेम आदि के पवित्र वैदिक सिद्धान्त की स्पष्ट घोषणा करते हैं।

वेद के "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः। ऊरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत।" (ऋग्वेद १०।९० यजुर्वेद ३१। ११) इस सुप्रसिद्ध मन्त्र के अन्दर मनुष्य समाज की एक व्यक्ति के शरीर के साथ तुलना करते हुए समाज के आदर्श संगठन का जो निर्देश किया गया है वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। वेद कहता है कि यदि सच्चे ब्राह्मण का तुम आदर्श जानना चाहते हो तो अपने मुख भाग की ओर देखो। इस मुख भाग के अन्दर आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ हैं और कर्मेन्द्रियों में से एक वाणी है जो इस भाग में पाई जाती है। सारे अवयवों में यदि सबसे अधिक स्वार्थ रहित और तपस्वी कोई अवयव है तो यह मुख ही है। सर्दियों में जब कि सारे

अवयवों को खूब अच्छी तरह से ढांक लिया जाता है तब भी यह मुख का भाग नंगा ही रहता है। इसके अन्दर कितने भी स्वादु पदार्थ क्यों न डाले जाएँ यह अपने लिये कुछ न रख कर सारे शरीर में उन्हें रुधिरादि द्वारा पहुँचा देता है। इसी प्रकार समाज में जो पुरुष सम्पूर्ण ज्ञान का संग्रह करके वाणी द्वारा उसका प्रचार करते हैं, जो तपस्वी और स्वार्थ रहित हैं वही सच्चे ब्राह्मण कहला सकते हैं। मनुस्मृति इत्यादि में ब्राह्मणों की पूजा करने का जो इतना महत्त्व बताया गया है, वह इसी लिये कि ऐसे स्वार्थ-रहित तपस्वी, सदाचारी, ज्ञानी पुरुष जब तक समाज के नेता नहीं बनते तब तक समाज की यथार्थ उन्नति असम्भव है। यजुर्वेद में "ब्रह्मणे ब्राह्मणम्" (अ० ३० । ४) कह कर इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि ब्रह्म अर्थात् ज्ञान के प्रचार के लिये ब्राह्मण को नियुक्त करना चाहिए। जो स्वयं ब्रह्मज्ञानी नहीं और सच्चे ज्ञान के प्रचार का जो यत्न नहीं करता वह पुरुष ब्राह्मणोचित मान के कभी योग्य नहीं हो सकता। अथर्व वेद का० ५ सू० १९ म० ६ में यहाँ तक कह दिया है कि—

उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति ।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥

अर्थात् जो अत्याचारी राजा अपनी शक्ति का घमण्ड करता हुआ ब्राह्मणों को सताता है, उसके राष्ट्र का शीघ्र ही नाश हो जाता है। म० ९ में भी 'ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद् राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना।' कह कर बताया है कि दुर्गति उस राष्ट्र का नाश कर देती है जहाँ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण की हिंसा की जाती है।

इस प्रकार के सब मन्त्रों में किसी ब्राह्मण जाति का कोई निर्देश नहीं किन्तु 'ब्रह्म जानातीति ब्राह्मणः' व्युत्पत्ति के अनुसार सच्चे ब्रह्मज्ञानी का तिरस्कार करने से समाज और राष्ट्र की जो बुरी दशा होती है उसको सूचित किया गया है। 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' इस मन्त्र का पौराणिक भाई जो 'ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुआ' इत्यादि अर्थ करते हैं वह कैसा असङ्गत और पूर्वापर विरुद्ध है। यह विस्तार से दिखाने की यहां आवश्यकता नहीं। इससे ठीक पूर्व के मन्त्र में 'यत् पुरुषं व्यदधुः' कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरूपादा उच्येते।' (यजु० ३१।१०)

यह जो प्रश्न किया गया है कि समाज की पुरुष के रूप में जो कल्पना की गई है वह कितने प्रकार से है? उसका मुख क्या है? बाहु क्या हैं और जङ्घा तथा पैर क्या हैं? उस प्रश्न का उत्तर 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्' इस मन्त्र द्वारा दिया गया है। मुख क्या है? इस प्रश्न का उत्तर 'ब्राह्मण मुख से उत्पन्न हुआ यह देना 'आम्रान् पृष्टः कोविदारानाचष्टे' इस कहावत को चरितार्थ करना है जिसका मतलब है कि आम कहां है? पूछने पर यदि कोई उत्तर दे कि कचनार यहां पड़े हैं? तो सब उसका उपहास करेंगे वैसे ही इस उत्तर को असङ्गत मानना पड़ेगा। 'बाहू राजन्यः कृतः' इस वाक्य के द्वारा वेद क्षत्रियों की उपमा बाहुओं से देता है। शरीर में भुजाओं का काम सारे शरीर की बाह्य और आन्तरिक आक्रमणों से रक्षा करना है। जब कभी कोई शत्रु हमें मारने के लिए उपस्थित होता है तो ये हाथ हैं जो आत्म रक्षार्थ सबसे आगे बढ़ते हैं। इसी तरह

यदि कहीं पैर में या दूसरी जगह कांटा लग जाता है तो उसे निकालने का काम ये हाथ ही करते हैं। सारे शरीर में सब से अधिक फुर्तीलापन हाथ के भाग में ही पाया जाता है। इसी तरह जो लोग मनुष्य समाज वा राष्ट्र की आन्तरिक वा बाह्य शत्रुओं के आक्रमणों से रक्षा करते हैं वही शूर फुर्तीले पुरुष क्षत्रिय कहलाते हैं। क्षत्र और क्षत्रिय शब्द पर्याय वाचक हैं जिनका अर्थ क्षत अर्थात् आपत्ति आक्रमण चोट से त्राण-रक्षा करने वाला है जैसे कि कविकुल शिरोमणि कालिदास ने 'क्षतात् किल त्रायत इत्युदग्रः क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रूढ़ः।" इन शब्दों द्वारा रघुवंश में प्रकट किया है। वेद शास्त्र के अनुसार शुक्र स्मृति में क्षत्रिय का निम्न लिखित अत्युत्तम लक्षण किया गया है :—

लोक संरक्षणे दक्षः, शूरो दान्तः पराक्रमी।
दुष्ट-निग्रह-शीलो यः, स वै क्षत्रिय उच्यते॥

अर्थात् जो लोक रक्षा में चतुर, शूर वीर, मन को वश में रखने वाला, पराक्रमी और दुष्टों को दण्ड देने वाला है वह क्षत्रिय कहलाता है। योग-राज श्री कृष्ण महाराज ने:—

'शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥
(गीता १८।४३)

इन शब्दों द्वारा शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध में पैर पीछे न हटाना, दान और शासन योग्यता इन्हें क्षत्रियों के स्वभावानुकूल गुण बताया है। सच्चे ब्राह्मणों और क्षत्रियों का मेल किसी भी राष्ट्र की उन्नति और रक्षा के लिये अत्यावश्यक है यह बात :—

"यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं पुण्यं लोकं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना॥
यजु० २०।

इत्यादि वेद मन्त्रों में कही गई है जिनका अर्थ स्पष्ट है कि वह पुण्य लोक वा देश होता है जहां ब्राह्मणत्व और क्षात्र भाव, ज्ञान और शक्ति परस्पर अनुकूल और सहायक होकर विचरण करते हैं। जहां देव—विजयेच्छु क्षत्रिय लोग (दिवु धातु के अनेक अर्थों में से विजिगीषा अथवा विजयेच्छा इस अर्थ का यहां ग्रहण करना उचित प्रतीत होता है) अग्नि अथवा अग्रणी-नेता ब्राह्मण के साथ रहते हैं।

"ऊरू तदस्य यद् वैश्यः अथवा 'मध्यंतदस्य यद् वैश्यः (अथर्व वेद) के द्वारा वेद वैश्य के कर्तव्य का उत्तमता से निर्देश करते हैं जिसका तात्पर्य यह है कि शरीर में मध्य भाग का अर्थात् पेट से जङ्घा तक के भाग का जो कार्य है समाज में वही कार्य करने वाले वैश्य होते हैं। शरीर के इसी भाग में अन्न संचयादि होता है। भोजन का परिपाक करके रुधिरादि रूप में उसे परिणत करके ही यह भाग फेफड़ों इत्यादि में उसे भेजना है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना जङ्घाओं के बिना असम्भव है इसी तरह जो पुरुष व्यापारादि द्वारा धन को संग्रह करके जनता के लाभार्थ उस का उपयोग करते हैं वे वैश्य कहाते हैं।

'पद्भ्यां शूद्रो अजायत' इस वाक्य के द्वारा शूद्रों की उपमा पैरों से दी गई है। जिस प्रकार पैरों के द्वारा इधर उधर चल कर मनुष्य सेवा कर सकता है, वैसे जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य की सेवार्थ इधर उधर जाते हैं 'शुचाद्रवतीति शूद्रः' और जिनके अन्दर उच्च ज्ञान सम्पादन की

योग्यता न होने के कारण शोक मोहादि रहता है वे शूद्र कहाते हैं। उनके बिना भी मनुष्य समाज का कार्य नहीं चल सकता। इसलिये वेद की शिक्षा "प्रियं मा कृणु देवेषु, प्रिय राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥" इत्यादि मन्त्रों द्वारा यही है कि हमें अपने प्रेममय शुभ आचरण और व्यवहार द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब का प्रिय बनना चाहिए। किसी से भी घृणा न करनी चाहिए। जिस प्रकार शरीर में सिर, बाहु, पेट, पैर इत्यादि सब अङ्ग उपयोगी हैं और सब की सहायता से ही शरीर का काम चल सकता है वैसे ही समाज की उन्नति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन सब के परस्पर प्रेम और सहयोग पर निर्भर है यह सत्य सनातन आर्य धर्म का तत्त्व है। इस वर्ण व्यवस्था का आधार जन्म पर नहीं, किन्तु गुण कर्म पर है, इस बात को–

'शूद्रो ब्राह्मणतामेति, ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु, विद्याद् वैश्यात् तथैव च॥
(मनु १०। ४९)

न जात्या ब्राह्मणश्चात्र, क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो, भेदिता गुण कर्मभिः॥
(शुक्रनीति १। ३८)

न कुलेन न जात्या वा, क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्।
चण्डालोऽपि हि वृत्तस्थो ब्राह्मणः स युधिष्ठिर॥
(महाभारत अनु० शा० २२६। ४)

शूद्रे चैतद् भवेल्लक्ष्म, द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो, ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च॥
(वन पर्व १८०। १५)

इत्यादि सैकड़ों आर्ष वचनों द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है जिनमें स्पष्ट घोषणा की गई है कि शूद्र कुलोत्पन्न पुरुष के अन्दर भी यदि ब्राह्मणोचित गुण, कर्म, स्वभाव पाये जाएँ तो वह ब्राह्मण बन जाता है। इसके विपरीत यदि ब्राह्मण-कुलोत्पन्न पुरुष के अन्दर ब्राह्मणोचित शम, दम, ज्ञान, सत्य, तप, क्षमादि गुण न हों तो वह शूद्र हो जाता है। जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं। यह सब वर्ण भेद गुण कर्म पर ही आश्रित है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेने से कोई ब्राह्मण नहीं बनता किन्तु कर्मों से ही ब्राह्मण बनता है। सदाचारी ज्ञानादि सम्पन्न चण्डाल कुलोत्पन्न भी ब्राह्मण ही है" इत्यादि। इस वैदिक तथा शास्त्रीय वर्ण व्यवस्था के तत्त्व को भुला कर जब वर्णों के स्थान पर, जन्म पर आश्रित सैकड़ों जातियाँ बन गईं और उनमें परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, विरोध, वैमनस्य उत्पन्न होने लगे तो श्री गौतम बुद्ध ने उस जाति भेद और जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था का प्रबल खण्डन करके पुनः गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था का सिद्धान्त जनता के सन्मुख रखा, इस बात को अगले लेख में दिखाया जायेगा। वर्णाश्रम व्यवस्था पर तुलनात्मक दृष्टि से कुछ अन्य विचार भी उसी लेख में रखेंगे क्योंकि यह लेख पर्याप्त लम्बा हो गया है।

माँ से ?

(ले० "विकल")

माँ ! ऊपर को कर तो मुखड़ा ।
क्यों रही हाथ पर टेक माथ ?
क्यों हुये धूल धूसरित केश ?
मुख म्लान बह रही अश्रुधार,
हे जननी कैसा आज भेष ?
माँ ! कहाँ गया तन का कपड़ा ?

सुजला सुफला जो शस्य श्याम,
वसुधा को करती थी निहाल।
तन क्षीण दीन बल हीन हाय,
दुखिया को कर डाला निढाल।
माँ ! चाब रही सूखा टुकड़ा ।।

मेरी नस नस में तेरा खून,
मेरे हर स्वर में तेरा राग।
जननी का मूक प्रलाप देख,
जलती है उर में विकल आग।
माँ ! कुछ तो कह सुत सों दुखड़ा

('उषा निमन्त्रण' अप्रकाशित पुस्तक से)

सौर पंचांग संशोधन

(लेखक—श्री प० गंगाप्रसाद जी M A रिटायर्ड चीफ जस्टिस)

गताङ्क से आगे

१२ सायनमत की पुष्टि मे शास्त्रों के प्रमाण

जैसा ऊपर लिखा गया अधिकाश ज्योतिषियों का यह मत है कि निरयण विधि के अनुसार माने हुए स्थिर मेषादि विन्दुओं मे ही पुण्य जनकता होती है। परन्तु कुछ शास्त्रकारों ने सायन विधि के अनुसार पुण्य जनकता मानी है। इस पर कुछ प्रमाण नीचे दिये जाते है, जो कि श्री उदयनारायण सिंह कृत "सूर्य सिद्धान्त" के हिन्दी अनुवाद की विस्तृत और गवेषणा पूर्ण भूमिका से लिये गये हैं—

अयनाश सस्कृतो भानुर्गोले चरति सर्वदा। अमुख्या राशि सक्रान्ति स्तुल्य काल विधिस्तयो ।' स्नान दान जप श्राद्ध व्रत होमा दिकर्मभि । सुकृत चलसक्रान्तावक्षय फलमश्नुते ॥ (पुलस्त्य स्मृतौ)। चल सस्कृत तिग्मांशो सक्रमो य स सक्रम अजागल स्तन इव राशि सक्राति रुच्यते॥ पुण्यदा राशि सक्रान्ति केचिदा हुर्मनीषिण । नैतन्मम मत यस्मान्नस्पृशेत् सक्राति कत्तया ॥ (वसिष्ठ) सस्कृतायनभागार्के सक्राति स्त्वयन किल। स्नान दाना दिषु श्रेष्ठो मध्यम स्थान सक्रम । (सोम सिद्धात)। अयनाश सस्कृतार्कस्य मुख्या सक्रृति रुच्यते। अमुख्या राशि सक्राति स्तुल्य काला-वधि-स्तयो ॥४७॥ (रामश सिद्धात स्पष्टाधिकार) । यस्मिन्दिने निरश स्यात्सस्कृतोर्कोऽयनाशकै । तद्दिन च महा पुण्य रहस्य मुनिभि स्मृतम्॥ (ज्योतिर्निबंध वसिष्ठः)। यस्मिन्देशे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम्। दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात तिथ्यादि निर्णयम्॥

(भा० गोलबधाधिकार)

इन सब प्रमाणों से "सायन विधि" का ही समर्थन होता है। वसिष्ठ जी ने तो स्पष्ट यह कहा है कि सायन विधि के अनुसार ही जो सक्रान्ति है वही सक्रान्ति है। इससे विरुद्ध जो निरयन मत से राशि सक्रान्ति कही जाती है वह इसी प्रकार निरर्थक है जैसा कि बकरी के गले के स्तन। पुलस्त्य स्मृति मे स्पष्ट शब्दों से स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रत, होमादि सब कर्मों के लिये सायन सक्रान्ति को ही पुण्य देने वाला माना है। यही सोम सिद्धान्त का भी मत है। यह खेद का विषय है ऐसे प्रमाण होते हुये भी हमारे ज्योतिषी बहुधा निरयन मत के ही अनुसार पचाग बनाते हैं। उनमे ऐसे भी हैं जो सायन मत को सत्य जानते हुए ऐसा करते हैं। इसके उदाहरण रूप हम श्री काशी नरेश के किसी गत वष के पचाग का उदाहरण देते हैं, जिसमे उस पचाग के निर्माता ने स्पष्ट शब्दों मे यह स्वीकार किया है कि सायन गणना ही मुख्य है, परन्तु भारतवष मे सर्वत्र निरयन गणना के प्रचार होने से साधारण जनता की तुष्टि के लिये उन्होंने निरयन गणना से पचाग रचा--

"महाराज द्विज राज श्री ५ महीश्वर प्रसाद नारायणसिंह बहादुराख्येन श्री काशी नरेशेन

आविष्टः पञ्चाङ्ग करणे प्रवृत्तोऽहम्। भवति यद्यप्यत्र सायन गणनैव मुख्यातथाप्यस्मिन भारतवर्षे सर्वत्र निरयन गणनाया एव प्रचारात् सामान्य जन प्रमोदायेदं तिथि पत्रं निरयन गणनयैव व्यरचयम्"।

१३ ज्योतिष के विद्वानों से अपील

पूर्व लिखित प्रमाणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि फलित के ज्योतिषी भी इस बात में सर्वसम्मत नहीं हैं कि निरयन मत ही ठीक है। ऐसी दशा में आशा की जाती है कि वह विद्वत्समिति जिसको श्री सम्पूर्णानन्द जी ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिये नियत किया तथा भारत के अन्य ज्योतिषी आगामी विक्रम द्वि सहस्राब्दी के अवसर पर एक सम्मेलन करने का निश्चय करेंगे जिसमें पूर्वोक्त प्रकार से सौर पंचांग में संशोधन किया जावे। यदि किन्हीं ज्योतिषियों का यही आग्रह हो कि निरयन मत के अनुसार ही पर्वादि में फल देने की शक्ति हो सकती है तो उत्तर यह है कि पूर्वोक्त संशोधन होने के पश्चात् भी पंचांगों में निरयन संक्रांति उस प्रकार दिखलाई जा सकती है, जैसे अब सायन संक्रांति दिखलाई जाती है।

१४ सौर वर्ष का महत्व

साधारण जनता के लिये चन्द्र वर्ष जो तिथियों के अनुसार चलता है अवश्य उपयोगी है। हमारे बहुत से त्योहार उसी के अनुसार होते हैं। चन्द्रमा को देखकर साधारण अनपढ़ लोगों को भी तिथियों का हिसाब लगाना सुगम होता है। परन्तु चन्द्र वर्ष को रखते हुए सौर वर्ष का बड़ा महत्व है। उसमें तीसरे वर्ष कोई तेरहवाँ मास नहीं होता है। वह अंग्रेजी पचांग से बिलकुल मिल जाता है, जिसका प्रचार सारे योरोप व अमरीका आदि में है। आजकल के सौर पंचांगों में बहुधा एक दो दिन का परस्पर भेद होता है। काशी के ज्ञान मण्डल प्रेम से जो सौर पंचाङ्ग छपता है उसमें यह कमी दूर कर दी गई है। उसमें १२ मासों के दिन निश्चित रूप से नियत कर दिये गए हैं। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने जो भूगोल भर की सब आर्य समाजों की शिरोमणि सभा है अपने २-६-४० के निश्चय स० १० तथा १३-१०-४० के निश्चय स० ७ के द्वारा सभा के सब कार्यों में ज्ञान मण्डल काशी के अनुसार सौर पंचांग का प्रयोग करना स्वीकार कर लिया है। युक्त प्रान्त और पंजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा तथा काँगड़ी गुरुकुल आदि संस्थाओं में भी सौर पंचांग का ही प्रयोग होता है पंजाब और बंगाल में पूर्व से ही सौर पंचांग का काफ़ी प्रचार है। युक्त प्रान्त के पहाड़ी प्रदेशों में बिलकुल उसी का प्रचार है यदि सारे भारतवर्ष में मुख्यतया सौर पंचांग का प्रयोग किया जावे तो एक प्रकार समान व्यवहार होने से बहुत सुविधा हो जायेगी और यदि विक्रम महोत्सव पर इस पंचांग में जो इस समय त्रुटि है वह दूर करदी जाय तो विज्ञान के सर्वथा अनुकूल हो जाने से उसका महत्त्व बहुत बढ़ जायेगा।

१५ उपसंहार

काशी का सारे भारतवर्ष में मान है। यदि काशी में विक्रम द्वि सहस्राब्दी के अपूर्व अवसर पर भारतवर्ष के ज्योतिषियों के सम्मेलन द्वारा हमारे सौर पंचांग का पूर्वोक्त प्रकार संशोधन हो जाय तो उसका सारे देश में प्रचार हो सकता है। मेरी सम्मति में उक्त सम्मेलन के सभापति पूज्य महामना श्री पं० मदनमोहन मालवीय होने चाहिए जो हिन्दू जगत् के सर्व मान्य नेता और ज्योतिष में भी निपुण हैं।

Two Important Bills

The following note has been submitted to the Government by Pandit Ganga Prasadji M A Acting President Sarvadeshik Sabha, regarding the bills on Intestate Succession and marriage.

Note on Bill Relating to Hindu Intestate Succession

The proposed bill is a great improvement on the existing law of inheritance amongst Hindus and its main features have been well summarised in the explanatory note The uniformity of law of succession amongst Hindus is in itself a great advantage and the proposed bill attempts to secure it by a compromise between the two schools of Hindu Law viz Mitakshara and Dayabhag, and the claim, that the compromise does no great violence to either of them may well be considered to be justified

There also can be no two opinions that the Bill seeks to raise the present status of Hindu Women Such a change in law has been long overdue, and the proposed legislation only seeks in a measure to make it more in accordance with ancient Vedic conception of rights of women than those of later commentators and judge made law The limited estate of Hindu Woman has been purely a creation of judicial decisions, and finds no support from ancient Vedic texts or Smritis. It is gratifying to note that this has been done away with and the rights of women have been recognised and placed on an equal footing with those of men It is further gratifying to observe that several near relations who are at present excluded from inheritance have been included amongst the list of heirs like the son of a paternal aunt and the maternal uncle or aunt s son

One criticism that we would like to offer with regard to the provisions of this Bill is the question of simultaneous succession by a daughter with a son or sons This may not be objectionable from a purely religious point of view or Shastric texts, but considering the present state of Hindu society and the practical difficulties and social evils that the provision may lead to we are inclined to the view that this may well be dropped While it is perfectly legitimate that a Hindu daughter should have absolute estate, in the absence of a son grand son or a great grand son to make her heir along with the son, will be to introduce an element in Hindu society which is likely to lead to

undesirable results and create practical difficulties, particularly in case of persons possessing only small means. It will also be hard on commercial concerns as by introducing the daughters or their husbands as partners, the continuity of established firms is likely to be prejudicially affected.

It will complicate matters, by producing disharmony in the family and sisters who are till now looked upon in ordinary Hindu society with respect and affection. will come to be looked upon with dread as being rival claimants to the father's estate. It will lead to useless litigation between brothers and sisters, as so often happens in the case of Muhammadan families. It will also act as an incentive to Hindu fathers and brothers to marry their daughters and sisters with very close relations or persons of limited means who will remain subservient to their wishes. We visualise such and other difficulties of a similar nature cropping up, if this provision is retained, and are of opinion that it may well be dropped

Note on the Bill Relating to Hindu Marriage.

The Bill is a great advance on the existing Hindu Law. Its most important feature is that it proposes to abolish polygamy even in sacramental marriages. The Sabha entirely agrees with the opinion expressed in the explanatory note, that according to early Hindu Law, Monogamy was the approved rule and Polygamy was an e x c e ptional provision. This is all that can be desired from the reformers' point of view. But it is doubtful if the ordinary Hindus willbe satisfied with the proposed Law. It will be argued that bigamy should be permitted in certain special cases e.g when the wife is proved to be barren or the husband to be impotent. In the case of civil marriages, there will not be much difficulty, as divorce is allowed in those cases. We are of opinion that bigamy may be permitted in such special cases as indicated above.

Regarding the question of divorce, the Sabha should make it clear that according to its view it is quite foreign to the Vedic conception of marriage. But considering the present social condition of the Hindus for whom the Bill is meant some such provision appears to be necessary. It has been adequately provided in the case of civil marriages.

The Sabha is glad to see that the provisions of sub section 24 of the Special Marriage Act have not been reproduced in the Bill and that

GRANDEUR OF SANSKRIT

"Wonder-Language of World-Culture"

[By Pandit Dhareshvar B.A., Retired Professor of Sanskrit, Usmania University, Hyderabad (Deccan.)]

IV

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि॥

"We invoke, day by day, the Maker of beautiful forms, the Doer of fair deeds, and the Endower of grace and use, for our aid and enlightenment" (Rig Veda, ',4,1).

The moderns are justly proud of

---

consequently the Hindus contracting civil marriages, will no longer be governed by the Indian Succession Act in matters of succession but by the Hindu Law.

The Bill goes a long way in encouraging and protecting inter-caste marriages. There will of course be no restrictions of caste in civil marriage as was also the case hitherto, but the ban has been practically removed from even sacramental marriages by extending the factum valet rule to them. The Sabha highly appreciates this. The Bill will thus in a great measure also serve the purpose for which the Arya Marriage Validation Act of 1936 was passed by the legislature through the efforts of this Sabha.

There is a minor point on which the Sabha would like to note its disagreement In clause 2 (d) even first cousins have not been included within the prohibited degrees of relationship for marriage. The explanatory note on page 123 says "There is a Vedic text pointing to the prevalence of such marriages". We have not come across any such Vedic Text and do not believe that there is any text which parmits such marriages. The idea of first cousins marrying each other, is very repugnant to the Hindu mind and we are of opinion that they should be included within the prohibited degrees. In the other Bill on intestate succession daughters have been proposed to get a share along with sons and other female relations have been proposed to be heirs. If the rule of Exogamy as proposed in clause 2 (b) stands there will be a great temptation to marry daughters to first cousins so that the family property may not go outside. This will be very objectionable from a eugenic point of view.

their grand achievements in the field of Physical Sciences.' Their mighty works of beauty and utility excite wonder and admiration. What is science and art after all? It is use and beauty in thought word and deed indeed! The Veda calls God the Wonder-Worker and the Endower of all beauty utility and felicity. All beautiful thought, all graceful speech, all fair deed is godly and divine. And every soul that thinks a beautiful thought, utters a graceful word, and does a fair deed, is also godly and divine; for, the ultimate source of all grace, in whatever form it may show itself, is God the supremely graceful. Hence all honour to the moderns who have laboured for Art and Science, for use and grace. It is sin to be-little their worth and work.

Higher Arts and Sciences

But rightly or wrongly they say: familiarity breeds contempt. What was beautiful yesterday loses much of its charm today; and what looks graceful now may appear less so tomorrow. So coming generations may have reason to look down upon moderns, especially if they choose the right way to prize the higher arts and sciences of the soul and the spirit for their soul-enthralling blessings. But, as we said, it is sinful to be-little the work and worth of the moderns for what they are worth.

If we have not erred, it is equally sinful for the moderns to be-little the glorious deeds of the higher arts and sciences that are to the credit of the Ancients, especially of the Aryans of India: For, art and science are not the exclusive product of the modern mind. If we expect futurity to respect our worth, we too should respect the worth of the ancients. Nay, our principle must be rather: the more ancient, the greater respect we must have. If, as can be shown, at the dawn of recorded history, the Vedic Rishis, inspite of the surrounding gloom, had attained to such high eminence in thought, word and deed and also in the art and science of the soul and the spirit, that they could secure the full freedom and immortality after which every human soul hankers and which is the divine goal of humanity, what shall be our duty both to ourselves the past and the future?

Scientific Foundation

Even if we leave aside the spiritual eminence of our ancestors, Ancient India was the Mother of not only poetry, philosophy and religion, but also of art, thought and science. Everything that the ancient Aryan thought spoke or did was in terms of science and beauty, art and grace,

use and felicity Everything from numbers to names, from letters to language, from music to medicine, from mathematics to manufacture from sericulture to surgery, from education to economy from grammar to government, from etymology, to ethics, from euphony to eugenics, to the socio-religious institutions (Varna-Ashrama-Dharma) was based on a fine scientific foundation Truly, the mind and spirit of Ancient India was cast in a most felicitous philosophic and scientific mould from the very beginning To it all was light and loveliness, love and joy, life and grace For, it saw God in everything and everything in God.

My main object in writing this series is to give the reader just a glimpse into the astounding achievements which are to the credit of the ancient Indian In a paper I have tried to disclose the startling success of Vedic Rishis in evolving a scientific scheme of a Life of Perfect Health and Harmony And in this series we want to reveal how deep even small Sanskrit (Vedic) roots and words go in suggesting a wonderful way is cultural harmony to bind together entire humanity into one grand mutually respecting and loving family

Di-Archy of Brahma-Bhrama

I take here two small words Brahma-Bhrama, just to see what great lessons they can teach mankind The word Brahma is exactly the antithesis of Brahma and man's course lies between the two He has to cross from bhrama (folly, narrow-vision) to Brahma (Breadth of vision, wisdom) As he is, he is under the di-archy (double rule) of these two. He wants to be great and supreme (Brahma), but being subject to bhrama he cannot attain greatness He has to grow out of bhrama to Brahma. He has to shed bhrama, folly, to attain to Brahma (greatness, supremacy). The ancient Aryans of India had found out a way to cross over from bhrama to Brahma, and this way they colled Brahma-Charya (the course of greatness, the way to supremacy the path to attain divinity) They practised this art of arts, as a fine art, to attain to Fulness of Life, to supreme wisdom power and excellence, i e. to the divine goal

Brahma-Charya

To know fully the meaning of Brahmacharya, we must know fully the meaning of Economy To do this we shall have to extend the term of economy far beyond its modern narrow application to material wealth The word comes from Greek Oicos, home , and nomos, rule (Sanskrit Okas, home , and nyiama,

rule); so originally it meane home-rule, home thrift; but now it means thrift in general. Thus real economy is elimination of all waste and conservation of all energy wealth power and resources.

The Atharva Veda sings the glories of Brahmacharya as it was conceived in the ancient-most times of recorded history. For lack of space we give here just a few ideas:-

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् ।
ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत ॥
(अथर्ववेद ११।६)

"The noble King protects his people by means of Brahmacharya; the wise Teacher teaches his pupils by the same means; the lovely young damsel by it secures a worthy consort; and great Sages deal a death-blow to death itself by Brahma-Charya. The resplendent Brahmacharin bears majestic splendour of holy Divine Wisdom by which he controls all the shining forces and energies of Nature as well as those of the human beings". How was all this done and achieved? By practising the Art of Arts; Brahmacharya !

Life of Harmony

Brahma means Nature, Veda, God; and has the general sense of "Supreme, Great" 'Char' means to practise. Thus Brahmacharya is the practice of the Art to become supreme by leading a life of fulness and harmony devoted to Nature, Veda and God. It is based on the harmonious development of all the faculties of body mind and soul; and also on the conservation of all subjective (human) and objective (material) energy wealth and resources that abound around us within and without This is the full import of Brahma-charya. It embraces the entire field of economy both subjective and objective : and it means Fulness of Life In short the aim of Brahma-charya is to economise and conserve fully all the precious wealth in the form of the manifold Nature-forces and Life-energies, which are now allowed to run to waste. J. B. S. Haldane gives us but a glimpse of what is to be done and secured in this respect by educationists economists and socialists, so as to put a stop to the frightful "waste of human beings" of human energies, and to evolve "an ideal society" on the basis of first individual liberty and second equality of opportunity. Upon this are based the principles of real Economy, true Education, and happy Society. Brahma-charya embraced all this manifold endeavour.

Economic and Social Implications

The few quotations given above from the Veda are enough to prove the fact that Brahmacharya embraced not only subjective and objective economy, but also the educational and religio-social systems of the Ancient Aryans The Brahmacharya Ashrama was the basis of Aryan Life and Education Ancient India owed its full glory and greatness to Brahmacharya. India had risen by fully practising and adoring that Art of arts; and India fell by slighting it Nay, not only India but the world has fallen on evil days by its neglect. Nowhere else outside India can you find such a grand all-embracing, all-bracing and all-ennobling concept It is the best and the most sublime unique gift of India to all the world.

साहित्य समीक्षा

अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र

लेखक—श्री प० प्रियरत्न जी आर्ष सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली द्वारा प्रकाशित मूल्य २)

वेदज्ञ विद्वान् श्री पं० प्रियरत्न जी आर्ष द्वारा निर्मित 'अथर्व वेदीय चिकित्सा शास्त्र' नामक पुस्तक को मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ा। विद्वान् ग्रन्थकार की अन्य कृतियों की तरह यह ग्रन्थ भी उनके वैदिक साहित्य के गम्भीर अनुशीलन का परिचायक है। कोई एक वर्ष पहले ऐसे ही ग्रन्थ की आवश्यकता पर मेरी उनसे बातचीत हुई थी। बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि उन्होंने इतनी शीघ्रता से उस विचार को कार्य रूप में परिणत कर दिया। पुस्तक में आयुर्वेद शास्त्र के साथ तुलना के आधार पर अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र का विद्वत्ता पूर्ण प्रतिपादन किया है। पुस्तक में मन्त्रों का जो अर्थ किया गया है वह यत्र तत्र स्वसाधक प्रमाणों की अपेक्षा रखता है। इसी प्रकार ग्रन्थकार के कई ऐसे कथन हैं जो प्रमाणों से पुष्ट नहीं किये गये हैं। तो भी सामान्य रूप से पुस्तक की विषय-प्रतिपादन पद्धति सर्वथा प्रशंसनीय है।

आशा है वैदिक साहित्य के अनुरागी विद्वान् पुस्तक का समुचित आदर करेंगे। हम हृदय से ग्रन्थकार महाशय को इस साहित्यिक सफलता तथा लोक सेवा के लिये बधाई देते हैं।

मङ्गलदेव शास्त्री,
M. A. D. Phil (Oxon). प्रिंसिपल
गवर्नमेंन्ट संस्कृत कालेज बनारस

वधशाला

रचयिता श्री "विकल" मा मन्दिर मण्डी धनौरा मुरादाबाद, मूल्य ।||)।

श्री "विकल" जी एक राष्ट्रीय कवि हैं जिनके हृदय में स्वतन्त्रता की तड़प है। सामाजिक विषयों में भी उनके विचार बड़े उदार हैं। धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी क्षेत्रों में जो बलिदान हुए हैं उनका अत्यन्त ओजस्वनी भाषा में श्री 'विकल' जी ने चित्रण इस ग्रन्थ में किया है। उनका ऐतिहासिक ज्ञान भी अत्यधिक प्रतीत होता है। इस ग्रन्थ को पढ़ते हुए कोई भी कवि के भावावेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। वर्तमान युग के कर्मवीरों में से ऋषि दयानन्द, अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द, वीर केसरी ला० लाजपतराय, महात्मा गांधी आदि का बड़ा ही हृदयद्रावक वर्णन इस ग्रन्थ में किया गया है। शब्द रचना बड़ी प्रभाव शालिनी है। उज्ज्वल राष्ट्रीयता के भाव भरने की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ सब देश भक्तों के लिये उपादेय है। सार्वदेशिक के ग्राहकों के लिये डाक व्यय माफ़ होगा।

श्री वीर गीता

रचयिता श्री प० रामचन्द्र शर्मा 'भारद्वाज' एम ए. एल. एल. बी. 'रामचन्द्र भवन' मुलतानी ढाँडा नई देहली, मूल्य ।||)।

इस पुस्तक में वीर शिरोमणि मर्यादा

पुरुषोत्तम श्रीराम का भारत वासियों के नाम उनके उद्धार के लिये सन्देश सम्वाद रूप से पद्य मे वर्णित किया गया है। अवतार वाद आदि कुछ पौराणिक विचार जो इस पुस्तक में पाये जाते हैं उनसे हम सहमत नहीं तथापि सगठन और समाज सुधार के भावों को ओजस्विनी भाषा में भरने का जो यत्न किया गया है वह प्रशसनीय है। आशा है छन्द विषयक कुछ त्रुटियों को अगले सस्करण मे दूर कर दिया जायेगा। 'हिन्दू सगठन और जाति क उद्धार के प्रेमियों के लिये पुस्तक उपादेय है।

स्वामी शङ्करानन्द सन्दर्शन

लेखक श्री भवानीदयाल सन्यासी प्रवासी भवन आदर्श नगर अजमेर, पृष्ठ सख्या ल० ४६० मूल्य २॥)

श्री भवानी दयाल जी सन्यासी आर्य जगत मे अपने प्रवासियों के हितार्थ किये विविध कार्यों और हिन्दी के उत्तम लेखक होने के कारण सुप्रसिद्ध हैं। इस ग्रन्थ मे आपने श्री स्वामी शङ्करानन्द जी के जीवन और उपनिवेशों मे किये उनके प्रशसनीय, धार्मिक और सामाजिक कार्यों पर बड़ी रोचक शैली और ओजस्विनी भाषा मे प्रकाश डाला है। इसके अध्ययन से न केवल श्री स्वामी शङ्करानन्द जी का किन्तु उपनिवेशों की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक अवस्था का भी पाठकों को अच्छा परिचय मिलेगा। पुस्तक प्रत्येक दृष्टि से उपादेय है।

Hindu Philosophy and Modern Sciences

by Shriyut Rama Chandra M A. (P.E.S) Retired. Published by Sharada Mandir Book Depot, Nai Sarak Delhi, Page 222, Price not mentioned.

पजाब शिक्षा विभाग के निवृत्त अधिकारी श्रीयुत रामचन्द्र जी एम ए. ने 'हिन्दू फिलासफी और वर्तमान विज्ञान' नामक पुस्तक लिख कर आधुनिक शिक्षित जनता का बड़ा उपकार किया है। गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय में दर्शन-शास्त्र (फिलासफी) के भू० उपाध्याय और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के भूतपूर्व मन्त्री श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए० ने इस पुस्तक की उत्तम भूमिका लिख कर पुस्तक के महत्त्व को और भी बढ़ा दिया है। "Universe and Ultimate Cause, Universe and Controller, Universe as Creator's Glory, Universe as Creator's Creation Controller and Controlled. इत्यादि विषयक अध्याय विशेष रूप से माननीय हैं। इस उत्तम ग्रन्थ का शिक्षित जनता मे विशेष प्रचार होना चाहिए जिससे प्रचलित नास्तिक प्रवृत्ति दूर हो सके। इस उत्तम पुस्तक के लिखने और प्रकाशित करने पर हम सुयोग्य लेखक और प्रकाशक महोदय का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति

महिला-जगत्

भारतीय सभ्यता और स्त्री जाति

[श्री महात्मा नारायण स्वामी महाराज के इस विषयक लेख से उद्धृत कुछ अंश]

स्वामी दयानन्द और स्त्री जाति

आर्य्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती का ध्येय केवल वेदों का प्रचार करना था। इसलिये उनके लिये अनिवार्य था कि वे स्त्री जाति की मानवृद्धि करते। उन्होंने उदयपुर में एक ८, ९ वर्ष की बालिका के सामने नत-मस्तक होकर देशवासियों को बतला दिया कि वे एक छोटी सी बालिका को भी मातृ-शक्ति के रूप में देखते हैं और चाहते हैं कि देश और जाति में "मातृवत्परदारेषु" की शिक्षा का फिर से मान होने लगे। श्रीयुत रंगा अय्यर M L A. ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ Father India में उचित रीति से लिखा है ' In the 19th Century Rishi Dayananda Saraswati came as a Massiah to preach the restoration of women to their ancient glory" यह बड़ी प्रसन्नता और सन्तोष की बात है कि स्त्री जाति के सम्बन्ध में अब जाति का दृष्टिकोण बदला हुआ है। अब प्रत्येक माता और पिता अपनी कन्या को सुशिक्षिता देखना चाहता है और प्रत्येक युवक पढ़ी लिखी कन्या ही से विवाह करने का इच्छुक है। परिवर्तन जाति के लिये बड़ा कठिन काल हुआ करता है। ऐसे समय की कुछ भी भूल विनाशक होजाया करती है।

स्त्री जाति का परिवर्तन काल

स्त्री जाति के भी इस परिवर्तन काल में बड़ी सावधानी अपेक्षित है। कुछेक ध्यान में रखने योग्य सावधानियों का यहां उल्लेख किया जाता है।

(१) स्त्री और पुरुष मनुष्य जाति के दो भाग हैं और दोनों की लोक सम्बन्धी आवश्यकतायें और कर्तव्य भी पृथक् पृथक् हैं। इसलिये उनकी शिक्षा-पद्धति भी पृथक् पृथक् होनी चाहिये। जो लोग कन्याओं को शिक्षा दिलाने के उत्साह में उन्हें वही शिक्षा जो पुत्रों को दी जाती है, दिलाने लगते हैं, बड़ी भूल करते हैं। सच तो यह है कि प्रचलित शिक्षा-पद्धति मे देश की परिस्थिति और जाति की आवश्यकताओं पर दृष्टि डाल कर मौलिक परिवर्तन करने की जरूरत है तब वह पुत्रों के लिये भी उपयोगी बन सकती है और पुत्रियों के लिये उसे एकदम बदल देना पड़ेगा।

(२) दूसरी बात "सम्मिलित शिक्षा" (Co-education) है। प्राचीन काल से इस देश में यही सिद्धान्त बराबर माना और काम मे लाया जाता रहा है कि बालक और बालिकाओं की शिक्षा पृथक् पृथक् होनी चाहिये। पश्चिमी देशों

की नक़ल करके इस देश में कई जगह कन्या और पुत्रों को आश्रमों में इकट्ठा रक्खा गया और उन्हें एक ही शिक्षणालय में एक ही पाठ-विधि से शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। मुझे जहां तक मालूम हो सका है प्रत्येक जगह इस परीक्षण में असफलता हुई। इसलिये इस सम्बन्ध में भी यही नियम प्रतिष्ठित रहना चाहिये कि दोनों बालक और बालिकाओं की शिक्षा पृथक् पृथक् होनी चाहिये। कुछ समय बीता जब अमरीका की एक शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट में यह शिकायत की गई थी कि अधिकतर स्त्री अध्यापिकाओं से शिक्षा पाकर और उनकी अनेक बातों का अनुकरण करने से लड़के Womanised (स्त्रीवत्) हो रहे हैं।

(३) तीसरी बात यह है कि इस समय शिक्षा पाने वाली कन्याओं में, शारीरिकोन्नति की ओर से उदासीनता आ रही है। इस कुटेव का फल यह है कि अनेक स्त्रियां पहले ही प्रसव-काल में मौत के गाल में समा जाती हैं। पुराना तरीक़ा गृह सम्बन्धी सभी काम स्वयं करने का बहुत अच्छा था, परन्तु उन्हें तो अब पढ़ी लिखी स्त्रियां छोड़ रही हैं और उसके स्थान पर और ही कोई व्यायाम करतीं हों ऐसा भी प्रायः नहीं देखा जाता। इसलिये आवश्यक है कि कन्याओं को विवाह से पहले और विवाह के बाद भी, किसी न किसी प्रकार का व्यायाम, चाहे वह गृह-कार्य के रूप में हो, चाहे और किसी प्रकार का अवश्यमेव करना चाहिये। माता का सबसे बड़ा काम "बलवान् पुत्र और बलवती पुत्रियों को पैदा करना है।" यदि माता स्वयं निर्बला है तो वह किस प्रकार बलवती सन्तान पैदा कर सकती है? एक बार मुझे भ्रमण करते हुए एक ग्राम के निकट, एक जङ्गली जाति (हाबूडा) की एक माता को बच्चा जनते हुए देखने का अनायास अवसर मिल गया। मुझे एक बड़े घने वृक्ष की छाया में सड़क के किनारे, ग्रीष्म ऋतु की दुपहरी में एक दिन विश्राम करने के लिये बाधित होना पड़ा। उसी समय (हाबूडा) जाति का एक जत्था वहां आया और उसी वृक्ष की छाया में वह भी ठहर गया। वहां आते ही, उस जत्थे के साथ वाली एक माता के बच्चा पैदा हुआ। नाम मात्र की सहायता एक दूसरी स्त्री ने दी थी अन्यथा सारे काम स्वयं उसी बच्चा पैदा करने वाली माता ने कर लिये। थोड़ी देर के बाद वह माता उस बच्चे को एक टोकरे में लिटा कर और उस टोकरे को अपने सिर पर रख कर चल दी। कठिनता से इस काम में ३ घण्टे लगे होंगे। परन्तु पढ़ी लिखी मातायें ३ घण्टे नहीं किन्तु ३ सप्ताह में मुश्किल से काम करने के योग्य होती हैं। यह अन्तर, शारीरिक परिश्रम से उदासीनता ही का फल है।

शारीरिकोन्नति के लिये यह भी अत्यन्त आवश्यक है, कि कन्याओं के विवाह की आयु, सोलह वर्ष से किसी हालत में कम न हो— अल्पायु में विवाह होने का यही दुष्परिणाम होता है कि स्त्रियां और उनकी सन्तान निर्बल होती हैं।

महा पुरुषों की दिव्य वाणी

महर्षि दयानन्द वचनामृत

(१) "अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किन्तु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं। दुर्दिन जब आता है तब देश वासियों को अनेक प्रकार से दुःख भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुख दायक नहीं है। परन्तु भिन्न २ भाषा, पृथक् २ शिक्षा, अलग २ व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।"

(सत्यार्थ प्रकाश अष्टम समुल्लास श्री गोविन्दराम हासानन्द सम्पादित पृ० २९६)

(२) "मनुष्य उसी को कहना कि मननशील होकर स्वात्मवत् अन्यों के सुख दुःख और हानि लाभ को समझे, अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे और धर्मात्मा निर्बल से भी डरता रहे, इतना ही नहीं किन्तु अपने सर्व सामर्थ्य से धर्मात्माओं को चाहे वे महा अनाथ, निर्बल और गुण रहित क्यों न हों उनकी रक्षा, उन्नति, प्रियाचरण और अधर्मी चाहे चक्रवर्ती; सनाथ, महाबलवान् और गुणवान् भी हो तथापि उसका नाश, अवनति और अप्रियाचरण सदा किया करे अर्थात् जहाँ तक हो सके वहाँ तक अन्यायकारियों के बल की हानि और न्यायकारियों के बल की उन्नति सर्वथा किया करे इस काम में चाहे उसको कितना ही दारुण दुःख प्राप्त हो, चाहे प्राण भी भले ही जावें परन्तु इस मनुष्यपन रूप धर्म से पृथक् कभी न होवें।"

(सत्यार्थप्रकाश स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश पृ० ७८६)

ऋषि की प्रार्थनाएँ

(३) "हे कृपानिधे! हमको विद्या,' शौर्य, धैर्य, बल, पराक्रम, चातुर्य्य, विविध धन, ऐश्वर्य, विनय, साम्राज्य, सम्मति, सम्प्रीति, स्वदेश सुख सम्पादनादि गुणों में सब नर-देह धारियों में अधिक उत्तम करो।"

('आर्याभिविनय' शताब्दी संस्करण पृ० ११)

(४) "हे कृपासिन्धो भगवन्! हम पर सहायता करो जिससे सुनीतियुक्त होके हमारा स्वराज्य अत्यन्त बढ़े।"

(आर्याभिविनय श० संस्करण पृ० १३)

(५) "हे महाराजाधिराज परब्रह्मन्! "क्षत्राय पिन्वस्व" अखण्ड चक्रवर्ती राज्य के लिये शौर्य, धैर्य, नीति, विनय, पराक्रम और बलादि उत्तम गुणयुक्त कृपा से हम लोगों को यथावत् पुष्ट कर। अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।"

(आर्याभिविनय श० संस्करण पृ० ६०)

शंका समाधान

आसन सोल (बंगाल) आर्य समाज के उप-प्रधान मा० सुखदेव लाल जी ने ५-८-४२ को जो पत्र सार्वदेशिक सभा के भूतपूर्व प्रधान श्री महात्मा नारायण स्वामी जी को 'अन्त्येष्टि संस्कार' के सम्बन्ध में लिखा था और उसका उन्होंने जो उत्तर दिया उसे हम आर्य जनता के लाभार्थ प्रकाशित करते हैं।

शङ्का

"स्वामी जी रचित संस्कार विधि में "अन्त्येष्टि संस्कार" के सम्बन्ध में "पुरुष" और "स्त्री" शब्द का प्रयोग है। तदनुसार मैने अपने यहां छोटा लड़का या लड़की, किसी भी उम्र का जब कोई मरा उसका अन्त्येष्टि संस्कार, सरकार-विधि के नियमानुसार किया अर्थात् मृतक के शरीर का दाहकर्म किया। सनातनी कुछ एक उम्र तक वा माता से मरे हुओं को जलाते नहीं बल्कि गाड़ देते हैं। इनकी देखा-देखी बहुत एक आर्य्य भी यही करते हैं। लेकिन मैने 'पुरुष' तथा 'स्त्री' शब्द से किसी भी उम्र का पुरुष वा स्त्री का आशय लेकर अभी ता० ३१-७-४२ को अपनी छः साल की कन्या के शव का वैदिक रीति से अन्त्येष्टि-संस्कार किया, जिस पर कुछ आय भाइयों में भ्रम उत्पन्न हो गया है कि मेरा ऐसा करना उचित नहीं होता। कुछ तो यह भी कहते हैं कि श्राद्ध की मनाही है मत कीजिये। पर शोक का चिन्ह दाढ़ी, मूछ, सिर का बाल घोटवा लीजिये। मगर मेरा कहना है कि संस्कार-विधि में ऐसा करना कहीं नहीं लिखा है। अतः कुछ जो दृढ़ विचार के हैं, वे मेरे मुआफिक कृत्य करते हैं और बाकी आर्य्य होते हुए भी अन्य प्रकार का कृत्य करते हैं। मेरे नामधारी जाति वाले तो पक्के विरोधी हैं। पर उनकी मैं परवा नहीं करता। तब यह अवश्य चाहता हूँ कि भूल न हो।

अतः आपसे व्यवस्था चाहता हूं जो कृपा कर के केवल मुझ ही को पत्र द्वारा देने का कष्ट न करें बल्कि 'सार्वदेशिक' में आर्य जगत् के उपकारार्थ छपवा देने का कष्ट करें कि शोक का कोई चिन्ह रखना चाहिये वा नहीं, केशोच्छादन करना चाहिए वा नहीं, मृतक दाह के लिये उम्र की भी कैद है वा नही। इत्यादि।"

शङ्का-समाधान

मृतक के सम्बन्ध में वेद का एक ही आदेश है :—

भस्मान्तꣳशरीरम्॥ यजु० ४०।१५

अर्थात् शरीर का अन्त (अन्तिम सस्कार) भस्म करना है। इसलिये किसी आयु का कोई क्यों न हो, प्रत्येक का अन्त्येष्टि संस्कार, संस्कार विधि के अनुसार ही करना चाहिये।

(२) किसी प्रकार का शोक का चिन्ह नहीं रखना चाहिये।

(३) बाल मुँडवाने की बिलकुल जरूरत नहीं है।

—नारायण स्वामी

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सूचनाएं

एक आवश्यक वक्तव्य

देश की वर्तमान परिस्थिति के सम्बन्ध में अनेक आर्य सज्जन तथा आर्य समाज सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की सम्मति अपने कर्तव्य के विषय में पूछ रहे हैं। इस विषय में इतना कथन पर्याप्त है कि सार्वदेशिक सभा जिस वैदिक धर्म का प्रचार करना चाहती है।

आयद्वामीय चक्षसा मित्रवयं च सूरयः।
व्यचिष्टे बहु पाय्ये यतेमहि स्वराज्ये॥
ऋग्वेद ५।६६।६

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः सधर्मः (वैशेषिक शास्त्र) इत्यादि वैदिक तथा आर्ष वचनों और ऋषि दयानन्द के लेखों के अनुसार स्वदेश भक्ति, स्वदेशोन्नति और स्वराज्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न भी उसका एक अंग है। इसलिये सभा प्रत्येक आर्य से यह आशा करती है कि वह देश प्रेम को रखते हुये भारत देश के प्रति अपने कर्तव्य का अपनी शक्ति और योग्यता के अनुसार पूर्णतया पालन करेगा। शेष राजनैतिक विचारों में और स्वराज्य प्राप्ति के उपाय आदि विषयों में प्रत्येक व्यक्ति को स्वतन्त्रता है क्योंकि आर्य समाज वा उसकी शिरोमणि सार्वदेशिक सभा की उद्घोषित नीति प्रचलित राजनीति में सामूहिक रूप से भाग न लेने की रही है।

गंगा प्रसाद एम० ए०
का० प्रधान, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,
देहली

(श्री भक्त फूलसिंह बलिदान दिवस १३ सितम्बर को मनाया जावे)

समाचार पत्रों द्वारा आर्य समाजों को यह ज्ञात होगा कि आर्य समाजों के (विशेषकर हरियाना प्रांत के आर्यों के) सुप्रसिद्ध नेता, गुरुकुल भैंसवाल तथा कन्या गुरुकुल खानपुर (जिला रोहतक) के संस्थापक तथा संचालक श्री भक्त फूलसिंह जी निर्दयी घातकों के द्वारा गत १४ अगस्त १९४२ को रात्रि समय लगभग ९ बजे स्थान कन्या गुरुकुल खानपुर में मारे गये। आपका परोपकारमय जीवन आर्य समाजों के लिये बड़ा उपयोगी था। अनेक वर्ष हुए जबकि आपने मूले (मुसलमान) जाटों की शुद्धि के लिये होडल जिला गुड़गांवा के पास अठारह दिनों का अनशन व्रत किया था। प्रायः दो वर्ष हुए जब कि आपने मोठ गांव (जिला हिसार) के चमारों के उद्धार के लिये लगभग चौबीस दिनों का अनशन व्रत किया था अर्थात् जल पान के सिवाय कोई भी वस्तु नहीं खाई थी, नवाब लोहारू की राजधानी में नगर कीर्तन के समय इनकी खोपड़ी, बाहू, और पैरों के ऊपर अनेक लाठियां लगी थीं. पसलीकी एक हड्डी भी टूट गई थी जिसके कारण चौबीस घण्टे तक बेहोश रहे थे। इस प्रकार अनेक बार अपने प्राणों को जोखिम में डाल चुके थे। आपके विशेष पुरुषार्थ के कारण ही हैद्राबाद सत्याग्रह के समय लगभग सात सौ

सत्याग्रही रोहतक जिले से हैद्राबाद भेजे गये थे। इन्होंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को आर्य धर्म के प्रचार में लगाया और अपने बलिदान से भी सैकड़ों के हृदयों में धर्मार्थ जोश भर दिया।

आर्य समाजों से निवेदन है कि आगामी तेरह सितम्बर रविवार को अपने साप्ताहिक अधिवेशन के समय विशेष शोक सभा कर "श्री भक्त फूलसिंह जी" के बलिदान पर शोक प्रस्ताव पास करें। शोक प्रस्ताव की पाण्डु लिपि नीचे दी जाती है। जहाँ तक सम्भव हो शोक प्रस्ताव की कापियाँ निर्दिष्ट स्थानों को अति शीघ्र भेजनी चाहिये।

(१) आज ता०...... ....४२ को आर्य समाज .... में उपस्थित आर्य सामाजिकों तथा अन्य आर्यों की यह सभा आर्य समाजों के सुप्रसिद्ध नेता श्री भक्त फूलसिंह जी संस्थापक तथा सञ्चालक गुरुकुल भैंसवाल (जि० रोहतक) के बलिदान पर जो १४ अगस्त की रात को लगभग ९ बजे स्थान कन्या गुरुकुल खानपुर में हुआ अत्यन्त शोक प्रकाशित करती है और परमात्मा से प्रार्थना करती है कि दिवंगत आत्मा को वह सद्गति और उनके सम्बन्धियों को शान्ति प्रदान करें।

साथ ही यह सभा बधकों के क्रूर कार्य पर घोर घृणा तथा रोष प्रकट करती और पंजाब गवर्नमेंट से अनुरोध करती है कि वह घातकों का शीघ्र ही पता लगाकर उन्हें समुचित दण्ड देवे ताकि उक्त बलिदान से आर्य जनता में जो अशान्ति फैल रही है वह दूर हो और उक्त प्रकार के क्रूर कार्य करने वालों को भय हो।

(२) उक्त प्रस्ताव की कापियां हिज़ एक्सेलेन्सी श्रीमान् गवर्नर साहब पंजाब, लाहौर, श्रीमती सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली, श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा गुरुदत्त भवन पंजाब, लाहौर, गुरुकुल भैंसवाल (जि० रोहतक) कन्या गुरुकुल खानपुर पो० गोहाना (जि० रोहतक) तथा समाचार पत्रों को भेजी जावें।

आर्यावर्त की रक्षा का व्रत मत भूलो

आर्य वीर शिक्षण केन्द्र का प्रथम सत्र समाप्त

पं० इन्द्र जी का आर्य वीरों को संदेश

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली की ओर से गत २६ जुलाई को जिस अखिल भारतीय शिक्षण केन्द्र का उद्घाटन बदरपुर तुगलकाबाद रेलवे स्टेशन के समीप किया गया था और जिस में मद्रास, बंगाल, राजस्थान, संयुक्त-प्रान्त और देहली के आर्य वीर शिक्षणार्थ आये हुए थे उसका प्रथम सत्र समाप्ति उत्सव बड़े समारोह के साथ सार्वदेशिक सभा के मन्त्री श्री पं० इन्द्र जी विद्या-वाचस्पति के सभापतित्व में २५ अगस्त को मनाया गया। देहली के अनेक प्रतिष्ठित सज्जनों के अतिरिक्त बदरपुर ग्रामवासी और गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के प्रायः सभी कर्मचारी और ब्रह्मचारी इस उत्सव में सम्मिलित हुए। आर्य वीरों ने श्री ओ३मप्रकाश जी व्यायाम विशारद के दलपतित्व में व्यायाम का बड़ा उत्तम प्रदर्शन किया जिसके पश्चात् श्री पं० इन्द्र जी ने उन्हें उपदेश देते हुए बताया कि आर्य धर्म, संस्कृति, आर्य जाति और आर्यावर्त की सेवा तथा रक्षा का जो व्रत उन्होंने इस केन्द्र में ग्रहण किया है उसे वह कभी न

भुलावें। शारीरिक बल के साथ साहस की भी आवश्यकता है जिसे अपने अन्दर धारण करना चाहिए। जाति की शान बचाने के लिये रक्षा और सेवा का समय आगया है। आर्य वीरों को प्रमाण पत्र दिये गये जिसके पश्चात् श्री ओ३म् प्रकाश जी दलपति ने सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों तथा अन्य महानुभावों के प्रति जिन्होंने इस शिविर को सफल बनाने में सहायता दी थी, धन्यवाद दिया। तब ये आर्य वीर अपने अपने प्रान्तों में आर्य वीर दल संगठनाथ भेज दिये गये हैं।

समस्त समाजों से नम्र निवेदन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा भेजी गई विज्ञप्ति के अनुसार समस्त समाजों ने सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस गत श्रावणी के अवसर पर ता० २६-८-४२ को समारोह के साथ मनाया होगा, ऐसी आशा है। इस अवसर पर सार्वदेशिक सभा के बढ़ते हुए प्रचार कार्य के सफल सम्पादन के लिए विज्ञप्ति में उल्लिखित आदेशानुसार आपने पर्याप्त धन भी संग्रह किया होगा। अतः स्मरणार्थ निवेदन है कि समस्त समाजें अपना २ धन भाग तुरन्त भेज कर अपने कर्तव्य का पालन करें।

सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा स्थापना दिवस की दान सूची अगस्त ४२

१०)	आर्य समाज		सागर	(मध्य प्रदेश)
५)	,,	,,	खड्गपुर	(बंगाल)
५)	,,	,,	सिवहारा (बिजनौर)	(संयुक्त प्रांत)
११)	,,	,,	महू छावनी	(राजस्थान)
११।)	,,	,,	अलवर	,,
१०)	,,	,,	नवा शहर	(पंजाब)
२)	,,	,,	अज्ञात	
५)	,,	,,	टीटागढ़	(बंगाल)

४६॥)
६४६ा=) गत योग
६६८॥=)

जिन आर्य समाजों ने अब तक आर्य समाज स्थापना निधि का रुपया सभा कार्यालय में नहीं भेजा उन्हें अब भी एकत्रित करके अथवा समाज के कोष से अवश्य तुरन्त भेज कर अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये।

धर्मदेव विद्यावाचस्पति
स० मन्त्री
सार्वदेशिक सभा

आर्य सत्याग्रह का इतिहास

हैदराबाद रियासत में किये गये आर्य समाज के महान् और शानदार सत्याग्रह का पूर्ण प्रामाणिक तथा विस्तृत इतिहास।

मनीआर्डर से मूल्य २॥) रु० डाक व वी० पी० से ३) रु०

(लेखक—पं० सत्यदेव जी विद्यालङ्कार सम्पादक 'विश्वमित्र' देहली)

इतिहास में इन विषयों का विशेष रूप से विवेचन किया गया है:—

१—आर्य समाज को सत्याग्रह क्यों करना पड़ा।

२—सत्याग्रह का श्री गणेश किस प्रकार किया गया।

३—सत्याग्रह ने किस प्रकार प्रचण्ड रूप धारण किया।

४—जेलों की भीषण यातनायें और अमर शहीद।

५—सारे देश में हुई सत्याग्रह की प्रतिक्रिया।

६—सारे आर्य जगत् की इस यज्ञ में आहुति।

७—सन्धि चर्चा।

८—सत्याग्रह के सम्बन्ध में लोकमत।

विचार यह था कि सत्याग्रह के इस वर्ष के विजय पर्व श्रावणी के शुभ अवसर पर इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर दिया जाय किन्तु दिल्ली में भी पिछले दिनों में अशान्ति पैदा होने और व्यवस्थित काम काज के सम्भव न रहने से वैसा न हो सका। अब इसे प्रेस में दे दिया गया है और पूर्ण आशा है कि सितम्बर मास में यह ग्रन्थ प्रकाशित हो जायेगा। आर्य समाजों और आर्य जनता को अधिक से अधिक आर्डर भेजने में देरी न करनी चाहिए। कागज़ की तंगी और छपाई की मंहगाई के कारण यह ग्रन्थ नियत संख्या में ही तैयार किया जा रहा है।

शहीदी प्लेट

सभा ने हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के शहीदों की एक पीतल की पट्टिका तैयार कराई है। यह बहुत सी समाजों में लगाई जा चुकी है। अतः जिन समाजों ने अभी न मंगाई हो कृपया शीघ्र मंगा लें। शहीदी प्लेट का मूल्य २४) है।

मन्त्री सार्वदेशिक आ० प्र० सभा

श्री भक्त फूलसिंह जी का बलिदान

(१) जिन दिनों पञ्जाब केसरी श्री लाला लाजपत राय जी ब्रह्मदेश को निर्वासित किये गए थे प्राय उन्हीं दिनों श्रीमान् महात्मा मुन्शीराम जी की अनुमति से हरियाना प्रान्त के त्रसित आर्यों के बीच प्रचार करने के लिये मै रोहतक आया था। थोडे दिनों के बाद ही श्री भक्त जी के साथ मेरा परिचय हुआ और श्री भक्त जी मुझे बारम्बार अपने जन्मस्थान ग्राम माहरा (जिला रोहतक) मे ले गए और वैदिक धर्म का प्रचार कराया। धीरे २ वैदिक धम का भाव उनके मन मे इतना जम गया कि वह वैदिक धर्म के प्रचार के लिये व्याकुल होने लगे।

लोहारु के आक्रमण से लौटे हुए स्व० श्री भक्त फूलसिह जी के घायल शरीर का चित्र

(२) जिला रोहतक मे बवाना एक ग्राम है। जब कि श्री भक्त जी वहा माल विभाग की ओर से पटवारी का काम करते थे सभाल का (जिला कर्नाल) के लोग उनके पास पहुचे और सभालका मे गोघात के लिये हथ्था (जबहखाना) खुलने वाला है इस बात को बडे दुख क साथ वर्णन किया। श्री भक्त जी ने तुरन्त ही अपने विभाग के अफसर से छुट्टी लेली और उक्त जबहखाना के विरुद्ध घूम घूम कर आन्दोलन करने लगे। नियत तिथि पर कई सहस्र जनसमूह साथ लेकर सम्भालका पहुचे और विरोधियों के हृदय मे भय छागया। श्रीमान् डिपुटी कमिश्नर साहब कर्नाल ने बलवे की सम्भावना देख आज्ञा दी कि सम्भालका में हथ्था नहीं खुलेगा और कुपित जन समुदाय ने शान्त हो अपने २ ग्रामों को प्रस्थान किया। श्री भक्त जी गोमाता के पुजारी थे और यथा सम्भव उसकी रक्षा के लिये सदा तत्पर रहते थे।

(३) कुछ दिनों बाद उनके हृदय मे पश्चाताप की आग बलने लगी और उन्होंने माल विभाग की नौकरी छोड दी और इस विभाग में

कार्य करते हुए जो रिश्वत इन्होंने ली थी उसे अदा करने के लिये अपनी जमीन बेच दी और प्रत्येक रिश्वत देने वाले की सेवा में उपस्थित होकर ग्राम के पञ्चों के सन्मुख रिश्वत का रुपया वापस कर दिया। हिसाब लगाने पर मालूम हुआ कि लगभग साढ़े चार हजार ४५००) रुपये रिश्वत के उन्होंने वापिस किये।

(४) अब उन्होंने समझा कि वह वैदिक धर्म की सेवा कर सकते हैं। इस कारण उन्होंने प्रस्ताव किया कि इस प्रान्त में एक उपदेशक विद्यालय खोलकर वेद धर्म के प्रचारक तयार किये जावें। मैंने सम्मति दी कि गुरुकुल खोलिये और उसके स्नातकों के द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार कराये। तदनुसार श्री भक्त जी ने २३ मार्च सन् १९२० को गुरुकुल भैंसवाल की स्थापना की और इसके संचालन के लिये तप करने लगे। जिस दिन इस गुरुकुल की स्थापना हुई थी उस दिन लगभग सहस्र रुपये २००००) नक़द दान में आए थे।

(५) गुरुकुलार्थ धन संग्रह का काम करते हुए जिस ग्राम में भक्त जी पहुँचते थे वहां महर्षि दयानन्द का सन्देश सुनाते हुए विशेष रूप से यह यत्न करते थे कि उस ग्राम के परस्पर के झगड़े मिट जावें, पञ्चायत की रीति से उनके मामले मुक़द्दमे समाप्त हो जावें, रिश्वत देने की रीति मिट जावे। इन कार्यों में उन्हें प्रायः आशातीत सफलताएँ प्राप्त होती थीं। ग्रामीणों को उपदेश देते हुए प्रायः कहा करते थे कि "जुल्म करना पाप है और जुल्म को सहना महापाप है।" श्री भक्त जी के प्रचार से रिश्वत देना लोगों ने बन्द करना आरम्भ किया और रिश्वतखोर भक्त जी से मन ही मन चिढ़ने लगे।

(६) अब भक्त जी का काम अधिक विस्तृत होने लगा। मूले (मुसल्मान) जाटों की शुद्धि का काम उन्होंने आरम्भ किया। ज़िला गुड़गाँव के क़स्बा होडल के पास उन्होंने उक्त शुद्धि के लिये लोगों को समझाया परन्तु लोग न माने, तब अगस्त १९२९ में लोगों पर दबाव डालने के लिये उन्होंने अनशन व्रत धारण किया अर्थात् अठारह दिनों तक सिवाय जल पीने के और कुछ भी नहीं खाया। इस व्रत के कारण लोगों के हृदय पिघलने लगे और भक्त जी का व्रत खुलवाने के लिये बड़े बड़े लोग उनकी सेवा में उपस्थित हुए और श्री भक्त जी को विश्वास दिलाया कि शुद्धि हो जावेगी। जिस पर श्री भक्त जी ने उपवास तोड़ा परन्तु बड़े लोग भी अपने वचनों की पालना न कर सके और उस समय वहां शुद्धि नहीं हुई।

(७) अपने भ्रमण काल में नारी जाति की दुर्दशा उन्होंने देखी और संकल्प किया कि यथाशक्ति इनके उद्धार के लिये भी यत्न करेंगे। तदनुसार सन् १९३६ में ग्राम खानपुर (ज़िला रोहतक) के जंगल में कन्या गुरुकुल की स्थापना की जहां कन्याएँ आर्य्य सिद्धान्तों की शिक्षा पा रही हैं। अखिल भारतीय आर्य्य युवक संघ की परीक्षा सिद्धान्त शास्त्रिणी में उक्त कन्या गुरुकुल की तीन छात्राएँ उत्तीर्ण हो चुकी हैं और कन्या गुरुकुल में शिक्षा देती हुई अवकाश काल में कई ब्रह्मचारिणियों को साथ लिए हुए वैदिक धर्म के प्रचार में संलग्न रहती हैं। उक्त परीक्षोत्तीर्ण

कन्याओं में श्री भक्त जी की दो पुत्रियां श्रीमती सुभाषिणी जी तथा श्रीमती गुणवती जी भी हैं जो उक्त कन्या गुरुकुल में अवैतनिक मुख्याधिष्ठात्री तथा अवैतनिक आचार्य्या का काम इन दिनों कर रही हैं।

(८) एक अबला की पुकार—सूबा दिल्ली में सरसा जांटी एक ग्राम है। वहां की एक हिन्दू अबला रोती हुई श्री भक्त जी के पास गुरुकुल भैंसवाल पहुँची और कहने लगी कि उसकी एक कन्या दश ग्यारह वर्ष की लापता है, बहुत खोजी गई परन्तु नहीं मिली, भक्तजी की कृपा हो तो वह मिले और मेरा व्याकुल हृदय शान्त हो। उसके विलाप से भक्त जी का हृदय विशेष दुःखी हुआ और उस खोई हुई कन्या की खोज में वह चल पड़े। विशेष जाँच के बाद पता लगा कि कन्या मुसल्मान रांघड़ों के गांव गूगाहेड़ी में है। श्री भक्त जी ने जाटों के गांव निदाणा में पञ्चायत की और गूगाहेड़ी वालों से कन्या मांगी। गूगाहेड़ी वालों ने कहा कि उनके यहां कन्या नहीं है। निदाणे वालों के पास कोई ऐसा दृढ़ प्रमाण नहीं था जिससे वे सिद्ध करते कि गूगाहेड़ी वालों के पास ही कन्या है। तथापि न मालूम किस प्रकार और कहां से कन्या श्री भक्त जी के पास रात्रि समय पहुंचा दी गई और श्री भक्त जी ने रोती हुई माता की गोद में उसकी पुत्री को जा बिठाया। "श्री भक्त जी निर्बलों के सहायक हैं, अत्याचारियों के अत्याचार दूर करते हैं" यह किम्वदन्ती चारों ओर फैल गई और दुखी लोग त्राण पाने के लिये श्री भक्त जी की शरण लेने लगे।

(६) धीरे धीरे सन् १६३६ ई० का कठिन समय भी आन पहुंचा। निजाम साहब हैद्राबाद के राज्य में आर्यों पर अत्याचार होने लगे जिनके समाचार श्रवण कर बाहर के आर्य सत्याग्रह के लिए कटिबद्ध हुए। रोहतक के सत्याग्रहियों के अग्रणी श्री भक्त फूलसिह जी हैद्राबाद की यात्रा के लिये तैयार हुए परन्तु उनके साथ काम करने वाले सज्जनों ने (विशेषकर सत्याग्रह की स्पिरिट फूँकने वाले आय भजनोपदेशकों ने) श्री भक्त जी को रोक लिया और वह हैद्राबाद न जाकर लगातार सत्याग्रहियों के भर्ती करने में तत्पर हुए। आर्य जगत् को यह बात मालूम है कि श्री भक्तजी और उनके सहायक सज्जनों (विशेषकर आर्य भजनोपदेशकों) के पुरुषार्थ से इस ओर से लगभग ७०० सत्याग्रही हैद्राबाद के लिये रवाना हुए थे, और बहुत से सत्याग्रही जाने को तैयार थे।

१३ मई १६३६ को जब कि मैं (ब्रह्मानन्द सरस्वती) अपने एक सौ सत्याग्रहियों के साथ हैदराबाद को रवाना होने वाला था, श्री भक्त फूलसिह जी गुरुकुल भैंसवाल के लगभग तीस ब्रह्मचारियों तथा कार्य कर्ताओं के साथ चार सौ रुपये लिए हुए मुझे मान-पत्र (ऐड्रेस) देने आ रहे थे। रोहतक की सड़क जो बड़ी मसजिद के पास से गुजरती है वहाँ श्री भक्त जी की मंडली भजन गाती हुई जब आर्य मन्दिर की ओर आ रही थी तो कतिपय मुसल्मान (न मालूम किस कारण क्रुद्ध होकर) उक्त मण्डली पर लाठियाँ बर्षाने लगे जिससे गुरुकुल के उपप्रधान हरद्वारी सिंह जी का सर फूट गया गुरुकुल के कोषाध्यक्ष श्री स्वरुप लाल जी का हाथ

टूट गया, और भी कइयों को कठिन चोटें आईं, श्री भक्त जी को भी अनेक लाठिया लगीं। समाज मे पहुँचाये जाने के बाद सभी जखमी सरकारी हस्पताल मे पहुचाए गए। हस्पताल में जखमियों ने मुझ से कहा कि वह लोग तो हैदराबाद जाने के लिए आए थे। मैंने उत्तर दिया कि बलिदान का आधा पुण्य आप लोगों को प्राप्त हो गया इत्यादि। मुकदमा हुआ परन्तु मुसलमान सर्दारों के माफी माँगने पर श्री भक्त जी ने माफ़ी दे दी और किसी के विरुद्ध भी कुछ नहीं किया। श्री भक्त जी का कैसा विशाल हृदय था। घोर अपराधी को भी क्षमा माँगने पर क्षमा प्रदान करते थे।

(१०) हैदराबाद सत्याग्रह का काम समाप्त करके श्री भक्त जी हरिजनों की शुद्धि की ओर झुके और अनेक स्थानों मे कार्य करते हुए दो सितम्बर १९४० को मुसल्मान रॉगडों के ग्राम मोट (ज़िला हिसार) मे पहुचे जहाँ चमारों के खोंदे हुए कुएँ को मुसल्मानों ने मिट्टी आदि डाल कर बन्द कर दिया था। श्री भक्त जी एक मुसल्मान के दर्वाज़े पर जा बैठे और उक्त कुआँ खोलने के लिए मुसल्मानों से प्रार्थना करने लगे जब उन्हे तीन दिन बिना खाए पीये हो गए और दर्वाज़े से न हटे तब दस बारह मुसल्मान उन्हें पकड कर ले चले, नाना विधि से उनकी बेइज्ज़ती करते हुए उन्हें मार डालने की धमकी देते हुए मोट गॉव से प्राय एक मील के फासले पर उन्हें छोड आये। भूखे प्यासे भक्त जी चलने में असमर्थ थे। कुछ देर तो वहीं बैठे रहे फिर एक दयालु मुसल्मान और एक वणिक सज्जन की सहायता से लगभग दो मील चलकर एक हिन्दुओं के ग्राम मे आए और वहाँ जल पिया। वहाँ से श्री भक्त जी नारनोंद ग्राम मे पहुँचे और वहाँ के चौपाल मे छ सितम्बर को व्रत किया कि जब तक मोट के चमारों का बन्द किया हुआ कच्चा कुआँ न खुल जाये और वह पक्का न बन जाये और चमार उससे बे रोक टोक पानी न भरने लगें तब तक सिवाय जल पीने के वह कुछ भी न खायेंगे। इस व्रत की खबर जब भैसवालादि स्थानों में पहुची तो भक्त जी के सैकड़ों प्रेमी नारनोंद आ गए। प्रतिदिन मेला सा होने लगा। नारनोंद के मुसल्मान सब इन्स्पेक्टर श्री भक्त जी के प्रेमी थे। उन्होंने मोट के अपराधी मुसल्मानों को लाकर श्री भक्त जी के पैरों पर गिराया और श्री भक्त जी ने उन्हें क्षमा कर दिया। उक्त मुसल्मान यह भी कह गए थे कि मोट के चमारों के कुएँ को अब वह बनने देंगे। परन्तु कुवॉ न बना। जब सतरह अठारह दिन व्यतीत हो गए और लोगों को श्री भक्त जी के प्राणों की चिन्ता सताने लगी तब श्री सेठ युगलकिशोर जी बिडला नारनोंद पहुचे और श्री भक्त जी के चरण पकड लिये और कहा कि एक नहीं दश कुएॅ हम चमारों के लिये बनवा देते हैं आप उपवास छोडिए। श्री भक्त जी ने उन्हे धन्यवाद दिया और कहा कि चमारों के प्रति जो लोगों की घृणा है उसे हम मिटाना चाहते हैं, लोगों की हठ जो चमारों पर अत्या चार करने का है उसे हम दूर करना चाहते हैं। जब तक यह दूर न हो कुवों के बनने से भी कार्य सिद्ध न होगा। श्री बिडला जी निराश

हो चले गए। फिर श्री सर छाजूर म जी साहब कलकत्ता, श्री महात्मा गान्धी जी महाराज, श्री सर छोटूराम साहब मिनिस्टर लाहौर के तार आए कि श्री भक्त जी को उपवास छोड़ना चाहिए और श्री सर छोटूराम साहब ने श्री भक्त जी के प्राण बचाने के लिये अन्य भी अनेक उद्योग किए। श्री महात्मा गांधीजी महाराज के प्रमुख कार्यकर्ता श्री वियोगी हरि जी आए और उन्होंने भी श्री भक्त जी से बहुत प्रार्थना की परन्तु श्री भक्त जी ने उपवास न तोड़ा। फिर श्री डिपुटी कमिश्नर साहब हिसार ने पुलिस की एक गारद मोट में भेजी और अनेक प्रतिष्ठित मुसल्मानों ने मोट के मुसल्मानों को समझाया तब चमारों का उक्त कुंआं तय्यार हुआ। चमारों ने उससे पानी भरा और भक्त जी ने उस कुएँ का जल पान कर अपना उपवास ता० २१ सितम्बर १६४० को अर्थात् चौबीसवें दिन तोड़ा। श्री भक्त जी हरिजनों को छाती से लगाने के लिये लालायित रहते थे। मुझे जहां तक मालूम है हरिजनों के लिये जितना कष्ट श्री भक्त जी ने उठाया है उतना कष्ट सिवाय महात्मा गान्धी जी महाराज के और किसी व्यक्ति ने नहीं उठाया।

(११) हरिजन सम्बन्धी नारनौंद के व्रत से श्री भक्त जी का कृशित शरीर अभी पूर्ण पुष्ट भी नहीं हुआ था जब कि उन्हें नवाब साहब लोहारू की राजधानी में वहां के आर्यसमाज के उत्सव समय जाना पड़ा। २६ मार्च १६४१ को जब वहाँ नगर कीर्तन हो रहा था श्री स्वा० स्वतन्त्रानंद जी तथा श्री भक्त फूलसिंह जी पर अधिक लाठियां बर्षीं। श्री भक्त जी के शीश से, मुख से रक्त बहने लगा, पसली की एक हड्डी टूट गई, चौबीस घण्टे तक भक्त जी बेहोश रहे। फिर जागे और इरविन हस्पताल दिल्ली के डाक्टरों की चिकित्सा से बच गये।

(१२) परन्तु इतनी दुर्घटनाओं से बचे हुए महात्मा, गत चौदह अगस्त १६४२ को रात्रि समय लगभग ६ बजे स्थान कन्या गुरुकुल खानपुर में घातकों की गोलियों से अपनी उनसठ वर्ष की आयु मे मारे गये। हरियाना प्रान्त अपने अपूर्व प्रेमी के वियोग के कारण विलाप कर रहा है। श्री भक्त फूलसिंह जी वानप्रस्थी मेरे प्रिय शिष्य थे। पूज्यपाद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज मेरे गुरु थे। दोनों विशेष धर्म प्रेम के कारण बलिदान हो गए। न मालूम मैं अभागा उस पुनीत प्रसाद से वञ्चित क्यों हूँ ?

आर्यों का सेवक—

ब्रह्मानन्द सरस्वती।

सभासद् सार्वदेशि आर्य प्रतिनिधि सभा,

देहली।

प्रचार का सच्चा साधन—सेवा

हमें यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई है कि बम्बई आर्यसमाज के ६७ वें वार्षिकोत्सव के अवसर पर सर चुन्नी लाल भाई चन्द मेहता जी के सभापतित्व में शिशुगृह, बालगृह और महिलाश्रम की स्थापना की गई है। शिशुगृह में १ से ३ वर्ष की आयु के असहाय शिशु रक्खे जायेंगे। अभी ११ शिशुओं से शिशुगृह का प्रारम्भ किया गया है। ५० शिशुओं के लिए प्रबन्ध किया गया है। बालाश्रम में ३ से १४ वर्ष तक के ५० बालकों के रखने की व्यवस्था है। १० प्रविष्ट हो चुके हैं। महिलाश्रम में भी ५० महिलाओं के रखने की व्यवस्था की गई है १५ प्रविष्ट हो चुकी हैं। श्री कन्हैया लाल मुन्शी भू० पू० मन्त्री बम्बई सरकार और श्रीमती लीलावती मुन्शी इत्यादि ने इन संस्थाओं की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि आर्य समाज ने हिन्दू जाति की सेवा करना अपना धर्म बना लिया है। जोखिम के समय में यही संस्था अपनी जान हथेली पर रखकर रक्षा कार्य करती है। "प्रतिदिन हज़ारों की सख्या में हिन्दू स्त्रिया विधर्मी होती जारही हैं। अगर समाज की रक्षा करनी है तो स्त्रियो की रक्षा करो। अगर इनकी रक्षा न की गई तो समाज की शक्ति क्षीण हो जाएगी और समाज की नैतिकता भी नष्ट हो जाएगी। पतिता को केवल पथ भ्रष्ट होने से ही न बचाएं पर उसे पवित्र बनाने के लिए भी कार्य करें ताकि वह ऐसी बन जाए कि भविष्य में उसे फिर ठोकर न खानी पड़े।" इत्यादि जहां सेवा कार्य की दृष्टि से इन संस्थाओं की स्थापना का हम अभिनन्दन करते हैं वहा इतना लिखना आवश्यक समझते हैं कि इन संस्थाओं के संचालकों पर बड़ी भारी उत्तरदायिता है। पूर्ण सदाचारी अनुभवी और उत्साही सज्जनों द्वारा ही बालगृह का और सर्वथा सच्चरित्रा अनुभवशालिनी वृद्ध देवियों द्वारा शिशुगृह और महिलाश्रम का संचालन होना चाहिए अन्यथा आर्य समाज के पवित्र नाम पर कलङ्क लगता है जैसा दुर्भाग्यवश अनेक स्थानों पर हुआ है। हमें विश्वास है कि बम्बई आर्य समाज के अधिकारी तथा संस्थाओं के अन्य संचालक अपनी उत्तरदायिता को पूर्णतया निभाते हुए इस सेवा कार्य द्वारा जनता के हृदयों पर अधिकार जमाएँगे. ऐसे ही उत्तम सेवाकार्य का विवरण आर्यसमाज ग्वालियर से प्राप्त हुआ है कि आर्य स्वयं सेवक हैजा पीड़ितों की विशेषतः निस्सहाय और अनाथ रोगियो की दिन रात सेवा में तत्पर हैं।' वे प्रत्येक मुहल्ले में जाकर हैज़ा पीड़ितोंकी दवा इत्यादि का प्रबन्ध करते हैं। उड़ीसा में सार्वदेशिक सभा के उत्साही कार्य कर्ता स्वा० धर्मानन्द जी सरस्वती बालङ्गीर आर्य समाज की ओर से चेचक पड़ितों की सेवा शुश्रूषा में समाज के स्वय सेवकों सहित तत्पर हैं यह समाचार पाकर अत्यन्त हर्ष हुआ है। अन्य आर्य समाजों और आर्य वीर दल इत्यादि को भी सेवा कार्य द्वारा जनता को अपनी ओर आकर्षित करने का सदा प्रयत्न करना चाहिये केवल व्याख्यान वा पुस्तकादि द्वारा जनता के हृदयों पर अधिकार जमाना सम्भव नहीं। ईसाई मत के इतने बुद्धि विरुद्ध होने पर भी प्रचार का यही रहस्य है।

शास्त्रीय चर्चा में शिष्टता—

'आर्य भानु' मासिक पत्र के सुयोग्य सम्पादक श्री पं० सतीशकुमार जी विद्यालङ्कार ने एक विस्तृत पत्र

हमारे नाम 'देवकामा' 'देवृकामा' इत्यादि विषयक विवाद के सम्बन्ध में भेजते हुए अन्त में लिखा है—"मेरी सम्मति में सार्वदेशिक सभा को चाहिये कि वह इस प्रकार के विवादों पर कुछ नियन्त्रण रखे तथा इन विषयो पर प्रकाशित लेखों इत्यादि को प्राप्त कर निष्पक्ष विद्वानों की एक समिति बना विचार करा कर निर्णय दे अन्यथा ये भेद अन्दर ही अन्दर बुरे रूप धारण करते जाते हैं। मै आशा करता हू कि सार्वदेशिक सभा अपने अधिकार का प्रयोग कर इस मामले मे; पूर्व के देवतावाद आदि विषयों में तथा भविष्य में उठने वाले इसी प्रकार के विवादों के सम्बन्ध में अपना अन्तिम सर्वमान्य निर्णय दिया करेगी। इस 'देवृकामा' के विवाद को भी विचारार्थ धर्मार्य सभा के अधीन कर देना चाहिये तथा जब तक फैसला न हो जाए ऐसे लेखोंपर नियन्त्रण रखा जाए।"

श्री पं० सतीश कुमार जी तथा इस विषय में रुचि रखने वाले अन्य विद्वानों की सूचनार्थ हम प्रकाशित कर देना चाहते हैं कि सार्वदेशिक सभा की धर्मार्य सभा के आगामी अधिवेशन में जिसकी तिथियों की ठीक सूचना निश्चय होने पर समाचार पत्रों द्वारा फिर दी जायगी इस विषय को विशेष रूप से प्रस्तुत किया जायगा। अतः जो वेदज्ञ विद्वान् महोदय इस विषय में अपने विचार सभा के सन्मुख रखना चाहते हैं उन्हे सप्रमाण लिखकर सार्वदेशिक सभा कार्यालय में यथा सम्भव शीघ्र भेज देना चाहिये। किन्तु ऐसा करते हुए केवल शास्त्रीय प्रमाणों और युक्तियों से ही काम लेना चाहिये। वैयक्तिक आक्षेपों और व्यङ्गय वचनो को ऐसी चर्चा में कोई स्थान न मिलना चाहिये। आशा है सब विद्वान् लेखक शिष्टता पालन विषयक इस निवेदन को ध्यान मे रखकर अपने विचारों को लेख बद्ध करके शीघ्र सभा कार्यालय में भेजने की कृपा करेगे जिससे धर्मार्य सभा को उचित निर्णय पर पहुचने में सहायता मिले।

निन्दनीय दमन चक्र—

आर्यसमाज कोटा के मन्त्री महोदयने अपनी समाज के १६-८-४२ के साधारण अधिवेशनमें स्वीकृत निम्न प्रस्ताव "सार्वदेशिक" में प्रकाशनार्थ भेजा है:—

"कोटा आर्य समाज ता० १३ और १४ अगस्त को पुलिस द्वारा कोटा नगर में किये गये अत्याचार पूर्ण लाठी प्रहार व फाइरिङ्ग को जो कोटा राज्य की राजभक्त व शान्ति प्रिय प्रजा पर किया गया है घृणा की दृष्टि से देखती है और विशेष रूप से जो अमानुषिक लाठी चार्ज निस्सहाय स्त्रियों व अबोध बालक-बालिकाओं पर निर्दयता पूर्वक किया गया है, उसके प्रति अपना रोष प्रकट करती है और श्री जी हजूर बहादुर से प्रार्थना करती है कि इन दुष्ट कृत्यों की निष्पक्ष जॉच कराई जाकर अपराधियों को उचित दण्ड दिया जाय। यह सभा उन व्यक्तियों के साथ अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट करती है जो इस अत्याचार के शिकार हुए हैं। यह सभा कुछ अज्ञानी, उपद्रव-प्रिय अनुत्तरदायी पुरुषों के टेलीफोन, टेलीग्राफ इत्यादि मे बाधा उत्पन्न करने को अच्छी दृष्टि से नहीं देखती।"

ऐसे ही दमन चक्र के समाचार ब्रिटिश भारत के अनेक भागों से आये हैं। सभी राष्ट्रों का इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस दमन चक्र से स्वतन्त्रता प्रिय देश प्रेमियों की आत्मा को कभी कुचला नहीं जा सकता चाहे कुछ समय के लिये उन्हें दबाने में सफलता भले ही प्राप्त हो जाए। जसे कि इङ्गलैण्ड के London Times इत्यादि कुछ विचार पूर्ण पत्रों ने भी सूचित किया है कि इस समय विधानात्मक सहानुभूति पूर्ण कार्य किये बिना दमन नीति से काम नहीं चल सकता। देश के मान्य नेताओं को बन्धन मुक्त करके भारत की स्वतन्त्रता की जो प्रत्येक राष्ट्र का जन्म सिद्ध अधिकार है तुरन्त घोषणा ही इस अशान्ति को दूर करने का एक मात्र उपाय है इसमे कोई सन्देह नहीं। 'अनागो हत्या वै भीमा' (अथर्ववेद १०।१।१) अर्थात् निरपराधों की हिंसा बड़ी भयङ्कर होती है इस वेदोक्त अटल सचाई को किसी को कभी न भूलना चाहिये।

'ध० दे०"

श्री पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

१९५८ ई०

सम्पादक मण्डल—

वार्षिक मूल्य

विदेश ५ शि०

विषय-सूची

॥ ओ३म् ॥

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख पत्र *

वर्ष १७	आश्विन १९९९ अक्टूबर, १९४२ ई	दयानन्दाब्द ११८	अङ्क ८

ओ यतोयतः समीहसे ततो नो अभय कुरु ।

श नः कुरु प्रजाभ्यो अभय नः पशुभ्यः ॥ यजुर्वेद ३६ । २२

हे परमेश्वर ! (यत यत) जहा जहा से तुम (सम् ईहसे) सम्यक् चेष्टा करते हो (तत) वहा २ से (न) हमे (अभय कुरु) निर्भय कर दो । (न) हमारी (प्रजाभ्य) प्रजाओं के लिये (शम्) कल्याण कुरु) कर दो और (न पशुभ्य अभयम्) हमारे पशुओं के लिए अभय कर दो ।

भावानुवाद—

क्या विस्तृत वसुधा तल मे या अतल जलधि के जल में,
क्या नील अनत गगन मे या हृदयों मे त्रिभुवन मे ।
तुम जहा जहा से भगवन् ! कर रहे सूत्र सचालन,
भय रहित हमे प्रभु कर दो मङ्गल हो सबका घर दो ।
हों सुखी समस्त प्रजाए पशु भी निर्भय हो जाए,
उमडे बस अन्तस्तल मे विश्वास प्रेम पल पल मे ।

—प० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार

वेदामृत—

श्रद्धा मेधा समन्वय

(१) ओ३म् श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि । श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ऋग्वेद ८ । ८ । ६ ।

(२) ओं मेधां सायं मेधां प्रातर्मेधां मध्यन्दिनं परि । मेधांसूर्यस्य रश्मिभिर्वचसा वेशयामहे ॥ अथर्व ६ । ११ । १०८ ।

ओ३म् अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे । स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु ॥ अथर्व १ । ७६ । ६४ ।

शब्दार्थः—(१) हम (प्रातः श्रद्धां हवामहे) प्रातः काल श्रद्धा का आवाहन करते हैं—श्रद्धा को अपने अन्दर धारण करते हैं (मध्यन्दिनं परि श्रद्धाम्) दोपहर को भी हम श्रद्धा को अपने अन्दर धारण करते हैं । (सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धाम्) सूर्य के अस्त होने के समय में भी हम (श्रद्धाम्) श्रद्धा को अपने अन्दर बुलाते हैं (श्रद्धे) हे श्रद्धा देवि ! (नः श्रत् धापय) हमारे अन्दर सत्य को स्थापित कर ।

(२) हम (सायं, प्रातः, मध्यन्दिनं परि मेधाम् वेशयामहे) सायं, प्रातःकाल और मध्याह्न-काल मेधा—पवित्र शुद्ध बुद्धि को अपने में प्रविष्ट कराते हैं (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों के साथ हम (वचसा) अपने वचन द्वारा इस वैदिक भावना द्वारा (मेधाम् आवेशयामहे) मेधा को ही अपने अन्दर प्रविष्ट कराते हैं ।

(३) हे (अग्ने) सब के नेता प्रभो (बृहते जात वेद से) सबसे बड़े सर्वव्यापक और सर्वज्ञ तुम परमात्म रूप अग्नि के लिये (समिधम् आहार्षम्) अपने जीवन की समिधा लाता हूँ—अपने को तेरे प्रति पूर्णतया समर्पित करता हूँ (स जात वेदाः) वह सर्व व्यापक और सर्वज्ञ परमात्मा (मे श्रद्धां च मेधां च प्रयच्छतु) मुझे श्रद्धा और मेधा दोनों का दान करे ।

वेद के इन मन्त्रों में प्रातः, मध्यान्ह, सायंकाल हर समय श्रद्धा और मेधा को अपने अन्दर धारण करने की प्रार्थना करने और ऐसी ही भावना रखने का उपदेश किया गया है । साधारणतया 'श्रद्धा' का अर्थ विश्वास और प्रायः अन्ध विश्वास समझा जाता है । 'बाबा वाक्यं प्रमाणम्' वाले तर्क शून्य बुद्धि विरुद्ध आचरण को प्रायः श्रद्धा का नाम दे दिया जाता है किन्तु वेद भगवान् जिस श्रद्धा को हर समय अपने अन्दर धारण करने का इस प्रार्थना और भावना द्वारा हमें उपदेश देते हैं वह अन्धविश्वास नहीं है । उसका तो शब्दार्थ ही यह है कि श्रत्=धा श्रत् नाम वैदिक कोष निघण्टु में सत्य का दिया है उस सत्य को सम्पूर्णतया धारण करना अथवा सत्य धारण की शक्ति इसे ही वेद श्रद्धा कहते हैं । जब

हमने शुद्ध बुद्धि, तर्क इत्यादि के प्रयोग द्वारा सत्य का पता लगा लिया तो उस सत्य पर सर्वदा दृढ़ रहना, उसके लिये आवश्यकतानुसार प्राणों की भी आहुति देने को उद्यत रहना यह श्रद्धा है जिससे अपने जीवन को परिपूर्ण करने का वेद भगवान् हमे बार २ उपदेश देते हैं। इस श्रद्धा के विषय मे वेद भगवान् कहते हैं कि 'श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि।' हम भग-धर्म का मस्तक रूप इस श्रद्धा को बतलाते हैं। जब तक सत्य को धारण करने का कोई मनुष्य अभ्यास न कर ले तब तक वह कभी धर्मात्मा नहीं बन सकता, चाहे वेद शास्त्रों को वह कितना ही कण्ठस्थ कर ले।

प्रायः मत मतान्तरों के लोग तर्क और श्रद्धा का विरोध समझते हैं। "मज़हब की बातों में अक्ल का दखल नहीं" अर्थात् धर्म की बातों में बुद्धि का कोई काम नहीं, यह केवल विश्वास का विषय है, ऐसा मानने और प्रचार करने वालों की संख्या सम्प्रदाय वादियों में बहुत अधिक है किन्तु वेद भगवान् जिस प्रकार श्रद्धा की प्राप्ति के लिये हर समय यत्नशील होने का हमे उपदेश करते हैं उसी प्रकार मेधा अर्थात् शुद्ध तर्क अथवा पवित्र बुद्धि के सम्पादन का भी वे "मेधां सायं मेधां प्रातः" इत्यादि मेधा सूक्त के मन्त्रों द्वारा बार २ उपदेश देते हैं। मेधा का अर्थ वह शुद्धि बुद्धि है जो धर्म अधर्म, कर्तव्य अकर्तव्य, सत्य असत्य, पाप पुण्य आदि में भेद कर सकती है। तर्क का आश्रय भी ऐसे शुद्ध ज्ञान अथवा सत्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक है। अतः वेद भगवान् उस मेधा की प्राप्ति करने का उपदेश देते हुए हमे उस विषयक भावना को सदा धारण करने का आदेश करते हैं। मेधा अथवा शुद्धि बुद्धि वा शुद्ध तर्क द्वारा (जैसे कि जर्मनी के कैन्ट आदि विचारकों ने Pure Reason का नाम दिया है) सत्य का ज्ञान प्राप्त करके उसको दृढ़ता के साथ अपने अन्दर धारण कर लेना-कठिन से कठिन आपत्तियो और प्रलोभनों के आने पर भी उसे न छोड़ना-यह श्रद्धा है। इस प्रकार श्रद्धा और मेधा के सुन्दर समन्वय के लिये हम "जातवेदा" ("जाते जाते विद्यते इति वा जातानि वेद इति वा" निरुक्त) सर्वव्यापक सर्वज्ञ भगवान् से "स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्रयच्छतु" इत्यादि पवित्र वेद मन्त्रों द्वारा दिन रात प्रार्थना करते हैं। केवल विश्वास मनुष्य को अन्धा बना देता है, केवल तर्क मनुष्य जीवन को नीरस अथवा सर्वथा शुष्क बना देता है अतः वेद भगवान् की आज्ञा यह है कि हम इन दोनों का अपने जीवन मे सुन्दर समन्वय करें। "मूर्धानमस्य संसीव्य अथर्वा हृदयं च यत्" (अथर्व १०।२।२६) अर्थात् योगी ज्ञानी अपने मस्तिष्क और हृदय को सीकर कार्य करता है। इस वैदिक आदर्श पर चलते हुए हम अन्ध-विश्वास से बचें और साथ ही भक्ति रूप अमृत का पान कर अपने जीवनों को यज्ञ मय सरस और निर्भय बनाएँ यही हमारा कर्तव्य है।

"धर्म"

ईशोपनिषद् का प्रथम मन्त्र

(लेखक—प्रोफेसर वासुदेव विष्णुदयाल जी एम० ए० पोर्ट लुई मारीशस)

ओ३म् ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥

ईशोपनिषद् और केनोपनिषद् कई बातों मे समान हैं। एक यह है कि उनके पहले शब्दों को लेकर उनके नाम रखे गये हैं। परतु ईशोपनिषद्' नाम रखने का एक दूसरा कारण भी है इस उपनिषद् मे ईश्वर के सत्य स्वरूप को बताने की आरम्भ से अन्त तक चेष्टा की गई है। ईशोपनिषद् का प्रथम मन्त्र आस्तिकों की आस्तिकता को दृढ करके नास्तिकों की नास्तिकता का वैयर्थ्य दर्शाता है।

कई विचारकों और विज्ञानवेत्ताओं को धर्म एवं ईश्वर से चिढ़ है। पूछ ताछ करने पर मालूम हुआ है कि इस चिढ़ का कारण क्या है। मनुष्यों ने अपने गुण दोषों को ईश्वर के सिर मढ़ दिया है। ईश्वर में कोई विशेषता न पाकर कई बुद्धिमानों ने उसके विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करनी शुरू की।

क्या ईशोपनिषद् का ईश्वर भी मनुष्य की शकल में बनाया गया है? ईशोपनिषद् का प्रथम मन्त्र उत्तर देता है कि नहीं। ईश्वर इस जगत की हरेक वस्तु को ढांकता है। ढकनी पात्र से बड़ी होती है और टोपी सिर से। सर्व व्यापी ईश्वर भी सारे जगत से बड़ा है। सारी दुनियों से बड़ा होने से दुनियां मे रहने वाले मनुष्य से भी बड़ा है। ईशोपनिषद् का ईश्वर anthropomorphic नहीं है।

बड़ों का बड़े होने का कारण उसकी शक्ति है। ईश्वर सर्व शक्तिमान् है; क्योंकि विश्व को चलाने के लिए उसे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होता एक शहर मे पांच पाठशालाएं हों तो हरेक का एक साधारण हैड-मास्टर होना चाहिए। यदि पांचों को एक में केन्द्रित किया जाय तो उन पांचों हैड मास्टरों मे से किसी एक मे उतना शक्ति नहीं होगी कि वह केन्द्रीय पाठशाला को चलावे। उस पाठशाला के लिए एक बड़ा हैड मास्टर चाहिये जो पांचों पाठशालाओं के विद्यार्थियों को अपने अनुशासन मे रख सके। 'ईशा' शब्द एक वचन मे है। उसके स्थान मे आया हुआ 'तेन' भी एक ही वचन मे है। ईश्वर सारे ससार को अकेला चला रहा है, इसलिये वह शक्तिशाली है। ईशोपनिषद् का ईश्वर कुरान के ख़ुदा की तरह किसी चीफ़ क्लर्क को भी नहीं रखता। कोई ख़ास आदमी उसका पैग़म्बर नहीं है। जब यह हालत है, तो बाइबिल के ईश्वर से उसकी तुलना कैसे हो सकती है? कार्य भार को सहने के लिए बाइबिल का ईश्वर दो साथियों की मदद लेता है। अगर सचमुच ईश्वर है तो उसको सर्व-शक्तिमान् होना चाहिए। ईशोपनिषद् का ईश्वर सर्वतोभावेन पूर्ण है। प्रथम मन्त्रमें

सुन्दर रीति से बतलाया गया है कि ईश्वर अकेला है।

ईश्वर सब वस्तुओं को ढांकता है अर्थात् दुनियाँ की समस्त वस्तुएँ उसकी छत्र छाया में रहती हैं। वह हम सबों का रक्षक है। रक्षक लोग अपने बाहुबल से लोगों की रक्षा किया करते हैं। समाज की रक्षा वीर क्षत्रियों की भुजाओं पर निर्भर करती है। क्षात्रबल में थोड़ी सी कमी आ जाय तो बड़े से बड़ा देश एक दो दिनों में समूल नष्ट हो जाता है। यदि संसार नाश को प्राप्त न हुआ तो कारण यही है कि उसकी रक्षा करने वाला, शक्ति वाला, परमेश्वर है।

अब ज़रा देखें कि ईश्वर से आच्छादित जगत् तथा उसकी हरेक वस्तु किस तरह काम कर रही है। 'जगत्' शब्द का अर्थ है 'जो चलता है'। यह शब्द सोच विचार करके चुना गया प्रतीत होता है। यही शब्द बाइबिल में आता तो गलीलियो को कई यातनाएँ सहनी न पड़तीं और विज्ञान वेत्ता धर्म से विमुख न होते।

बर्गसन की Philosophy of Change से परिचित होने पर ईशोपनिषद् के ईश्वर का असली रूप सामने आता है। उनका कहना है कि हम मैदान में बैठकर प्रकृति के दृश्य को देख रहे हैं। शायद ही हम ख़याल करते होंगे कि घास बढ़ रही है और उसके साथ हमारी उम्र*। घास ही नहीं बढ़ती (चलती) है, एक एक कण, एक एक अणु और परमाणु चल रहा है†। Einstein और उसके पहले कैलविन और लौज अपनी अपनी दिशा में अन्वेषण करके इसी परिणाम पर पहुँचे हैं।

अंग्रेज़ी में एक कहावत है कि औज़ार उसी का है, जो उससे काम लेता है। 'ज़र्रे ज़र्रे में' रहने वाला ईश्वर हरेक ज़र्रे को गति देता है, इसलिए जगत् का असली मालिक वही ठहरा। हम वायुयान में बैठकर एक देश से दूसरे देश में पहुंच जाते हैं। परन्तु कभी भी यह विचार नहीं आया कि वायुयान हमारा है। नर्तक मैनेजर के द्वारा ख़रीदे गये कपड़े को पहन कर रंग-मंच पर आकर खेलता है। खेल के समाप्त होते ही वह कपड़ा उसे वापस करना पड़ता है। इस संसार के रंग-मंच के मैनेजर हम सबों को कपड़ा-लत्ता, धन, दौलत से परिपूर्ण करते हैं। हम नर्तकों को कभी भूलना नहीं चाहिये कि इन सब वस्तुओं से कभी न कभी हाथ धोना होगा। संसार की हरेक चीज़ से हम लाभ तो जरूर उठा सकते हैं लेकिन किसी वस्तु को हम अपनी न समझें। कृपालु ईश्वर वे चीज़ें हमें उधार में देता है। वे चीज़ें उसकी हैं। दी हुई चीज़को स्वीकार करके उससे संतुष्ट होना चाहिये; क्योंकि देने वाला विचारवान् है। भूत, वर्तमान और भविष्य का जानने वाला है। वह हमें अपने कर्मों के अनुसार फल देता है। दूसरों के धन पर आंख गाड़ना समाज की शान्ति को भङ्ग करना है—

* Bergson, *La Nature del. Ame*

† J Alexander Duff, *Bergson and his Philosophy* (2)

'हर जगह मौजूद' होने वाले ईश्वर को आंखों से न देख पाने से नास्तिक कहते हैं कि ईश्वर की सत्ता होती तो हम उसको देख लेते। मनुष्य अपनी आँखों पर पट्टी लगाकर कहने लग जाय कि सूर्य मुझे दीखता नहीं तो सूर्य का दोष न होगा। भौतिक वादियों की युक्ति इस युग मे बहुत पुरानी और सारहीन मालूम पड़ने लगी है। जिस किसी वस्तु को हम देख रहे हैं; वह करोड़ों कणों के साथ आने से बनी है। उन कणों को आंख देख नहीं सकती।

हमारे लघु शरीर में तभी तक हिलने डुलने की शक्ति होती है; जब तक कि उसमें आत्मा होता है। विराट शरीर (संसार) में भी यदि गति है तो उस गति देने वाले के कारण से, जिसका नाम बड़े शरीर में रहने से परमात्मा पड़ गया। ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण यही है कि वह हरेक कण में गति पैदा करता है। एक एक electron और proton को देखकर मनुष्य का हृदय आस्तिक भाव से भर जाता है।

अध्यात्म सुधा

आत्म परमात्म सम्मेलन

(लेखक— श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज रामगढ़)
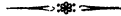
ऋग्वेद में एक ऋचा इस प्रकार से है :—
"यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिषः" ।। ऋ० ८ । ४४ । २३
मन्त्रार्थ इस प्रकार है :—हे अग्ने=प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! यदि मैं तू हो जाऊं और तू मैं हो जावे तो (ते, आशिषः, इह, सत्याः स्युः) तेरा आशीर्वाद यहां सत्य हो जावे । ईश्वर का आशीर्वाद मनुष्यों के लिये क्या है ? इसका संकेत यजुर्वेद के इस प्रतीक में है; "शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः ।" यहां मनुष्यों को वेद ने अमृत पुत्र कहा है अर्थात् मनुष्यों का अधिकार है कि अमरता का जीवन प्राप्त कर सकें । वह अमरता किस प्रकार प्राप्त हो ? इसका उत्तर इस ऋचा में है कि यदि मैं तू और तू मैं हो जावें तो अमरता प्राप्त हो सकती है ।

ऋग्वेद की इसी शिक्षा के अनुसार ऐतरेयी लोग पढ़ते हैं :— "तद् योऽहं सोऽसौ. यो ऽसौ सोऽहम्" । जावाल लोग इस प्रकार पाठ करते है :—" त्वं वा अहमस्मि भगवो देवतेऽहं वै त्वमसि ।" एक और तीसरे सम्प्रदाय वाले इस प्रकार पढ़ते हैं :— "तस्यैवाहं ममेवासौ, स एवाहम् ।"

"अहंकार"

अस्तु ! मैं तू और तू मैं हो जावें इसका अर्थ यह है कि मेरे और तेरे बीच में, जिस अहंकार ने आकर, मुझे तुझ से अलग कर रक्खा है, वह दूर हो जावे तब मेरे और तेरेपन का भाव मेरे और तेरे बीच में न रहेगा—प्रेम और भक्ति की उत्कृष्ट अवस्था यही है कि प्रेमी भक्त, अपने प्रेष्ठ के प्रेम में इतना तल्लीन हो जावे कि उसे अपनी सुध बुध बाकी न रहे तब उसे इधर उधर सब ओर अपना प्रेष्ठ ही दिखलाई देने लगता है जैसा कि कहा जाता है । "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है ।" एक उर्दू के कवि ने इसी भाव को इस प्रकार वर्णन किया है :—" जलवे से तेरे-भर गईं इस तरह से आंखें । हो कोई भी आता है फ़कत तू ही नजर में ।" अस्तु यहां थोड़ा अहंकार पर विचार कर लेना चाहिये । जगत् जब बनना शुरू होता है अर्थात् प्रकृति कारण से कार्य्य, प्रकृति से विकृति, अथवा सूक्ष्म से स्थूल होने लगती है तो महत्तत्व तक समष्टि ही रहा करती है, उसके बाद अहंकार के प्रादुर्भूत होने से व्यष्टित्व की उत्पत्ति होती है । सूर्य, चन्द्र, मनुष्य, नदी, पहाड़ आदि असंख्य वस्तुयें जगत्

में उत्पन्न हो जाया करती हैं। इसलिये जगत् को उचित रीति से अहंकार की सृष्टि कहा जाया करता है। इस जगत् की रक्षा भी अहंकार के द्वारा ही हुआ करती है मनुष्य-स्त्री, पुत्र, धन संपत्ति आदि की रक्षा तभी किया करता है जब उसके साथ मेरेपन का नाता जुड़ा हुआ होता है। जिसे मनुष्य अपनी नहीं समझता उसकी कब रक्षा करता है ? इसलिये अभ्युदय=सांसारिक उन्नति के लिये अहंकार का आश्रय लिये बिना काम नहीं चल सकता; परन्तु निःश्रेयस=ईश्वर प्राप्ति के साधनों में यह (अहंकार) बाधक है। इसी लिये तीन शरीरों में से दो स्थूल और सूक्ष्म, जो अहंकार की रचना हैं, सांसारिक व्यवहारों से सम्बन्धित हैं। परन्तु कारण शरीर जो अहंकार की पहुँच से परे होता है भक्ति भावोत्पत्ति का साधक है। अहंकार को दूर किये बिना परलोक की ओर मनुष्य नहीं चल सकता। सिद्धान्त इसी लिये स्थिर यह किया गया है कि मनुष्य को, अहंकार से काम लेकर अवश्य लोकोन्नति करनी चाहिए परन्तु करनी इस प्रकार चाहिए जिससे लोकोन्नति परलोकोन्नति का साधन बन सके। संसार की प्रत्येक वस्तु में, मनुष्य को, अपनी समझते हुए भी, भावना यह रखनी चाहिए कि ये वस्तुएँ उसे प्रयोग के लिये मिली हैं, इसलिये इन्हें छोड़ना होगा। इस भावना के रखने से, अहंकार के दोषपूर्ण पहलू ममता से, वह बचा रहेगा। प्रयोग काल में, प्रयोग के लिये मिली हुई वस्तु को मनुष्य अपना समझते हुए भी उसे त्यक्तव्य समझता है। इसी भावना के रखने से लोक परलोक का साधक बन जाया करता है। इसी भावना के रखने से लोकोन्नति भी चरम सीमा को पहुँचा करती है। मृत्यु के भय से स्वतन्त्र हुये बिना मनुष्य जगत् में यथेष्ट उन्नत नहीं हो सकता। मृत्यु के भय से स्वतन्त्र होने का एक मात्र साधन, ममता रहित होजाना है। इसलिये लोकोन्नति में, त्याग की भावना एक उत्कृष्ट साधन है। त्याग की भावना रखने और ममता रहित हो जाने से मेरे तेरेपन के भाव भी तिरोहित होने लगते हैं और इन के सर्वथा छूट जाने से, प्रेम और भक्ति की उत्कृष्ट अवस्था प्राप्त हो जाती है और उसी समय ऋचा का यह आदेश कि मैं तू और तू मैं हो जावें अर्थात् मेरे और तेरे (ईश्वर के) बीच में अहंकार की बाधा बाकी न रहे, पूरा हो जाता है। इन कविताओं में भी यही भाव प्रकट किये गये हैं:—

जब मैं थी तब हर नहीं जब हर तब मैं नांय।
प्रेम गली अति सांकरी, जा में दो न समांय॥
बेखुदी छा जाय ऐसी दिलसे मिट जाये खुदी।
उनके मिलने का तरीक़ा अपने खो जाने में है॥

आर्य और "अनार्य" भाषाएं

दक्षिण भारत की भाषाओं का संस्कृत से सम्बन्ध

(लेखक—प्र० स्ना० धर्मदेव श्री विद्यावाचस्पति उपमन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली)

(१)

आज कल के सुशिक्षित लोगों में यह विचार साधारणतया प्रचलित है कि दक्षिण भारत की भाषाओं कर्णाटक वा कन्नड़ी, आन्ध्र वा तिलगु, मलयालम और तामिल का संस्कृत भाषा के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। ये सब सर्वथा स्वतन्त्र अनार्य द्राविड़ भाषाएँ हैं। एक, डेढ़ वर्ष पूर्वकी बात है, मैं ज्वालापुर में गुरुकुल काङ्गड़ी के प्रकृति चिकित्सोपाध्याय श्री भवानीप्रसादजी के साथ दक्षिण भारत की परिस्थिति और भाषाओं के विषय में बात कर रहा था। बातचीत के प्रसंग में जब मैंने उन्हें कहा कि दक्षिण की भाषाओं में संस्कृत के शब्द बहुत अधिक पाये जाते हैं (कर्णाटक, तिलगु और मलयालय में हिन्दी से भी अधिक) तो उनको कुछ आश्चर्य हुआ और उन्होंने मुझे इस विषय में एक लेख माला उत्तर भारतीयों के भ्रम निवारणार्थ लिखने का अनुरोध किया। मुझे खेद है कि अभी तक मैं अत्यन्त कार्य-व्यग्रतावश उनकी इच्छा की पूर्ति न कर सका। इस लेख माला में मैं इसी आवश्यक विषय पर प्रकाश डालने का यत्न करूँगा। आशा है इससे शिक्षित जनता के इस विषयक भ्रम के दूर होने में कुछ सहायता मिलेगी।

कर्णाटक (कन्नड़ी) और संस्कृत

सब से पूर्व मैं कर्णाटक भाषा क संस्कृत के साथ सम्बन्ध दिखाना चाहताहूँ जिस मे व्याख्यान देने, पढ़ने और लिखने का मुझे पर्याप्त अभ्यास है और जिसमें 'वेद सन्देश' नामक मासिक पत्र का मैं कई वर्षों तक सम्पादन करता रहा। इसका संस्कृत भाषा से कितना सम्बन्ध है, यह दिखाने के लिये उदाहरण के तौर पर हिन्दी के सुप्रसिद्ध भजन "आज मिल सब गीत गाओ उस प्रभु के धन्यवाद।" के कर्णाटक भाषानुवाद को पाठकों के सम्मुख रखना मनोरञ्जक होगा जो निम्न लिखित है, यह अनुवाद स्वर्गीय कवि श्री पं० सोमनाथराव जी का किया हुआ है।

इन्दु नावेल्लारु सेरि, ईशन परमेशन।
चन्ददिं हाडोन बन्निरि, सर्व जगदाधारन ॥ १ ॥
कन्दर गलोल् मन्दिर गलोल्, गहन पर्वत शिखर-
दोल्। सुन्दर ध्वनियिन्द योगि गल्, स्तुतिप
करुणापूरन ॥ २ ॥ अकवियोल् गिड़गिड़व सेरि,
अमित मधुर स्वर गलिम्। बिड़दे पक्षि गलेल्ल
पाडुव, प्रेम पारावारन ॥ ३ ॥ तिलि कलं गलों-
लालतिलियदु, जलधियोलगे तटाकदोल्। जलव
कुडियुत जलचर गलु, नलिद पाडुव नाथन ॥४॥
शूररं वीरातिवीररु, शुद्ध हृदयाम्बुज गल् ल्।
सारि सारिगु निनदु हाडुव, सर्वसुख सन्धातन ॥

पाठक महानुभाव रेखाङ्कित शब्दों को ध्यान से पढ़ेंगे तो उनको ज्ञात हो जाएगा कि इनमें से अड़वि' और 'तटाक' इन दो को छोड़कर शेष

सब शुद्ध संस्कृत के शब्द हैं जिनका कर्णाटक भाषा में साधारणतया प्रयोग होता है। अडवि शब्द संस्कृत के अटवी और तटाक शब्द संस्कृत के तड़ाग शब्द का तद्भव रूप है। ऊपर उद्धृत पद्य में जिसका का प्रयोग है वह वर्तमान संस्कृत में प्रचलित न होते हुए भी वैदिक संस्कृत में अनेक स्थानों पर पाया जाता है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद के १ म मण्डल के १ म सूक्त के प्रथम मन्त्र ' अग्निमीले, पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्न धातमम् ॥' में उसी का प्रयोग है। इस सम्बन्ध में ओङ्कार महिमा विषयक एक सुप्रसिद्ध कर्णाटक भाषा के भजन के कुछ पदों का उल्लेख करना अनुचित न होगा।

ओमेम्ब नामवु सर्वेशन सर्वोत्तम नामवु सज्जनरे। नेमदि कीर्तिसे बुद्धिगे वृद्धियु, नित्यवु कोडुवदु सज्जनरे ॥ १ ॥ ई नामाञ्जद मेले हारुता, मौनि मुनिंगलु, मज्जरे। गानव माडुत आनन्दामृत, पान माडुववु सज्जनरे ॥ २ ॥ भवगलनेल्लव भस्मव माड्लु, भव्य मन्त्र ।वदु सज्जनरे। प्रामाणिकरह भक्तजनर बि-श्रान्ति धाम विदु सज्जनरे।

इस भजन में भी रेखाङ्कित सब शुद्ध संस्कृत के शब्द है यह लिखने की आवश्यकता नहीं। इनका साधारण साहित्यिक कर्णाटक भाषा में भी प्रयोग किया जाता है। मेरा विचार है कि कर्णाटक भाषा में कम से कम ६५ ७० प्रति शतक संस्कृत के शब्द पाये जाते हैं जिससे संस्कृत जानने वालों के लिये उसे सीखना अत्यन्त सुगम है। ऊपर मैंने कर्णाटक पद्य के दो उदाहरण दिये हैं। अब आज कल प्रचलित कर्णाटक गद्य के एक दो उदाहरण देना चाहता हूँ जिस से पाठक महानुभावों को ज्ञात हो जाएगा कि पद्य में ही नहीं, कर्णाटक गद्य में भी संस्कृत शब्दों की बहुत अधिकता रहती है। मैं आज कल "वैदिक धर्म और वीर शैव मत" विषयक एक पुस्तक लिख रहा हूँ। वीर शैव वा लिङ्गायत मत के सम्बन्ध में 'सिद्धान्त सारावलि' नामक संस्कृत भाषा की सुप्रसिद्ध पुस्तक है जिसके अनुवाद की कर्णाटक भूमिका में से कुछ वाक्य नीचे उद्धृत करता हूँ।

"प्रस्तावने—शैव सिद्धान्तवन्नु प्रतिपादिसुव समस्तग्रन्थ गलिगे पुस्तकम णायन्तिरुव 'सिद्धान्त सारावलि' येम्बे ग्रन्थवु, लोकविख्यातराद त्रिलोचन शिवाचार्यरेम्ब महनीयरिन्द रचिसल्पट्टिरुवदु। ई शिवाचार्यरु शैवागम ग्रन्थ गलल्लि सम्पूर्ण ज्ञानवन्नु पडेय बेकेम्ब उत्कटेच्छेयिन्द परशिवनन्नु कुरितु अनुपमवाद तपस्सन्नु माडि अवन अनुग्रहदिन्द शैव सिद्धान्तदल्लि अद्वितीय पाण्डित्यवन्नु सम्पादिसिकोण्डुदरिन्द इवरु लोकदल्लि त्रिलोचन शिवाचार्य रेम्बपवित्राभिधानदिन्द विख्यातरागि मेरेदरु ॥"

यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि रेखांकित सब शब्द संस्कृत से ही लिये हुए हैं। मैंने तो देखा है कि कर्णाटक में कई ऐसे संस्कृत शब्दों का सर्व साधारण लोग भी जो संस्कृत नहीं जानते प्रयोग करते हैं जिनको उत्तर भारत में साधारण संस्कृतज्ञ भी कठिनता से समझ सकते हैं। उदाहरणार्थ पानी के लिये नीरु (संस्कृत

दार्शनिक मूल भुलैय्याँ

(लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय M. A. प्रधान संयुक्तप्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा प्रयाग)

—:※:—

पिछले लेख में हम दिखला चुके हैं कि विषय और विषयी में तम—प्रकाश का सम्बन्ध नहीं है। यह उपमा विषम ही नहीं किन्तु दूषित है और सत्य की खोज में साधक नहीं किन्तु बाधक! हम अब देखना चाहते हैं कि "अस्मत् प्रत्ययगोचरे विषयिणि चिदात्मके" "युष्मत्प्रत्ययगोचरस्य विषयस्य तद् धर्माणां च" 'अध्यासः' का क्या अर्थ है।

गांव के किसी खेत में खड़ा हुआ किसान जिस प्रकार आकाश में उड़ते हुये वायुयान को देखकर चकित हो जाता है, इसी प्रकार साधारण पाठक भी 'अस्मत् प्रत्यय', युष्मत् प्रत्यय' और उनके परस्पर 'अध्यास' के लम्बे चौड़े शब्दों को सुनकर चकित हो उठते हैं। दार्शनिक लोग जगत् और जीवन की समस्या को सुलझाते नहीं किन्तु और उलझा देते हैं। इन्हीं के विषय में उर्दू के महाकवि अकबर का एक पद है:—

फिलसफी को इस जहाँ का कुछ पता लगता नहीं,
डोर है उलझी हुई इसका सिरा मिलता नहीं।

'अध्यास' किसे कहते हैं? श्री शंकर स्वामी के शब्दों में सुनिये:—

आह—कोऽयमध्यासो नामेति

(१) उच्यते—स्मृतिरूपः परत्रपूर्वदृष्टावभासः।

(२) तंकेचित्—अन्यत्रान्यधर्माध्यास—इति वदन्ति।

(३) केचित्तु—यत्र यदध्यासस्तद् विवेकाग्रहनिबन्धनो भ्रम इति।

(४) अन्ये तु—यत्र यदध्यासस्तस्यैव विपरीतधर्मत्व कल्पनाम् आचक्षते—इति

(५) सर्वथापि त्वन्यस्यान्यधर्मावभासतां न व्यभिचरति।

यहां 'अध्यास' की चार अलग २ व्याख्यायें कीं और पांचवीं में सबका समावेश कर दिया।

(१) पहले देखी हुई किसी चीज का स्मृति रूप से कहीं दूसरी जगह 'अवभास' अध्यास कहलाता है। जैसे 'शुक्तिका हि रजतवदवभासते'। सीपी चांदी सी दिखाई देती है। पहले चांदी कहीं देखी थी। उसमें एक विचित्र प्रकार की सफ़ेदी थी। अब सीपी देखी तो चांदी की सफ़ेदी

'नीर') नाई के लिये 'क्षौरिक' अवसर वा मौक़े के लिये सन्दर्भ, भेद वा फ़र्क़ के लिये 'व्यत्यास' भाषण के लिए 'उपन्यास' विशेषता के लिये वैशिष्ट्य, क्रूरता के लिए क्रौर्य, गड़बड़ के लिये 'अस्तव्यस्त' तुच्छ के लिये क्षुल्लक इत्यादि शब्दों का प्रयोग है। नाई की दुकान के लिये बहुत जगह 'आयुष्कर्म शाला' शब्द का प्रयोग होता है जो विचित्र होते हुए भी 'तेन त आयुषे वपामि सुश्लोक्याय स्वस्तये।" इत्यादि चूड़ाकर्म संस्कारोक्त मन्त्रों के अनुकूल है। इतनी संस्कृतमय भाषा को अनार्य भाषा कहना कितना भ्रान्तिपूर्ण है?

(शेष अगले अङ्कों में)।

की याद आ गई। और हमने समझा कि यह भी चांदी है। यहां सीपी चांदी तो नहीं है। चांदी का ज्ञान हमारी स्मृति में है:—

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।

क्योंकि चांदी के विषय को हम अनुभव कर चुके हैं यदि पहले चांदी न देखी होती तो सीपी को भी चांदी न समझते। हमारी स्मृति ने चांदी के विषय का सीपी में 'अध्यास' कर दिया।

(२) अन्य में अन्य के धर्म को अध्यास कहते हैं। यह भी ऊपर की उपमा में ठीक बैठता है। सीपी का धर्म वह सफ़ेदी नहीं है जो चांदी में है। चांदी सम्बन्धी सफ़ेदी का सीपी में समझ लेना अध्यास है। यहां मूल कारण तो स्मृति ही है। इसको भूलना नहीं चाहिये।

(३) जिसका जिसमें अध्यास किया जाता है उन दोनों में जो 'विवेक' या पहचान होनी चाहिये, उसके न होने से भ्रम हो जाता है। तात्पर्य यह है कि सीपी और चांदी में बहुत सी समानतायें हैं और कुछ विशेषतायें भी हैं। पहचान विशेषताओं के कारण होती है; समानताओं के कारण नहीं। दूर से हम सब गायों को देखकर यह तो जानते हैं कि गायें आ रही हैं परन्तु कौनसी मेरी है कौनसी आपकी। इसका ज्ञान तो तभी होगा जब निकट में आकर उनकी विशेषतायें भी देखली जावें। यहाँ भी पहले और दूसरे लक्षण कुछ न कुछ काम करते हैं। 'विवेक' अर्थात् 'पहचान' स्मृति में है। परन्तु इस समय सामान्य गुण का ग्रहण होता है। विशेष का 'अग्रह' है। अतः भ्रम उत्पन्न हो गया।

(४) कुछ कहते हैं कि किसी वस्तु में विपरीत धर्म का समझलेना अध्यास है। विपरीत का क्या अर्थ है यह स्पष्ट नहीं किया गया। यदि 'विपरीत' का भाव वही है जो अन्धकार और प्रकाश का है; अर्थात् परस्पर विरोधी होना। तो यह प्रतिपत्ति ठीक न होगी। गाय में नील गाय का भ्रम हो सकता है। घोड़े में गधे या खच्चर का, वृक्ष के ठूँठ में चोर का। क्योंकि इनके धर्मों में समानतायें हैं केवल विशेषता का 'अग्रह' है। अर्थात् पहचान का ज्ञान नहीं हो पाया। परन्तु क्या किसी को हाथी में दूध का भी भ्रम हुआ है? सीप में चांदी का भ्रम सुनते हैं परन्तु सीप में ऊंट का भ्रम क्यों नहीं सुनते? विपरीत धर्म तो सीप और ऊंट के भी हैं। इसका उत्तर यही है कि सीप और ऊंट की पहचान तो दूर से ही ग्रहण हो जाती है। दूध बेचने वाले दूध में पानी ही क्यों मिलाते हैं, लोहा क्यों नहीं मिला देते? इसलिये कि दूध मे पानी का मिलाना सुगम है, विवेक का अग्रह संभव है। दूध में लोहा कैसे मिलेगा? उसे तो हाथ ही पहचान लेगा।

इसलिये आवश्यक है कि 'विपरीत धर्मत्व' में 'समान-धर्मत्व' के आधिक्य और प्रभाव-सम्पन्नत्व की आवश्यकता है। केवल भिन्न भिन्न धर्म होने से ही अध्यास न होगा।

बच्चे खेल में बीच की उँगली को पहचनवाते हैं और जब कोई बीच की उँगली को नहीं पकड़ सकता तो हँसी होती है। आप जानते हैं कि बच्चे क्या करते हैं? वे बीच की उँगली की समानता को तो अधिक स्पष्ट कर देते हैं और उसकी विशेषता को इस प्रकार छिपा लेते हैं कि

पकड़ने वाले को उसके 'अग्रह' के कारण भ्रम हो जाता है। यदि वही बीच की उँगली काली काली चोटी के बीच में छिपा दी जाय तो कभी छिप न सके। वह 'विवेक' का 'अग्रह' असंभव हो जाय।

कहने का तात्पर्य यह कि अध्यास या भ्रम के लिये समान धर्मों पर जितना बल होता है उतना विपरीत धर्मों पर नहीं। धोखा होता ही तब है जब समान धर्मों का आविर्भाव और विशेष धर्मों का तिरोभाव हो सके। अध्यास के जितने दृष्टान्त हैं चाहे वह रस्सी सांप का हो, चाहे चाँदी सीपी का, चाहे मृगतृष्णि का और जल का। सब में यह एक बात सामान्य है और इसे कभी भुलाना नहीं चाहिये।

परन्तु प्रतीत होता है कि इस बात को भुलाकर ही श्री शंकराचार्य जी ने निम्न प्रतिपत्ति स्थापित की:—

तथाप्यन्योन्यस्मिन्नन्योन्यात्मकतामन्योन्यधर्मांश्चाध्यस्येतरेतराविवेकेनात्यन्तविविक्तयोर्धर्मधर्मिणोर्मिथ्याज्ञान निमित्तः सत्यानृते मिथुनीकृत्य 'अहमिद' 'ममेदमिति' नैसर्गिकोऽय लोकव्यवहारः।

वह कहते हैं कि मनुष्य का नैसर्गिक व्यवहार यह है कि विवेक शून्य होने के कारण अत्यन्त विविक्त अर्थात् बिल्कुल अलग अलग और भिन्न २ धर्मों का गोलमाल करके वह 'मैं' और 'मेरे' का व्यवहार करने लगता है।

पहले लेख में हम स्पष्ट कर चुके हैं कि श्री शंकराचार्य जी के मत में विषयी अपने में विषय का अध्यास करता है अर्थात् ज्ञाता ज्ञेय का। ज्ञाता का धर्म अलग है और ज्ञेय का अलग। जब ज्ञाता ज्ञेय को जानता है तो वह मानो अपने में ज्ञेय का अध्यास करता है। यदि इस प्रतिपत्ति को मान लिया जाय तो ज्ञान का अर्थ अज्ञान होगा। मैंने सूर्य देखा। मै ज्ञाता हूँ। सूर्य ज्ञेय। मैंने अपने में सूर्य के धर्मों का अध्यास किया। इसी का अर्थ हुआ सूर्य का ज्ञान! यही तो हुआ सूर्य का अज्ञान। क्योंकि अध्यास भ्रम है अध्यास अज्ञान है। यह अविवेक से आता है। यदि मुझ में 'नैसर्गिक अविवेक' न होता तो मैं सूर्य को न देखता। ये ही तो हैं दार्शनिक भूल भुलैय्या।

आँखें ही बला लाती हैं इन्सान पै अक्सर।
अन्धे ही यहां अच्छे है बीनां नहीं अच्छा॥

"नैसर्गिक" अविवेक कैसा? इसके विषय में फिर कभी।

धार्मिक युग की तात्विक विवेचना

(लेखक—श्री विश्वमित्र जी आयुर्वेद विशारद उपप्रधान आर्य समाज पीलीभीत)

सृष्टि के प्रारम्भ के साथ साथ मनुष्य समाज को सुनियमित रखने के लिये ईश्वरीय आज्ञायें संसार में अवतीर्ण हुई। इन्हीं को दूसरे शब्दों में हम धर्म के नाम से पुकारते हैं जिसका पालन मनुष्य मात्र के लिये कर्त्तव्य है। सृष्टि के आदि से लेकर आज तक उसके स्वरूप में अनेकों परिवतन हुये जिनको ५ भागों में विभाजित किया जा सकता है। प्रथम वैदिक काल, जिसका आरम्भ सृष्टि आदि में ईश्वरीय ज्ञान वेद से हो कर महाभारत के समय तक रहता है। दूसरा काल जिसको हम वामकाल के नाम से पुकारते हैं, महाभारत के पश्चात् से आरम्भ होकर हजरत ईसा से २४३६ वर्ष पूर्व तक रहता है। तीसरा नास्तिक काल जा ईसा के २५३६ वर्ष पूर्व से आरम्भ होकर ११ वीं शताब्दी तक रहा। इसके पश्चात् चौथा भक्ति काल १११७ ई० से आरम्भ हो कर १८३० ई० तक रहा। इसके पश्चात् संस्था-काल का प्रारम्भ होता है, जो वर्तमान समय तक चल रहा है। ये पांचों काल जहां एक दूसरे से पृथक् प्रतीत होते हैं, वहां इनका कारण रूप से एक दूसरे से सम्बन्ध भ है। सम्प्रदायवाद की तात्विक विवेचना करने से हमें इस परिणाम पर पहुँचना पड़ता है कि समस्त सम्प्रदायों का मूल स्रोत वैदिक धर्म ही है। जितने भी धर्म संस्थापक आज तक हुये हैं, यद्यपि वे उन धर्मों के प्रवर्त्तक कहलाते हैं मगर वे वास्तव में सुधारक थे जिन्होंने मानव समाज की सेवा की दृष्टि से अथवा अपना बड़प्पन स्थिर रखने की दृष्टि से या भोले लोगों को फांसने की दृष्टि से सम्प्रदायों का निर्माण किया। प्रोफ़ेसर मैक्समूलरने Chips from a German Workshop "चिप्स फ्राम ए जर्मन वर्कशाप" में कहा है कि "आदि सृष्टि से लेकर आज तक कोई भी बिल्कुल नया धर्म नहीं हुआ" There has been no entirely new religion since the beginning of the world". (Maxmuller) इसी प्रकार मैडम ब्लेवेट्स्की "Secret doctrine" में कहती हैं कि "अनेक बड़े २ विद्वानों ने कहा है कि उस समय भी कोई नवीन धर्म प्रवर्त्तक नहीं हुआ जब आर्यों, सेमीटिकों, और तूरानियों ने नया धर्म व नवीन सच्चाइयों का आविष्कार किया था। वे धर्म प्रवर्त्तक भी धर्म के पुनरुद्धारक थे, मूल शिक्षक नहीं" "There never was a religious founder......... These founders are all transmitters, not original teachers". (Blavatsky) जितने भी कालों का परिवर्त्तन हमारे सामने है वह उस समय की स्थिति का परिचायक है ये सब काल वास्तव में एक दूसरे के कारण स्वरूप हैं।

वैदिक काल

मानव समाज के लिये यह एक सुनहरा काल था। लग भग २ अरब वर्ष तक आर्यों ने चक्रवर्ती

राज्य किया और अपनी सभ्यता, अपना धर्म, अपनी राजनीति, कलाकौशल, आध्यात्मिकता का संसार में प्रसार किया। भू गर्भ विद्या के अन्वेषकों, शिलालेखों से यह बात बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। विदेशी आक्रमणकारियों की साम्प्रदायिक मनोवृत्तियों के कारण भारतीय विज्ञान का बहुत बड़ा भाग अग्नि के भेंट हो गया जिससे आर्यों का शृंखला बद्ध इतिहास दुष्प्राप्य सा है। प्राचीन इतिहासों में केवल रामायण और महाभारत ही प्राप्त हैं जिसके पढ़ने से उस समय के सदाचार, सभ्यता, पराक्रम, रणकुशलता, कला कौशल इत्यादि का पता चलता है। किसी भी समय की विशेषता और संस्कृति के उच्चतम आदर्श इसी बात से जाने जा सकते है, जब कि हम उस संस्कृति में ढले हुये उस समाज के चरित्रों और मनोवृत्तियों को जानें। यह बात इतिहास सिद्ध है कि धर्म के प्रत्येक काल की अपेक्षा वैदिक काल का चरित्र और मनोवृत्तियां बहुत शुद्ध और पवित्र थीं। उपनिषदों की गाथायें, उनमें गुरु शिष्यों का वार्तालाप तपस्वी और त्यागियों से परिपूर्ण जीवन एक साक्षी हैं। राजा अश्वपति के काल में जब कि सप्तर्षि उनके यहां विचरण करते हुये आये तो उन्होंने राजा का आतिथ्य स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। तब राजा अश्वपति ने अपने राज्य का वर्णन करते हुये कहा कि—

"न मे स्तेनो जनपदे न कदर्य्यो न मद्यपो
नानाहिताग्निर्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः"

अर्थात् मेरे जनपद अर्थात् प्रजातन्त्र राज्य में एक भी चोर, एक भी कंजूस, एक भी शराब पीने वाला, एक भी अग्निहोत्र न करने वाला, एक भी अविद्वान् एकभी परस्त्रीगामी तथा वेश्या नहीं है। चरित्र के इस उन्नतम आदर्श का मुख्य कारण वेदों की वह शिक्षा थी जो ईश्वरीय ज्ञान के रूप में मानव-समाज को मिली थी जो समस्त सत्य विद्याओं का भंडार है। संसार की कोई भी विद्या ऐसी नहीं कि जिसका मूलतत्त्व वेदों में विद्यमान न हो। उन्हीं विद्याओं को विस्तार रूप में ऋषियों ने दर्शनों, उपनिषद् इत्यादि ग्रन्थों में, चरक, सुश्रुत, सूर्यसिद्धान्त, मनुस्मृति, अष्टाध्यायी इत्यादि के रूप में विस्तृत किया जो एक बहुमूल्य वस्तु है जिसे देखकर संसार चकित हो जाता है। जिस विषय का प्रतिपादन जिस ऋषि ने किया है उन्होंने उसको सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्थान तक पहुँचाया। उन शिक्षाओं का सबसे महत्वपूर्ण अंग यह है कि उन शिक्षाओं का सम्बन्ध किसी जाति, वर्ग, सम्प्रदाय विशेष से नहीं है किन्तु मानव-मात्र से है सबके लिये समान हितकारी हैं। जीवन की वह समस्त समस्यायें जिनका सम्बन्ध इस लोक और परलोक से है वैदिक धर्म से हल हो जाती हैं। पश्चिमी जगत् के प्रसिद्ध विद्वान् लैंग साहब ने अपनी एक पुस्तक "भावीकाल के प्रश्न" में कुछ उन प्रश्नों का संग्रह किया है कि जिनका हल करने में उस समय के विद्वान् असमर्थ रहे थे, वे लिखते हैं कि "वर्तमान पश्चिमी विद्वान् इन प्रश्नों का यथार्थ उत्तर देने में समर्थ नहीं हैं; इसलिये वे आशा करते हैं कि भावीकाल के महान् विद्वान् अपनी महान् विद्या के बल से अपने लिये इन प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे। वे प्रश्न यह हैं जैसे—पृथ्वी कब से बनी, सूर्य और

तारागण की बनावट और प्रकृति का अन्तिम स्वरूप क्या है, गति किसे कहते हैं, आदि सृष्टि में देहधारी कैसे उत्पन्न हुये मनुष्य जाति कब से है इत्यादि। लैंग साहब के ये प्रश्न, जिनको सुलझाने में पश्चिमी जगत् असमर्थ था वैदिक-काल के ऋषियों ने उनका उत्तर युक्तिपूर्ण अपने शास्त्रों में दिया है। वैदिक शिक्षा का वह विज्ञान भारत से मिश्र, अरब, ईरान ने, ईरान से यूनान ने, यूनान से रोम वालों ने और उन से अंग्रेजों ने सीखा। भारत ने ऋषियों से और ऋषियों ने वेदों से सीखा जो ईश्वरीय ज्ञान है। वैदिक संस्कृति का संसार पर इतना अधिक प्रभाव था कि अन्य देशों के लोग यहाँ शिष्यभाव से अध्ययन करने आते थे। यहाँ के प्रचारक समस्त देशों में गुरुवत् पूजे जाते थे। महाभारत के सुप्रसिद्ध युद्ध में कौरवों और पांडवों की ओर से अमरीका से बभ्रुवाहन, इंगलैण्ड से विडालाक्ष, चीन से भगदत्त, ईरान से शल्य, अफगानिस्तान से शकुनि, सम्मिलित हुये थे। योरोपियन देशों के बहुतसे नाम संस्कृत नामों के बिगड़े हुये स्वरूप हैं, जैसे अवगाहनस्थान का अफगानिस्तान, आयस्थान ईरान, पालीस्थान पैलिस्टायन, शर्मन्-जरमन्, धेनुमार्ग-डेन्मार्क, सुयोधन, स्वीडन इत्यादि। राजनैतिक क्षेत्र में भी वैदिक सभ्यता का अन्य देशों पर अमिट प्रभाव था। फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान् जैकालियट महोदयने अपनी एक पुस्तक "The Bible in India" में लिखा है कि "मनुस्मृति के अनुवाद यूनान, मिश्र और रोमन राज्य में बरते जाते थे। रोमन शासन के नियमों को मनुश्लोकोंके साथ तुलना करके उस विद्वान् ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि सम्पूर्ण उन्नति जातियों के कानूनदानों के आदिगुरु महर्षि मनु ही हैं। आगे लिखते हैं "कि मैं अपने ज्ञान नेत्रों से भारतवर्ष को अपना राज्य, शास्त्र अपने संस्कार, अपनी नीति, अपना धर्म मिश्र, यूनान, ईरान और रोम को देते हुए देख रहा हूँ। पुराने भारतवर्ष के महत्व का अनुभव करने के लिए वह सम्पूर्ण विद्या जो योरप में सीखी जाती है, किसी काम नहीं आ सकती। पुराने आर्यावर्त के महत्व का अनुभव करने के लिये हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जैसा कि एक बालक नई रीति से शिक्षा धारण करता है। इसी प्रकार यहाँ के चरक सुश्रुत का अनुवाद अरबी में होकर विदेशों में गया ज्योतिष-विद्या में जो उन्नति प्राचीन आर्यों ने की वह आश्चर्यजनक है। वेली नामक ज्योतिषी अपने प्राचीन ज्योतिष के इतिहास नामी ग्रन्थ में लिखता है कि "यद्यपि आर्यों का ज्योतिष शास्त्र इस समय भी महोन्नत है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि वर्तमान ज्योतिष उनके प्राचीन महोन्नत ज्योतिष का शेष भाग मात्र है। कैलिनी, वेली, जटील, प्लेफेयर नामक योरोपीय ज्योतिषी लिखते हैं कि हिन्दुओं ने ज्योतिष सम्बन्धी ऐसी २ घटनायें बतलायीं हैं कि जो ईसा के जन्म से ३००० वर्ष पूर्व की थीं और उनके वे आविष्कार उस समय भी ज्योतिष-सम्बन्धी अत्युच्च योग्यता प्रदर्शित करते हैं। फ्रांस के राजा चतुर्दश लुई का लाबर नामक राजदूत १६८७ ई० में श्यामदेश से सूर्य-ग्रहण के कई चित्र लाया था और दक्षिण भारत के कर्णाटक के तिरुवलोट स्थान से पाटोइलट तथा जंटील नामक योरोपियनों ने सूर्य-ग्रहणों के कई चित्र

युद्ध और धैर्य

(लेखक—श्री बालमुकुन्दजी मिश्र साहित्यालङ्कार देहली)

युद्धाग्नि की लपटों में आज सभी राष्ट्र झुलस रहे हैं। भविष्य में न जाने किस समय भारत एक दम युद्ध का प्रमुख स्थल बन जाय। ऐसे विकट समय की उष्णता से बचना असम्भव है। यदि इस संकट से हम कुछ अपना बचाव व रक्षा कर सकते हैं तो इसका मुख्य उपाय धैर्य है। भारतीय धर्म शास्त्रकारों ने भी धृति या धैर्य को ही धर्म का प्रथम लक्षण माना है। हिन्दी साहित्य के कवि सम्राट् संत तुलसीदासजी ने—

"धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपत्काल परखिये चारी॥"

बखान कर धैर्य को आपत्तिकाल की कसौटी मानी है। जो महानुभाव संकट के समय धैर्य को त्याग देते हैं; उनकी विचार और स्मृति शक्ति तो प्रायः नष्ट हो जाया करती है। मानव की दानवता किंकर्तव्य विमूढ़ बन जाती है। आंखों में अन्धकार छा जाता है, मार्ग सूझता नहीं, ठोकरें खाते हैं तथा संशय ग्रस्त आत्मा धैर्यहीन होकर मनुष्य को पथभ्रष्ट कर देती है।

जिन लोगों ने परिवर्तन और विकट सङ्कट के समय धैर्य रक्खा है; वे सदैव सफल और कृतकार्य हुए हैं। महापुरुषों ने विपदा के समय धैर्य रूपी अस्त्र से ही अपनी विपत्तियों को छिन्न-भिन्न किया है। मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम ने बनवास तथा सीता हरण के समय अपने को सान्त्वना दे और धैर्य रख के ही मर्यादा का आदर्श स्थापित किया था। महाभारत के काल में पाण्डवों ने द्रौपदी चीर-हरण के अपमान और बनवास के महान् कष्टों को धीरज से ही सहन करके साम्राज्य प्राप्त किया था। महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे शूरवीरों के प्राणों को धैर्य ने

योरोप में भेजे थे। योरोप के प्रसिद्ध ज्योतिषी बेली ने जब उन चित्रों को देखा कि एक सूर्य-ग्रहण उनके समय से ४३८३ वर्ष पूर्व का है तो स्वयं गणना करने लगे, उस गणना से यह पता लगा कि उक्त ग्रहण की गणना में आर्यों ने १ मिनट की भी भूल नहीं की है। इसी प्रकार व्याकरण के सम्बन्ध में पाणिनि की तारीफ करते हुये मिस्टर गोल्डस्कर तथा अन्य विद्वान् एक स्वर से कहते हैं कि पाणिनी जैसा व्याकरण आज तक संसार में उत्पन्न नहीं हुआ। हंटर साहब का कथन है कि वेदों में आये हुये सात स्वर गान विद्या के मूल हैं जो यहाँ से अन्य देशों में गये। लोक सम्बन्धी उन्नति के साथ २ पारलौकिक उन्नति में भी महत्वपूर्ण स्थान है। आत्मिक शान्ति के लिये शौपनहार जैसे विद्वानों ने उपनिषदों का अध्ययन किया, दाराशिकोह ने उसका अनुवाद कराया। इस प्रकार वैदिक काल में आर्यों ने जीवन के हर पहलू से उन्नति की, चाहे वह आध्यात्मिक हो या सांसारिक। यह कारण था कि उन्होंने एक बहुत काल तक संसार पर अपना राजनैतिक, चारित्रिक सांसारिक प्रभाव जमाये रखा।

ही पूर्ण कराया था। सिक्ख गुरुओं ने दुःखों को हँसते २ झेल और धैर्य रख केवल अपने ही दुःखों को नहीं अपितु दूसरों के कष्टों को भी निवारण कर दिया था। मुस्लिम पराक्रमियों ने भी धीरज का हाथ पकड़ उत्तर भारत को फतह किया। अंग्रेजी राज्य तो भारत में धैर्य ही अपने साथ लेकर घुसा था और आरूढ़ होगया।

संकटकाल में विचारशील भद्र जन धैर्य को छोड़ इधर-उधर, मारे मारे नहीं फिरते हैं। अपितु संकट में धैर्य रखकर विपदा से बचने के उपाय सोचते हैं। कोई प्राणी न सदा एकसा रहा है, न रहेगा। न कोई प्रलय पर्यन्त तक धनाढ्य रह सकता है न दरिद्र। विश्व की प्रत्येक वस्तु परिवर्तनशील है। परिवर्तन की क्रान्ति को कोई नहीं रोक सकता। युद्ध के भय से अपनी काया रक्षार्थ कभी टीबों में जाना, बनों की शरण लेना, कभी पहाड़ की कन्दराओं में निवास-स्थान बना बसने की तरंगें, घबराहट मनुष्य में धीरज न होने की निशानियाँ हैं। धैर्य विहीन मनुष्यों का अति चंचल मन कहीं नहीं ठहरता पल-पल, क्षण-क्षण में व्याकुल हो उड़ान करता है और मनुष्य की मेधा शक्ति भी स्थिर नहीं रह पाती।

युद्ध रूपी प्रलयाग्नि में भस्मीभूत होनेसे बचने का एक यही श्रेय मार्ग है; कि धैर्यको डगमगा देने वाले समाचारों की चाहे वे झूठे हों वा सच्चे हों अधिक चिंता न करनी चाहिये। अपितु आने वाले भयङ्कर समय से मोर्चा लेने के लिये कटि-बद्ध हो जाना चाहिये। अपना कर्त्तव्य कर्म पहचानते हुए हमें अपनी रक्षा के उपाय करने चाहियें और धैर्य न छोड़ना चाहिये।

युद्ध के विषम काल में तो धैर्य ही सङ्कट से रक्षा का एक अति उत्तम साधन है।

पूर्ण का पूर्णत्व

(लेखक— पं० सिद्धगोपाल जी 'कविरत्न' साहित्य वाचस्पति देहली)

पूर्ण में परिपूर्ण पाया।
पूर्ण वह है पूर्ण यह है पूर्ण से पूरण कहाया।

(१)

पूर्ण से ले पूर्ण को फिर पूर्ण ही अवशेष रहता।
पूर्ण ही को पूर्ण जाने पूर्ण ही को पूर्ण कहता।
पूर्ण की परिपूर्ण सरिता में अमल आनन्द बहता।
पूर्ण से आधेय का आभार पूर्णाधार सहता!
पूर्ण का जीवन जगत् भी पूर्ण से ही जगमगाया!
पूर्ण में परिपूर्ण पाया।

(२)

पूर्ण यदि होता नहीं तो पूर्ण कैसे जानते हम?
पूर्णता बिन पूर्ण को परिपूर्ण कैसे मानते हम?
पूर्ण साधन से सदा ही पूर्ण को पहिचानते हम।
पूर्ण से ही पूर्णता का तत्त्व सारा छानते हम।
पूर्ण ने ही पूर्ण में है पूर्ण पन अपना दिखाया।
पूर्ण में परिपूर्ण पाया।

(३)

दृश्यमान अनेकता में एकता का तार देखा।
एक ही व्यापार में बहु भाँति का व्यापार देखा।
सारमय संसार की निस्सारता का सार देखा।
किंतु सार असार का क्या पार है नहि पार देखा।
पार पाने को चला था पर न उसका पार आया।
पूर्ण में परिपूर्ण पाया।

(४)

कान थे पर कान उसके शब्द कोई सुन न पाये।
नेत्र थे पर नेत्र ने उसके नहीं दर्शन कराये।
घ्राण जिह्वा आदि साधन काम कोई भी न आये।
काम आते किस तरह जब कामना में काम लाये।
पूर्ण ध्यान अपूर्ण ध्याता बन न पूरण ध्यान लाया।
पूर्ण में परिपूर्ण पाया।

(५)

प्रेम की आँधी उठी थी आज हृदयाकाश देखा।
उड़ चला मन रागमय अनुरागमय उल्लास देखा।
पूर्ण का संकल्प क्या था पूर्ण ही के पास देखा।
यह जहाँ पर भी चला उसका वहीं आवास देखा।
यह कहाँ उसमें समाता वह स्वयं इस में समाया।
पूर्ण में परिपूर्ण पाया।

(६)

अब न जाऊँगा कहीं यह ठान दिलमें ठान ली है।
जाननी जो वस्तु थी उसकी कथा अब जानली है।
जानली थी एक दिन जिसने वही अब जानली है।
मान था जिसका न मनमें आज मनने मानली है।
पूर्ण पद का पूर्ण गायन प्रेममय "गोपाल" गाया।
पूर्ण में परिपूर्ण पाया।

❀ ❀ ❀ ❀

चन्दे की समस्या

(लेखक—श्री निरंजनलाल गौतम "विशारद")

समय के साथ २ जितनी शीघ्रता से अनेकों नवीन आर्य संस्थाओं का जन्म होता रहता है चन्दा न मिलने के कारण उतनी ही शीघ्रता से पुरानी संस्थायें या तो नष्ट हो जाती हैं या मृतप्राय होकर जीती हैं। यदि चन्दा न आया तो हवन बन्द या घी के स्थान पर वनस्पति घी से काम चलाया जाता है और कपूर के स्थान पर रुई से अग्नि चैतन्य की जा सकती है। 'क्या करें इतना चन्दा ही नहीं आता कि मन्दिर में सफ़ाई करने के लिये चपरासी रख सकें; अतः धूल मिट्टी पड़ी ही रहती है', यह शिकायत तो प्रायः बहुत से स्थानों की समाजों में सुनी जाती है।

चन्दा नहीं आता तो प्रचारक की दक्षिणा कहां से मिले, अतः प्रचार बन्द करो। चन्दा तो है ही नहीं अतः प्रचार के लिये साहित्य कहां से छपे! देश के कोने २ में वैदिक नाद बजे कैसे, चन्दा तो मिलता ही नहीं। शुद्ध हुवा परिवारों को कोई सहायता देने में असमर्थ हैं; क्योंकि इतना चन्दा नहीं। दीन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति का प्रबन्ध नहीं हो सकता; क्योंकि इस निधि में चन्दा न आने से धनाभाव है। अनाथालयों में चन्दा न होने से अनाथों का प्रवेश द्वार बन्द है। ईसाइयों के प्रचार का हम मुकाबला नहीं कर सकते; क्योंकि हमारे पास इतना चन्दा नहीं आता। ये दिन प्रतिदिन की परेशानियां हैं जो चन्दा के कारण हमारी अनेकों आर्य संस्थाओं को हतोत्सा हित करती रहती हैं और उन्हें पनपने नहीं देतीं या उन्हें लोप होने के लिये बाध्य करती हैं। परन्तु क्या इस 'चन्दा' के अभाव के लिये हम जनता को दोष दें या अपनी कार्य प्रणाली में परिवर्तन करें, दो प्रश्न हैं जिनपर गम्भीरता से विचार करना है। जहां तक जनता के चन्दा देने का प्रश्न है, उसे अधिक दोषी नहीं ठहराया जा सकता क्योंकि चन्दा देने वालों की संख्या सीमित है और किन २ संस्थाओं को चन्दा दिया जाय उनकी संख्या गिनना कठिन है। यहाँ तो नित्य प्रति नवीन संस्थाओं का जन्म होता है और जन्म से अन्त तक वे चन्दा आश्रित रहती हैं।

ऐसी परिस्थिति में उन संस्थाओं को कैसे अमर बनाया जाये यह प्रश्न विचारणीय है। वास्तविक बात तो यह है कि शुभ कार्य के लिये खर्च घटाने की अपेक्षा आय बढ़ाना और उस कार्य को और भी उन्नत करना कहीं अधिक श्रेयस्कर है। अतः आर्य संस्थाओं को चन्दा की इस समस्या से मुक्त करना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है। मेरा यह अभिप्राय नहीं कि आर्य लोग चन्दा देना अपना कर्तव्य न समझें। जिस प्रकार अब तक अपनी आय का शतांश देना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य रहा है उसी प्रकार भविष्य में भी वे अधिक से अधिक दान देने की मनोवृत्ति को अधिकसे अधिक जागृत करें। परन्तु जन साधारण को चन्दा के भार से मुक्त करना और आर्य

संस्थाओं को चन्दा पर ही आश्रित न रखकर स्वावलंबी बनाना अधिक उपयोगी है।

आर्य समाजों की प्रान्तीय सभाओं और उनकी शिरोमणि सभा के विविध फंडों की रकमों का हिसाब लगाया जाये तो करोड़ों रुपये नहीं तो लाखों रुपये अवश्य हैं और वह सब पूंजी विविध बैंकों की शोभा बढ़ा रही है।

उन राशियों पर बैंकों से केवल मात्र १ या १॥ प्रतिशत के ब्याज से अधिक नहीं मिलता। यदि यही सब धन किसी उद्योग धन्धे में लगाया जाये तो हजारों गरीबों का भरण पोषण ता हो ही, केवल मात्र इसके लाभ से ही अब से दूनी संस्थायें चल सकती हैं और उनको चन्दा लेने की आवश्यकता न रहे। यदि आर्य समाज की ओर से केवल १ करोड़ रुपये की पूंजी लगाकर भी कोई कार्य आरम्भ कर दिया जाये और न्यूनतम १० प्रतिशत भी उसपर लाभ होता रहे तो लाखों रुपये की आय आर्य समाज को हो सकती है। इस धन से कितना प्रचार बढ़ेगा, इसे प्रत्येक व्यक्ति अनुभव कर सकता है और दयालबाग आगरा जैसी संस्थायें इसका प्रमाण हैं। ये उद्योग-धन्धे आर्य समाज को जहां धन का लाभ पहुंचायेंगे वहां उसके नाम को भी दूर दूर फैलाने में सहायक होंगे और उस दशा में आर्यसमाज धार्मिक, आर्थिक और देश की कला-कौशल में भी एक साथ सहायक हो सकेगा।

[इस लेख को हमने जनता के विचारार्थ प्रकाशित किया है। लेखक महोदय ने बड़े उत्तम भाव से अपने विचार इस विषम समस्या के विषय में प्रकट किये हैं इसमें सन्देह नहीं।

सम्पादक]

विद्या-अविद्या

(लेखक—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी दीना नगर)

—०:卐:०—

सत्यार्थप्रकाश में नवम समुल्लास के आरम्भ में पाठ है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥
यजुर्वेद ४०,१४

जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह; अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तरके विद्या अर्थात् यथार्थ ज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है।

इस प्रकरण में अविद्या के अर्थ कर्मोपासना किये हैं यहाँ 'अ' निषेध वा भिन्नार्थ में नहीं है, वह अल्पार्थ में है यथा अनुदरा देवदत्त कन्या; यहाँ उदर रहित न मानकर अल्प-उदर ही अर्थ होता है। इसी प्रकार विद्या की अपेक्षा कर्म, उपासना न्यून महत्व के वाले होने से अविद्या के अर्थ अल्प-विद्या (कर्मोपासना) आचार्य ने किया है। आगे पाठ है। "अविद्या का लक्षण—

अनित्याशुचि दुःखानात्मसु नित्य
शुचि सुखात्म ख्यातिरविद्या।
पातंजलदर्शन साधनपाद सूत्र ५"।

आगे इस सूत्र के विस्तार से अर्थ दिए हैं। वह सारा पाठन लिखकर संक्षेप से इतना लिखना पर्याप्त होगा कि अनित्य को नित्य, अशुचि को शुचि, दुःख को सुख, अनात्मा को आत्मा मानना अविद्या है और योगदर्शन में अविद्या पाँच क्लेशों में मानी है। यह बात सत्यार्थप्रकाश में भी है और इसी अविद्या के लिए पतंजलि जी लिखते हैं—'अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम्' अर्थात् अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश का क्षेत्र अविद्या ही है। इन सूत्रों के अर्थ में किसी भी टीकाकार ने भेद नहीं किया। सब इसी अर्थ से सहमत हैं।

अब प्रश्न होता है नवम समुल्लास मोक्ष विषयक है, और यजुर्वेद का मन्त्र लिखकर आचार्य लिखते हैं—'मोक्ष को प्राप्त होता है उसी मन्त्र के अर्थ में 'अविद्या अर्थात् कर्मोपासना' लिखा है। क्या अविद्या का अर्थ जो कर्मोपासना है, वही यही सूत्र लिखित अविद्या है वा कोई और है यदि यही है तो यह तो क्लेश है और क्लेशों का क्षेत्र है, अनात्मा को आत्मा, अनित्य को नित्य, अशुचिको शुचि, दुःखको सुख मानकर मृत्यु से तरनेकी कथा तो भिन्न है, यह तो मृत्यु के कारण है। अतः इस सूत्र लिखित अविद्या का इस मन्त्र लिखित अविद्या से कोई सम्बन्ध ही नहीं प्रतीत होता है। यदि किसी को प्रतीत होता हो तो वह लिखने की कृपा करें। जो बात मेरी समझ में आती है वह यह है।

इसी समुल्लास में आगे जाकर 'अविद्याऽस्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः' योगदर्शन पाद २ सूत्र ३ लिखा है। वहाँ अनुबन्ध निरूपण के पश्चात् मैत्री आदि का वर्णन है वहाँ है "इसमें से अविद्या का स्वरूप कह आए" उस स्थान से यह पाठ हटाकर सूत्र के पूरे अर्थ लिख

शंका-समाधान-प्रश्नोत्तर

वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन और आर्यसमाज

(लेखक— श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति मन्त्री, सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, देहली)

सरदारपुरा (जोधपुर) से श्री ब्रह्म प्रकाश जी विद्या वाचस्पति ने निम्न लिखित प्रश्न उत्तर के लिये भेजे हैं :—

(१) विश्व वन्द्य महात्मा गांधी जी की अध्यक्षता में राष्ट्रीय महासभा ने बम्बई में जो प्रस्ताव पास किये हैं, सार्वदेशिक सभा उन्हें पूर्णतया माननीय या अमाननीय समझती है।

(२) यदि आर्य समाज कांग्रेस के स्वतन्त्रता संग्राम को शुद्ध और स्पष्ट भारत का हित-चिन्तक समझती है तो इस आन्दोलन में भाग क्यों नहीं लेती ?

(३) क्या व्यक्तिगत रूपेण कोई भी आर्य समाजी या आर्य समाज का उपदेशक, पुरोहित और पदाधिकारी स्वतन्त्रता संग्राम में भाग ले सकता है ?

(४) यदि कोई आर्य समाज का पुरोहित, अध्यापक, या उपदेशक राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेवे तो क्या उसे उस संस्था से त्याग पत्र देने के

देने चाहिये। यह सारा पाठ जो नवम समुल्लास के आरम्भ में 'अविद्या का लक्षण' कह के लिखा है। उस सूत्र के अर्थ में चला जाय तो पाठ की संगति हो जायगी और ९म समुल्लास के आरम्भ में 'मोक्ष को प्राप्त होता है' इसके पश्चात् अर्थात् कर्म और उपासना अविद्या इसलिए है कि यह बाह्य और अन्तर क्रिया विशेष है, ज्ञान-विशेष नहीं। इसी से मन्त्र में कहा है—कि बिना शुद्ध कर्म और परमेश्वर की उपासना के मृत्यु दुःख से पार कोई नहीं होता। इस प्रकार पाठ होने से मन्त्र के अर्थ और भाव साफ हो जाता है और पाठक की समझ में भी आ जाता है।

प्रतीत होता है सत्यार्थप्रकाश के छपते समय यह पाठ अपने स्थान से बदलकर दूसरे स्थान में आ गया और अब तक सत्यार्थप्रकाश छापनेवालों के ध्यान में नहीं आया अथवा न बदलने का कोई और कारण होगा जिसे छापनेवाले ही जानते हैं। इस प्रकार करने से आचार्य का पाठ पूरे का पूरा रहता है केवल स्थान बदलना होगा। यदि स्थान न बदलना हो तो इस प्रकरण के अर्थ लगते ही नहीं हैं। अतः आर्यसमाज के विद्वानों को विचार करके निश्चय करना चाहिए।

यदि कोई पाठक वा विद्वान् मुझसे सहमत न हो तो उसे इसका समाधान सार्वदेशिक में छपवा देना चाहिए अथवा पत्र द्वारा मुझे सूचना दे देनी चाहिये; ताकि मैं उस पर विचार कर सकूँ और ठीक होने पर मैं अपने विचार भी बदल लूँ।

पश्चात् ही भाग लेने का अधिकार है या अपने कार्य के अतिरिक्त समय में वह त्याग पत्र दिये बिना ही राष्ट्रीय कार्य करने का अधिकारी है।

(५) क्या आर्य समाज केवल विशुद्ध धार्मिक संस्था है। यदि यही नियम है तो क्या स्वतन्त्रता प्राप्त करना अधर्म है और क्या महर्षि दयानन्द का यही उद्देश्य था जो कि इस समय आर्य समाज का है ?

उपर्युक्त प्रश्नों के उत्तर क्रमशः निम्नांकित हैं :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा अन्तरंग सभा का एक विशेष अधिवेशन अक्टूबर १९४२ की १५ तारीख को होगा। उस में वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन के सम्बन्ध में सभा का मन्तव्य स्पष्ट रूप से निश्चित किया जायेगा। तब तक सभा की ओर से कोई उत्तर न देकर मैं एक आर्य की हैसियत से श्री ब्रह्मप्रकाश जी के प्रश्नों के उत्तर यहां अङ्कित करता हूँ।

(१) बम्बई में राष्ट्रीय महासभा की समिति ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में जो ठहराव स्वीकार किया है, उस के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। उस प्रस्ताव में सरकार से यह निवेदन किया गया है कि वह भारत वासियों को राजनैतिक स्वाधीनता देकर आक्रमण कारी शत्रु से आत्म रक्षा करने का अवसर प्रदान करे। हरेक वैदिक धर्मी स्वीकार करेगा कि उसे अदीन होकर अपने देश और धर्म की रक्षा करने का केवल अधिकार ही नहीं प्रत्युत यह उसका परम धर्म है। ऐसी दशा में हमे मानना पड़ेगा कि समिति की मांग सर्वथा धर्मानुकूल थी।

समिति ने महात्माजी को अधिकार दिया था कि वह देश की माँग वायसराय के सामने रखें। स्वीकार हो जाये तो बहुत ठीक. यदि न स्वीकार हो तो उन्हें अधिकार दिया गया था कि वे सत्याग्रह आरम्भ कर सकते हैं। यह स्पष्ट है कि समिति ने बात-चीत और सुलह का रास्ता खुला रखा था और सत्याग्रह का प्रारम्भ भी परिस्थितियों के अनुसार ही करने का आदेश दिया था। इस निश्चय के औचित्य में किसी भी समझदार व्यक्ति को सन्देह नहीं हो सकता।

(२) आर्यसमाज या सार्वदेशिक सभा का समूह-रूप से राजनैतिक संग्राम में भाग लेना आर्यसमाज के नियमों के अनुसार वैधानिकरूप से सम्भव नहीं है। आर्यसमाज का वर्तमान सगठन धर्म-प्रचार की दृष्टि से बना है। इस कारण उसे वर्तमान राजनैतिक आन्दोलन के उपयोग मे नहीं लाया जा सकता। हाँ, जो आर्य नर-नारी व्यक्तिगतरूप से या समूहरूप से अपने देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में हिस्सा लेना चाहें उन्हें वैसा करने की पूर्ण स्वाधीनता है। राजार्य सभा के निर्माण का प्रश्न सार्वदेशिक सभा के सामने है। राजनैतिक, सामाजिक तथा अन्य सार्वजनिक प्रश्नों पर विचार और आंदोलन करने के लिए आर्य-सम्मेलन पहले से विद्यमान है; जिसके पुनरुद्धार का प्रश्न भी सभा के सम्मुख है। विश्वास रखना चाहिए कि शीघ्र ही सार्वदेशिक सभा इस प्रश्न के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य प्रकाशित कर सकेगी।

(३) व्यक्तिगत रूप से आर्यसमाज का प्रत्येक सभासद्, उपदेशक, पुरोहित और पदाधिकारी

'विजय' का जादू

(लेखक—पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार देहली)

विजय दशमी इस वर्ष भी आ पहुंची। कहते हैं कि उस जमाने में लंकाधिपति रावण, आर्य-शिरोमणि महाराजा रामचन्द्र की अनुगामिनी सती सीता को छलबल से हर ले गया था। बनवासी महाराज ने अपने बनवासी अनुचरों की सहायता से ही उस पर हमला किया और विजय प्राप्त की। यह विजया उसी दिन की पवित्र स्मृति है।

ठीक इसी दिन रावण पर विजय पाने की बात में कितनी ऐतिहासिक सचाई है—इस की गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यह तो निश्चित है कि विजया दशमी हमारा जातीय त्यौहार है। कोई व्यक्ति अन्याय से हमारे या हमारे भाई के साथ कोई अत्याचार करता है तो उसको जब तक घुटने टेकने के लिए विवश न कर दें, तब तक हम चैन से नहीं बैठ सकते—यह

स्वतन्त्रता-संग्राम में न केवल इतना ही कि हिस्सा ले सकता है, किसी न किसी रूप में हिस्सा लेना उसका धर्म है।

(४) जो आर्य-पुरुष या आर्य-स्त्री राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लें उसे आर्यसमाज के पदाधिकार से अवकाश तो लेना चाहिए ताकि उसके अभाव में काम में हर्ज न हो, परन्तु त्याग-पत्र देना अनावश्यक है क्योंकि राष्ट्र धर्म का पालन करना आर्य का कर्तव्य है कोई गुनाह नहीं।

(५) आर्यसमाज एक धार्मिक संस्था है। परन्तु आर्यसमाज जिस वैदिक-धर्म पर विश्वास रखता है, राजनीति इसका एक अत्यावश्यक अंग है। वैदिक-धर्म मजहब नहीं है, वह मनुष्य जीवन के प्रत्येक भाग में मार्ग-प्रदर्शन का कार्य करता है। आपने पूछा है कि क्या आर्यसमाज विशुद्ध धार्मिक संस्था है। धर्म तो विशुद्ध होता ही है परन्तु वह परिमित नहीं होता। जितना विशाल मनुष्य-जाति का कलेवर है उससे कहीं अधिक विशाल धर्म का कलेवर है। इतना बड़ा होता हुआ भी वह विशुद्ध ही है। आपने इसी प्रश्न में पूछा है कि क्या महर्षि स्वामी दयानन्दजी का यही उद्देश्य था जो इस समय आर्यसमाज का है। इस प्रश्न का उत्तर मैं इस रूप में देता हूँ कि आर्यसमाज का वही उद्देश्य होना चाहिए और है भी कि जो महर्षि दयानन्दजी का उद्देश्य था।

ये उत्तर मैंने यह समझते हुए दिए हैं कि सार्वदेशिक सभा का मन्त्री होने से मेरी एक उत्तरदायिता है; जिसका ध्यान रखते हुए ही मुझे वर्तमान परिस्थिति पर सम्मति देनी चाहिये। सार्वदेशिक सभा की ओर से वर्तमान परिस्थिति पर अन्तरंग-सभा में विचार किया जायगा। उसके पश्चात् प्रामाणिकरूप से सभा का मत आर्य-जनता के सामने प्रस्तुत कर दिया जायेगा।

इस दिन का पवित्र संदेश है। यदि आज हम किसी कारण इस पवित्र संदेश को नहीं सुनते तो निस्संदेह यह हमारी अकर्मण्यता है-हमारी कायरता है, अन्याय और अत्याचार के विरुद्ध विजय की आकांक्षा न रखना—दूसरे शब्दों में नपुंसकता है।

नपुँसकता-अर्जुन की देन ?

महाबली अर्जुन को कौन नहीं जानता। महाभारत का भीषण संग्राम उसी के बाहुबल और युद्ध चातुरी के आधार पर जीता गया, यह सभी जानते हैं। परन्तु कौरव-पांडवों की विशाल सेनाओं के मध्य "न काङ्क्षे विजयं कृष्ण ! न च राज्यं सुखानि च" की पुकार मचाने वाले महाबाहु अर्जुन की वाणी को आज हमने अपना लिया है। महाबाहु अर्जुन ने ममता के वशीभूत कर्त्तव्य से विराग पैदा करने की ठानी थी—परन्तु आज ममता के साथ लोभ-लालच भी हमारे साथी हैं। ऐसी अवस्था में हम भला विजय की महत्वाकांक्षा को कैसे आश्रय दे सकते हैं। हमने अर्जुन की वाणी को तो अपना लिया, परन्तु कृष्ण के उत्तर वचन 'क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ !' को हम भूल गये। अन्याय और अत्याचार के सामने सिर झुकाना निस्सन्देह कायरता है, नपुंसकता है। सामाजिक अत्याचार और अन्याय से रक्षा करना ही सच्ची वीरता और क्षत्रियत्व है, तीतर-बटेरों का शिकार करने में क्षात्रधर्म मानना कहां की बुद्धिमत्ता है ?

इस लिए विजय दशमी का दिन हमें कृष्ण के उन वचनों को याद दिलाने के लिए है जो उसने डूबते हुए योद्धा अर्जुन को उबारने के लिए कहे थे। 'क्लैव्यं मास्म गमः पार्थ ! नैतत्त्वय्युपपद्यते।' महाराज रामचन्द्र के युग में जिन दिनों की याद, यह पुण्य दिन है, कायरता हमारे चरित्र नायकों के मन में शंका पैदा करने लायक नहीं हो सकी थी। परन्तु महाभारत के युग तक वह तर्क की छाती पर सवार हो कर वीरों के हृदय तक जा पहुंची थी। निष्काम रूप से कर्त्तव्य पालन की भावना की जगह विश्व प्रेम के आवरण में माया-ममता ने उनके वीर हृदयों पर अधिकार कर लिया था। आज तो जैसे हम कृष्ण की रीति को भूल ही गये हों। अर्जुन का ढंग ही हमें असली ढंग और सही रास्ता मालूम पड़ता है।

फिर विजय दशमी की विजय केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं, वैयक्तिक और सामाजिक क्षेत्र में भी पदे-पदे हमारे ध्यान में आती है। वैयक्तिक दृष्टि से हमें अपने भीतरी शत्रुओं और शारीरिक रोगों पर विजय प्राप्त करनी है। रोगों से भी हम तभी तक घिरे हैं जब तक कि इन्हें जीतने का दृढ़-संकल्प करने में हिचकिचाते रहते हैं। सामाजिक बीमारियों का भी यही हाल है। अधिक विस्तार में न जाते हुए इतना ही कहना चाहता हूं कि विजय दशमी के इस पुण्य दिन की ऐतिहासिकता के झगड़े में न पड़ इस के नाम में जिस शब्द का जादू है-वह जादू हमें सदा याद रखना चाहिए।

आर्य्य युवक से—

[श्री विक्रमादित्यजी वख्शी "वसन्त" प्रभाकर]

१

आर्य युवक ! क्यों तुम बैठे हो,
हाथ पसारे औ मन मारे।
केवट बन कर आज लगादो,
नाव जगत् की पार किनारे॥

२

क्यों कहते हो, आज जगत् में,
छाया है तूफ़ान बवण्डर।
मृत्यु की घनघोर घटाएं,
आज डराती तुम्हें निरन्तर॥

३

देखो ! आज जगत् की नौका,
डगमग डगमग डोल रही है।
तूफ़ानी लहरों के कारण,
भय की बोली बोल रही है॥

४

पथिकों का संघर्ष छिड़ा है,
अन्धकार में हुई लड़ाई।
देख ! देख ! साहस पर कैसी,
सर्वनाश की छटा दिखाई॥

५

मांझी आज अनिश्चित बैठा,
तट का है कुछ पता नहीं।
कैसे आज बचेगी नौका,
इस का भी कुछ पता नहीं॥

६

चिन्ता क्या है, नहीं तुम्हारा,
आज जगत् में संगी साथी।
चिन्ता क्या है, भाग गये जो,
मतलब के सब अपने नाती॥

७

मोह माया का काम नहीं अब,
बीत गये वासंती मेले।
सहयोगी की चिन्ता फिर क्यों,
बढ़े चलो ! तुम आज अकेले॥

८

एकाकीपन का क्यों रोना,
आर्यजगत् सब साथ तुम्हारे।
बाधाओं की चिन्ता क्या है;
सुदृढ़ हुए संकल्प तुम्हारे॥

९

वैदिक-दिव्य संदेश सुना कर,
आगे ही अब चलना होगा।
जग को आलोकित करने को,
आज तुम्हें यह करना होगा॥

१०

आर्य युवक ! तुम दीपक बन कर,
अन्धकार में मार्ग बताओ।
जग के इस अशान्ति के युग में,
वैदिक-शान्ति-सुधा बरसाओ॥

११

वेद-सुधा के प्याले पीकर,
आज तुम्हें बनना है साकी।
पीना और पिलाना सबको,
जब तक सांस रखोगे बाकी॥

सत्य सनातनधर्म के मुख्य तत्व

वर्ण व्यवस्था

महात्मा गौतमबुद्ध के विचार

(लेखक— प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति उपमन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली)

सार्वदेशिक' के गत मास के अङ्क में वैदिक वर्ण व्यवस्था पर कुछ प्रकाश डालते हुए मैंने लिखा था कि 'जब इस वेदिक तथा शास्त्रीय वर्ण व्यवस्था के तत्व को भुला कर ४ वर्णों के स्थान पर (जिनका आधार गुण कम स्वभाव पर था) जन्म पर आश्रित सैकड़ों जातियां बन गईं और उनमें परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, विरोध, वैमनस्य उत्पन्न होने लगे तो श्री गौतमबुद्ध ने उस जाति भेद और जन्म मूलक वर्ण व्यवस्था का प्रबल खण्डन करके पुनः गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था का सिद्धान्त जनता के सामने रखा इस बात को अगले लेख में दिखाया जाएगा। वर्णाश्रमव्यवस्था पर तुलनात्मक दृष्टि से कुछ अन्य विचार भी उसी लेख में रखेंगे।" इत्यादि

जन्म सिद्ध जाति भेद का प्रबल खण्डन श्री गौतमबुद्ध ने किया यह बात वसिष्ठसुत्त, वृषल सुत्त-अम्बाष्ठसुत्त सोणदण्डसुत्त इत्यादि बौद्धग्रन्थों के पढ़ने से अत्यन्त स्पष्ट हो जाती है। धम्मपद नामक अत्युत्तम बौद्ध ग्रन्थ के 'ब्राह्मण वग्ग' में भी यह बात स्पष्ट बता दी गई है कि जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं विशेष गुणकर्म स्वभाव के धारण करने से ही मनुष्य ब्राह्मण बन सकता है। विस्तार भय से निम्नलिखित बुद्ध भगवान् के वचनों को उद्धृत करना ही पर्याप्त होगा। जो विस्तार से जानना चाहें उन्हें श्री राहुल सांकृत्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम. ए. कृत 'दीघनिकाय' इत्यादि का हिन्दी अनुवाद अवश्य देखना चाहिए। सुत्तनिपात के ६५० श्लोक में श्री गौतमबुद्ध ने इस सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन किया कि

न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जच्चा होति अब्राह्मणो।
कम्मणा ब्राह्मणो होति, कम्मणा होति अब्राह्मणो॥

इस पाली श्लोक का अक्षरशः संस्कृत अनुवाद यों होगा—

न जात्या ब्राह्मणो भवति,
न जात्या भवति अब्राह्मणः।
कर्मणा ब्राह्मणो भवति,
कर्मणा भवति अब्राह्मणः॥

अर्थात् जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता और जन्म से कोई अब्राह्मण (क्षत्रिय वैश्य वा शूद्र) नहीं होता। कर्म से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है और कर्म से ही अब्राह्मण होता है। इसकी पूर्व लेख में उद्धृत—

"न जात्या ब्राह्मण (श्चात्र) क्षत्रियो वैश्य एव न।
न शूद्रो न च वै म्लेच्छो, भेदिता गुण कर्मभिः॥
—शुक्र नीति।

न कुलेन न जात्या वा, क्रियाभिर्ब्राह्मणो भवेत्।
—महाभारत।

इत्यादि श्लोकों के साथ तुलना देखने योग्य है। सुत्तनिपात श्लोक ६५५ में बुद्ध भगवान् के निम्न वचन पाये जाते हैं :—

"तपेन ब्रह्मचरियेण, संयमेन दमेन च।
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्रह्मणमुत्तमम्॥"

अर्थात् तप, ब्रह्मचर्य, संयम और मन को वश में करना इन से ही मनुष्य ब्राह्मण बनता है और ऐसा ब्राह्मणत्व ही उत्तम है। इसकी भगवद्गीता के—

शमो दमस्तपः शौचं, क्षान्तिरार्जव मेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं, ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥
१८। ४२

इत्यादि श्लोकों के साथ अद्भुत समानता है। दम, तप शब्द दोनों में समान रूप से आये हैं। ब्रह्मचर्य का शब्दार्थ ही ब्रह्म— ईश्वर और वेद का ज्ञान प्राप्त करना तथा उन में विचरण करना है। ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य शब्द उसी भाव के सूचक हैं। ऐसे उत्तम रूप से शास्त्रीय वर्णव्यवस्था के तत्त्व के प्रतिपादक महात्मा बुद्ध को नास्तिक कहना कितनी भूल है?

धम्मपद का ब्राह्मण वग्ग (वर्ग) इस विषय में सम्पूर्णतया माननीय है जिसमें वेदोक्त शास्त्रीय वर्णव्यवस्था का बड़े उत्तम शब्दों मे प्रतिपादन किया गया है। उस मे से निम्न लिखित श्लोकों को उद्धृत करना यहां पर्याप्त होगा :—

न जटाहि न गोत्तेन, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चं च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो॥

संस्कृतानुवाद—

न जटाभिन गोत्रेण, न जात्या भवति ब्राह्मणः।
यस्मिन् सत्यं च धर्मश्च, स शुचिः स च ब्राह्मणः॥

अर्थात् जटाओं से, गोत्र से अथवा जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जिस में सत्य और धर्म हैं वही पवित्र है और वही ब्राह्मण है।

यस्स कायेन वाचाय, मनसा नत्थि दुक्करम्।
संवुतं तीनि ठानेहि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्॥६॥
अक्कोसं बधबन्धं च, अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तीबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्॥१७॥

अर्थात् शरीर वाणी और मन से जिस के अन्दर पाप वा विकार नहीं है जो इन तीनों को पवित्र रखता है उसको ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ। जो स्वयम् दुष्ट न होते हुए दुष्टों के दिये हुए गाली गलौज तथा हिंसा को सहन करता है, क्षमा ही जिसका बल है उसको मै ब्राह्मण कहता हूँ।

न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिज मत्तिसंभवं।
अकिंचनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्॥
धम्मपद ३६६।

अर्थात् मैं उसे ब्राह्मण नहीं कहता जो ब्राह्मण के घर में अथवा ब्राह्मणी माता से उत्पन्न हुआ है। जिस के पास धन कुछ नहीं और न जो लोगों से मांगता फिरता है ऐसे निःस्वार्थ और निर्लोभ शान्त पुरुष को ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

धम्मपद ३८८ में ब्राह्मण और संन्यासी का अर्थ श्री गौतम बुद्ध ने निम्न प्रकार किया है :—

'वाहितपापोऽति ब्राह्मणो',
सम चरिया समणोति वुच्चति।
पव्वाजयमत्तनः मलं,
तस्मा पब्बजितोति वुच्चति॥

अर्थात् ब्राह्मण वह है जिसने सब पापों को दूर कर दिया है, जो समता भाव को धारण करके विचरण करता है वही श्रमण है। जो अपने सब मलों को हटा देता है उसे ही परिव्राजक वा संन्यासी कहते हैं।

इस प्रकार यह अत्यन्त स्पष्ट है कि बुद्ध भगवान् ने केवल जन्म सिद्ध जातिभेद का खण्डन किया न कि गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था का जैसे कि कई लोग अशुद्धि से समझते हैं।

पारसियों के धर्म ग्रन्थ जिन्दावस्था में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के समान समाज का चार वर्गों वा वर्णों में विभाग पाया जाता है जिन्हें आथ्रवण (आथर्वण-अथर्ववेद वेत्ता ब्राह्मण) रथेस्तर (रथेष्ठाः क्षत्रिय जैसे कि आब्रह्मन् ब्राह्मणो-ब्रह्मवर्चसी जायताम् आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्य जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायताम् ॥ (यजु० २२। इत्यादि वेद मन्त्रों में प्रयोग है। वस्त्रियोश्य (वैश्य) हुतेस (शूद्र) नामों से पुकारा गया है। प्रो० डार्मेस्टर ने जिन्द अवस्था के अनुवाद में स्पष्ट लिखा है कि "We find in it a description of the four classes which strikingly reminds of the Brahmanical account of the origin of castes and which were certainly borrowed from India" (Zind Avesta part 1 Introduction P. 38) अर्थात् ४ वर्गों के इस वर्णन को पढ़ते ही चार वर्णों के ब्राह्मणोक्त मूल का सहसा स्मरण हो उठता है जो निस्सन्देह भारत से ही लिया गया था।

प्रसिद्ध पारसी विद्वान्, मैसूर युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर वाडिया ने Zoroaster—His life and teachings नामक अपनी उत्तम पुस्तक में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "As in the early Vedas, so also among Iranians, society was divided into three castes The Iranian Athravans and Rathestans corresponded to the Brahmans and Kshatriyas among the Hindus.

बहती गंगा

(कवि—श्री "विकल")

तू पड़ा क्यों सो रहा है।
हा! समय को खो रहा है॥
जग उठा है विश्व सारा—
देख तो क्या हो रहा है॥

रक्त रंजित हैं दिशायें।
रक्त रंजित हैं घटायें॥
लग रही है आग नभ में—
रक्त रंजित तारिकायें॥

गा रही है प्रातः बेला।
धन्य जग में आज मेला॥
है वही सौभाग्यशाली—
मौत से जो खेल खेला।

है 'विकल' वह धन्य जो माता के बंधन आज खोले।
बहती गंगा में अरे! उठ! ओ अभागे हाथ धोले॥

These divisions were by no means rigid on the other hand, they were as elastic as they were in the early Hindu society." P 75

अर्थात् वेदों की तरह ईरान देशवासियों में भी समाज का विभाग ३ वर्णों में था। ईरानियों के आथ्रवण और रथेस्तर ब्राह्मण क्षत्रिय के समान थे। ये विभाग कठोर न थे बल्कि प्राचीन हिन्दू समाज की तरह लचकीले थे अर्थात् एक वर्ण का दूसरे में परिवर्तन हो सकता था। (यहाँ केवल द्विजों की गणना करते हुए संख्या ३ दी गई है।)

वैसे तो प्रो० मैक्समूलर, वीबर आदि प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वानों ने "If then with all the documents before us, we ask the question does caste as we find it at the present day, form part of the most ancient teachings of the Vedas. *we can answer with a decided 'no'* (chips from a German workshop by Prof Max mullar) इत्यादि शब्दों द्वारा स्पष्ट स्वीकार किया है कि वर्तमान जाति-भेद का प्रतिपादन वेदों में कहीं भी नहीं, किन्तु प्रायः पाश्चात्य तथा उनके अनुयायी अन्य भारतीय विद्वान् भी 'वर्ण' का अंग्रेजी में अनुवाद 'Castes' कर देते हैं जो बिल्कुल भ्रमजनक है। इस भ्रम का निवारण करके वर्ण व्यवस्था के स्वरूप को बहुत कुछ शुद्ध रूप में रखने का प्रयत्न मेरे मित्र हौलैण्ड के डा० गौल्थरस मीज एम० ए० (कैम्ब्रिज) एल० एल० डी० (लीडन) (Dr. Gaultherus H. mees M A L L. D नामके निष्पक्षपात विद्वान् ने 'Dharma and society' और The Human family and India the Re-shaping of the social order' इत्यादि पुस्तकों में किया है जिनमें उन्होंने बताया है कि वर्ण और जाति (Caste) बिल्कुल भिन्न भिन्न और विरोधी वस्तुएं हैं। वर्ण का Natural or cultural classes अर्थात् स्वाभाविक या सांस्कृतिक वर्ग इस रूप में ही अनुवाद हो सकता है Castes या जाति नहीं। उनके अपने शब्द इस विषय में स्पष्ट हैं कि

Varna and caste are contrarious things. The Varnas form the ideal after which the social constitution has to be formed. Varna can only be translated by natural or cultural class. The theoy of the four natural classes is a most helpful hypothesis for clarifying the thoughts of the people about the structure of society इत्यादि

(Human family and India P.23-24)

विस्तार भय से इस विषय को यहीं समाप्त किया जाता है।

THE PLACE OF WAR IN HUMAN BROTHERHOOD

(By Mr Pooran Chand Ji B A LL B Advocate Agra)

The most important question inviting our attention at the present juncture is the great world-wide devastating wai that is going on in the world The war is creating havoc causing intolerable loss of material and man powei There are two distinct schools of thought regarding the utility and justification of war There is a class wh ch condemns war and deems it a curse for the human society, while others think it an inevitable, essential or to say the least a necessary evil and hence justifiable at least on the ground of ' niti - policy equity and justice if not on the basis of dharma in its strict sense Our duty is to find out the truth and create harmony between these two outwardly conflicting schools of thought The most strange thing is that both these schools owe their origin to the teachings of the Holy Vedas the oldest books in the library of the world Ahinsa has been laid down as the paramount duty or Dharma in the Vedas There are many Mantras in the Vadas in which stress has be n laid on the beauty and efficacy of non-violence The same thought prevails throughout all the Upanishads Out of the six systems of Indian philosophy one is Patanjali's Yoga darshan In Yoga darshan five Niyamas & five Yamas have been laid down for the guidance of the individual & social conduct of human beings One of these Yamas is Ahinsa The idea of Ahinsa vas the guiding principle of the human society prior to five thousands years ago-that is, up to the age of Mahabharat After the Mahabharat period came the age of Vam marg the path of leftists in the domain of religion that is the path of over-indulgence, the life of eat drink and be merry Thought controls conduct and conduct creates ideal & principles dogmas and doctrines As a reaction to the path of the leftists, the idea of atheism and disbelief in transmigration of soul sprang up Only those can afford to ignore all virtuous conduct who do not believe in the Divine existence and the theory of ' karma

To counteract the vicious teachings of the leftists, lord Buddha and the Jain Acharya had to emphasise and lay stress on the doctrine of 'non-violence'. Lord Jesus Christ followed the same course. The great present adherent and supporter of this doctrine is Mahatma Gandhi. As agaist this the very same Vedas contain many Mantras which glorify war and inculcate its necessity under certain circumstances. There are four Upa-Vedas attached to the four Vedas. One of these is Dhanurveda which deals with the science and art of warfare. In the Smriti period Manusmriti is the oldest and leading. In Manusmriti Ahinsa is laid down as one of ten ingredients of Dharma while ethics and regulations of war have been laid down. There are two great epic poems of the Aryas or the Hindus the Ramayan & the Mahabharat. In the Ramayan the great ideal in the person of Ram had recourse to warfare as against Ravan. The whole of Ramayan deals with the life sketch of the Holy Ram and the war he raged. In the Mahabhart Lord Krishna is the most prominent figure Mahabhart deals with the war between the Kaurvas and the Pandavas. Lord Krishna to whom both the exponents of violence and non-violence appeal, exhorted Arjuna in the name of God, religion duty and love of country to have recourse to war in order to set right the unrighteous conduct of the Kauravas and to protect the rights of the Pandavas. All subsequent history is full of mention of the terrible wars raged from time to time Thus we see that we find support for both the schools of thought in our religious books and our national history. We are now in a position to trace the under-lying harmony between the two. There is one more aspect to be cleared. Every law requires a sanction for its support We should respect the person and property of others if we want our own person and property to be respected is the great ethical law. There are persons who out of greed, lust and avarice are bent upon transgressing this law. Sometimes in addition to love and righteousness, the sense of fear as regards the consequence of their action is also a great psychological factor in keeping under control and check the evil propensities of greed and lust. War is meant to serve the purpose of thus creating such a fear or 'atank'. The law of every state gives scope for the exercise of right of self-defence to counteract the aggressive attitude of the cruel, the tyrant and the evil-doer be he in the form of a thief, robber,

dacoit or a war-monger on a wide nationalistic scale. If we study the five 'niyams' and five 'yams' of the Yogdarshan along with the essential attributes of soul as laid down in Nyayadarshan the true prospective will be clear to us. To regulate our individual action including feeling and willing, purity of body, mind and heart is required and perseverence and tolerence is also required. In our dealing with others, purity of conduct is required as well as the spirit of non-violence. To achieve this, we should be free from the influence of passion and anger. If our conduct is inspired by pure ideas and perseverence and is uninfluenced by passions and anger, the result will be ahinsa. It would be non-violence in spirit, even if some harm and injury is caused to the other If a tyrant or aggressor comes forward to deprive an individual or a group of individual of their legitimate rights and if to resist him violence is to be used, then that violence is to be deemed equivalent to non-violence Intention and motive is the chief question. In any human brotherhood and society war and war-spirit cannot be avoided. It shall have to be regulated and if properly regulated, war sometimes shall be as righteous a canduct as not to fight normally is. The criterion is the same both in war and peace. There is conflict of interest in the world, there is conflict between haves and have-nots. Have-nots have to be taught to be alert and active and to be contented with their lot in the end. 'Haves' have to be taught to be charitable, God-fearing and loving towords others. Love of God and fear of God is to be inculcated. Under such conditions, wars there would be, but they would be an abnormal feature. *Remedies to regulate the war methods*, external measures such as treaties, alliances and disarmament resolutions would not do. The only proper remedy is to regulate the head, and the heart of the nations and the individuals. Then only the raising of hand of the mob in democracy and of one dictator in autocracy can be regulated and set right. There should be sound head and whole someheart and then only the raising of hand sensibly can be ensured. The head and the heart can only be regulated and brought under *maryada* that is discipline by the teachings of religious ideas and ethical principles on a wide and cosmopolitan scale. It is also a part of the regulations of the war method that it should be confined to a particular section of the people who are fit for it according to their taste and capacity.

Kshatriya is one of the four Varnas recognised in the Vadas

The word 'Varna' means choice There is no question of compulsion, allurement or conscription It should also be confined to a particular part of the territory There ought to be preserved battle fields as the plain of Kurukshetra Innocent men, women and childern should be immune from attack or effect of war. The people other than belligerent should be kept separate from the field and scope of belligerency so that there may be no excuse for the enemy to attack them Disarmament is not practical and is not of any utility in the long run The idea of disarmament is based on the assumption that the existence of arms is the cause of existing war, while the real danger is in the fighting mentality of the people based again in its turn on Godlessness, greed and avarice If any people of a nation are keen on fighting arms or no arms war there shall be arms will be invented In communal riots we have seen that the use of lathis was prohibited the collection of bricks and stones was not allowed still when the mob and rioters were in fury, soda-water bottles and bamboos supporting the thatches were utilised for mutual attacks The existence of effective and strong weapons adds to the glory of the nation and also to their strength. The science and art of weapon-making should be a part of national curriculum In the end I would like to appeal that an attempt should be made by or on behalf of the International fellowship and such other organisations to put an end to the present war mentality which is causing havoc all over the world

Vande Mataram !

Vande Mataram ! Vande Mataram

Mother ! famed abroad for ageless hoary hills
Like some royal prophets in a trance
Sung by alien bards for classic lore that fills
With the echoes of a high romance
Flowering forest glades where fearless sages dreamed
Truth—envisioned death defying dreams
Where the fluted strains of pleading music streamed
In seductive sense—deluging streams
Vande Mataram ! Mataram !

Thou remembered for thy chiming temple bells
And the muezzinns soaring call to prayers
Patriot vigils mother s vows and chanted spells
Song triumphant over envious cares !
Mother ! mother of a beauteous star gemmed sky
Mother of an ancient race of seers
Who proclaim a Beauty that can never die,
And a victory that has no fears !
Vande Vande Mataram !
Lo ! the splendour crown d immortals kneel and pray
Bharat mata ! Madare-Hind ! for thee,
God shall touch thine aching limbs to day
With re-surgent hope and liberty,
So in conquest thou may'st learn to love forgive
Seek for- ever soul enkindling truth
churn from raging seas incarnate dreams that live
Win the nector of Unaging youth !
Vande, Vande Mataram !

—By CYRIL MODAK

M R)

सुमन-संचय

पारस मणि

(१)

वह लाहौर की ७० वर्षीय बुढ़िया कहारी थी। उसका एक निकट सम्बन्धी महाराज रणजीतसिंह को स्नान कराने के कार्य पर नियुक्त था। एक दिन वह बुढ़िया उसके घर गई और कहा "भय्या तुम बड़े भाग्यशाली हो जो महाराज की सेवा टहल करने का पुन लूटते हो। एक हम हैं जो उनके दरसनों को भी तरसते हैं। महाराज को अपने हाथों से असनान कराने की मेरी बड़ी लालसा है। अगर तुम अपने साथ मुझे राज-महल में ले जाओ तो मेरी लालसा पूरी हो जायगी और तब मैं अपने जीवन को सुफल समझूंगी।"

वह कहार बुढ़िया को अपने साथ महल में ले आने के लिए राजी हो गया और उसके साथ एक दिन बुढ़िया राजमहल में स्नानालय में पहुँच गई।

ज्योंही महाराज रणजीतसिंह स्नान करने के लिए स्नानालय में प्रविष्ट हुए, त्योंही बुढ़िया एक कोने में छुप कर बैठ गई। कहार महाराज को स्नान कराने और बड़े प्रेम और मनोयोग से उनका शरीर मलने लग गया। बुढ़िया ने अवसर पाकर अपने आंचल में छुपाए हुए लोहे के एक मोटे तवे को निकाला और लगी उसे महाराज की पीठ पर मलने। उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो मखमली गद्दों पर आराम करने वाला व्यक्ति ढेलों पर सो रहा है। लोहे के संघर्ष से महाराज की पीठ छिल गई। बुढ़िया के इस व्यापार से वह कहार भौचक्का रह गया। और उसे इसका कारण समझ में न आया। बात की बात में समस्त राजभवन में यह खबर फैल गई और प्रहरियों ने दौड़ कर बुढ़िया को पकड़ कर बन्दी गृह में डाल दिया।

आधी रात हो गई थी परन्तु बुढ़िया की आंखों में नींद न थी। वह जेलखाने में अपनी कोठरी में बैठी तारे गिन रही थी। भावी अनिष्ट की आशंका ने उसे व्याकुल कर रक्खा था। स्वयं महाराज की अपराधिनी होने के कारण उसको अपने जीवन की आशा नहीं रही थी। महाराज रणजीतसिंह का आतंक प्रसिद्ध था। उनका अपराध करके दण्ड से बच जाना एक अनहोनी बात समझी जाती थी। इस विचार ने बुढ़िया को और भी व्यथित कर दिया था और इसी कारण उसको नींद नहीं आती थी।

दूसरे दिन दरबार लगा। महाराज दरबारी वेष में एक भव्य सिंहासन पर आकर बैठे। सर्व प्रथम बुढ़िया का मामला लिया गया। बुढ़िया उनके सामने उपस्थित की गई।

उस क्षण बुढ़िया की दशा देखते ही बनती थी। उसके हाथ पांव और सब शरीर मारे भय के कांप रहा था। महाराज को अपने जीवन में देखने का उसका पहला ही अवसर था। उनके

निकटतम सम्पर्क में रहने वाले व्यक्तियों का कहना था कि उनका चेहरा इतना रौब का था कि उन्होंने कभी भी उन्हें आंखें भरकर नहीं देखा था। फिर उस गरीब अपराधिनी बुढ़िया का तो साहस ही क्या हो सकता था जो उनके उस समय के क्रोधमय चेहरे की ओर देख सके। महाराज की रौद्र मूर्ति को देखकर बुढ़िया के होश उड़ गए। वह गर्दन नीची करके हृदय को अपने हाथ में थामकर अपने जीवन मरण के निर्णय को सुनने के लिए बैठ गई।

सबसे पहले बुढ़िया के सम्बन्धी कहार का बयान लिया गया और उसने बुढ़िया के राज महल में आने की घटना विस्तारपूर्वक बयान की और चिल्ला कर कहा "इसने मेरे साथ छल किया है?"

दरबारियों को बुढ़िया के इस व्यापार से बड़ा आश्चर्य था और वे इस रहस्य का भेद जानने के लिए बड़े उत्सुक थे। कहार के बयान से भी जब रहस्योद्घाटन न हुआ तो उनकी उत्सुकता और कौतूहल और भी बढ़ गए।

महाराज ने बुढ़िया को अपना बयान देने की आज्ञा दी। बुढ़िया ने हाथ जोड़कर कहा 'महा-राज मैं आपसे प्राणों की भीख मांगती हूँ। मैंने सुन रखा था कि आप पारस हैं। आपके छूने से लोहा सोना हो जाता है। मेरे जीवन की लालसा थी कि मेरे पास ६-७ सेर सोना हो जाय। इसी लालसा को पूरा करने में मुझसे यह अपराध हो गया है।"

बुढ़िया का बयान सुनकर दरबार में एक दम सन्नाटा छा गया और सब लोग कौतूहल मिश्रित नेत्रों से महाराज की ओर देखने लगे। बुढ़िया के बयान से महाराज स्वयं कोमल भावनाओं के प्रवाह में बह गए थे। उन्होंने तत्काल खजांची को बुलाकर आज्ञा दी कि बुढ़िया के तवे के वजन के बराबर सोना तोल दिया जाय। आज्ञा का पालन होते ज़रा भी देर न लगी और बुढ़िया मन ही मन महाराज को आशीर्वाद देती हुई सोने को लेकर अपने घर चली गई।

प्रजा वत्सलता

(२)

रात के १२ बज चुके थे, परन्तु शाहजहाँ बादशाह के कर विभाग का अध्यक्ष अपने हिसाब की जाँच पड़ताल में व्यस्त था। उस वर्ष लगान में बहुत वृद्धि हुई थी। शाहजहाँ बादशाह की आज्ञानुसार इसका कारण जानने के लिए उसको गत कई वर्षों के कागज़ात देखने पड़ गए थे। यही कारण था कि वह इतनी रात्रि गए तक अपने काम में लगा हुआ था।

सहसा ही शाहजहाँ की नींद उचटी। गत कई दिन से उनका मन अशान्त था। और उनकी कई रातें बिना पूरी नींद सोए व्यतीत हो गई थी। लगान क वृद्धि के विषय में वे नाना प्रकार के तर्क और कल्पनाएं करते थे। कभी वे सोचते कि लगान वसूल करने वालों ने अपनी कार-गुज़ारी दिखाने के लिए तो ऐसा नहीं किया है? यदि ऐसा हुआ तो बेचारे किसानों पर ज़ुल्म हुआ होगा। कभी वे सोचते कि पिछले वर्षों में कर्मचारियों की लापरवाही के कारण लगान कम प्राप्त होता रहा होगा। बहुत सोच-

"याद रखिए"

भारत वर्षीय आर्य्य कुमार परिषद् की परीक्षाओं के जो केन्द्र जनवरी १९४२ में स्थापित थे उनमे से बहुतसों ने इस वर्ष जनवरी १९४३ के लिए आवेदन पत्रादि नहीं मंगाए हैं। सब केन्द्रों के पास पाठ विधि तथा अन्य आवश्यक सूचनाएं भेज दी गई हैं। उन केन्द्रों को पुनः स्मरण कराया जाता है कि कृपया वे प्रयत्न करें कि उनके नगर में इन परीक्षाओं का अधिक से अधिक प्रचार हो और इन में अधिक से अधिक संख्या मे परीक्षार्थी सम्मिलित हों; अत' सब केन्द्र लौटती डाक से आवेदन पत्र मंगा लेवें। १ नवम्बर १९४२ आवेदन पत्र भर कर भेजने की अन्तिम तिथि है; अत' १ नवम्बर तक सब के आवेदन पत्र कार्यालय में भर कर आ जाने चाहिए। इस के पश्चात आवेदन पत्र केवल १५ दिन तक अतिरिक्त शुल्क के साथ स्वीकार किया जा सकेगा।

आज ही मंगाइए

भारत वर्षीय आर्य्य कुमार परिषद् के परीक्षा बोर्ड का पठन क्रम कालेज व स्कूलों के छात्रों तथा कन्याओं की योग्यतानुसार बहुत वर्षों

विचार करने के पश्चात् भी शाहजहाँ को इसका कारण समझ में न आया।

शाहजहाँ चारपाई से उठते ही सीधे दफ्तर मे गए और माल विभाग के अध्यक्ष को अपने कार्य्य मे व्यस्त देखकर पूछा 'कहो, कर वृद्धि का कारण विदित हुआ।"

अध्यक्ष ने समुचित अभिवादन करके कहा 'जहाँ पनाह! कर वृद्धि का कारण ज्ञात हो गया है। इस वर्ष कई नदियों ने अपने मार्ग बदल दिये हैं और कई नदियों के सूख जाने से उनके किनारों पर खेती हुई है. यही कारण कर वृद्धि का है।'

इस बात से शाहजहाँ के हृदय की उलझन सुलझ गई और वे प्रसन्न होकर बोले

'यह ईश्वर की तरफ से किसानों के लिए देन है। इसमें हमारा कोई हक़ नहीं। बढ़े हुए कर की आय को उन किसानों को वापस कर दिया जाय।"

शाहजहाँ की आज्ञा का पालन हुआ और किसानों ने उन्हें हृदय से धन्यवाद दिया।

रघुनाथ प्रसाद पाठक

के अनुभव तथा विद्वानों की सम्मति से तैयार किया गया है। बोर्ड की परीक्षाएं सरकारी युनिवर्सिटी के ढंग पर होती हैं। अतः जिन स्कूलों, पाठशालाओं और छात्रालयों में अभी तक ये धार्मिक परीक्षाएं नहीं होतीं उनको नियमावली व पठन क्रम मंगा कर परीक्षा करानी चाहिए। आवेदन पत्र तथा पाठ विधि कार्यालय से बिना मूल्य मिल सकती है। १ नवम्बर १६४२ आवेदन पत्र भर कर भेजने की अन्तिम तिथि है।

परीक्षार्थियों तथा केन्द्र व्यवस्थापकों से

निम्न लिखित सूचनाओं के अनुसार आवेदन पत्र भरवा कर परीक्षा मन्त्री भारत वर्षीय आर्य्य कुमार परिषद् के पास पहुंच जाने चाहिए।

१. प्रवेश पत्र उन्हीं छात्रों को भरने चाहिए जो शुद्ध लिख सकते हों और जिन्होंने परीक्षा की पुस्तकों का अध्ययन कर लिया है या परीक्षा तक पूरा हो जाने की आशा है।

२. जिस ढंग के प्रवेश पत्र जिन छात्रों के लिए नियत हैं उन्हें वही भरने चाहिएं।

३. आवेदन पत्र व्यवस्थापकों को अपने सामने भरवाने चाहिए, जिस से उन में अशुद्धियां न रहें।

४. प्रवेश पत्र में नाम पूरा और साफ लिखना चाहिए एम. एल. आर्य या पी. सी. आर्य्य की तरह नहीं लिखना चाहिए, मनोहरलाल आर्य्य या प्रेमचन्द्र आर्य्य लिखना चाहिए। आवेदन पत्र में पिता का नाम सम्मानपूर्वक पूरा लिखना चाहिए।

५. प्रवेश पत्र हिन्दी में भरने चाहिए।

६ प्राइवेट परीक्षा देने वाले छात्रों को फार्म पर अपना पूरा पता अलग लिखना चाहिए। फार्म पर किसी स्थानीय एक प्रतिष्ठित सज्जन के हस्ताक्षर कराने चाहिए और यह भी लिखना चाहिए कि किस केन्द्र से परीक्षा देना चाहता है।

७. आवेदन पत्र यदि हिदायतों के अनुसार या शुद्ध न भरे हुए होंगे तो वापिस कर दिए जाएंगे।

८. सब परीक्षार्थियों के आवेदन पत्र परीक्षा बार नत्थी कर के १ नवम्बर १६४२ तक आ जाने चाहिएं बार २ न भेजने चाहिएं बार २ भेजने से रौल नं० आदि में गड़बड़ी हो जाती है।

९. परीक्षा शुल्क प्रवेश पत्रों के साथ ही भेज देना चाहिए ताकि शुल्क के लिए व्यर्थ पत्र व्यवहार न करना पड़े।

१०. यदि आवेदन पत्र बच जाएं तो परीक्षा बोर्ड को वापिस कर देने चाहिएं और यदि आवश्यकता हो तो और मंगा लेने चाहिए।

११. परीक्षा के व्यवस्थापक बहुधा आर्य्य संस्थाओं के मन्त्रियों, प्रधानों, स्कूलों के हैडमास्टर्स, और गुरुकुलों के मुख्याधिष्ठाताओं को बनाया जाता है। यदि वे किसी कारणवश व्यवस्थापक का कार्य्य न कर सकते हों तो अन्य किसी जिम्मेवार सज्जन का नाम और उनकी स्वीकृति तथा पूरा पता लिख भेजना चाहिए।

१२. अधिक आवेदन पत्र भर कर भेजने की दशा में उनका वजन करवा कर टिकिट लगाने चाहिएं। बैरंग आवेदन पत्र नहीं छुड़ाए जाएंगे।

महिला-जगत्

पारिवारिक शान्ति

(लेखिका—श्रीमती सखी जी)

घर-गृहस्थी मे चिरन्तन शान्ति बनाए रखने का केवल एक ही उपाय है, विरोध न करना। कभी कभा ऐसे अवसर भी आ उपस्थित होते है कि किन्ही बातों का विरोध करना पड़ जाता है, और तब घर की शान्ति को व्याघात् पहुँचने का भय आ उपस्थित होता है। किन्तु उस समय चित्त का शान्तमय रखकर मीठे और मुलायम शब्दों से इच्छित वस्तु को प्रकट करना ही सर्व-श्रेष्ठ होता है। विनम्र शब्दों मे कही गई बात अवश्य ही प्रभावकारी होती है और उस समय बातों से यह न प्रकट होने देना चाहिए कि जो कुछ कहा जा रहा है, वह किसी विशेष बात के विरुद्ध कहा जा रहा है। बल्कि यदि सम्भव हो तो प्रेममय भावना से एक दो शब्द अपने को लक्ष्य करते हुए कह दिये जाय तो उससे बात का बल बढ़ता ही है।

किन्तु इस प्रकार की बातचीत-कुशलता सब किसी को आसानी से नहीं आ सकती है। तब, केवल एक ही उपाय शेष रह जाता है, जिससे कि उक्त सिद्धि प्राप्त हो सकती है।

प्रिय वचन' ही एक मात्र ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा कठिन से कठिन समय भी बड़े-बड़े कार्य पूरे हो जाते हैं। यह सब किसी को वश में रख सकने का एकमात्र मन्त्र है, जिस प्रकार बेन की सुरीली आवाज सुनकर जहरीला साप भी मुग्ध हो जाता है, उसी प्रकार मृदु-वचन सुनकर कटु और कठोर हृदय भी पिघल जाता है तथा मृदु भाषी बड़े से बड़े कार्य सिद्धि के श्रेय का भागी होता है।

बहन! आप तो घर की स्वामिनी हैं। बच्चों की शासिका और शिक्षिका दोनों है। अगर आपने किसी भी बच्चे को कठोर वचन कह दिया तो (उसका चाहे दोष ही क्यों न हो रहा हो) उसका नन्हा सा दिल सूखकर जरा सा रह जाया करता है और इस प्रकार की छोटी छोटी चीजें हमारे बच्चों के जीवन मे महत्वपूर्ण होती हैं। बच्चों को आप इतना निर्भय कर सकें कि वह अपने किए हुए दोषों को स्वय स्वीकारें और स्वय ही भविष्य में ऐसे दोष न करने का प्रण करलें, तो समझिए कि आप एक सफल मा हैं, शिक्षिका हैं, और शासिका हैं।

---

२ कुछ आय सस्थाए आवेदन पत्र मगा लेती हैं परन्तु भर कर नहीं भेजतीं। यदि किसी कारण से आवेदन पत्र भरवा कर न भिजवा सकें तो परीक्षा मन्त्री को सूचना दे देनी चाहिए ताकि बार २ व्यर्थ पत्र व्यवहार न करना पड़े।

परीक्षा मन्त्री
भारत वर्षीय आर्य्य कुमार परिषद्
दीवान हाल दिल्ली।

जहां तक पति से सीधे संघर्ष का सवाल है; वहां भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न २ उपाय सुझाये जा सकते हैं; ऐसी बातों के लिए कोई एक बात नहीं कही जा सकती। हां, मृदु भाषी होना वहां भी आपकी सफलता का कारण बन सकता है और मृदु भाषण को तो कभी भूलना ही नहीं चाहिए क्योंकि मृदु-भाषी होना तो नारी का भूषण है। (वं० अ०)

श्रीयुत् भगवान् स्वरूपजी मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान व मालवा का वक्तव्य

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की परीक्षाएं

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् ने विगत कई वर्षों से सिद्धान्त सम्बन्धी परीक्षाओं का प्रबन्ध कर रखा है। यह सन्तोष की बात है कि इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो रही है परीक्षार्थियों की संख्या बराबर बढ़ रही है, नवीन पाठविधि को मैंने देखा, हर्ष है कि इनमें जहां उत्तमोत्तम पुस्तकों का समावेश किया गया है वहां यह भी सुविधा रख दी गई है कि परीक्षार्थी एक दम चाहे जिस परीक्षा में सम्मिलित हो सकता है। खण्डशः परीक्षा देने की बात इसमें हटा दी गई है, इससे अब यह सुविधा हो गई है कि शिक्षित वर्ग भी ऊंची परीक्षा में सम्मिलित होकर वैदिक सिद्धान्तों का भलीभांति अनुशीलन कर सकता है। यह बात निर्विवाद है कि परीक्षा के बहाने ग्रन्थों का स्वाध्याय जितना सर्वसाधारण कर सकते हैं अन्य प्रकार से उतना नहीं। पंजाब जैसे उर्दू भाषा प्रधान प्रान्त में हिन्दी भाषा का इतना प्रचार हिन्दी की रत्न, भूषण और प्रभाकर परीक्षाओं ने ही किया है और बराबर होता जा रहा है। इस समय इंगलिश के हाई स्कूलों और कालेजों में धर्म के सम्बन्ध में जो जानकारी अपनी संस्थाओं तक में होती है वह नहीं के बराबर होती है। अतएव इन परीक्षाओं के प्रचार से विद्यार्थियों में विशेष लाभ की आशा है।

आर्य समाजों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे कि प्रत्येक आर्य समाज में इसका केन्द्र बन जावे और अधिक से अधिक इन परीक्षाओं का प्रचार हो।

दान सूची आर्य्य समाज स्थापना दिवस सितम्बर १६४२

संयुक्त प्रान्त

१.	आर्य्य समाज	इलाहाबाद (चौक)		१४)
२.	,,	,,	मवाना कलाँ (मेरठ)	१०)
३.	,,	,,	धामपुर (बिजनौर)	६=)
४.	,,	,,	फतेहाबाद (आगरा)	२)
५.	,,	,,	नैनीताल	२५)
६.	,,	,,	राजा कायमपुर (एटा)	१)

पंजाब

७.	,,	,,	दाल बाजार लुध्याना	५)
८.	,,	,,	मोर सराय देहली	५)
९.	,,	,,	टोबा टेक सिंह	११)
१०.	,,	,,	तीमार पुर देहली	१०)
११.	,,	,,	फीरोजपुर	५)

राजस्थान

१२.	,,	,,	अलवर	१४॥)

मध्यप्रदेश

१३. " " आकोट (अमरावती) ४॥)

बंगाल

१४. " " कलकत्ता ६)

मद्रास

१५. " " उडुपी ५॥)

१६ " " मंगलौर ५॥)

१३-॥=)

गत योग ६१८॥≡)

सर्व योग ८३१॥-)

प्रशंसनीय दान

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यकर्ता प्रधान श्री पं० गङ्गाप्रसाद जी एम० ए० रिटायर्ड चीफ जस्टिस ने अपने सुपुत्र श्री जगदीशस्वरूप जी बी० एस० सी० के श्रीमती विनदिता बी० ए० के साथ अन्तर्जातीय विवाह के उपलक्ष्य में ५) सार्वदेशिक सभा को दान दिये हैं; जिसके लिये उनका धन्यवाद है। आर्य जगत् की ओर से हम इस आर्य दम्पति को बधाई देते हैं।

अन्य आर्य सज्जनों को भी ऐसे मङ्गलोत्सवों पर दान देते हुए सार्वदेशिक सभा को न भूलना चाहिये और सभा के वेद प्रचार तथा आर्य वीर दल संगठनादि कार्यार्थ उदार सहायता देनी चाहिये।

सत्याग्रह स्मारक दिवस का दान

अगस्त, सितम्बर ४२

१. आर्य्य समाज नया बांस देहली ६)

२. " " गुरुकुल चित्तौड़ १)

३. " " जौनपुर ३॥=)

४. " " फ़ीरोजाबाद (आगरा) ५)

५. " " मंगलौर २)

६. " " साहोवाल २)

७. " " दीवानहाल देहली ३०=)॥।

४६॥)॥।

जिन आर्य समाजों से आर्य समाज स्थापना दिवस और सत्याग्रह स्मारक दिवस के उपलक्ष्य में दान प्राप्त हुआ है उनको सभा की ओर से मैं धन्यवाद देता हूँ। अन्य आर्य समाजों को भी शिरोमणि सभा के प्रति अपना कर्तव्य और अनुशासन का पालन करने के लिये इन दिवसों का रु० संग्रह करके अथवा यदि वह सम्भव न हो तो समाज कोष से अवश्य अति शीघ्र भेज देना चाहिये। इसमें विलम्ब न करना चाहिये। जिस से बजट की पूर्ति होकर प्रचार विस्तार में सहायता मिले।

—धर्मदेव विद्यावाचस्पति
स० मन्त्री सार्वदेशिक
आर्य प्रतिनिधि सभा

अस्पृश्यता का घोर अभिशाप

सपाटू (शिमला जिला) निवासी एक हरिजन युवक ने जिन्होंने दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज लाहौर से सन् १९३७ में 'वैद्य कविराज' और १९३८ में उस कालेज की अन्तिम परीक्षा 'वैद्य-वाचस्पति' अच्छे अङ्क लेकर उत्तीर्ण की थी एक हृदयद्रावक पत्र सभा कर्यालय में भेजा है जिसमें से निम्न उद्धरण पर्याप्त हैं :—"अत्यन्त दुःखी होकर सेवा में निवेदन करता हूँ कि आज तक दास को कोई भी सन्तोषजनक नौकरी नहीं मिली।

ग़रीब होने के कारण पास धन नहीं कि अपना औषधालय खोल सकूं। यदि किसी प्रकार अपना थोड़ा बहुत काम शुरू भी करता हूँ तो सवर्ण हिन्दू भाई मेरी दवाई खाना पसन्द नहीं करते और जो भाई छूतछात को नहीं मानते वे भी मेरी औषध नहीं खाते। इनको विश्वास नहीं कि आया यह तुच्छ जाति का व्यक्ति चिकित्सा भी कर सकता है या नहीं। मेरे पास ग़रीब दलित आते हैं किन्तु इन लोगों से मैं क्या ले सकता हूँ ? आर्य समाज के प्रमुख नेताओं से कई बार मिल चुका हूँ किन्तु बड़े ही दुःख की बात है कि किसी ने भी कोई समुचित स्थान नहीं दिलाया ।...दुर्भाग्यवश सेवक का विवाह भी चिरकाल से हो चुका है और परिवार के ४ जीवों का भरण मेरे जिम्मे है किन्तु यह घोर युद्ध का का भयङ्कर काल, क्या किया जाए। आत्मघात करना भी एक सच्चा आर्य युवक महा पाप समझता है और एक ऋषि भक्त अन्य मत का भी अवलम्बन नहीं करना चाहता ..किसी आर्य-समाजी के औषधालय में लगा देवें बड़ी कृपा होगी।"

इस पत्र को पढ़ते हुए किसी भी सहृदय के नेत्रों से अश्रुधारा निकलना स्वाभाविक है। इससे अस्पृश्यता का अभिशाप स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। सवर्ण हिन्दुओं की इस मनोवृत्ति में जब तक परिवर्तन नहीं होता तब तक समाज का सच्चा उद्धार और संगठन असम्भव है। खेद की बात तो यह है कि अभी आर्य समाज के कई सदस्यों में भी यह उच्च नीच भावना और अस्पृश्यता गुप्त रूप से घर किये हुए है। इसी पत्र में उस युवक ने लिखा है कि "दलितोद्धार सभा के आधीन ३ औषधालय हैं। उसके मन्त्रीजी से मिला और निवेदन किया। जवाब मिला कि भाई हम तो तुमको स्थान दे देवें किन्तु सवर्ण तुम्हारी औषध खाना पसन्द नहीं करते।" यदि यह बात सच है तो अत्यन्त निन्दनीय है। अस्पृश्यता कलङ्क के समूलोन्मूलन का पवित्र व्रत जिस समाज ने लिया हुआ है उसकी अधीनस्थ संस्थाओं

के संचालकों से भी यदि ऐसे बेहूदा उत्तर योग्य युवकों को मिलें तो इससे बढ़कर शोचनीय बात क्या हो सकती है? प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है कि झूठे जात पांत और अछूतपन की दलदल से निकल कर दलितोद्धार और अस्पृश्यता निवारण के पवित्र कार्य में तन मन धन से तत्पर हो ताकि जाति बन्धन और अस्पृश्यता का यह अभिशाप जो समाज की जड़ों को खोखला कर रहा है और सच्चे सगठन का घोर शत्रु है हमसे शीघ्र दूर हो।

एक सुन्दर दिव्य स्वप्न

सयुक्त प्रान्त के सुप्रसिद्ध उत्साही आर्य श्री श्यामसुन्दर लाल जी B A B Sc LL B ऐड्वोकेट् मैनपुरी ने 'आर्य पुरुषो' अब महर्षि के अनुकरण का विशिष्ट समय है।" इस शीर्षक से एक लेख 'आर्य मित्र' आदि कई आर्य पत्रों मे प्रकाशित कराया है जिसके अन्त मे उन्होंने लिखा है —

"अतएव मैं श्रीमती सार्वदेशिक (सार्वभौमिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली और उसके अधिकारियों की सेवा में नम्र निवेदन करता हूँ कि आज कल के विकट भयकर समय मे जबकि समस्त भौगोलिक गणनीय साम्राज्य और उनकी सामान्य प्रजाए आतताईपन से प्रभावित और उसमे लिप्त हो रही हैं इसी महती सभा का जो वैदिक धर्म का प्रतिनिधित्व करती है कर्तव्य है कि वह अपने कर्तव्य पालन रूप एक सार्वभौमिक धार्मिक सम्मेलन की आयोजना करे और उसका स्थान मेरी सम्मति मे ऋषीकेश पवित्र गङ्गा का तट हो और उसमे हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध आदि समस्त मानवीय समुदायों के विद्या और आचरण की दृष्टि से आदर्श नर-नारी उनके प्रतिनिधि रूप मे निमन्त्रित किये जाए और उनसे निवेदन किया जाए कि वे सब एकत्र होकर पारस्परिक बौद्धिक मथन द्वारा ऐसे सार्वभौमिक सिद्धान्तों को स्वीकार कर उनके अनुकरण की प्रेरणा ससार मात्र से करें कि जिन पर कटिबद्ध होने से मनुष्यमात्र सुख चैन और सच्ची शान्ति की नींद सो सकें और आपस के कलह और झगड़े समाप्त हो सकें।"

मन्त्री सार्वदेशिक सभा के नाम लिखे इसी विषयक पत्र मे श्री ऐडवाकेट महोदय ने यह भी प्रस्ताव किया है कि महात्मा गांधीजी ही इस सम्मेलन के सभापति बनें।

हमे इससे बढ़कर प्रसन्नता न हो सकती थी यदि सार्वदेशिक सभा ससार की इस विषम परिस्थिति मे देश देशान्तरों से देवता पुरुषों को एकत्रित करके एक सार्वभौमिक धर्म सम्मेलन की आयोजना करने की स्थिति मे होती और पूज्य महात्मा गाधी जी उसके सभापतित्व को स्वीकार कर सकते, किन्तु वस्तु स्थिति से आँख मींचना किसी के लिए सम्भव नहीं। अपनी प्रिय मातृभूमि के लिए स्वतन्त्रता की घोषणा पर बल देने के 'घोर अपराध' मे महात्मा गान्धी जैसे आदर्श देवता पुरुष असीमित काल तक बन्धन मे रख दिए गए हैं। विश्व व्यापी युद्ध जन्य परिस्थिति के कारण यातायात के साधनों मे ऐसी अव्यवस्था हो चुकी है कि चाहते हुए भी दूर देशस्थ लोगों का एक स्थान पर एकत्रित होना दिन प्रतिदिन अधिक कठिन होता जा रहा है।

ऐसी परिस्थिति में सार्वभौमिक धार्मिक सम्मेलन की आयोजना को एक सुन्दर दिव्य स्वप्न के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है? किन्तु जैसे कि हमने अपने मान्यमित्र श्री श्यामसुन्दरलाल जी को पत्र में लिखा था, हम सबको मिलकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिए और भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए कि हमारा प्रिय भारत स्वतन्त्र होकर शीघ्र ऐसे सार्वभौमिक धार्मिक सम्मेलन की जगद्वन्द्य महात्मा गाँधीजी के सभापतित्व में आयोजना करने की स्थिति में हो जिससे सारे जगत् का कल्याण हो सके। जगत् के पुनर्निर्माण में वैदिक धर्म और उसके प्रचारक आर्यसमाज का एक अत्यन्त आवश्यक भाग होगा जिसके लिए अभी से आर्यों को पूर्ण तय्यारी करनी चाहिए। अंग्रेजी तथा अन्य पाश्चात्य भाषाओं में वेद की शिक्षा विषयक साहित्य निर्माण के कार्य की तो तुरन्त आवश्यकता है जो अन्धकार में भटकती हुई अशान्त आत्माओं को ज्योतिस्तम्भ और अमृत का काम दे सके।

आर्यवीर दल संगठन

सार्वदेशिक सभा की ओर से प्रत्येक आर्य समाज को जो आदेश दिया गया था कि वह आर्यवीर दल का संगठन करे उसका पालन बहुत सी आर्यसमाजों ने किया है और अन्य भी इस विषयक प्रयत्न में तत्पर हैं। शिक्षकों की कमी को पूरा करने के लिए सभा की ओर से जो अखिल भारतीय शिक्षण केन्द्र बदरपुर में खोला गया था उसमें शिक्षित युवक अपने २ प्रान्तों में आर्यवीर दल सगठन करने में तत्पर हैं। प्रांतीय सभाओं को भी आर्यवीर शिक्षण शिविरों की योजना करनी चाहिए इस कार्य के लिए मार्ग प्रदर्शनार्थ सार्वदेशिक सभा ने श्री ओंप्रकाशजी संयोजक अखिल भारतीय आर्यवीर दल द्वारा एक पुस्तक "आर्यवीर शिक्षण शिविर—कार्य तथा पाठक्रम" नाम से लिखवाई है, जो प्रेस में है और आशा है एक दो सप्ताह में प्रकाशित हो जाएगी। उसका मूल्य ≈) होगा उसे और आर्य वीर दल नियमावली को मंगवा कर आर्यसमाजों को सेवा और रक्षा कार्यार्थ आर्यवीर दलों के संगठन में पूर्ण सहायता देनी चाहिए।

सामाजिक विशेष समाचार

शुद्धि चक्र— यह जान कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि भारतीय हिन्दू शुद्ध सभा आगरा द्वारा जुलाई और अगस्त मासों में कुल १२२ शुद्धियां मलकाने राजपूतों व अन्य विधर्मियों की कीगईं। जैसे कि 'सार्वदेशिक' के अगस्त अङ्क में हमने लिखा था कि जब तक आर्य (हिन्दू) शुद्धि शुदा भाई बहिनों के साथ समानता का व्यवहार करने को तय्यार न हो जाएं तब तक शुद्धि आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। हम आशा करते हैं कि शुद्धि सभाएं इस विषय में भी विशेष ध्यान देकर शुद्धि चक्र की अधिक प्रगति दिखा सकेंगी।

आर्य पुरोहित पर घातक आक्रमण:— श्री बनवारीलाल जी स० मन्त्री आर्य समाज ओड़ गांव (आर्य नगर) तथा श्री तोताराम जी प्रचारक द्वारा यह जान कर अत्यन्त खेद हुआ कि प० रघुवरदयालु जी पर जो आर्य समाज के अनेक वर्षों तक गढ़वाल में प्रचारक रहे हैं और जो आज कल चौंद कोट आर्य समाज के पुरोहित

हैं कुछ समय पूर्व एक सवर्ण (विट) हिन्दू ने घातक आक्रमण कर दिया। जिसका कारण यह बतलाया जाता है कि उन्होंने अन्य सवर्ण हिन्दुओं की तरह शिल्पकारों को भी जिन्हें जात्यभिमानी हिन्दू अस्पृश्य मानते हैं शुद्ध करके आय समाज में प्रविष्ट कराया था जिस से कई कट्टर विट लोग चिढ़ते थे। ईश्वर की कृपा से पण्डित जी बच गये पर उन्हें गले, पांव और पेट में सख्त चोटें आईं जिसके कारण उन्हें हस्पताल में दाखिल कराना पड़ा। अपराधी को उचित दण्ड दिलाने के अतिरिक्त प्रेम पूर्वक प्रचार और सेवा द्वारा इन कट्टर पन्थी सवर्ण हिन्दुओं की नीच मनोवृत्ति को बदलने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। आर्य समाज, हरिजन सेवक सङ्घ तथा अन्य सब सुधारक सस्थाओं को इस कार्य में परस्पर सहयोग देकर संम्मिलित प्रयत्न अस्पृश्यता के घोर अभिशाप निवारणार्थ करना चाहिये।

एक देश भक्त आर्य वीराङ्गना—आन्ध्र-प्रान्त में सार्वदेशिक सभा के सुयोग्य उत्साही प्रचारक प० मदनमोहन जी विद्याधर वेदालङ्कार की धर्मपत्नी डा० ज्ञानचन्द्रजी की सुपुत्री श्रीमती शान्ता देवी जी को तैनाली सबकोर्ट में ११ सित० को पिकेटिङ्ग करने पर १६ सितम्बर को १ वर्ष की कड़ी सजा सुनाई गई और रायवैल्लोर् जेल भेज दिया गया। दक्षिण भारत के प्रतिकूल भोजन तथा अन्य असुविधाओं का विचार न करके अपना कर्तव्य समझ कर इन मान्या आर्य देवी ने निर्भयता पूर्ण देश भक्ति का जो परिचय दिया है उस के लिये हम उनका अभिनन्दन करते हैं और भगवान् से उनके स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना करते हैं। साथ ही अधिकारियों की निन्दनीय कठोर दमननीति का हम घोर प्रतिवाद करते हैं।

शोक-समाचार— ज्वालापुर आर्य वानप्रस्थाश्रम के भूतपूर्व मन्त्री श्री म० ठाकुरदास जी वानप्रस्थी का २७ सित० को वानप्रस्थाश्रम में लगभग ७६ वर्ष की आयु में देहावसान हो गया। यह जान कर हमें अत्यन्त खेद हुआ। श्री ठाकुरदास जी बड़े स्वाध्याय शील उत्साही आर्य सज्जन थे। आपने हैदराबाद आर्य सत्याग्रह में भी भाग लिया था। आश्रम के सत्सङ्गों में वेद मन्त्र व्याख्या प्रायः आप ही किया करते थे। परमात्मा उनकी पवित्र आत्मा को सद्गति और उनके सम्बन्धियों को जिन से हमारी समवेदना है, शान्ति प्रदान करें।

देहली म्युनिसिपैलिटी के सीनियर् वाइस् प्रेजिडेन्ट चौधरी देशराज जी के पूज्य पिता श्री चौ० दीनानाथ जी के देहान्त का समाचार जानकर हमें दुःख हुआ। हम आर्य जगत् की ओर से चौ० देशराज जी और उनके सब सम्बन्धियों से समवेदना प्रकट करते हुए दिवंगत आत्मा की सद्गति के लिये प्रार्थना करते हैं।

दक्षिण में धार्मिक जागृति-कन्याओं का यज्ञोपवीत संस्कारादि

काकेल (द० कर्णाटक) आयसमाज के उत्साही मन्त्री श्री केशव रामचन्द्रजी ने समाचार भेजा है कि गत ६-९-४२ को उनके निवास स्थान 'आर्य-कुटीर' में कुमारी सुशीला और सुमित्रा का यज्ञोपवीत संस्कार सार्वदेशिक सभा के उत्साही प्रचारक श्री मंजुनाथजी के पौरोहित्य में हुआ और

उसमें नगर के गण्य मान्य स्त्री पुरुष बड़ी संख्या मे सम्मिलित हुए। लोगों मे आर्य समाज के प्रति श्रद्धा और सत्यार्थ प्रकाश आदि आर्ष ग्रन्थों की मांग बढ रही है। मालाबार मे सार्वदेशिक सभा के उत्साही योग्य प्रचारक साधु शिवप्रसाद जी के प्रयत्न से हाल मे विशेष प्रचार के अतिरिक्त ३ आर्यसमाजों की स्थापना हुई है। मद्रास आर्य समाज मे रगून निवासिनी श्रीमती राजेश्वरी का 'रगून टाइम्स' के स० सम्पादक श्री दामोदरन् के साथ अन्तर्जातीय विवाह संस्कार वैदिक रीति से प० सुन्दरम् जी के पौरोहित्य मे धूमधाम से सम्पन्न हुआ। दक्षिण भारत जैसे कट्टर पन्थियों के गढ़ मे ये धार्मिक जागृति के चिन्ह विशेष अभिनन्दनीय हैं।

साहित्य समीक्षा

मनमन्दिर—लेखक श्री पूर्णचन्द्रजी बी० ए०, एल् एल् बी ऐडवोकेट आगरा। प्रकाशक ओंकार प्रिंटिंग प्रेस अजमेर पृष्ठ लगभग १३० मूल्य १)

यह पुस्तक वैदिक सन्ध्या की व्याख्या रूप में लिखी गई है जिसमें ईश्वर प्राप्ति और उसके साधन, उपासना का मूल्य, आचमन, अङ्ग स्पर्श मार्जन, प्राणायाम, अघमर्षण, मनसापरिक्रमादि पर सरल और उत्तम रीति से विचार किया गया है और अन्त में सन्ध्या मन्त्रों के अर्थ ऋषि दयानन्दकृत पञ्च महायज्ञ विधि के आधार पर दे दिये गये हैं। योग्य लेखक की सरलता और निरभिमानता इस बात से स्पष्ट है कि प्राणायाम के विषय में विचार करते हुए उन्होंने निसंकोच लिख दिया है कि 'दुर्भाग्यवश इन पंक्तियों के लेखक को प्राणायाम के क्रियात्मक अभ्यास करने का अभी अवसर नहीं मिला।" इत्यादि। इस पुस्तक द्वारा वैदिक सन्ध्या विषयक साहित्य में अभिनन्दनीय वृद्धि हुई है जिसका हम अभिनन्दन करते हैं। पुस्तक सब दृष्टियों से उपादेय है।

Marriage and married life by Pandit Ganga Prasad Ji Upadhyaya M A. Published by Aryasamaj chowk Allahabad. Pages about 215. Price Re 1

विवाह के विषय मे यह अत्युत्तम पुस्तक सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् प० गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय एम० ए० ने अभी लिखी है जिसमें विवाह की आवश्यकता, उद्देश्य, विवाह योग्य आयु, वैदिक विवाह पद्धति आदि विषयों पर बड़ी आकर्षक सरल रीति से विस्तृत विचार किया गया है। पुस्तक प्रत्येक गृहस्थ में प्रवेशाभिलाषी युवक और गृहस्थ के लिये अत्यन्त उपयोगी है। ध० दे०

ग्राहक महोदयों से

'सार्वदेशिक' पत्र को सुयोग्य लेखक और कवि महानुभावों के सहयोग से सब प्रकार से उन्नत करने का निरन्तर प्रयत्न किया जा रहा है और अनेक मान्य ग्राहकों के इस विषयक अभिनन्दनात्मक प्रोत्साहजनक पत्र प्राप्त हो रहे हैं। यदि प्रत्येक ग्राहक कम से कम अपने तीन मित्रों को इस पत्र का ग्राहक बनाने का प्रयत्न करे तो शीघ्र ही इसे स्वावलम्बी तथा अधिक उन्नत बनाया जा सकता है। आशा है सब ग्राहक महानुभाव इस विषयक पूर्ण सहयोग देकर अपने कर्तव्य का पालन करेंगे।

श्री प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित।

सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

(१) संस्कृत सत्यार्थप्रकाश — अ० ।) स० ।–)
(२) प्राणायाम विधि —)॥
(३) वैदिक सिद्धान्त अजिल्द — ।॥)
सजिल्द — १)
(४) विदेशों में आर्य्य समाज — ॥)
(५) यमपितृ परिचय — २)
(६) दयानन्द सिद्धान्त भास्कर — १)
(७) आर्य्य सिद्धान्त विमर्श — १॥)
(८) भजन भास्कर — ॥)
(९) वेद में असित शब्द — –)
(१०) वैदिक सूर्य्य विज्ञान — =)
(११) विरजानन्द विजय — =)
(१२) हिन्दू मुस्लिम इत्तिहाद (उर्दू में) — =)
(१३) इज़हारे हक़ीक़त (उर्दू में) — ॥=)
(१४) सत्य निर्णय (हिन्दी में) — १)
(१५) धर्म और उसकी आवश्यकता — ।–)
(१६) आर्य्यपर्व्वपद्धति मजिल्द — १)
(१७) कथा माला — ।=)
(१८) आर्य्य जीवन और गृहस्थ धर्म — ।=)
(१९) आर्य्यावर्त्त का वाचा — ≡)
(२०) समस्त आर्य्य समाजों का सूची — ॥)
(२१) सार्वदेशिक सभा का इतिहास अ० — २)
सजिल्द — २॥)
(२२) बलिदान — ॥)
(२३) आर्य डायरेक्टरी — अ० १।) स० १॥)
(२४) अथर्ववेदीय चिकित्सा शास्त्र — २)
(२५) सत्यार्थ निर्णय — १॥)
(२६) कायाकल्प सजिल्द — १।)
(२७) पञ्चयज्ञ प्रकाश — ।॥)
(२८) आर्य समाज का इतिहास — ।॥)
(२९) बहिनों की बातें — ॥)
(३०) Agnihotra
Well Bound — १॥)
(३१) Crucifixion by an eye
witness — ।–)
(३२) Truth and Vedas — ।=)
(३३) Truth-bed-rock of Aryan
Culture — ॥)
(३४) Vedic Teachings — १)
(३५) Voice of Arya Varta — =)
(३६) Christianity in India — ॥)
(३७) The Scope and Mission of
Arya Samaj Bound — १)
, Unbound — ॥)

अर्थात् आर्य जगत् की समस्त संस्थाओं सभाओं और समाजों का सन् १९४१ ई० की विश्व व्यापी विविध प्रगतियों का वर्णन आर्य समाज के नियम, आर्य विवाह कानून, आर्य वीर दल आदि अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातों का संग्रह। आज ही आर्डर भेजिये।

मूल्य अजिल्द १।) पोस्टेज ।)
मूल्य सजिल्द १॥) पोस्टेज ।=)
मिलने का पता—
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

इस पुस्तक में आर्यसमाज के विद्वान् श्री प० प्रियरत्न जी आर्य ने अथर्ववेद के मन्त्रों द्वारा सूत्र स्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान और चिकित्सा स्थान का प्रतिपादन किया है। चिकित्सा स्थान में आश्वासन चिकित्सा, उपचार चिकित्सा, सूर्यकिरण चिकित्सा, जल चिकित्सा, होम चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, सर्पादि विष चिकित्सा, कृमि चिकित्सा, राग चिकित्सा और पशु चिकित्सा दी है। इन प्रकरणों में वेद के अनेक महत्वपूर्ण रहस्यों का उद्घाटन किया गया है। पुस्तक २०×२६ आठ पेजी पृष्ठ संख्या ३१२ मूल्य केवल २) मात्र है। पोस्टेज व्यय ।) प्रति।

नवम्बर
१९५२ ई०
कार्तिक

सम्पादक—
प० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति

वार्षिक मूल्य
स्वदेश ५)
विदेश ५ शि०

विषय-सूची

सार्वदेशिक पत्र का नमूना मँगाने के लिये ।) का टिकट भेजना जरूरी है।

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १७	आश्विन १९९९ नवम्बर, १९४२ ई०] [दयानन्दाब्द ११८	अङ्क ९

ओ३म् सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा ।
मर्य्य इव स्व ओक्ये ॥ ऋग्वेद १-९१-१३

(सोम) हे शान्ति स्वरूप प्रभो (गाव' यवसेषु न) जैसे जौ के खेतों के बीच में गायें रमण करती हैं (मर्यः स्वे ओक्ये इव) जैसे मनुष्य निजी घर में सुखपूर्वक निवास करता है वैसे ही (नः हृदि आरारन्धि) तुम हमारे हृदय में आनन्दपूर्वक रमण करो।

पद्यानुवाद

रमो रमो अभिराम ।
जैसे धेनु रमें यव वन में
बसें मनुज निज सौख्य सदन में
वैसे ही प्रिय ! मेरे मन में
विहरो तुम अविराम
भक्तों के प्रेमार्त हृदय मे
करो हरे ! विश्राम ॥

—श्री सत्यकाम विद्यालङ्कार

वेदामृत—

निष्पाप जीवन

(१) ओ३म् मह्यं यजन्तु मम यानि-हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु। एनो मा निगां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि-वोचता नः॥ ऋग्वेद १०।१२८।४

(२) ओ३म् प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्। येन विश्वाः परिद्विषो वृणक्ति विन्दते वसु॥ यजुर्वेद ४।२९

(३) अपामीवामपस्रिधमप सेधत दुर्मतिम्। आदित्यासो युयोतना नो अंहसः।
सामवेद पूर्वार्चिक ५।१।७

(४) परोपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि। परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः॥ अथर्व ६।४५।१

शब्दार्थः—(१) (मम यानि हव्या) मेरे जो ग्रहण करने योग्य गुण हैं वे (मह्यं यजन्तु) मुझ में सङ्गत-एकत्रित हो जाएं (मे मनसः आकूतिः) मेरे मन का सङ्कल्प (सत्या अस्तु), सत्यमय हो। (अहम्) मैं (कतमत् च न) किसी भी (एनः) पाप को (मा नि गाम्) न प्राप्त होऊं—न करूं (विश्वे देवासः) हे सब सत्यनिष्ठ विद्वान् लोगो (नः अधिवोचत) तुम हमें उत्तम उपदेश दो जिस से हम ऐसे निष्पाप बनें।

(२) हम (स्वस्तिगाम्) कल्याण और आरोग्य को प्राप्त कराने वाले (अनेहसम्) पाप रहित (पन्थाम् अपद्महि) मार्ग पर चलते रहें। (येन) जिस धर्म मार्ग पर चलने से मनुष्य (विश्वाः द्विषः परिवृणक्ति) सब द्वेष भावनाओं का परित्याग कर देता है और (वसु विन्दते) उत्तम ज्ञानादि ऐश्वर्य को प्राप्त कर लेता है।

(३) (आदित्यासः) हे आदित्य ब्रह्मचारियो वा सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् लोगो! तुम (अमीवाम्) रोग को (अप) हम से दूर करो (स्रिधम् अप) हिंसा को हम से दूर करो (दुर्मतिम् अप) दुष्ट बुद्धि को (अप सेधत) हम से दूर रखो (नः) हमें (अंहसः युयोतन) पाप से सर्वथा मुक्त करो।

(४) (पाप मनः) हे पाप का संकल्प करने वाले मन (परोपेहि) तू हमारे से दूर भाग जा (किम् अशस्तानि शंससि) तू क्यों बुरी बातों का चिन्तन करता वा उनकी प्रशंसा करता है? (परेहि) तू भाग जा (न त्वा कामये) मैं तुझे नहीं चाहता (वृक्षान् वनानि संचर) हे मनुष्य पाप वासना से अलग रहने के लिये तू वृक्षों और वनों के बीच भ्रमण कर (मे मनः गृहेषु गोषु) मेरा मन अपने घर के कर्तव्य पालन तथा गोपालनादि में लगा हुआ है अतः बुरे भावों के चिन्तन का मुझे अवकाश ही नहीं।

ऊपर चारों वेदों से एक २ मन्त्र उद्धृत किया गया है। ये सब मन्त्र बड़े ही महत्वपूर्ण हैं जिन

में जीवन को निष्पाप बनाने का उपदेश है और उसके साधनों का भी प्रार्थना तथा दृढ़ संकल्प रूप से प्रतिपादन किया गया है। मनुष्य तब तक पाप रहित नहीं हो सकता जब तक वह ऐसा बनने का दृढ़ संकल्प न करे। "एनो मा निगां कतमच्चनाहम्" मैं कभी पाप न करूं ऐसी दृढ़ इच्छा प्रत्येक व्यक्ति को सदा धारण करनी चाहिये। केवल शारीरिक पाप से ही पृथक् होने की नहीं किन्तु मानसिक पापों से भी मनुष्य को सदा पृथक् रहना चाहिये इस लिये "आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु' ऐसी प्रार्थना यहां की गई है कि मेरे मन का सङ्कल्प भी सर्वथा सत्यमय हो। सत्य का मन वचन कर्म से जो पालन करेगा वही निष्पाप जीवन व्यतीत कर सकेगा क्योंकि असत्य से बड़ा कोई पाप नहीं और सत्य से बड़ा कोई धर्म नहीं। "नास्ति सत्यात्परो धर्मः, नानृतात्पातकं परम्। "यह सर्व शास्त्र सम्मत सिद्धान्त है जब कभी मन के अन्दर बुरे भाव उत्पन्न हों तो दृढ़ इच्छा शक्ति का प्रयोग कर के उन्हें सर्वथा दूर भगा देना चाहिये। बागों और जंगलों के अन्दर जहां सुन्दर प्राकृतिक दृश्य देखने को मिलें भ्रमण करने और गोपालन गृह सम्बन्धी कर्तव्य पालनादि के अन्दर चित्त को लगाने से भी ऐसे बुरे भावों का दूर किया जा सकता है। सत्यनिष्ठ विद्वानों की सङ्गति जीवन को निष्पाप बनाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे ज्ञानियों से उत्तम उपदेशों को ग्रहण कर के तदनुसार आचरण करने से मनुष्य अपने को पाप रहित बना सकता है। ऋषि दयानन्द जी जैसे आदर्श देव पुरुषों के जीवन चरित्र और स्फूर्तिदायक ग्रन्थ, पढ़ने से भी मनुष्य के अन्दर पापों से ऊपर उठने का बल आ सकता है। अतः ऐसे महात्माओं के जीवन चरित्रों और ग्रन्थ रत्नों को सदा पढ़ते रहना चाहिये। परम पवित्र परमात्मा का श्रद्धा भक्ति पूर्वक सदा स्मरण करना पाप रहित होने के लिये अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि सत्यनिष्ठ ज्ञानी लोग भी उसकी उपासना से ही अद्भुत आत्मिक बल अपने अन्दर धारण करते हैं। इस प्रकार वेदोक्त साधनों को काम में ला कर हम में से प्रत्येक को पाप रहित आदर्श आर्य बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

"धर्मदेव"

समन्वयवादी दयानन्द

(लेखक—श्री पण्डित गङ्गाप्रसाद जी एम. ए. प्रधान संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा)
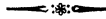
ईश्वर की सृष्टि में समन्वय है। इसीलिए यह सृष्टि चल रही है। मनुष्य विश्लेषण करके चीजों को अलग करता है। परन्तु यदि उन विश्लिष्ट पदार्थों का फिर समन्वय कर देता है तो काम चल जाता है। यदि उसका उद्योग विश्लेषण तक ही सीमित रहे तो काम बिगड़ जाय। एक उदाहरण लीजिये। ईश्वर ने घी, शक्कर, नमक, खटाई, आदि अलग अलग उत्पन्न नहीं किये। दूध में घी भी है और शक्कर भी और कुछ नमक भी। सेब में ये सब चीजें मिली हुई हैं। नारंगी में भी और अन्य फलों में भी। पालक के शाक में अन्यान्य पदार्थों का समन्वय है। मनुष्य ने दूध में से घी निकाला, खारे पानी में से नमक निकाला। चुकन्दर या गन्ने में से चीनी निकाली। परन्तु घी, नमक, चीनी, चूना आदि सब बेकार हैं यदि उनके समन्वय से हलवा, पेडे या समोसे आदि न बनाये जांय। इसी समन्वय का नाम शान्ति है। 'द्यौः शान्तिः' इत्यादि मन्त्र का लोग बहुत ग़लत अर्थ समझते हैं। वह समझते हैं कि ईश्वर से द्यौ और अन्तरिक्ष सम्बन्धी शान्ति की प्रार्थना की गई है। ऐसा नहीं है। पहले दस ग्यारह वाक्यों में 'शान्ति' के पीछे 'अस्ति' शब्द अभिप्रेत है। अर्थात् ईश्वर ने इन सब चीज़ों को 'शान्त' या समन्वित' बनाया है। तभी तो ये सृष्टि के आधार रूप हैं। प्रार्थना केवल अन्तिम वाक्य में है। "सामा शान्तिरेधि' अर्थात् जो शान्ति ईश्वर ने समस्त अन्य पदार्थों को प्रदान की है वह प्रार्थी के हृदय को भी प्राप्त हो।

मनुष्य स्वतन्त्र है। यह ईश्वर-कृत पदार्थों से विश्लेषण करके चीजें अलग करता है। परन्तु उसकी इतनी योग्यता नहीं कि समन्वय कर सकें। समुद्र के जल से नमक तो निकाला जा सकता है परन्तु उससे स्वादिष्ट समोसे बनाना कठिन है। इसीलिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि जो समन्वय सृष्टि भर के पदार्थों में है वह मुझ को भी मिले। अर्थात् ईश्वर मुझे ऐसी योग्यता दे कि मैं आन्तरिक और बाह्य शान्ति का स्वामी बन सकूं।

जिस प्रकार भौतिक पदार्थों का विश्लेषण है उसी प्रकार वैज्ञानिक या दार्शनिक नियमों का भी मानव जाति के नेता भी विश्लेषण करते रहते हैं। इन्हीं को गरमदल या नरमदल के नाम से पुकारते हैं। परन्तु सब से अच्छा नेता वह है जो विश्लिष्ट सिद्धान्तों का समन्वय कर देवे। जो समन्वय नहीं कर सकता वह एकाङ्गी कहलाता है। उसकी शिक्षा किसी विशेष परिस्थिति में तो लाभ कर हो जाती है। परन्तु सर्वतन्त्र नहीं हो सकती। वह उस कच्चे वैद्य के समान है जो कभी कभी अटकल से किसी रोग को अच्छा कर

देता है। परन्तु बहुतों के रोग को बढ़ा भी देता है। ऐसे मूर्ख वैद्य भी संसार में बहुत मिलेंगे और ऐसे नेता भी बहुत।

ऋषि दयानन्द की शिक्षा की विशेषता यह है कि उन्होंने भिन्न २ मतों का समन्वय कर दिया है। इस विषय में एक अच्छा बड़ा ग्रन्थ तैय्यार हो सकता है। परन्तु इस छोटे से लेख में मैं केवल संकेत ही करता हूं।

(१) कुछ लोग केवल चेतनता को देख कर अद्वैतवादी बन गये। कुछ केवल जड़ता को देख कर अनीश्वर वादी। स्वामीदयानन्द ने कहा कि सृष्टि न केवल अभिन्न-निमित्त-उपादान ब्रह्म से बन सकती है न जड़ प्रकृति से। इस लिये पुरुष भी है और प्रकृति भी।

(२) कुछ लोगों ने अविद्या का विश्लेषण कर के जीव के कर्मों पर विचार करते हुए यह माना कि ईश्वर कोई नहीं। जीव ही पर्य्याप्त है। कोई जीव को भी ईश्वर का अंश या रूपान्तर ही मान बैठे। स्वामी दयानन्द ने समन्वय करके बताया कि ईश्वर और जीव सत्ता रूप से एक नहीं।

(३) सगुण ईश्वर और निर्गुण ईश्वर वालों के झगड़े प्रसिद्ध हैं। स्वामी दयानन्द ने सगुण और निर्गुण का वास्तविक अर्थ बता कर झगड़ा समाप्त कर दिया।

(४) सनातनियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को अलग अलग कर के झगड़े का बीज बो दिया। सोशियलिस्टों ने सब को बराबर कर दिया। दोनों ही गरमदल थे। स्वामी जी ने कहा कि आदर्श समाज ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों का समन्वय है।

(५) जीव की स्वतन्त्रता और परतन्त्रता (Free will and determinism) के झगड़े दर्शन ग्रन्थों में भरे पड़े हैं। ऋषि दयानन्द के कर्म-सिद्धान्त में दोनों का समन्वय है। वही कल्याणकारी है। जीव न तो सर्वथा स्वतन्त्र है न सर्वथा परतन्त्र वह कर्म करने में स्वतन्त्र और फल पाने में परतन्त्र है।

(६) पैग़म्बरों के विषय में कितने भयानक झगड़े हो रहे हैं। ऋषि दयानन्द ने इस झगड़े को यों ठीक कर दिया कि आदि गुरु तो ईश्वर ही है। और आदि मानवी गुरु आदि ऋषि। अध्यापक सभी हो सकते हैं और होते रहेंगे। ईसा, मुहम्मद आदि अध्यापक थे और माननीय हैं परन्तु इन पर अन्तिम मुहर नहीं लग सकती। और न इन में से कोई सिफारिश कर सकता है। गुरु (Teacher) और बात है और सिफ़ारिश करने वाला (शफ़ीअ या Mediator) और।

(७) राजावाद और प्रजावाद भी भयङ्कर सीमा पर पहुँच गया है। इसने बहुत बड़ी अशान्ति फैला दी है। ऋषि कहते हैं कि राजा भी रहे और प्रजा भी परन्तु समन्वित होकर।

यज्ञ में प्रायश्चित्त की एक आहुति होती है जिसे स्विष्टकृत आहुति कहते हैं। इसके अर्थों पर विचार कीजिये। सीमा से अधिक करना या अति न्यून करना दोनों पाप हैं। अग्नि स्विष्ट-कृत् है। वह समन्वय करदेती है। ईश्वरभी स्विष्ट-कृत् है क्योंकि वह भी समन्वय करता है। धार्मिक नेता को भी स्विष्ट-कृत् अथवा समन्वयवादी होना चाहिए। शान्ति-स्थापना का यही एक उपाय है।

आर्य समाज का जन्म क्यों हुआ?

(लेखक—श्री बालमुकुन्द मिश्र, साहित्यालङ्कार देहली)

—:※:—

भारतवर्ष की गत शताब्दियों में कई सन्त महात्माओं ने जन्म लेकर भाग्यवाद में पतित भारतवासियों को पुनः आर्य आदर्शों की ओर ले जाने का प्रयत्न किया। यदि उन महान् व्यक्तियों का आविर्भाव उस समय न हुआ होता तो निश्चय ही भारतवर्ष विदेशीय संस्कृति और मतों के प्रचण्ड झञ्झावात से सर्वथा अस्त (व्यस्त) हो जाता। सन्तों की दिव्य वाणियों ने मृतक भारत में पुनः प्राण फूंक दिये थे। उनके उपदेशों ने भूले-भटकों को सन्मार्ग दिखाया। परन्तु कुछ काल के पश्चात् सन्तों की कथित वाणियां हिन्दू धर्म को लुप्त होने से बचाने में असमर्थ सी होने लगीं। साधारण जनता को उन वाणियों से अपने धर्म की दार्शनिकता का बोध न हुआ। शनैः शनैः ईसाई सभ्यता का आक्रमण इस देश पर होने लगा। ईसाई पादरियों ने भारतवर्ष में शिक्षणालय स्थापित करके देश के नवयुवकों पर ईसाई मत का प्रभाव डालना प्रारम्भ किया और मुसलमान भी पुनः जागृत हो तब्लीग की दुन्दुभी बजाने लगे। पुराणों की रहस्यमयी कथाओं की अश्लील और विपरीतार्थता का उल्लेख करके उनके द्वारा हिन्दू धर्म को पशु धर्म प्रमाणित करने की अनधिकार चेष्टा वे करते रहे। अबोध भारतीय पोपों की चेष्टाओं का मर्म न समझ सके। ईसाई मिशनरियों ने क्रिश्चियन मत का उत्कृष्ट स्वरूप प्रदर्शित किया। बहुत से भारतीय, परम्परागत मर्यादा को त्याग करके ईसाई मत में प्रविष्ट होने लगे। इस प्रकार लोग पथ भ्रष्ट होकर अज्ञान और प्रलोभन के वशीभूत होकर अन्धकार में हाथ पैर पीट रहे थे। देश में सनातन धर्म का ह्रास दिनों दिन होता जा रहा था।

अन्धकार के पश्चात् ही प्रकाश का दौर-दौरा होता है। ब्रह्म समाज ने जन्म लिया और भारतवासियों को मार्ग मिला। परन्तु पीछे प्रवर्तक श्री राजा राम मोहनराय की आकांक्षाओं के विरुद्ध इस समाज ने अपनी प्रचार प्रणाली को परिवर्तित कर दिया। फलतः संशयवादिता तथा कुछ अंश तक नास्तिकता ने ब्रह्म समाज को दबा लिया। पश्चिमीय तूफान के प्रवाह में बह कर ब्रह्मसमाज ने अपना ढेर कर लिया। इस समाज से जो देशवासियों को आशा थी, वह पूर्ण न हो सकी। प्राचीन आर्य संस्कृति और भारतीय आदर्शों को पुनः स्थापित करने में ब्रह्म समाज असमर्थ रहा। उस समय वैदिक धर्म पूर्णतया संकट में फँस चुका था। रूढ़ियों की शृंखलाएं भारत-समाज को और गर्त में डुबा रही थीं। भारतीय धर्म का आन्तरिक विकास उस समय सर्वथा रुक सा गया था। आङ्गल सभ्यता के चरण भारतवासी चूमने लगे। भारत समाज की अन्तरात्मा वास्तव में उस समय अत्यन्त पीड़ित थी। विदेशी विचार धाराओं में देशवासी तरङ्गित हो रहे थे। उस समय अति आवश्यकता थी कि

कोई धर्म ग्लानि तथा अधर्म का कड़ा प्रतिकार करने वाला उठे।

संसार में दो प्रकार के वीर पुरुष समय समय पर प्रकट हुआ करते हैं। एक तो वे जो शारीरिक शक्ति के भरोसे देश के उत्थान का प्रशंसनीय प्रयास करते हैं और दूसरे वे जो अपनी विद्या और मेधा शक्ति द्वारा ज्ञान की गंगा के ज्ञानामृत पान से त्रस्त प्राणियों में जीवन या स्फूर्ति पैदा करके देश को समुन्नत करते हैं। सम्वत् १८३१ विक्रम में मछुकाहटा नदी के तटवर्ती टंकारा ग्राम में उस समय औदीच्य ब्राह्मण के यहां द्वितीय प्रकार के एक परोपकारी सुधारक आत्मा का प्रादुर्भाव हुआ। यही बालक बड़ा होकर श्री दयानन्द जी सरस्वती के नाम से जगती पर प्रसिद्ध हुआ। आपने अपनी बुद्धि तथा ज्ञान की पैनी तलवार लेकर मानव-धर्म के सबसे बड़े शत्रु अज्ञानान्धकार तथा प्रचलित रूढ़ियों को विध्वंस किया। वे अपनी शक्ति के अनुसार भारतोदय के मार्ग में देश और जाति की उन बाधाओं की बाढ़, जिनके कारण देश की उन्नति रुकी हुई थी, हटाने लगे। आपने भारत में से उन बुराइयों को मिटाने का बीड़ा उठाया जिनके कारण भारत की सभ्यता सिर ऊंचा करके बैठने में असमर्थ थी। स्वामी दयानन्द ने अपनी गर्जना-तर्जना द्वारा भारत की सोती हुई जाति में हलचल मचादी; जिसके कारण उसे अपनी शताब्दियों की निद्रा से उठना ही पड़ा और भूले हुए सत्य सनातन धर्म का पुनः आश्रय लेना ही पड़ा। स्वामी दयानन्द जी के मैदान में आने से पूर्व भारत देश अन्ध परम्परा की गोद में विश्राम कर रहा था। आदमी जब सोया पड़ा हो उस समय उसे जगाने के हेतु धक्का देते हैं, इधर-उधर हिलाते हैं, परन्तु सोने वाला अपना अपमान नहीं समझता। उन्होंने खण्डन-मण्डन रूपी घोष से घोर निद्रा में पड़े हुए भारत को जगाया। उनकी कृति से लोगों में विवेक बुद्धि की प्रचुरता, हृदयों में आवेश और जातीयता की भावना उत्पन्न हुई।

श्री दयानन्द जी सरस्वती के कार्य क्रम के दो भाग थे। एक रचनात्मक दूसरा पाखण्ड खण्डनात्मक ये ही दो पहलू (दृष्टिकोण) उनके जीवन के प्रोग्राम थे। उनके ग्रन्थों में एक ओर अध्यात्म, आत्मिक उन्नति का अजस्र-मङ्गल-मधुर प्रवाह बहा है तो दूसरी ओर सनातन पथ से दूर अवैदिक मतावलम्बियों का खण्डन है। इसी कार्यक्रम की पूर्ति में स्वामी जी के जीवन के अन्तिम दिन व्यतीत हुए। वह समय ऐसा था कि हम अपने पुरखाओं के कठिन तपस्या द्वारा सञ्चित धन को खो रहे थे। बहुत से हमारे उत्तमोत्तम ग्रन्थ तो सुदीर्घ काल में ही नष्ट भ्रष्ट हो चुके थे और जो शेष थे उन्हें हमने अलमारियों में बन्द करके रख दिया था। उन्होंने बचे हुए ग्रन्थों को सम्भाला और संसार के सम्मुख भारतीय साहित्य की महत्ता का यथार्थ आदर्श पेश किया। स्वामी जी के अनथक परिश्रम के कारण भारतीय संस्कृति का बहुत कुछ भाग नष्ट होने से बच गया। हमारे धर्म-परायण देश की सभ्यता के उद्यान को कोई उजाड़ न सके—इसके लिए आपने अपना सर्वस्व स्वाहा कर दिया। प्रयोजन की पूर्ति के हेतु उन्होंने अपने जीवन की अन्तिम घड़ियों तक प्रयास किया।

महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज

आन्तरिक सुधार की आवश्यकता

(लेखक—प्र० स्वा० धर्मदेव विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली)

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने किस पवित्र और उच्च उद्देश्य से आर्य समाज की स्थापना की यह बात आर्य समाज के नियमों को देखने और 'आर्य' शब्द के अर्थ को भली भांति समझने से स्पष्टतया ज्ञात होती है। आर्य समाज के १० नियमों में षष्ठ नियम में महर्षि ने आर्य समाज के उद्देश्य को इन उत्तम और उदार शब्दों में प्रकट किया था:—

"आर्य समाज का उद्देश्य संसार का उपकार करना है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।" किसी एक ग्राम, नगर, प्रान्त वा देश का ही नहीं किन्तु सारे संसार का उपकार करना। इस से बढ़ कर उच्च और उदारता सूचक उद्देश्य और क्या होसकता है? सन् १८७५ में बम्बई में प्रथम आर्य समाज की स्थापना करते हुए महर्षि दयानन्द ने जो २८ नियम निर्धारित किये थे उन में प्रथम यह था "सब मनुष्यों के हितार्थ आर्य समाज का होना आवश्यक है।"

"सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये।" (नियम सं० ४)

"सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्यासत्य का विचार कर के करने चाहियें।" (नियम सं० ५)

उन्होंने जीवन के प्रत्येक पार्श्व को वैदिकता की आभा से आभासित करने के लिए वाणी और लेखनी के सत् प्रवाह से आर्य जाति को धर्म परायण बनाने में अलौकिक प्रतिभा के साथ सदुद्योग किया उन्होंने अपने व्याख्यानों में और लेखों में वेद की गुणगरिमा प्रसारित की। भारतीय संस्कृति और साहित्य की रक्षा हो इन्हीं बातों पर उन्होंने जोर दिया। उन्हें भारत वर्ष के मूल निवासियों की दशा और अकर्मण्यता का पूरा खेद था। उस विपत्ति से देश को बचाने का उन्हें केवल एक यही उपाय सूझा कि सम्प्रदायों के सब लोग अपने अपने मतों की धारा को त्याग कर यदि वेद के उपासक बन जांय तो झंझट समाप्त हो जाय। वैदिक धर्म के आचार के कुछ तरीके भी स्वामीजी ने अपनी गवेषणा और बुद्धि अनुसार नियुक्त किए। इसी निश्चय को दयानन्द जी ने कार्य रूप में परिणत करके भारतवर्ष में सन् १८७५ में आर्यसमाज की स्थापना की।

श्री स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के वपन किये बीजों के फलों को यदि हम देखें तो पता लगता है कि जो आर्यसमाज किसी समय एक क्षुद्र पर्वतीय नाले के सदृश था आज वह एक महानदी के रूप में मानव धर्म का प्रचार और विश्व में असंख्य प्राणियों का कल्याण कर रहा है।

"सब से प्रीति पूर्वक धर्मानुसार यथा योग्य वर्तना चाहिये। (सं० ७)

"अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।" (नियम सं० ८)

"प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में ही अपनी उन्नति समझनी चाहिये।" (नियम स० ९)

"सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।" (नि० सं० १०)

इत्यादि नियमों की सर्वोपयोगिता और सार्वभौमता तथा उपादेयता में किसी को जरा भी सन्देह नहीं हो सकता। वेदशास्त्रों के अनुसार आर्य शब्द का अर्थ ही ईश्वर का सच्चा पुत्र (आर्यः—ईश्वर पुत्रः निरुक्त) श्रेष्ठ, धार्मिक, सदाचारी, न्यायपथावलम्बी, उदार चरित, शान्त-चित्त कर्तव्य परायण व्यक्ति है ऐसे पुरुषों का समाज ही आर्य समाज बन सकता है। इसी लिये बम्बई में निर्धारित नियमों में महर्षि दयानन्द ने स्पष्ट लिखा था कि:—"इस समाज में सत्पुरुष, सदाचारी और परोपकारी सभासद् बनाये जाएंगे।" (नियम सं० ८)

"इस समाज में प्रधानादि सब सभासदों को परस्पर प्रीति पूर्वक, अभिमान, हठ, दुराग्रह और क्रोधादि दुर्गुणों को छोड़ कर, उपकार और सुहृद्भाव से निर्वैर हो कर स्वात्मवत् सब के साथ वर्तना होगा।" (सं० २२)

"जो मनुष्य इन नियमों के अनुकूल आचरण करने वाला, धर्मात्मा सदाचारी हो उसको उत्तम सभासदों में प्रविष्ट करना, इस के विपरीत को साधारण समाज में रखना और अत्यन्त प्रत्यक्ष दुष्ट को समाज से निकाल ही देना। परन्तु यह काम पक्षपात से नहीं करना, किन्तु ये दोनों कार्य श्रेष्ठ सभासदों के विचार से ही किये जाएं अन्यथा नहीं।" (नियम सं० २४)

इन लगभग ६७ वर्षों में आर्य समाज ने धार्मिक और सामाजिक सुधार, शिक्षा प्रसार तथा लोकोपकार के लिये अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। इस बात से उसके कट्टर विरोधी भी इन्कार नहीं कर सकते। गुरुकुल, स्कूल, कालेज कन्या पाठशाला, कन्या गुरुकुल, अनाथालय, विधवाश्रम, दलितोद्धार सभा, शुद्धि सभा इत्यादि संस्थाओं के द्वारा आर्यसमाज ने भारत की धार्मिक तथा सामाजिक दशा सुधारने का जो प्रयत्न किया वह अत्यन्त अभिनन्दनीय था और वह स्तुत्य प्रयत्न अब भी जारी है किन्तु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यसमाजके प्रशंसनीय कार्य की प्रगति बढ़ाने और महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट उस के उच्च उद्देश्य की पूर्ति के लिये आन्तरिक सुधार की बड़ी भारी आवश्यकता है। कुछ दिन पूर्व की बात है, एक वृद्ध आर्य सज्जन मुझे सुना रहे थे कि आज से ३०, ४० वर्ष पूर्व आर्यों की सत्यनिष्ठता की धाक इतनी जमी हुई थी कि एक मुकदमे में एक यूरोपियन जज ने ११ साक्षियों के विरुद्ध १ आर्यसमाजी की साक्षी को अधिक विश्वसनीय मानते हुए उसके अनुसार निर्णय दिया था पर वही कहते थे कि अब अवस्था बहुत बदल गई प्रतीत होती है। अब अनेक आर्यों के अन्दर सत्यपरायणता के अभाव के कारण उन पर

विश्वास करना भी कठिन हो गया है। स्वर्गीय भक्त फूलसिंह जी के जीवन की इस घटना से कि आर्य समाज में प्रवेश करते ही उन्होंने न केवल रिश्वत खोरी बन्द कर दी बल्कि रिश्वत में ली हुई लगभग ४५००) की राशि को उन्होंने लौटा दिया यह बात स्पष्टतया सूचित होती है कि आर्यसमाज के अन्दर प्रवेश मनुष्यों में किस प्रकार नवजीवन का सञ्चार कर देता था परन्तु दुर्भाग्यवश अब वह सत्यनिष्ठता, विश्वास पात्रता और उच्च नैतिक सदाचारमय जीवन अनेक आर्यों के अन्दर दिखाई नहीं देते। आर्यों के अन्दर पहले जो स्वाध्याय शीलता और धर्म प्रचारार्थ उत्साह था जिस का सब से उत्तम उदाहरण संयुक्त प्रान्त के एक लगभग अशिक्षित आर्य चौकीदार का '५००० वर्षों से सोने वालो जागो' इन शब्दों से रात को पहरा देकर सत्यार्थ-प्रकाश की सैकड़ों प्रतियां बिकवाने और कई स्थानों पर आर्यसमाज की स्थापना कराने का है (जैसे कि श्री महात्मा नारायण स्वामी जी आदि वृद्ध महानुभावों द्वारा ज्ञात हुआ है) उसकी अब न्यूनता प्रतीत होती है। सन्ध्या हवन भजन प्रार्थना स्वाध्याय वैदिक यज्ञ और संस्कार आदि विषयक नियमों का पालन करने वाले आर्य सज्जनों विशेषतः आर्य परिवारों की संख्या सन्तोषजनक नहीं है। वस्तुतः पारिवारिक जीवनों को आर्य बनाने की ओर अब तक पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। यद्यपि यह निश्चित बात है कि जब तक परिवारों के अन्दर वैदिक आचार विचार प्रवेश नहीं कर जाते तब तक कभी वैदिक धर्म और आर्यसमाज का सच्चा प्रचार नहीं हो सकता। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए आन्तरिक सुधार आन्दोलन को जोर से चलाने की आवश्यकता है जिसके निम्न आवश्यक अंग होने चाहिए।

(१) प्रत्येक आर्य पुरुष और स्त्री अपने वैयक्तिक जीवन को अधिक से अधिक पवित्र, सत्यमय और निष्कलंक बनाने का प्रयत्न करे।

(२) पारिवारिक जीवनों को आर्य और वैदिक आदर्शानुकूल बनाने का विशेष रूप से प्रयत्न किया जाए। पारिवारिक सत्संगों की आयोजना की जाए जिनमें परिवारों के सब नर नारी बालक बालिकाएं मिलकर सन्ध्या, हवन भजन, कीर्तन, स्वाध्यायादि करें और वेद की कथा हो। वैदिक यज्ञ और संस्कार शुद्ध रूप में परिवारों में प्रचलित हों न कि पौराणिक और वैदिक विधियों की खिचड़ी पकाई जाय जैसे कि आज कल प्रायः किया जाता है। प्रत्येक परिवार में इसी प्रकार प्रातः व सायंकाल सब नर-नारी बालक बालिका मिलकर प्रेम से सन्ध्या, हवन भजन कीर्तन स्वाध्याय करते हुए वैदिक वायुमण्डल बनाने का पूर्ण यत्न करें। प्रत्येक गृहस्थ सज्जन एक पत्नीव्रत और आर्यदेवी पतिव्रता का शुद्ध आदर्श स्थापित करे

(३) आर्यों का सामाजिक जीवन भी ऐसा पवित्र हो कि उनकी सत्यनिष्ठता, प्रेम, त्याग सेवा तथा परोपकार भावना से सब स्वयं प्रभावित होकर आर्यसमाज के प्रति आकर्षित हों। आर्यसमाज के साप्ताहिक सत्संगादि का कार्यक्रम ऐसा हो जो श्रोताओं के लिए स्फूर्तिदायक और नवीन दिव्य जीवन संचारी हो जो सभी उपस्थित

है जब कि केवल पूर्ण सदाचारी वेदज्ञ विद्वानों को ही वेदि से बोलने का अधिकार दिया जाए और भजनादि द्वारा भक्ति का सच्चा वायुमण्डल उत्पन्न किया जाय। आर्यसमाजों के अधिकारी वही चुने जांय जो न केवल आर्य सिद्धान्तों के ज्ञाता और वैदिक धर्म के प्रचार की लगन रखने वाले हों किन्तु जो तन, मन, धन, से वेद की पवित्र आज्ञाओं का पालन करने वाले हों। केवल संख्या वृद्धि के लिए प्रयत्न न करते हुए सभासदों की गुण वृद्धि की ओर विशेष ध्यान दिया जाय।

(४) जन्ममूलक जातिभेद और अस्पृश्यता का का क्रियात्मक आचरण द्वारा विरोध करने का साहस आर्यों के अन्दर हो। जात पांत तोड़कर विवाहादि सम्बन्ध किए जांए केवल गुण कर्म स्वभाव देखकर ही विवाह सम्बन्ध निश्चय किया जाए। शुद्ध हुए व्यक्तियों के साथ समानता और प्रेम का व्यवहार किया जाय अन्यथा शुद्धि आन्दोलन कभी यथार्थतया सफल नहीं हो सकता।

(५) वेदों के स्वाध्याय और उनके अनुसार आचरण करने की ओर अतिविशेष ध्यान दिया जाए।

(६) प्रत्येक आर्य नर नारी के अन्दर कम से कम इतनी देशभक्ति अवश्य हो कि वह राष्ट्रभाषा (हिन्दी) का अच्छा अभ्यास करे। शुद्ध स्वदेशी वस्त्रों और यथा सम्भव अन्य सब स्वदेशी वस्तुओं के ही प्रयोग का व्रत ले। इस प्रकार करने से आर्य समाज अपने उच्च उद्देश्य की पूर्ति में अधिक सफल हो सकेगा, इसमें सन्देह नहीं।

दिव्य दर्शन

[ले० श्री "विकल"]

—:※:—

ऋषि दयानन्द

वेदों का प्रकाश कर, धर्म का बताया मर्म,
पल मे नसाई घटा, छाई छल छद की।
भाड़ में शिकार सब, फासना ही भूल गये,
काटीं जब डोरिया अधर्मियों के फद की ॥
पतित अनाथ हित, तूने ही बढ़ाये हाथ,
खोये अभिमानियों की, मनमानी बद की।
देश की स्वतन्त्रता का, फूक गया गुरु मत्र,
"विकल" थी दिव्य ज्योति, दिव्य दयानन्द की ॥

स्वर्गीय तिलक

है स्वराज जन्म सिद्ध, अधिकार भारत का,
जपता हमेशा मत्र, देश अभिमानी था।
करदी प्रचण्ड ज्वाला, तूने ही स्वतन्त्रता की,
झोंका सर्वस्व वीर दानी महा दानी था ॥
कर्म वीर तेरा ही था, एक मात्र सेवा धर्म,
गीता ज्ञान गौरव का, तू ही गम्य ज्ञानी था।
देश का दुलारा और, सर्वस हमारा भव्य,
भारत के भाल की तिलक ही निशानी था ॥

स्वामी श्रद्धानन्द

शिव औ दधीच से भये तो कहा दानी भये,
हेर कर हारे कर्ण बलि अभिमानी भी।
करके प्रयत्न थके, हर चन्द हरिश्चन्द्र,
बेच पुत्र रानी हाय, भरा नित पानी भी ॥
ऐसा न दिया है नहीं, दे हैं नहीं देगा कोई,
विश्व में हुआ न और होगा कोई दानी भी।
"विकल" श्रद्धा का वार, पार ना श्रद्धा के नन्द,
पानी के पिलाने में पिलाई जिंदगानी भी ॥

कवीन्द्र रवीन्द्र

शान्ति निकेतन के शान्त स्वावलम्बी सत,
शुचि सौम्य साहस सुरस सरसा गये।
जीते जागते ये जगती मे ज्यों सजीवन हो,
जीवन में जीवन की ज्योति को जगा गये ॥
दासता विलासता कुवासता को नासता के,
राष्ट्रता के 'विकल' पताके फहरा गये।
गुरुदेव। भारत के गौरव रवीन्द्र नाथ,
कविता की सरिता को विश्व में बहा गये ॥

श्री० मालवीय जी

हिन्दू विश्व विद्यालय, नित गुण गान करे,
सुयश पताका शुभ, उसी निर्धनी की है।
'विकल' विभूति भव्य जीती जागती है ज्योति,
त्यागी कर्म वीर धीर सम्मति सभी की है ॥
हिन्दी का हितैषी धर्म हिन्दू का हिमायती है,
माथे पै सुबिन्दी रज हिन्द अवनी की है।
विश्व वदनीय पूजनीय प्रातदर्शनीय,
लोक माननीय मूर्ति मालवीय जी की है ॥

[—महा पुरुषों की प्रशंसा में ऐसी ही कवितायें पढ़नी हों तो 'दिव्य दर्शन' पुस्तक मगाइये पाकेट साइज, पृष्ठ १०० मूल्य ।=) मॉं मन्दिर मंडी धनौरा मुरादाबाद यू० पी० ।]

———

"आर्य व्यापार-मंडल और बैंक"

(लेखक —श्री टी० एस० कौशिक, कोल सप्लायर दमोह, सी० पी०)

आर्य-समाज एक जीती जागती संस्था है। जिस काम को उसने अपने हाथ में लिया उसको प्रत्यक्ष कार्य रूप मे परिणत कर दिखाया। यदि किसी सार्वजनिक संस्था में एक भी आर्य पुरुष रहता है तो वह उस संस्था को सच्ची लगन के साथ लगातार चलाकर सफलीभूत कर दिखाता है। ऐसे बहुत कम उदाहरण मिलेंगे कि सार्वजनिक संस्थायें आर्य पुरुषों के होते असफल रही हों। इसके ही कारण आर्य समाज का गौरव और विश्वास जनता को है। स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह, शुद्धि, दलितोद्धार, मातृ-भाषा, भारतोद्धार, जातीय संगठन, गौ रक्षा, अनाथालय, वाचनालय, भ्रातृ भाव मद्य मांस निषेध, सामाजिक कुप्रथाओं का दूर करना आदि जितने कार्य आर्य समाज ने शुरू किये वे धीरे धीरे सब सनातन अर्थात् हिन्दू जाति और देश सभाओं ने अपना लिये हैं। अब आर्य समाज के लिये वेद प्रचार तथा ईश आराधन में उन्नति करने कराने के अतिरिक्त एक और जटिल अत्यावश्यक समस्या का हल करना रह गया है और वह सर्व जन साधारण हितार्थ शिल्पकारी अर्थात् पदार्थ विज्ञान की ओर भी ध्यान देना उतना ही आवश्यक है जितना कि पहला। कालिज और गुरुकुल आदि से निकले हुए विद्वानों को भी जो साइन्स (पदार्थ विज्ञान) आदि विद्याओं की ओर रुचि रखते हैं वह भी पर्याप्त साधन बाहर न मिलने से उदर पूर्ति के हेतु (मजबूरन) बाध्य होकर उपदेशकी वकालत डाक्टरी, वैद्यक, सम्पादकी, अथवा नौकरी की शरण लेनी पड़ती है। दूसरी ओर हजारों आर्यों को उदर पोषणार्थ अन्य लोगों की सेवा करनी पड़ती है और इस पर भी बहुधा बेकार बेरोजगार ही फिरते रहते हैं।

यदि आर्य समाज सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की आधीनता मे एक केन्द्रीय "आर्य व्यापार मण्डल, आर्य बैंक, तथा आर्य शिल्पालय" स्थापित कर उसके आधीन भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में वह धीरे धीरे शाखायें खोलती चली जाय तो अनगिनत आर्यों के लिये इन संस्थाओं में से रोजगार निकल कर उनका उदर पोषण होने लगे और अन्य लोग भी जो आर्य समाज मे केवल इस रुकावट से नहीं आ सकते कि उनका उदर पोषण किसी दूसरे ही के कारण चल रहा है आर्य समाज की ओर आकर्षित हो सकेंगे।

कई विद्याओं मे निपुण (माहिर) विद्वान् जो आर्य संस्थाओं के साधन न होने के कारण दूसरी जगह काम कर रहे हैं। अगर आर्य समाज के पास साधन हों तो वे केवल निर्वाहार्थ ही वेतन लेकर अपनी सेवायें देने को तैयार मिलेंगे। यह सब कार्य उस ही समय हो सकता है जबकि भारत के सब आर्य व्यापारी मिलकर एक आर्य व्यापार मण्डल स्थापित कर व्यापार को उन्नति देते हुए आर्य समाज को धनवान् बनावें। वे

व्यापारी जहां अन्य संस्थाओं के स्थापनमें सहायता देते हैं वहाँ इसकी स्थापना द्वारा उनको और उनके परिवारों को भी लाभ पहुँचेगा। इस मण्डल द्वारा व्यापारियों के परस्पर सहयोग से प्रत्येक व्यापारी की उन्नति तो अवश्य निःसन्देह होवेगी ही। आर्य व्यापापार का आदर्श भी संसार में स्थापित हो सकेगा किन्तु इसकी सहायतार्थ एक "आर्य बैंक" इसके साथ साथ अवश्य होना चाहिए जिससे कि व्यापार मण्डल को समय समय पर आर्थिक सहायता मिल सके "आर्य व्यापार मण्डल" को स्थापित करके सबसे पहिले इसको एक आर्य बैंक का काम अपने हाथ में लेना पड़ेगा और उसकी नींव बड़ी आसानी से पड़ सकती है। (आरम्भ में प्रत्येक आर्य हजारों व्यापारी, किसान, वकील, डाक्टर, मजदूर, नौकर पेशा, सब गृहस्थी आदि जो अपना रुपया सेविंग बैंक, अन्य बैंकों, बीमा कम्पनी, तथा अन्य जगहों पर रखते हैं उनमें से अनेक हर्ष पूर्वक अपना धन आर्य बैंक में जमा कर सकेंगे। इनकी पूंजी से इस समय अन्य ही लाभ उठा रहे हैं। यदि सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अधीन आज आर्य समाज का एक भी विश्वसनीय "सार्वदेशिक आर्य बैंक" होता तो कोई आर्य अपना रुपया दूसरे बैंकों में न रखता। इस विषय पर योजना (स्कीम) कार्य रूप में परिणत करने के लिये फिर किसी समय पर आवश्यकतानुसार उपस्थित करूँगा। इस रुपए से समय पर न केवल शिल्प शालाओं को सहायता मिलती अपितु आर्य व्यापारियों और स्वयं आर्य समाज और उसकी अधीनस्थ संस्थाओं को आर्थिक लाभ पहुँचता। और इसके द्वारा हजारों व्यक्तियों का पालन पोषण हो सकता तथा सब आर्यों का धन भी सुरक्षित रहता। सार्वदेशिक आ० प्र० नि० सभा के अधीन ऐसी एक शाखा की अत्यन्त आवश्यकता है कि जो इस भांति के एक व्यापार मण्डल और आर्य बैंक की स्थापना करे। आशा है कि आर्य समाज के प्रतिष्ठित नेता, बड़े व्यापारी गण इस विषय की ओर ध्यान देकर इस को कार्य रूप में परिणत करने का प्रयत्न करेंगे। यदि इस से पहिले किसी महानुभाव ने इस पर विचार किया हो तो वह अन्य महाशय मन्त्री सा० आ० प्र० नि० सभा देहली के पास, या लेखक के पास अपने विचार लिख भेजें। जहां तक मुझे याद पड़ता है निःसन्देह एक प्रयत्न लखनऊ के एक महाशय ने आर्य-परिवार मण्डलके नामसे स्थापित करनेके लिये किया था और उसके [illegible] ५) रु० प्रति व्यक्ति की मांग की थी। मेरा अनुमान है कि उसकी सूचना सारे भारत के आर्य पुरुषों तक नहीं पहुँची होगी। सम्भवतया इसी कारण बन्द होगया। (शेष फिर)

[हमने इस लेख को आर्य जनता के विचारार्थ प्रकाशित किया है। अनुभवी आर्य व्यापारी इस विषय में गम्भीर विचार करके कि यह योजना कहां तक क्रियात्मक हो सकती है सार्वदेशिक सभा को सूचित कर सकते हैं। सम्पादक]

हिन्दी-लतिका

[श्री उमाकान्त गुप्त "किरण" सि० शास्त्री, M.A.M.S. आयुर्वेद विशारद, गोगरी]

हम स्नेह सलिल से सींच सींच, हिन्दी-लतिका पनपाते हैं ॥

हम विहार नन्दन कानन में,
नगर नगर आल बाल में,
घूम घूम कर, झूम झूम कर,
हिल मिल जुल कर साल साल में,

निज श्रद्धाञ्जलि चढ़ा चढ़ा कर, भक्ति भाव बरसाते हैं ॥
हम स्नेह सलिल से सींच सींच, हिन्दी-लतिका पनपाते हैं ॥

फिर बन कर विहंग उस बन के,
बल्लरियों की डाल डाल में,
फुदक फुदक कर, चहक चहक कर,
अरुण 'किरण' की रश्मि जाल में,

उस लतिका की हृतन्त्री को, बार बार झनकाते हैं ॥
हम स्नेह सलिल से सींच सींच, हिन्दी-लतिका पनपाते हैं ॥

फिर ऋतु राज वसंत कभी जब,
महफिल साज सजाते हैं,
बन उनके अनुचर हम अपना,
अपना साज बजाते हैं,

उस लतिका की स्वर-लहरी को, ही गीतों में गाते हैं ॥
हम स्नेह सलिल से सींच सींच, हिन्दी लतिका पनपाते हैं ॥

कभी बैठ इस रम्य विपिन में,
हम योगी बन जाते हैं,
अपनी कल्पना वेदि पर,
धुँधली धुनी रमाते हैं,

बेसुध होकर बीच बीच में, अविकल अलख जगाते हैं ॥
हम स्नेह सलिल से सींच सींच, हिन्दी-लतिका पनपाते हैं ॥

अभी अभी तो किसलय ही है,
किसलय से कलियाँ होंगी,
कलियों से फिर कुसुम कुसुम में,
मीठी रंग रलियाँ होंगी,

इसी लिये तो लिये हृदय हम, मधुप बने मंडराते हैं ॥
हम स्नेह सलिल से सींच सींच, हिन्दी-लतिका पनपाते हैं ॥

परीक्षा व्यवस्थापकों से निवेदन

१. व्यवस्थापक महोदयों को चाहिए कि परीक्षा फल घोषित होते ही आगामी परीक्षा के लिए आवेदन पत्रादि मँगा लिया करें और अध्ययन कराते समय इन परीक्षार्थियों की त्रैमासिक परीक्षा ले लेनी चाहिए जिससे छात्रों के अध्ययन का ज्ञान हो सके।

२. वैदिक धर्म में विशेष रुचि रखने वाले छात्रों को किसी स्थानीय संस्था की ओर से पारितोषिक तथा छात्र वृत्ति देकर उत्साहित करने की भी बड़ी आवश्यकता है।

३. किसी संस्था के छात्रों के अधिक संख्या में अनुपस्थित होने से ज्ञात होता है कि उस संस्था के कार्यकर्त्ताओं का लक्ष्य जितना वैदिक धर्म की ओर होना चाहिए उतना नहीं है। संस्थाओं में इस ओर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है। कार्यकर्ता महोदय यदि इस ओर थोड़ा सा भी ध्यान देने की कृपा करें और छात्रों को इन परीक्षाओं की ओर आकर्षित करें तो छात्र परीक्षा से अनुपस्थित नहीं रह सकते।

४. ग़रीब छात्रों के लिए परीक्षाओं की पुस्तकों का प्रबन्ध स्वयं कर दें या किसी अन्य सज्जन से करा देना चाहिए।

५. परीक्षा से पहले छात्रों को परीक्षा के नियम तथा उत्तर आदि लिखने का ढंग बता देना चाहिए।

६. परिषद् परीक्षा बोर्ड की फाइल अलग बना लेनी चाहिए।

७. परीक्षा प्रतिवर्ष करानी चाहिए। परीक्षा का क्रम टूटने से परीक्षा का महत्व नहीं रहता और छात्रों की रुचि परीक्षा की ओर से हट जाती है।

८. जो आवेदन पत्र बिना शुल्क के कार्यालय में आवेंगे उनको तब तक स्वीकृत नहीं किया जा सकेगा जब तक कि उनका शुल्क न आ जाएगा।

९. इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाय कि जो परीक्षार्थी एक समय में एक ही परीक्षा दे सकेगा, दो परीक्षाओं के आवेदन-पत्र एक परीक्षार्थी से नहीं भरवाने चाहिए।

व्यायाम-संजीवनी

(लेखक—प० देवबन्धु विद्यालङ्कार सहायक मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी)

—:():※:():—

यह पुस्तक लेखक ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें सब प्रकार के व्यायाम, जिन से मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा हो सकती है, चित्रों सहित दिए हुए हैं। किस प्रकार व्यायाम करना चाहिए, कितनी देर करना चाहिए, किन लोगों को किस प्रकार का व्यायाम करना चाहिए और किस २ परिस्थिति वाले मनुष्य किस प्रकार का व्यायाम न करें यह सब इस अमूल्य पुस्तक में बताया गया है। थोड़ा समय मिलने वाले, जैसे क्लर्क आदि भी सुविधा पूर्वक तथा समयानुसार इन असाधारण व्यायामों को कर के अपने शरीर को हृष्ट-पुष्ट बना सकते हैं। पुस्तक का मूल्य केवल ।।।) आने है जिस में सवा सौ पृष्ठ हैं। यदि आप भी अपना शरीर स्वस्थ और सुन्दर देखना चाहते हैं तो लिखिए।

मन्त्री—प्रकाशन विभाग
भारतवर्षीय आर्य्य कुमार परिषद्
दीवान हाल दिल्ली

१०. जिस परीक्षार्थी ने आवेदन पत्र भरा है। केवल वही परीक्षा में सम्मिलित हो सकेगा। उसके अनुपस्थित होने पर किसी अन्य छात्र को बिठाने का नियम नहीं है।

आशा है व्यवस्थापक महोदय उपरोक्त बातों पर विशेष ध्यान देने का कष्ट करेंगे।

देवव्रत धर्मेन्दु
परीक्षा मन्त्री

नए शहरों में केन्द्र

जो भाई बहिनें इन परीक्षाओं में सम्मिलित होने के उत्सुक हों और उन के नगर में अभी तक उन परीक्षाओं का केन्द्र न हो उन्हें कार्यालय से छपा हुआ केन्द्र स्थापना फार्म मँगा लेना चाहिए और प्रयत्न करके अपने नगर में थोड़े बहुत अपने साथी या किसी भी परीक्षा के परीक्षार्थी तैयार कर केन्द्र स्थापित करा देना चाहिए। फार्म बिना मूल्य प्राप्त हो सकेगा।

एकादश
विहार प्रान्तीय आर्य्यकुमार सम्मेलन

प्रान्त की समस्त आर्य्यकुमार सभाओं को विदित हो कि आगामी सम्मेलन नवम्बर मास में न हो कर दिसम्बर मास के तृतीय सप्ताह में, स्वागत कारिणी समिति के निश्चयानुसार, होना निश्चित हुआ है। सभापति के लिए प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० से प्रार्थना की गई है। निश्चित तिथि की सूचना शीघ्र दी जायगी। सम्मेलन की तैयारी खूब जोरों से हो रही है।

उमाकान्त गुप्त "किरण"
स्वागत मन्त्री,

शंका-समाधान

अक्तूबर १९४२ के सार्वदेशिक में विद्या-अविद्या शीर्षक लेख में पूज्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास ९ के आरम्भ में परिवर्तन की आवश्यकता का प्रश्न उठाया है। उस के विषय में प्रशस्त स्वामी जी से पुनः विचार करके इस प्रश्न को वापस लेने की प्रार्थना करता हुआ निम्न लिखित पंक्तियां आर्य्य जनता की भेंट करता हूँ।

१—महर्षि ने विद्या अविद्या, बंध और मोक्ष विषय में यजु० अ० ४० मं० १४ को परमोपयोगी समझा और सर्व प्रथम लिखा है।

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयꣳ सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते॥

दूसरी पंक्ति वाले अविद्या शब्द से महर्षि ने कर्मोपासना का ग्रहण किया है और इसके पश्चात् योग दर्शन का प्रमाण उद्धृत करके विद्या और अविद्या का लक्षण पेश किया है। परन्तु इस लक्षण में कर्मोपासना का शब्द न आने से स्वभावतः शंका का समाधान करना पड़ा तो आप ने स्पष्ट लिखा, कर्मोपासना अविद्या इस लिये है कि यह बाह्य और अन्तर किया विशेष है ज्ञान विशेष नहीं। यह निर्विवाद है कि शंका उठने पर ही निवारण होना चाहिये अतः स्वामी जी को योग सूत्र के पीछे ही यह शब्द लिखने थे, इन्हें किसी और जगह ले जाना ठीक नहीं। २—यह याद रहे कि विवादास्पद वेद मंत्र में विद्या और अविद्या का स्वरूप लक्षण नहीं दिया गया उनका फल बताया गया है। पूर्व मन्त्र में कहा गया विद्या का फल और है अविद्या का और, धीर पुरुष ऐसा ही सुनाते हैं। सो वह फल क्या है? इसका उत्तर इस मंत्र में है कि अविद्या का फल है मृत्यु को तरना और विद्या का फल है अमृत या मोक्ष। इस दृष्टि कोण से योग सूत्रों से मंत्र की तुलना या पंच क्लेशादि की बहस यहां अनावश्यक है। ३—मंत्र में यह सिद्धान्त समझाया गया है कि विद्या और अविद्या दोनों का ज्ञान हो, न केवल विद्या का, न केवल अविद्या का, इस लिये कि १२ वें मन्त्र में केवल एक के ज्ञान को घोर दुःख का कारण बताया है।

वैदिक साहित्य में परा अपरा, परोक्ष प्रत्यक्ष सत्यासत्य, धर्माधर्मादि द्वन्द्व वर्णित हैं। उन सब के भीतर विद्या अविद्या नाम दो शब्दों की under current ही काम करती है। जो मनुष्य सत्यासत्य, खरा-खोटा दोनों प्रकार का ज्ञान नहीं रखता वह सत्य के नाम पर असत्य को ग्रहण कर सकता है और स्वर्ण के स्थान में चमकता हुआ मुलम्मा खरीद बैठता है। इसी प्रकार ब्रह्म और प्रकृति का ज्ञान एक साथ न हो तो प्रकृति से विभक्त होना तथा ब्रह्म की प्राप्ति करना असम्भव है। इस दृष्टिकोण से भी योग दर्शन वाले लक्षण तथा व्याख्यादि से वेद मन्त्र के शब्दों की तुलना करना विषयान्तर में जाना है। ४—महर्षि ने अपने वेदभाष्य में विद्या से विद्या और उसके सम्बन्धी साधन उपसाधनों का और अविद्या से

अविद्या और उसके उपयोगी साधन समूह का अर्थ लिया है और साथ ही इन शब्दों को स्पष्ट करने को लिखा है कि शरीरादि के सब साधन समूह से किये पुरुषार्थ से मरण दुःख के भय को उल्लङ्घन करना अविद्या है और आत्मा और शुद्ध अन्तःकरण के सयोग वाले धर्म से उत्पन्न हुए यथार्थ दर्शन को विद्या कहा है। यह एक गहन विषय है और इस पर भली भांति मनन करने पर अर्थापत्ति से सिद्ध होता है कि योग सूत्र वाला लक्षण (अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा, में नित्य, शुचि, सुख और आत्मा को मानना यथार्थ दर्शन के अभाव रूप अविद्या के ही अन्तर्गत है तथा सांख्य दर्शन का विपरीत ज्ञान और प्रशस्त स्वामीजी का माना हुआ अल्प ज्ञान सब वेदोक्त अविद्या के अन्दर ही हैं। यथार्थ दर्शन रूप विद्या से भिन्न सब कुछ अविद्या में है जैसे १०० मील दूर नगर में पहुंचने के लिए कुछ पग शेष रहने पर भी मनुष्य मार्ग में ही है। वैसे ही पवित्र से पवित्र कर्मोपासना भी अविद्या में ही है। सार यह है कि वाद विवाद की कोई भी शैली जिससे वेद तथा शास्त्र के किसी पारस्परिक अन्तर का संकेत मिले, यथार्थ स्थिति को दिखला नहीं सकती तथा सत्यार्थ प्रकाश के ६ समुल्लास के आरम्भ में परिवर्तन होने के लिए कोई कारण मौजूद नहीं।

लक्ष्मण आर्योपदेशक देहली।

पहले राज फिर सब काज

(ले०— श्री ब्रह्मप्रकाश जी, विद्यावाचस्पति, आयुर्वेद शास्त्री, पुरोहित आर्यसमाज सरदारपुरा, जोधपुर)

मैं अपने इस छोटे से लेख में आर्यजनता, आर्यसमाजों तथा आर्यनेताओं के सम्मुख अपने कुछ स्वतन्त्र विचार तथा सुझाव रख रहा हू जो कि प्राय कुछ नवीन तथा आश्चर्योत्पादक सिद्ध हों। परन्तु इतने पर भी यह प्रार्थना करूंगा कि अपने को सत्यप्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द का अनुयायी मानकर सद्धर्म प्रचार की तात्त्विक बाधाओं पर गम्भीर विचार करें।

पाठक गण। आपकी ही भांति मैंने भी एक दृढ़ आर्यसमाजी घराने में जन्म लिया है। मैं आर्य हूं, वेद हमारा धर्म है, और ऋषि दयानन्द हमारे गुरु हैं व उनके ऋण से उऋण होने के हेतु हमारा परम कर्तव्य है कि हम दूसरों को भी वैदिक धर्म की शिक्षा और दीक्षा दें और सारे संसार को ही एक दिन आर्य धर्म का अनुयायी देखें। ये सब सुन्दर भावनाएं जो कि एक ऋषि भक्त के हृदय में प्रविष्ट होनी चाहिएं, मेरे भी इस हृदय में किसी न किसी रूप में विद्यमान हैं।

ओह। परन्तु मुझे दुःख है कि मैं जिन अपनी बलवती सुभावनाओं का बड़ी उत्सुकता से साक्षात्कार करना चाहता था आज वे सब मेरे मनोरथ और मनोकामनाएं मिट्टी में विलीन होकर भूगर्भ के अन्तस्तल में समायी जाकर स्वप्न की एक रेखामात्र सी रह गई हैं।

यह क्यों। क्या इतने में ही घबरा गए आर्य तो धैर्यवान् होते हैं। धर्म के पहले लक्षण का भी क्या पालन नहीं कर सकते। घबराओ नहीं, तुम्हारी सब मनोकामनाएं पूर्ण होंगी। अपनी प्रतिनिधि सभाओं तथा अपने पूज्य आर्य नेताओं के आदेश का पालन करो। देश में फैली हुई कुरीतियों का निवारण करो। बाल, वृद्ध, तथा वृद्ध विवाहों को रोको, विधवा विवाह कराओ और अछूतोद्धार का खूब प्रचार करो। देखो यदि इन सामाजिक सुधारों पर बल दोगे तो अवश्य ही तुम्हारा उद्देश्य सफल होगा; परन्तु ध्यान रहे कि किसी राजनैतिक विषय पर न बोलना, क्योंकि आर्यसमाज एक विशुद्ध धार्मिक संस्था है।

"परन्तु इस स्वतन्त्रता के युग में क्या मैं पूछ सकता हूँ कि हमने बाल, वृद्ध, वृद्ध, विधवा विवाहों तथा अछूतोद्धार व अन्य कुरीतिनिवारणार्थ क्या कुछ नहीं कर दिखाया है? यहां तक कि हमारे माननीय शारदा जी ने तो बाल विवाह निरोधक ऐक्ट भी पास कराया परन्तु सत्य तो यही है कि पहले राज फिर सब काज

भला यह विदेशी राज्य जिसका कि दारोमदार ही उपर्युक्त कुरीतियों की आड़ में भारतीयों को अशक्त निर्बीर्य और भीरु बनाने में है अपने जीते जी क्या कहीं तुम्हारी इन मनः कामनाओं को पनपने देगा? अब अछूतोद्धार को ही ले

जीविपण हमें उसमे किस दशा तक सफलता मिली है। इसका एकमात्र कारण पराधीनता वश उनकी आर्थिक दशा की हीनावस्था हा उनके सुधार में बाधक है, क्योंकि उनका अधिकाश भाग तो ऐसा है कि जिसे एक समय भी भर पेट रोटी नहीं मिलती और उनकी पानी तक की समस्या भी नहीं सुलझ पाती। तन के कपड़ों का तो कुछ वर्णन ही नहीं किया जा सकता। कुछ तो लगोटी लगाये नंगे हो फिरते हैं और कुछ के बदन पर पुराने जमाने का सड़ा गला फटा हुआ कुर्ता है। ऐसी दशा में वे बेचारे अपना क्या सुधार और उद्धार करें?

उत्तर भारत के अधिकाश जिलों में जो कि आर्यसमाज के गढ माने जाते हैं और जहा पर आर्यसमाज के उपदेशकों तथा भजनीकों ने अपनी अथाह वाक्शक्ति द्वारा शास्त्रार्थों व व्याख्यानों से सत्यार्थ प्रकाश के सिद्धान्तों को गुञ्जायमान कर दिया है हृदय पर हाथ रखकर देखिये आज वहा की क्या दशा है? क्या वहा अब केवल सूखी और नीरस नमस्ते ही नहीं रह गयी है। वास्तव में तो इसकी भी जड़ में केवल विदेशियों का ही राज्य है न। क्योंकि बेचारे किसान जो कुछ वर्ष में दो बार अपने अनथक परिश्रम से पैदा करते हैं, लगभग उसका आधा भाग तो व्याघ्र या व्याध की नाई तड़पती हुई यह भूखी सरकार ही छीन लेती है और कुछ उनके सेठ साहूकार भी अपना ब्याज बट्टा लगाकर सरकार की ही सहायता से उनकी कुड़की करा लेते हैं। बस बचा-खुचा एक चौथाई भाग ही उनके परिवार की उदरपूर्ति का साधन रह जाता है। पशु पालन के द्वारा जो कुछ घी या दूध उत्पन्न करते हैं उसे ज्यों का त्यों शहर में आकर बेच आते हैं, और अपने आप सूखी रोटी और प्याज या नमकीन रोटी और छाछ व सरसों आदि के सागपात से ज्यों त्यों कर के अपना पेट भरते हैं।

इस की तह में यही तो निकला न कि 'भूखे भजन न होय गोपाला, लो यह अपनी कठी माला।' आर्य समाज ने अपने सराहनीय पुरुषार्थ से उन्हें वेदशास्त्र और सत्यार्थप्रकाशादि कठी मालायें प्रदान कीं और उन्होंने सहर्ष स्वीकार भी कीं, परन्तु उपर्युक्त राजनैतिक कठिनाइयों से विवश हो कर यज्ञसूत्रों को खूटी पर टागना प्रारम्भ कर ही दिया, और अब केवल नमस्ते ही शेष बची है और वह भी सूखी क्यों कि बिना स्वराज्य उस में सरसता आ ही नहीं सकती।

बस अब मैं विस्तार भय से अधिक न लिख कर आर्य समाजों तथा आर्य नेताओं की सेवा में सविनय प्रार्थना करता हू कि अपने उद्देश्य में बाधक इन कठिनाइयों पर जो कि अनेकों मे से केवल उदाहरणार्थ कुछ एक लिखी हैं—निष्पक्षता से विचार कर के अपना भावी कार्यक्रम निर्धारित करें। इस विषय को विस्तार के साथ सरलता से समझने के लिए भाई सत्यदेव जी विद्यालङ्कार लिखित राष्ट्रवादी दयानन्द नामक पुस्तक का मनन करें। यजुर्वेद के प्रथमाध्याय के छठे मन्त्र की व्याख्या करते हुए महर्षि लिखते हैं कि—

मनुष्यैर्द्वाभ्या प्रयोजनाभ्या प्रवर्त्तितव्यम्। प्रथममत्यन्तपुरुषार्थशरीरारोग्याभ्या चक्रवर्त्ति राज्यश्री प्राप्तिकरणम्। द्वितीय सर्वाविद्या

पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारीकरणम् । अर्थात् मनुष्यों को इस ससार में दो प्रयोजन लेकर प्रवृत्त होना चाहिए। सर्व प्रथम अत्यन्त पुरुषार्थ से शरीर को स्वस्थ रख कर वे ही चक्रवर्ति राज्य रूपी लक्ष्मी को प्राप्त करें और इस के सिद्ध होने पर सब विद्याओं को पढ़कर उनका सब देश-देशान्तरों में प्रचार करें। इस का सरलार्थ यही है कि जो साधन संपन्न व्यक्ति हैं वे पूर्णतया अपनी व अपने सदृश लोगों की शारीरिक उन्नति करें, और फिर सब एक सूत्र मे बंधकर अपनी शक्ति के द्वारा अन्यायी और अत्याचारी शासनों का पूर्ण रूप से विरोध कर के प्रथम प्रजातन्त्र और फिर चक्रवर्ती राज्य श्री को प्राप्त करें। इस से वेद या विद्यादि के प्रचार की सब बाधायें जो कि इस लेख में वर्णित हैं हल हो जायेंगीं, और देश की दरिद्रता के दूर हो जाने से हमारे सब मनोरथ पूर्ण हो सकेंगे। इसी से मेरा यह विश्वास हो गया है कि...... "पहले राज और फिर सब काज । इत्योम् ।

[योग्य लेखक महोदय ने जो विचार इस लेख में प्रकट किये हैं वे मनन करने योग्य हैं किन्तु हम उन से बहुत अंश तक सहमत होते हुए भी पूर्णतया सहमत नहीं हैं। स्वराज्य की आवश्यकता और महत्त्व के विषय मे किसी आर्य को जरा भी सन्देह नहीं होसकता। महर्षि दयानन्द के 'कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं।" (सत्यार्थ प्रकाश ८ समुल्लास) 'अन्य देशवासी राजा हमारे देश में कभी न हों तथा हम लोग पराधीन कभी न हों।" (आर्याभिविनय श० संस्करण पृ० ६०) इत्यादि अमर वाक्य किस आर्य के कानों में नहीं गूंज रहे किन्तु जहां महर्षि ने स्वराज्य की आवश्यकता और महत्त्व को उपर्युक्त स्पष्ट शब्दों द्वारा जनता के सन्मुख रक्खा वहां उन्होंने यह भी लिखा कि—

"विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना पढ़ाना वा बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्या भाषणादि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचारादि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई भाई लड़ते हैं। तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।" (सत्यार्थ प्रकाश १०म समुल्लास) "परन्तु भिन्न भिन्न भाषा, पृथक् पृथक् शिक्षा अलग व्यवहार का विरोध छूटना अति दुष्कर है। बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है।" सत्यार्थ प्रकाश ८ म समुल्लास)

इन में से कई बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न आर्य समाज की ओर से अब तक हुआ है और उस में कई अंशों तक सफलता भी प्राप्त हुई है किन्तु श्री ब्रह्मप्रकाश जी का कथन यथार्थ है कि पूर्ण स्वराज्य के बिना देश की सर्वविध उन्नति असम्भव है। अतः शिक्षा और समाज सुधार विषयक प्रयत्न के साथ साथ स्वराज्य विषयक प्रयत्न भी जारी रहना चाहिये तथा आर्यों को उसमें यथाशक्ति उत्साह पूर्वक भाग लेना चाहिये। धर्मदेव वि० वा०, सम्पादक सा० दे०]

श्रद्धा के सुमन

(लेखक—पं० सिद्धगोपाल जी, 'कविरत्न' 'साहित्य-वाचस्पति' देहली)

यों तो जगती में लाखों, मानव जीते मरते हैं।
पर विरले ही मर-मर कर, निज नाम अमर करते हैं।
कुछ पूर्व जन्म के प्राणी, संस्कार साथ लाते हैं।
वे बीज योग पाकर ही, वर तरुवर बन जाते हैं।
जातियों और देशों में, जो पुरुष महान हुए हैं।
वे त्यागी और सुधारक, ज्ञानी गुणवान हुए हैं।
संसृति के सर्व सुधारक, मसृति ने देखे भाले।
पर, दयानन्द ऋषि जन्मे, उन सब में एक निराले
उन में कोई पैग़म्बर या देवदूत कहलाया।
कोई प्रभु स्वय बना था, कोई अवतार बनाया।
प्रभु का प्रतिनिधि बन कोई, निज प्रतिभा प्रकटाता था।
पर, दयानन्द अपने को, जग सेवक बतलाता था।
मूल में 'मूलशकर' थे जो, दयानन्द कहलाये।
उस मगल मय रजनी ने, मंगल मय मूल बनाये!
इक रोज़ पिता के सग में, करने को पूजा हर की,
चल दिये मूल शंकर भी, लखने महिमा शंकर की।
व्रत लिया अनेकों ने था, शिव आलय में जगने का,
पर, सोने वाले भूले, सब ध्यान सु-व्रत अपने का।
व्रत पती मूल शंकर को, व्रत लेकर क्या सोना था,
उसको तो जगकर जग मे, जग जालों को खोना था।
उनका सोना पीतल था, इस का जगना सोना था,
उनको जड़ ही रहना था, इसको चेतन होना था।
दुनियां का अटल नियम है, जो सोता है खोता है।
जगता है से पाता है, सोता पीछे रोता है।
उस चूहे की घटना ने उसका संस्कार जगाया,
असली शिव कौन कहा है, सारा ही भेद बताया।
बस-फिर क्या था जगती पर, वे दयानन्द बन दमके,
अज्ञान अंधेरे में वे, फिर सूर्य प्रभा सम चमके!
खण्डन कुरीति कुमतों का, करने में शक्ति लगाई,
जन-जन के अग जीवनमें, जन जीवन ज्योति जगाई।
तन, धर्म, समाज सुदृढ़ का, दे ज्ञान राजनीती का
'सत्यार्थ प्रकाश' किया फिर, तम हटा कुटिल रीतीका।
उस जगत सु-गुरुके गुण नित, 'गोपाल' कथन करता है।
श्रद्धा के सुमन चढ़ाकर, चित चरणों में धरता है॥

आदर्श योगी ऋषि दयानन्द

(लेखक— श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज, रामगढ़)

आज लोक की तरह परलोक को भी दुनियादारों ने व्यवसाय का साधन बना रक्खा है। कोई रूहों के बुलाने आदि का व्यवसाय करता है, कोई समाधि लगाने का ढोंग करके पैसे कमाता है, कोई दो मिनट में ईश्वर के दर्शन करा देने का स्वाग रचकर स्त्रियों और पुरुषों को ठगता है। अस्तु। इस प्रकार के अनेक व्यवसाय=धन कमाने के पेशे आज प्रचलित हो रहे हैं। इन पेशों के द्वारा मनुष्य धन तो कमा सकता है परन्तु योगी नहीं बन सकता। योग पेशा नहीं अपितु एक क्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य शारीरिक, मानसिक और आत्मिक स्वस्थता अथवा बल प्राप्त किया करता है। योग के द्वारा इन्द्रियों और मन में, मन और आत्मा में, आत्मा और परमात्मा में मेल (Harmony) उत्पन्न हुआ करता है।

ऋषि दयानन्द न अपनी आयु का बड़ा भाग इसी सामञ्जस्य के प्राप्त करने मे लगाया था। उनमें जहा आत्मिक बल था, जिससे मृत्यु से उन्होंने निर्भीकता प्राप्त की और इसीलिये मृत्यु शय्या पर मुसकराते, गुरुदत्त जैसे नास्तिक को आस्तिक बनाने और यह कहते हुए कि 'प्रभु! आपने अच्छी लीला की। आपकी इच्छा पूर्ण हो।" दुनिया से कूच किया, वहा मानसिक बल भी बहु मात्रा में था; जिससे उन्होंने सफलता के साथ देश का नेतृत्व किया और शारीरिक बल भी था, जिससे जहा उनके हाथों से राव कर्णसिंह के तलवार के टुकड़े-टुकड़े हो गए वहा दूसरी ओर घोर जंगलों में उनकी हुङ्कार मात्र से बनैले जन्तु रीछ आदि भयभीत होकर इधर उधर हो जाया करते थे।

योग का काम निटशे (Nietzsche) का कल्पित अहङ्कार पूर्ण एव मदोन्मत्त पुरुष बनाना नहीं, न जूलियस सीजर (Julious caesar) या नैपोलियन की कोटि का मनुष्य बनाना है। उसका काम श्रीकृष्ण, गौतम बुद्ध अथवा दयानन्द जैसे दिव्य पुरुषों (Supermen) का बनाना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए योग की प्रक्रिया में निम्न शिक्षाओं का समावे है —

(१) ब्रह्मचर्य—उत्पादक शक्ति के लिए सम्मान का भाव उत्पन्न कर लेना ब्रह्मचर्य कहा जाता है। इन्द्रिय, मन आदि सभी के लिए ब्रह्मचर्य की जरूरत है। नेत्रों के ब्रह्मचर्य की पूर्ति "मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे" की शिक्षा को धारण करने स हुआ करती है। मन का ब्रह्मचर्य काम क्रोधादि के दमन से पूरा होता है। इसी प्रकार अन्य बाह्य और अन्त करणों के ब्रह्मचर्य की कल्पना कर लेनी चाहिए। ब्रह्मचर्य का मुख्य आदर्श यह समझ लेना है कि मनुष्य का शरीर ईश्वरका मन्दिर है और ऐसी भावना रखते हुए सदैव उसका मान करना चाहिए। यह ब्रह्म-

चर्य प्रणाली मनुष्य के अन्तःकरणों को विश्व भावना से भरपूर कर दिया करती है।

(२) बोध और प्रति बोध—इन्द्रियों के द्वारा प्राप्त ज्ञान (बोध) से, बुद्धि आदि भीतरी इन्द्रियों की, शुद्धि हुआ करती है और आत्मा के द्वारा प्राप्त ज्ञान (प्रति बोध) से आत्म शुद्धि होती है और इन दोनों प्रकार की शुद्धियों से धारणा (चित्त की एकाग्रता) और ध्यान (चित्त के निरोध) की सिद्धि हुआ करती है।

(३) अंतर्मुखी होना—चित्त की वृत्तियों के निरोध से योगी अन्तर्मुख वाला हो कर आत्मस्थ होता है और आत्मस्थ हो कर उस अवस्था को प्राप्त होता है जिसे तुरीय कहते हैं और जिस मे अहंकार के सर्वथा अभाव से, वह ब्रह्म का साक्षात्कार किया करता है। अस्तु ! इन प्रक्रियाओं की पूर्ति होने से मनुष्य, सचमुच मनुष्यत्व रखने वाला मनुष्य, बन जाया करता है। उसके भीतर बल होता है, दिव्य ज्योति होती है, उसके सामने से दुई का परदा हटा हुआ होता है और वह वेद की शिक्षानुसार "यस्तु सर्वाणिभूतान्यात्मन्येवानुपश्यति । सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥" (यजुर्वेद ४०।६) परमात्मा में सब को और सब में परमात्मा को देखता हुआ मोह और शोक दोनों से ऊपर हो जाता है और समझने लगता है कि संसार में जन्म लेना पतन नहीं अपितु ऊपर उठने का साधन है और इसी लिये उसे एक एक प्राणी के भीतर प्रभु की दिव्य ज्योति दिखाई देने लगती है।

ऋषि दयानन्द इन्हीं विभूतियों से सपन्न हो कर, आर्य समाज जैसा विश्व भावना मय समाज बनाने में सफल हुये जिस का मुख्य उद्देश्य संसार का उपकार करना है अन्यथा वेभी कोई सम्प्रदाय खड़ा कर सकते थे।

वैश्यों की दीपावली

ऋषि दयानन्द और कला कौशल

(लेखक—श्री निरंजनलाल गौतम, विशारद)

वैदिक धर्म में वर्ण व्यवस्था के साथ ही प्रत्येक वर्ण का अपना विशेष पर्व भी निश्चित है जो चिरकाल से आर्य जाति में मनाये जाते हैं। वैसे तो ये पर्व सम्मिलित रूप से सम्पूर्ण आर्य जाति द्वारा मनाये जाते हैं तथापि विशेष कार्यक्रम निश्चित पर्व पर सम्बन्धित वर्ग द्वारा ही सम्पादित होता है। जिस प्रकार ब्राह्मण वर्ग के लिए श्रावणी पर्व और क्षत्रियों के लिए दशहरा है उसी भांति वैश्य वर्ग के लिए दीपावली अपना नवीन सन्देश प्रति वर्ष लाती है।

दीपावली पर लक्ष्मी पूजा का विशेष विधान है। परन्तु वास्तव में लक्ष्मी पूजा की विधि वर्तमान विधि से सर्वथा भिन्न है। सच्ची लक्ष्मी पूजा तो देश के कला कौशल व्यापार और उद्योग धन्धों की उन्नति में धन लगाकर उसका सदुपयोग करना ही है। जिस देश के कला कौशल तथा व्यापार जितने समृद्धशाली होते हैं उसी देश में ही लक्ष्मी की वास्तविक पूजा होती है। इस प्रकार हमारी वर्तमान लक्ष्मी पूजा में दोष उत्पन्न हो गया है। लक्ष्मी को व्यापार आदि में लगाने के स्थान पर उसे संचित करके धूप दीप नैवेद्य चढ़ाकर उसकी पूजा करते हैं, उसे सभाल कर तिजोरियों में रखते हैं और तहखानों में स्थान देते हैं। आर्य जाति का वैश्य वर्ग भारतवर्ष में अपने को भुला बैठा है। वह व्यापारी के स्थान पर एजेण्ट बन गया है। देश की कला कौशल प्राय विदेशों में चली गई है और हम विदेशी व्यापारियों के जाल में फंसे हुए हैं।

देश की ग़रीबी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी अपनी आंखों से देखी थी और उसे मिटाने में भी अपने देश का वे कल्याण मानते थे। वैसे तो भारतवर्ष की ग़रीबी का नग्न चित्र स्थान स्थान पर वे देखा ही करते थे परन्तु भारत की दीनता के दो दृश्यों ने महर्षि के चित्त को हिला दिया था और वे फूट-फूट कर भी रोये थे। एक बार महाराज जी ने जान्हवी तट पर विचरते हुए देखा कि एक स्त्री ने अपने मृत बच्चे को तो नदी में प्रवाहित कर दिया परन्तु ग़रीबी के कारण उस पर डाले हुए मलिन वस्त्र को धोकर अपने साथ ही ले गई। एक बार एक स्त्री अपने बच्चे के शव को मलीन वस्त्र में ढक कर ले जा रही थी स्वामीजी ने उससे पूछा कि क्या तुम इस पर स्वच्छ तथा नया वस्त्र भी न डाल सकी तो उस स्त्री ने रोकर कहा कि महराज नवीन वस्त्र मिले तब तो। स्वामीजी इन घटनाओं से बहुत समय तक चिन्तित रहे। अपने देश की इस ग़रीबी को दूर करने के लिए स्वामी जी देश में शिल्पकारी का प्रबन्ध करना चाहते थे।

इसी लिए उन्होंने अपने एक विदेशी शिष्य मिस्टर बीस से पत्र व्यवहार किया और वे चाहते थे कि देश के कुछ नवयुवक कला कौशल सीखने के लिए विदेशों में जावें और लौटकर अपनी देशव्यापी बेकारी को मिटाए। जर्मनी निवासी मिस्टर बीस ने स्वामीजी के पत्रोत्तर में २१ जून १८८० को इस प्रकार लिखा। था "जो-जो विषय आपके विद्यार्थियों के प्रयोजन के लिए सबसे अधिक उपयोगी और आवश्यक प्रतीत होते हैं वे सब हम उन्हें सिखा देंगे। साधारण विद्यार्थियों की अपेक्षा, जिनके सामने ऐसा कोई विशेष उद्देश्य नहीं होता, हम आपके विद्यार्थियों की विशेष शिक्षा पर अधिक ध्यान देंगे।"

३० जून १८८० के पत्र में बीस महाशय पुन लिखते हैं"· मेरे पत्र का उद्देश्य आप को इस बात की सूचना देना है कि मैंने आप के नवयुवक देश बन्धुओं को ऐसे स्थानों पर भेजने के विषय में और भी अधिक पूछ ताछ की। वे विविध कलायें और व्यवसाय अत्यन्त क्रियात्मक और वाधनिक रीति से सीख सकते हैं। हम आप के अनुयायी आर्य विद्यार्थियों को सारी उपर्युक्त कलायें और वस्तुयें सिखाने के लिये अपनी रक्षा और देख रेख में लेने के लिये बड़े उत्सुक हैं इत्यादि। बीस महाशय ३० सितम्बर १८८० को फिर लिखते हैं "आप के पुत्र हम से भौतिक कलायें और अन्य विद्यायें तथा शिल्प कर्म सहर्ष सीख सकते हैं हमे आप की उन्नति की डाह नहीं है। मै निर्धन माता पिताओं के पुत्र लेने और उनको अपने सर्वोत्तम पुरुषों से शिक्षा दिलाने के लिये समुद्यत हू।"

इस लम्बे पत्र व्यवहार से देश की कलाकौशल और व्यापार को उन्नत कर देश की गरीबी दूर करने की स्वामी जी की चिन्ता और लगन का भलीभाति आभास मिलता है। परन्तु आर्थिक अभाव के कारण स्वामी जी का यह कार्य उनके समय में पूरा न हो सका और अब तो यह विषय विचार से भी परे है। प्रतिवर्ष दीपावली अपने देश के कला कौशल और व्यापार को सगठित रूप से सोचने का सन्देश लाती है। तो क्या हम आशा करें कि आर्य समाज अपने अन्य कार्यक्रम के साथ देश की एक आवश्यक समस्या को सुलझाने के लिये क्रियात्मक पग बढ़ावेगा ?

सुमन-संचय

मातृ शक्ति का सम्मान

यह उदयपुर की घटना है जो स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। स्वामी दयानन्द सरस्वती कई राजाओं और राज कर्मचारियों के साथ भ्रमण को जा रहे थे। मार्ग में एक देवालय आ गया। वहां छोटे-छोटे बालक खेल रहे थे। उन्हीं में एक चार वर्ष की कन्या भी थी जो वस्त्र पहिने हुए न थी। महाराज ने उसे देख कर सिर झुका दिया। साथ के लोग इस घटना को देख कर बड़े प्रसन्न हुए। वे सोचने लगे कि देवताओं में बड़ी करामात होती है जो उनके बड़े-बड़े विरोधियों से भी अपनी मानता करा लेते हैं। उन्होंने कहा महाराज आप मूर्ति पूजा का कितना ही खंडन करें परन्तु देव बल का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि देवालय के सामने आप का मस्तक अपने आप झुक गया। महाराज को उनके इस कथन पर कुछ हँसी आई परन्तु दूसरे ही क्षण उनकी मुद्रा गम्भीर हो गई और उन्होंने कहा 'देखते नहीं हो, यह मातृ शक्ति है जिस ने हम सब को जन्म दिया है' मातृ शक्ति का इस से अधिक और क्या सम्मान हो सकता है। साथ के लोग इस उत्तर को सुन कर निरुत्तर हो गए।

चारु परिवर्तन

वह मथुरा की एक भ्रष्टा नारी थी। ऋषि (दयानन्द) से शास्त्रार्थ में पराजित और ऋषि को अन्य उपायों से परास्त करने में विफल हुए पंडा समुदाय ने इसी नारी के द्वारा ऋषि को और उसके तप को कलुषित और खंडित करने का उपाय किया। वे लोग उसके पास गए और अपना मन्तव्य उसे समझा कर कहा 'तुम्हारी तारीफ़ इसी में है कि उस नास्तिक दयानन्द के ब्रह्मचर्य्य को खंडित करो जिस से हमारी लाज बचे और वह फिर मथुरा में पैर धरने का नाम न ले।

वह स्त्री ऋषि के प्रभाव और दृढ़ता से परिचित थी। पंडों की बात सुन कर वह असमंजस में पड़ गई। इस पर एक मनचले पंडे ने व्यङ्ग कर के कहा 'तुम जैसी परियों ने बड़े-बड़े ऋषियों और मुनियों के तप डिगा दिए हैं। इस दयानन्द की तो बिसात ही क्या है जो तुम्हारे चकुल से बच जाय और तुम्हारी एक मुसकान पर अपना सर्वस अर्पन न कर दे। अगर तुम्हें कोई डर लगता हो तो दूसरी बात है।"

यह सुन कर उसके साथ के पंडे खिलखिला कर हँस पड़े।

कुछ क्षण मौन रहने के उपरान्त उस देवी ने कटाक्ष कर के कहा 'अच्छा, हँसी करने की ज़रूरत नहीं। आप लोग मुझे ४,५ दिन के भीतर ५००) के आभूषण बनवाकर दें तब मैं इस काम को कर दूंगी। मैं देखूंगी वह साधु मुझसे बच कर कहां जाता है। मैंने बीसियों साधुओं से अपने तलुवे चटवाए हैं।"

इस कटाक्ष से आल्हादित हुआ पंडा समुदाय खुशी से नाचने लगा और सब ने एक स्वर से देवी की मांग पूर्ण करने की स्वीकृति देदी।

महिला-जगत्

"परिस्थिति का धार्मिक अवस्था पर प्रभाव"

(लेखिका— श्रीमती शैल बाला जी)

इस गतिशील जगत् में निरन्तर नये नये परिवर्तन हो रहे हैं। मनुष्य की व्यक्तिगत बातें तक भी बदलती रहती हैं। जब इतनी छोटी छोटी बातोंमें अन्तर पड़ता रहता है तो भला धर्म जैसे बड़े-बड़े विषयों की अवस्था क्यों न बदले ?

कोई भी धर्म जो देश में पूर्णतया प्रचलित है, जिसके सिद्धान्त सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं, जिसका पालन करने में मनुष्य गर्व समझते हैं, समय खिलाड़ी अपने प्रभाव द्वारा देश से लोप कर सकता है।

उदाहरण के लिये बौधमत के पूर्व के हिन्दु धर्म को ही लीजिए। मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करते

मांग के पूरा हो जाने पर नियत दिन और नियत समय पर वह युवती बनाव शृंगार कर के और बढ़िया वस्त्र आभूषण पहन कर अपने कार्य्य पर जाने के लिए उद्यत हुई। जिससे समय पर कोलाहल मचाकर अपने कपट प्रबन्ध को पूरा कर सके। उस समय ऐसा प्रतीत होता था, मानो काम, तप और संयम पर विजय प्राप्ति के लिए आ रहा है। धूर्त पंडे भी चुपके चुपके उसके पीछे हो लिए।

जिस समय वह स्त्री ऋषि के डेरे पर पहुँची उस समय वे समाधि में मग्न थे।

उसने समाधिस्थ दयानन्द का दर्शन किया। जीवन में ऋषि दर्शन का उसका पहला ही अवसर था। ऋषि की दिव्य मूर्ति को देख कर न जाने उसके मन पर क्या प्रभाव पड़ा कि वह एक दम पृथ्वी पर बैठकर अपने आभूषण उतारने लगी। कुछ क्षण के उपरान्त ऋषि की समाधि खुली। नेत्र खुले। एक स्त्री को अपने पास देख कर विस्मय में हो कर बोले" देवी तुम यहां कैसे आईं ? ऋषि के इन प्यारे शब्दों ने नारी के हृदय पर विद्युत् का असर किया और हाथ जोड़ कर बोली 'महाराज क्षमा करो। मैं पापिन धनादि के लिए धर्म गंवाती रही। अब भी आभूषणों के प्रलोभन से आप के सत को डिगाने आई थी ? पर यहां मेरी मति बदल गई है। ये सब गहने आप को भेंट करती हूँ। इन्हें स्वीकार कर मेरे अपराध को क्षमा करो।" उस पश्चात्ताप और क्षमायाचना को सुन कर ऋषि का हृदय भावावेश से भर गया। उन्होंने एकबार अपना मस्तक नीचे कर के कहा 'बहिन, हमें इन भूषणों की इच्छा नहीं है। तुम इन्हें ले जाओ और अपने काम में लगाओ। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि इस समय तुम्हें जो अच्छी मति आई है वह तुम्हारी आयु पर्य्यन्त स्थिर रहे।"

उस स्त्री ने ऋषि के चरणों में श्रद्धा और प्रेम के साथ सर झुकाया और अपने घर को चली गई। और वे स्वार्थी पंडे अपना सा मुंह लेकर रह गए। —रघुनाथप्रसाद पाठक

थे। घोड़े आदि अन्य उपयोगी पशुओं की हत्या की जाती थी। हत्या करना कोई पाप न समझा जाता था—इसके विपरीत बलि चढ़ाना धार्मिक प्रथा का एक अंग था। बलि द्वारा संसार के कल्याण की आशा की जाती थी जैसा कि "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" के निम्न लिखित दोहे से पता चलता है:—

'बहु बकरा बलि हित कटै, जाके बिना प्रमान।
सो हरि की माया करै, सब जग को कल्यान॥'

इससे पशुओं को ही कष्ट नहीं होता था वरन् जनता की आर्थिक हानि भी होती थी। मनुष्य इससे तंग आगये। कबीर आदि संत जनों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को इस विषय पर खूब फटकारा। उन्होंने कहा:—

"बकरी पाती खात हैं, तिनकी काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं, उनको कौन हवाल॥"

इस प्रकार अपने पदों द्वारा इन्होंने हत्या का विरोध किया। इसके साथ ही साथ धार्मिक सिद्धान्तों में भी अन्तर पड़ा। भगवान बुद्ध ने जन्म लेकर अन्धविश्वासी जनता का उद्धार किया। उन्होंने अहिंसा पर प्रकाश डाला। परिणामस्वरूप "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति" का तत्कालीन सिद्धान्त "अहिंसा परमो धर्मः" के रूप में बदल गया। यह है समय और देश की स्थिति का प्रभाव।

वैदिक धर्म नाम से विख्यात धर्म जिसका समस्त उत्तरी भारत में बोलबाला था धीरे धीरे देश से निकलने लगा और उसके स्थान पर बौद्ध धर्म की तूती बोलने लगी। किन्तु क्या यह कोई नवीन धर्म था? यह तत्कालीन धर्म की कुरीतियों को निकालकर उसका परिशोधन मात्र था। परन्तु देश की स्थिति और समय के प्रभाव के कारण इसी का प्रचार देश में होने लगा। यह तो एक छोटी सी बात रही। भारतीय अथवा बृटिश इतिहास के पृष्ठ इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से भरे पड़े हैं। ये उदाहरण स्पष्ट रूप से बता देते हैं कि समय और देश की स्थिति का उन पर क्या प्रभाव पड़ा—वह किस प्रकार अपने परिवर्तित रूप में दृष्टि गोचर होने लगे।

ऐलिजबेथ (इंग्लैण्ड के ट्यूडर वंश की प्रसिद्ध राजरानी) के समय में जनता धन धान्य से परिपूर्ण थी। देश की आर्थिक परिस्थिति अच्छी होने के कारण जनता विलास की ओर झुकी। उसे अब "प्यूरिटन धर्म" से जिसका मूलमन्त्र सादगी था, घृणा सी होने लगी। अतः उसके स्थान पर देश में नये नये सिद्धान्तों के साथ ही साथ देश में एक नवीन धर्म लहलहाता हुआ दिखाई पड़ने लगा।

अकबर के सिंहासनारूढ़ होने के समय देश में हिन्दू मुसलमानों में फूट का अंकुर अंकुरित हो चला था। दोनों के बीच शान्ति स्थापित करने की बड़ी आवश्यकता थी। ऐसा धर्म जिसे सब लोग मान सकें प्रचलित करना अवश्यम्भावी सा हो गया था। अतः सम्राट् अकबर ने दीन-इलाही नामक नवीन धर्म प्रवेश कर दोनों में एकता निबाहने की कोशिश की। अतः देश की स्थिति को देखते हुए अकबर की जीवित अवस्था में यह धर्म कुछ अंशों तक विस्तृत हुआ। परन्तु

समय के प्रभाव से फिर कुछ ही काल बाद देश से लोप हो गया।

सती की कुप्रथा किसी काल में भारत में पूर्णतया प्रचलित थी। बंग प्रदेश में तो पति के साथ सती न होना एक बड़ा पाप और धर्म विरुद्ध आचरण समझा जाता था। परन्तु मनुष्यों ने देखा इस में कोई लाभ नहीं प्रत्युत हानि ही है। एक अबला की व्यर्थ में हत्या होने के अमानुषिक अत्याचार को सभ्य जगत् अधिक दिनों न सहन कर सका। सुधारकों का ध्यान इस ओर भी गया और उन्होंने देश से इस धर्म सम्बन्धी कुप्रथा को निकालने की ठानी। वह अपनी करनी में सफल हुये। अब यह कहीं भी दिखाई नहीं देती। यह सब देश की स्थिति के अनुसार नवीन धर्मों की विवृत्ति नहीं तो क्या है?

आधुनिक काल में तो धर्म की कुछ बात ही न पूछिये। आम जनता तो धर्म को पैसों से क्रय करने वाली वस्तु ही समझती है। मूर्ति पूजा और परम्परागत अन्धविश्वासों में अधिकाश अशिक्षित और शिक्षित जनता भी लिप्त है। गेरुआ रंग के कपड़े पहिने हुए हाथ में सुमरनी लिये हुये, मुख पर एवम् मस्तक पर धूनी रमाये हुये, पाखंडी साधुओं को ही आज की जनता अपना धर्म का स्तम्भ समझती है। वास्तव में पूछा जाय तो अब धर्म कर्म कुछ नहीं रह गया है। नकली पाखंडों द्वारा ही लोग अपने मनोरंजन हेतु धार्मिक वृत्ति की पूर्ति की व्यर्थ चेष्टा कर रहे हैं।

महर्षि दयानन्द आदि देश के कुछ विद्वानों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ। इन्होंने धर्म के नाम पर फैली हुई भयानक कुरीतियों को अपने समाज से निकाल देने की प्राण पणसे चेष्टा की। देशकी कगाली को ध्यानमें रखते हुये इन्होंने सादी रीति से धार्मिक बनने का आदेश दिया। इनका धर्म भी साधारण ही था। परिणाम यह हुआ कि यह देश और काल के बिल्कुल अनुकूल हुआ। अधिकाश जनता सरलता से इसे अपना सकी और यह देशकी स्थिति के अनुसार विवृत्त हुआ। उनके उपदेशों से जनता मे जागृति फैली। अछूतों की ओर भी धीरे धीरे मनुष्यों का ध्यान आकर्षित हुआ।

ऋषि की जय

(रचयिता—श्रीमता सुशीला कुमारी जी)

—0※0—

तू दयानन्द की जय मना जय मना।
पाठ वेदों का हमको पढ़ाता रहा॥
सोई जाति को निशि दिन जगाता रहा।
भूले भटकों को उर से लगाता रहा।
सत्य उपदेश सब को सुनाता रहा॥
कर गया जान को सत्य ही पर फना॥१॥

पाप पाखण्ड का खण्ड जो कर गया।
देश औ धर्म का दिल मे दम भर गया॥
करके उपकार दुनिया का वह तर गया।
मरना सिखलाके जो हमको खुद मरगया।
भारती सभ्यता में रमा जय मना॥२॥

वेदोद्धारक आचार्यवर महर्षि दयानन्द

(लेखक—प्र० स्वा० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति स० मन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली)

भारतवर्ष में श्री शंकराचार्य, श्री रामानुजाचार्य, श्री मध्वाचार्य (स्वामी आनन्द तीर्थ), श्री सायणाचार्य इत्यादि अनेक आचार्यों ने जन्म लेकर अपनी २ योग्यता और बुद्धि के अनुसार धर्मरक्षार्थ प्रयत्न किया। उनके इस विषयक प्रयत्न का हम अभिनन्दन करते हैं और उनके प्रति आदर का भाव प्रकट करते हैं किन्तु मुझे यह कहने में जरा भी संकोच नहीं कि इस वर्तमान युग में यदि कोई महानुभाव सचमुच वेदोद्धारक शिरोमणि और आचार्यवर कहलाने के योग्य हो सकते हैं तो वे पुण्यकीर्ति आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती ही हैं। इस लेख में मैं उपर्युक्त स्थापना की पुष्टि कुछ प्रबल प्रमाणों द्वारा करना चाहता हूं आशा है विचारशील पाठक महोदय उन पर निष्पक्षपात-दृष्टि से विचार करेंगे।

(१) सबसे पहली बात जो इस सम्बन्ध में विचारणीय है वह यह है कि किस आचार्य ने सत्य सनातन वैदिक धर्म और विशेषतः ईश्वरीय ज्ञान वेद के उद्धारार्थ सबसे अधिक प्रयत्न किया। उपर्युक्त सभी आचार्यों ने इस दिशा में प्रयत्न किया इसमें सन्देह नहीं किन्तु कई ऐसे आवश्यक विषय हैं जो महर्षि दयानन्द के महत्त्व को हमारे हृत्पटलों पर अंकित किए बिना नहीं रह सकते। सब से पहले मैं सुप्रसिद्ध दार्शनिक श्री शंकराचार्य को लेता हूं। उनके जीवन चरित्र के अध्ययन से जो श्री शंकर-दिग्विजय आदि ग्रन्थों में पाया जाता है यह स्पष्ट है कि श्री शंकराचार्यजी के जीवन का उद्देश्य वैदिक धर्म का उद्धार ही था। शंकर-दिग्विजय ८।३७-३८ में श्री शंकराचार्य की श्री मण्डन मिश्र के प्रति निम्न उक्ति का उल्लेख है जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है—

'मम न किञ्चिदपि ध्रुवमीप्सितं, श्रुतिशिरः पथविस्तृतिमन्तरा। अवहितेन मखेष्वधीरितः

(पृष्ठ ३७९ के आगे)

वर्तमान काल में देश के सर्वोच्च नेता 'बापू' (महात्मा गांधी) ने अछूतोद्धार का बीड़ा उठाया। इनकी उन्नति के लिये गांधी जी अपना तन मन धन इन पर न्योछावर कर रहे हैं। अपने इन मनुष्यों को वह हरिजन बन्धु कहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो वह एक ऐसा धर्म निकालने की फिक्र में हैं जिसमें जाति पांति का भेद न हो और संसार के छोटे बड़े सब समान रूप से उसको अपना सकें। इससे और कुछ नहीं तो कम से कम समस्त भारत को एकता के सूत्र में बँधने में कुछ सहायता मिल सकेगी।

यह धर्म जो वैदिक धर्म ही का शुद्ध स्वरूप है, भारत का सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा जायेगा। और यही धर्म समय और देश की स्थिति के अनुकूल होने के कारण अपनी विजय पताका फहराता दृष्टि गोचर होगा।

स भवता भवतापहिमद्युतिः ॥ जगति सम्प्रति तं प्रथमाम्यहं समभिभूय समस्तविवादिनम्। त्वमपि संश्रय मे मतमुत्तमं विगद वा वदवास्मि जितस्त्विति ॥

इन श्लोकों का अर्थ यह है कि वेदमार्ग के विस्तार के अतिरिक्त मुझे कुछ भी इष्ट नही है। तुमने केवल यज्ञ याग के करने मे तत्पर होकर उस ससार ताप निवारक वेद की उपेक्षा की है। अब मै अन्य सब मत मतान्तरों को पराजित करके उसी वैदिक धर्म का प्रचार कर रहा हू। तुम भी मेरे इस उत्तम मत को स्वीकार करो अन्यथा मेरे साथ शास्त्रार्थ करो इत्यादि।

इस प्रकार श्री शकराचार्य के जीवनोद्देश्य की महर्षि दयानन्द के जीवन के मुख्य उद्देश्य के साथ समानता होते हुये भी हमे उनके ग्रन्थों में वेद संहिताओं के उद्धरण बहुत ही कम देखकर अवश्य आश्चर्य होता है। "शास्त्रयोनित्वात्" इत्यादि वेदान्तसूत्र की व्याख्या में—

ऋग्वेदादेः शास्त्रस्य सर्वज्ञकल्पस्य योनिः कारणं ब्रह्म-न ह्येवंविधस्य शास्त्रस्य सर्वज्ञ-गुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोऽस्ति"

इत्यादि रूप से ऋग्वेदादि को सर्व ज्ञान का भण्डार मानकर और उस ज्ञान का दाता सर्वज्ञ भगवान् के अतिरिक्त कोई नहीं हो सकता ऐसा लिखकर भी कई स्थानों पर वे वेदों को भी मायावाद की लपेट में लेकर (यदि उनके नाम से प्रचलित श्लोक सचमुच उनके हैं जिसमें मुझे अत्यन्त सन्देह है) उन पर हाथ साफ़ कर गए हैं उदाहरणार्थ—"दश श्लोकी" नामक श्री शकराचार्य के नाम से प्रचलित ग्रन्थ में कहा है—

"न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्माः, न मे धारणा ध्यानयोगादयोऽपि। अनात्माश्रयाहं ममाध्यास हानात्, तदेकोऽविशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥ न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा, न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः। न पुण्यपापे न च मोक्षबन्धने, न चास्ति वर्णाश्रमिता शरीरतः ॥ न माता पिता वा न देवा न लोकाः, न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति ॥

इत्यादि। इन श्लोकों मे तत्वज्ञान की दृष्टि से वर्ण वर्णाश्रमाचार धर्म, पुण्य पाप, बन्धन, मोक्ष, वेद यज्ञ आदि सब पर हाथ फेर दिया है। श्रुति के नाम से श्री शंकराचार्य कृत ब्रह्मसूत्रभाष्यादि में प्राय. सर्वत्र उपनिषदों के ही वचन उद्धृत किए गए हैं न कि मूल वेदसंहिताओं के जिनको सम्भवतः वे अधिकतर केवल कर्मकाण्ड परक समझते थे। कारण कुछ भी हो, इतना स्पष्ट है कि महर्षि दयानन्द ने जिस प्रकार अपना तन, मन, धन वेदों के उत्तम उपदेश जनता के सामने रखकर—उनके पुनरुद्धारार्थ लगा दिया और वेदभाष्य के लिए अपने बहुमूल्य समय को लगाया श्री शंकराचार्य का प्रयत्न अधिकतर उपनिषदों तक ही सीमित रहा। मूल वेदों की ओर उन्होंने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया। दुर्भाग्य-वश यही उपेक्षा उनके अनुयायियों मे वेदों के सम्बन्ध में पाई जाती है। आज से कुछ वर्ष पूर्व जब मुझे सुप्रसिद्ध शृङ्गेरी (मैसूर राज्य) मठ के

'जगद्गुरु श्री शंकराचार्य से बालविवाहादि विषयों में बात-चीत करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और जब उनके यह कहने पर कि कन्या का विवाह १० वर्ष की आयु मे हो जाना चाहिए। मैने उन्हें इसके समर्थन में वैदिक प्रमाण उद्धृत करने को कहा तो उन्होंने यह प्रश्न मेरे पर ही डाल दिया। जब मैने—

'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्'

इत्यादि वेदमन्त्र यौवन विवाह के पक्ष में प्रस्तुत करते हुए उनसे निवेदन किया कि यदि इन वेद-मन्त्रों का मेरा किया अर्थ ठीक नहीं है तो आप ही ठीक २ अर्थ बताए तो इस पर वे कहने लगे—

'सर्वाणि भाष्याणि मयालोचनीयानि सर्वं पौर्वापर्यं मयालोचनीयं, तदैवाहं किमपि वक्तुं शक्ष्यामि नान्यथा, अनन्ता वै वेदाः, को वै तेषामर्थं ज्ञातुमर्हति।' इत्यादि।

अर्थात् मुझे सब भाष्य देखने पड़ेंगे, सब प्रकरण देखना पड़ेगा तभी मैं कुछ कह सकूंगा अन्यथा नहीं। वेद अनन्त हैं उनका अर्थ कौन जान सकता है, इत्यादि। जब मैंने कहा कि

"यदि भवादृशाः परिव्राजकाचार्या जगद्गुरव इत्थं कथयेयुस्तर्हि वेदानां रक्षां को विधास्यति"

अर्थात् यदि आप जैसे जगद्-गुरु कहलाने वाले सन्यासी आचार्य ऐसा कहने लगें तो वेद की रक्षा कौन करेगा? इस पर वे कहने लगे—

'भगवानेव रक्षां विधास्यति'

अर्थात् भगवान् ही रक्षा करेगा। शेष वार्तालाप को यहां उद्धृत करने की आवश्यकता नहीं।

श्री रामानुजाचार्य के ग्रन्थों में भी वेद संहिताओं के उद्धरण बहुत ही कम-नहीं के बराबर पाये जाते हैं। उन्होंने भी अपने विशिष्टाद्वैत के समर्थन में प्रस्थानत्रयी अर्थात् उपनिषद्, वेदान्तसूत्र और भगवद्गीता के ही उद्धरण दिये। हां श्री मध्वाचार्य वा स्वामी आनन्दतीर्थ ने अपने द्वैत-वाद के समर्थन में अनेक वेद मन्त्र उद्धृत किए और ऋग्वेद के कुछ सूक्तों का अनुवाद भी किया किन्तु उनके ग्रन्थ भी वेदों की अपेक्षा पुराणों के उद्धरणों से अधिक भरपूर हैं। उनके अन्दर साम्प्रदायिकता बहुत अधिक पाई जाती है यहां तक कि "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्र के भाष्य में वराह पुराण के—

एष मोहं सृजाम्याशु, यो जनान् मोहयिष्यति।
त्वं च रुद्र महाबाहो मोह शास्त्राणि कारय॥
अतथ्यानि वितथ्यानि दर्शयस्व महाभुज।
प्रकाशं कुरु चात्मानमप्रकाशं च मांकुरु॥

इत्यादि श्लोकों को उद्धृत करते हुए वे कहते हैं कि सबसे बड़ा देवता विष्णु ही है। शिवपुराणादि मे जो शिव को सबसे बड़ा कहा गया है उसका कारण यह है कि विष्णु ने ही शिव को आज्ञा दी कि तुम झूठे शास्त्र बनाकर लोगों को मोह में डाल दो। उनमें अपनी महिमा को प्रकाशित करो और मेरा महत्त्व मत प्रकट करो, इत्यादि। इसी लिए ये शिवपुराणादि बनाये गये। विष्णु से उनका तात्पर्य चतुर्भुज क्षीरसमुद्रशायी विष्णु का है। 'अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्॥' इस वेदान्त सूत्र की व्याख्या में वे कहते हैं स (विष्णु) हि क्षीरसमुद्रशायी इत्यादि। श्री मध्वाचार्य ने अन्य

आचार्यों की अपेक्षा वेदों में परिश्रम विशेष किया था यह उनके ग्रन्थों के देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है किन्तु ऋषि दयानन्द की तरह परम प्रमाण केवल वेदों को न मानते हुये भारत, मूल रामायण वैष्णवों के पाञ्चरात्रागम इत्यादि को भी उन्होंने वेदों की तरह ही प्रामाणिक माना जैसे कि "शास्त्रयोनित्वात्" इस वेदान्तसूत्र की व्याख्या में स्कन्द पुराण के वचन को उद्धृत करते हुये उन्होंने लिखा है—

ऋग्यजुःसामाथर्वाश्च, भारतं पञ्चरात्रकम्।
मूलरामायणं चैव, शास्त्रमित्यभिधीयते॥
यच्चानुकूलमेतस्य तच्च शास्त्रं प्रकीर्तितम्।
अतोन्यो ग्रन्थविस्तारो, नैव शास्त्रं कुवर्त्म तत्॥

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम वेद, अथर्ववेद भारत, पाञ्चरात्र, मूल रामायण इनको और जो इनके अनुकूल हो उसे शास्त्र कहा जाता है। इनके अतिरिक्त अथवा विरुद्ध जो हो वह शास्त्र नहीं, वह बुरा मार्ग है इत्यादि। इस प्रकार पुराण वचनों को बहुत अधिक उद्धृत करने के कारण श्री मध्वाचार्य के अनुयायी पुराणों को ही अब अत्यन्त प्रामाणिक मानते हैं यद्यपि श्री मध्वाचार्य ने वेदान्त-सूत्र अनुव्याख्यान (सर्व मूल पृ० १६१) में स्पष्ट कहा था कि—

"न पुराणादिमानत्वं विरुद्धार्थे श्रुतेर्भवेत्।"

अर्थात्-वेद के विरुद्ध वचन होने पर पुराणादि को प्रामाणिक नहीं माना जा सकता।

इतनी विवेचना से यह बात स्पष्ट है कि वेद का उद्धार करने वाले आचार्यों में महर्षि दयानन्द का स्थान सब से उत्कृष्ट है जिन्होंने वेदों की स्वतः प्रमाणता को प्रमाण और युक्तियों से सिद्ध करते हुये यजुर्वेद का सम्पूर्ण और ऋग्वेद के बहुत से भाग का ब्राह्मण ग्रन्थ निघन्टु निरुक्तादि आर्ष ग्रन्थों के आधार पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाष्य किया जिसके विषय में जगद्विख्यात योगी और निष्पक्षपात विचारक श्री अरविन्द ने ठीक लिखा है कि "In the matter of the Vedic interpretation, I am convinced that whatever may be the final complete translation, Dayanand will be honoured as the first discoverer of the right clues. Amidst the obscurity of old ignorance and age long misunderstanding, his was the eye of direct Vision that pierced to the truth and fastened on that which was essential. He has found the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisoned fountains (Dayananda and the Veda by Shri Aravinda) अर्थात् वेद भाष्य के विषय में मुझे इस बात का विश्वास है कि वेदों का अन्तिम सम्पूर्ण अनुवाद कोई भी हो स्वामी दयानन्द का ठीक वेद भाष्य शैली के प्रथम आविष्कारक के तौर पर मान किया जायगा। पुराने काल से चले आते हुए अज्ञान और भ्रम के बीच में से उन्हीं की वह दिव्य ऋषि-दृष्टि थी जिसने सत्य तत्त्व को पा लिया। उन्होंने उन द्वारों की चाबियों को फिर से प्राप्त कर लिया जिन्हें समय ने बन्द सा कर रखा था और मानो कैद किये हुए स्रोत की मोहर को उन्होंने तोड़ दिया। (शेष फिर)

महापुरुषों की दिव्यवाणी

महर्षि दयानन्द वचनामृत

विद्वानों का कर्तव्यः—

(१) "विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश या लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वय अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग कर के सदा आनन्द में रहें।" ('सत्यार्थ प्रकाश' भूमिका)

मनुष्य धर्मः—

(२) 'जैसे पशु बलवान् हो कर निर्बलों को दुःख देते और मार भी डालते हैं। जब मनुष्य शरीर पाके वैसा ही कर्म करते हैं तो वे मनुष्य स्वभाव युक्त नहीं किन्तु पशुवत् हैं। और जो बलवान् हो कर निर्बलों की रक्षा करता है वही मनुष्य कहाता है और जो स्वार्थवश हो कर पर हानि मात्र करता रहता है वह जानो पशुओं का भी बड़ा भाई है।" ('सत्यार्थ प्रकाश' भूमिका)

शिक्षा क्या है ?

(३) "जिस से विद्या, सभ्यता, धर्मात्मता, जितेन्द्रियतादि की बढ़ती होवे और अविद्यादि दोष छूटें उसको शिक्षा कहते हैं।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश म० २२)

मनुष्य को सब से यथा योग्य स्वात्मवत् सुख दुःख, हानि लाभ में वर्तना श्रेष्ठ, अन्यथा वर्तना बुरा समझता हूं।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश म० २६)

सत्य सनातन धर्मः—

(४) "सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् साम्राज्य सार्वजनिक धर्म जिस को सदा से सब मानते आये, मानते हैं और मानेंगे भी इसी लिये उसको सनातन नित्यधर्म कहते हैं कि जिस का विरोधी कोई भी न हो सके। यदि अविद्या युक्त जन अथवा किसी मत के भ्रमाये हुए जन जिस को अन्यथा जानें वा मानें उसका स्वीकार कोई भी बुद्धिमान् नहीं करते किन्तु जिस को आप्त अर्थात् सत्यमानी, सत्यवादी, सत्यकारी, परोपकारक, पक्षपात रहित विद्वान् मानते हैं वही सब को मन्तव्य और जिस को नहीं मानते वह अमन्तव्य होने से प्रमाण के योग्य नहीं होता। मै अपना मन्तव्य उसी को जानता हू कि जो तीनकाल मे सब को एकसा मानने योग्य है। मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है किन्तु जो सत्य है उसको मानना मनवाना और जो असत्य है उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश)

ऋषि का उद्देश्यः—

(५) 'जो मतमतान्तर के परस्पर विरुद्ध झगड़े हैं उनको मैं प्रसन्न (पसन्द) नहीं करता, क्योंकि इन्हीं मतवालों ने अपने मतों का प्रचार कर मनुष्यों को फँसा के परस्पर शत्रु बना दिये हैं। इस बात को काट सर्व सत्य का प्रचार कर सब

को ऐक्य मत में करा, द्वेष छुड़ा, परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त करा के सब से सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। सर्वशक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की सहानुभूति से 'यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जाए' जिस से सब लोग सहज से धर्मार्थ काम मोक्ष की सिद्धि कर के सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।"

(स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश)

(६) "हम तो यही मानते हैं कि सत्यभाषण, अहिंसा, दया आदि शुभ गुण सब मतों में अच्छे हैं बाकी वाद विवाद ईर्ष्या, द्वेष, मिथ्या भाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुमको सत्यमत ग्रहण करने की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो।" (सत्यार्थ प्रकाश १४ समुल्लास)

एकता की आवश्यकता :—

(७) "जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।...... आपस की फूट से कौरव पाण्डव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब भी वही रोग पीछे लगा है न जाने यह भयंकर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःखसागर में डुबा मारेगा।

(सत्यार्थ प्रकाश दशम समुल्लास पृ० ३५४)

विदेशी राज्य से हानियां

(८) "जब स्वदेश ही में स्वदेशी लोग व्यवहार करते और परदेशी स्वदेश में व्यवहार वा राज्य करें तो बिना दारिद्र्य और दुःख के दूसरा कुछ भी नहीं हो सकता। (पृष्ठ ३५१) जब आर्यों का राज्य था तब ये महोपकारक गाय आदि पशु नहीं मारे जाते थे तभी आर्यावर्त वा अन्य भूगोल देशों में बड़े आनन्द से मनुष्यादि प्राणी वर्तते थे क्यों कि दूध घी बैल आदि पशुओं की बहुतायत होने से अन्न रस पुष्कल प्राप्त होते थे। जब से विदेशी मांसाहारी इस देश में आके गौ आदि पशुओं के मारने वाले मद्यपानी राज्याधिकारी हुए हैं तब से क्रमशः आर्यों के दुःख की बढ़ती होती जाती है।"

(सत्यार्थप्रकाश समु १० पृ० ३५६)

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

देश की वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति पर सभा का वक्तव्य

(ता० १५-१०-४२ की अन्तरंग सभा द्वारा स्वीकृत)

इस समय समस्त भारतवासियों के हृदय में स्वतन्त्रता की लहर बड़े वेग के साथ चल रही है इस उचित और स्वाभाविक मांग का ब्रिटिश सरकार ने तिरस्कार किया। इसलिए महात्मा गांधी और कांग्रेस ने सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह का निश्चय किया। भारत सरकार ने पूज्य महात्माजी तथा कांग्रेस के अन्य नेताओं को बन्दी करके जेल मे भेजा। इस कार्य से देश भर में घोर अशान्ति फैल गई। जगह जगह पर उपद्रव हुए जिनमें रेल, तार, टेलीफ़ोन, डाक, पुलिस व अन्य सरकारी दफ्तरों को हानि भी पहुँचाई गई। इसके विरुद्ध सरकार की दमन नीति जारी है। अनेक स्थानों पर गोली चली बहुत से लोग मारे गये परन्तु शान्ति स्थापित नहीं हुई। अभी भी जगह २ उपद्रव होते रहते हैं। ऐसी अवस्था में बहुत से लोग प्रश्न करते हैं कि वर्तमान परिस्थिति में आर्यों का क्या कर्त्तव्य है। इसलिएसभा अपना मत प्रकट करना आवश्यक समझती है।

१. आर्य समाज एक धार्मिक संस्था है परन्तु वेद और शास्त्रों के अनुसार धर्म का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। वैशेषिक दर्शन में कहा है कि "यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः" अर्थात् जिससे अभ्युदय वा सांसारिक उन्नति और मोक्ष दोनों की सिद्धि हो वह धर्म है। स्वराज्य और स्वतन्त्रता की प्राप्ति अभ्युदय के अन्तर्गत होने से धर्म का एक अंग है। इस लिए प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है कि वह स्वराज्य प्राप्ति के लिए यत्नवान् हो। यह सिद्धान्त स्पष्ट और निर्विवाद है।

२ स्वराज्य और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए क्या उपाय और साधन होने चाहिएं इसमें विचार भेद सम्भव है। आर्य समाज की आरम्भ काल से यह नीति रही है कि वह सामूहिक रूप से क्रियात्मक राजनीति में भाग न लेवे और राजनैतिक दलों से पृथक् रहे। परन्तु उसके सभासदों को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वे व्यक्तिगत रूप से चाहे जिस राजनैतिक संस्था वा दल में भाग लेवें।

३. इस समय भारत सरकार की ओर से जो दमन नीति जारी है और जिसके परिणामस्वरूप वर्तमान खेदजनक उपद्रव हुये और हो रहे हैं वह इस सभा की सम्मति में अवश्य निन्दनीय है। भारत के सभी नेताओं की मांग एक स्वर से यही है कि ब्रिटिश सरकार को शासन के पूर्ण अधिकार भारतीयों को देने चाहिए। इस सभा की सम्मति में यही मांग न्यायोचित है और इसी से वर्तमान अशान्ति दूर होकर भारतीय

जनता पूर्ण उत्साह के साथ स्वदेश रक्षा के लिए युद्ध में भाग ले सकती है।

४. यद्यपि एक धार्मिक संस्था होने के कारण राजनैतिक विषयों पर मत प्रकाशित करना हमारी साधारण नीति के अनुकूल नहीं है तथापि देश की विशेष परिस्थिति को दृष्टि में रख कर यह वक्तव्य सरकार तथा जनता दोनों के कल्याण के अभिप्राय से प्रकाशित किया जाता है।

International Aryan League.

A statement on the present political situation in the country by the International Aryan League (Sarvadeshik Arya Pratinidhi Sabha) adopted at a meeting of the Executive Committee held at Delhi on 15-10-42.

A strong desire for independence is surging in the hearts of all Indians at the present time. In view of the British Government's disregard of this natural and rightful urge, Mahatma Gandhi and the Congress dicided to launch Satyagraha against the Government. The Government of India arrested the revered Mahatma and Congress leaders and shut them up behind the prison bars. This led to a terrible commotion throughout the country causing widespread disturbances in which damage was done to railways, telegraphs, telephones, postal, police and other Government offices. To curb this state of affairs Government has resorted to a policy of repression. There have been firings at several places and a number of persons have been killed. But inspite of all this, peace and tranquility has not been restored and disorders continue. Under the circumstances many people are anxious to know what the duty of the Aryas is at this critical juncture. The Sabha, therefore, considers it necessary to lay down its views on the matter.

1. The Arya Samaj is a religious or Dharmic institution; but according to Vedas and Shatras, the domain of Dharma is very wide. The Vaisheshik Darshan says :- यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः सधर्मः Dharma is that which leads to worldly progress and spiritual salvation. The attainment of independence and Swarajya, being included in अभ्युदय (worldly advancement) is part of our Dharma. It is, therefore, the clear and indisputable duty of every Arya to strive for Swarajya.

2. There may, however, be a difference of opinion regarding ways and means for attaining it. In this connection it has been the established policy of the Arya Samaj since its very inception that the Samaj as a body shall take no part

in active politics, and shall as such keep itself aloof from all political parties But its members have in their individual capacity the fullest liberty to participate in the activities of any political organization or join any political party

3 In the opinion of this Sabha, the present policy of the Government followed by lamentable and undesirable disturbances and outrages that are still continuing, is deplorable The Sabha is of the opinion that the only just and proper course, which can ease the present disturbed atmosphere, and enthuse the Indian people for war effort in defence of their motherland, is to concede what all Indian Leaders have been demanding with one voice viz The transference of complete control of Government to Indians

4 Although being a religious body it is not strictly in accord with our settled policy to express our views on political matters, yet the abnormal state of affairs in the country has impelled us to issue this statement in the interest of both the Government and the people

RISHI DAYANANDA THE GREAT

Tributes paid by many prominent persons.

(1) The late Dr. Ravindra Nath Tagore:—

"I offer my homage of veneration to Swami Dayananda, the Great Path Maker in modern India who through bewildering tangles of creeds and practices, the dense undergrowth of the degenerate days of our country cleared a straight path that was meant to lead the Hindus to a simple and rational life of devotion to God and service for man."

(2) Shri Aravinda Ghosh on Rishi Dayananda :—

"Here was a very soldier of Light, a warrior in God's world, a sculptor of men and institutions, a bold and rugged victor of the difficulties which matter presents to spirit. And the whole sums itself up to me in a powerful impression of spiritual practicality. The combination of these two words, usually so divorced from each other in our conceptions, seems to me the very definition of of Dayananda. .. ... This was what he himself was, a man with God in his soul, vision in his eyes, and power in his hands to hew out of life an image according to his vision."

(3) Roman Rolland (a French Sage of world wide reputation) :—

"Dayananda transfused into the languid body of India, his own formidable energy, his certainty, his Lion's blood. His words rang with heroic power............ His social activities and practices were of intrepid boldness. His creation—the Arya Samaj postulates in principle, equal justice for all men and all nations together with equality of the sexes."

"Dayananda would not tolerate the abominable injustice of the existence of untouchables and no *body has been a more ardent champion of their rights.* They were admitted to the Arya Samaj on a basis of equality, for the Aryas are not a caste."

"Dayananda was no less generous and no less bold in his crusade to improve the condition of women. He revolted against the abuses from which they suffered, recalling that in the heroic age they occupied in the home and in society a position at least equal to men."

(Extracts from the life of Shri Rama Kishna Param Hans by Roman Rolland)

(4) Andrew Jackson David (a distinguished American Yogi) :—

"I behold a fire that is universal, the fire of infinite love, which burneth to destroy all hate, which dissolveth all things to their purification...........

Beholding this infinite fire which is certain to melt the Kingdoms and Empires and governmental evils of the whole earth, rejoice exceedingly and I take hold of life with an enkindling enthusiasm." To restore primitive Aryan religion to its first pure state was the fire in the furnace called 'Arya Samaj' which started and burnt brightly in the bosom of that "*inspired son of God in India*"—Dayananda Saraswati. From him he fire of inspiration was transferred to many noble and inflaming souls in the land of Eastern Dreams."

(Beyond the valley P. 382)

(5) **Prof. R. L. Turner D. Litt of London University** ;—

"One can not withhold one's admiration for Swami Dayananda whose work perhaps more than that of any other individual has helped to make India conscious of itself as a unit with same distinctive contribution to make to the culture of the world as a whole."

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

दान आर्य समाज स्थापना दिवस अक्टोबर १९४२

संयुक्त प्रान्त

आर्य समाज उन्नाव ५)
„ मुरादाबाद ८।)
„ एटा ५)
„ बदायूं ५)

पंजाब

„ बच्छोवाली लाहौर २५।=)
„ जफ़र वाल, (पंजाब) ५)
श्री गुरुदत्त जी गौतम
सब्जी मण्डी, देहली २)
आर्य समाज बहावलपुर ५)
श्री साईराम जी पटवारी
चक नं० ८४ लायलपुर १०)

राज स्थान

आर्य समाज धौलपुर २।)
„ नीमराना १?)
„ हमकीर (जयपुर) ५)

मध्य प्रदेश

„ बिलासपुर (सी० पी०) ५)
„ अमरावती ४)

बम्बई

„ मांटुगा (बम्बई) ५०)

विदेश

आर्य प्रतिनिधि सभा
ईस्ट अफ्रीका २५२ नैरोबी १००)
२४८।=)
गत योग ८३१।।-)
१०७९।।≈)

नोट—इस दान के अतिरिक्त १६।।) इस मास सत्याग्रह स्मारक निधि में प्राप्त हुए। इन निधियों में दान देने वाले सज्जनों और आर्य समाजों को सार्व देशिक सभा की ओर से धन्यवाद। जिन आर्य समाजों ने अभी तक आर्य समाज स्थापना तथा सत्याग्रह स्मारक दिवस निधि के लिये दान नहीं भेजा उन्हें भी सभासदों से संग्रह कर के अथवा यदि ऐसा करना अब सम्भव न प्रतीत हो तो समाज के कोष से एक अच्छी राशि सार्वदेशिक सभा कार्यालय में भेज कर अपने कर्तव्य और शिरोमणि सभा के आदेश का पालन अवश्य करना चाहिये।

मन्त्री सार्वदेशिक सभा

अन्तरङ्ग सभा के कुछ महत्वपूर्ण प्रस्ताव

१. विज्ञापन का विषय सं० २ (क) अखिल भारतीय आर्य वीर दल समिति के निर्माण का विषय प्रस्तुत हो कर समिति का निम्न निर्माण स्वीकृत हुआ।

(१) प्रधान सार्वदेशिक सभा
(२) मन्त्री सार्वदेशिक सभा
(३) कोषाध्यक्ष सार्वदेशिक सभा
(४) श्री पं० देशबन्धु जी विद्यालंकार मुख्य सेनापति।
(५) श्री प्रो० महेन्द्र प्रताप जी शास्त्री
(६) श्री पं० ज्ञानचन्द्र जी आर्य सेवक
(७) श्री कुं० चांदकरण जी शारदा

(८) श्री पं० मिहिरचन्द्र जी
(९) श्री प्रो० ताराचन्द्र जी गाजरा
(१०) श्री सिद्धेश्वर प्रसाद सिंह जी
(११) श्री ला० देशराज जी

१२. (ख) सिन्ध के बाढ़ पीड़ितों की सहायता का विषय प्रस्तुत हुआ। आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध का १।८।४२ का पत्र पढ़ा गया। निश्चय हुआ कि रिलीफ फंड के सूद में से २४० रु० सिन्ध सभा को बाढ़ पीड़ितों की सहायतार्थ दिया जाय।

१७. विज्ञापन का विषय स० १४ श्री मन्त्री जी का निम्न नोट पेश हो कर पढ़ा गया। "सार्वदेशिक सभा की ओर से आर्य समाज क्या है और उसने क्या किया इस नाम की एक पुस्तक हिन्दी तथा अंग्रेजी में छापी जाय जिस में प्रत्येक पहलू पर अच्छे २ विद्वानों के लेखों का संग्रह हो, चित्र भी हों। निश्चय हुआ कि पुस्तक तय्यार की जाए।

१८. विज्ञापन का विषय स० १६ निम्न प्रस्ताव पेश हो कर स्वीकृत हुआ।

युद्ध का संकट बढ़ने पर निराश्रितों को आश्रय देने और कठिनाई के समय सभा के सार्वजनिक कार्यों का केन्द्र बनाने के लिये गाजियाबाद वाली भूमि में चहार दीवारी और कुछ इमारतें तैयार की जायें जिस के लिये ५००० रु० तक व्यय किया जाय। इस कार्य की पूर्त्यर्थ निम्न लिखित समिति बनाई जाये।

१. श्री मन्त्री सभा

२. श्री कोषाध्यक्ष जी सभा

३. श्री ला० हरशरण दास जी रईस, गाजियाबाद

४. श्री राव साहब अमृतराव जी

५. श्री ला० ज्ञानचन्द्र जी। इमारतों का जो प्लैन (चित्र) बने उस में ध्यान रखा जाय कि जो इमारतें बनें वे स्थिर आर्य नगर का भाग बन सकें अथवा सभा के किसी अन्य उपयोग में आ सकें।

२१ विज्ञापन का विषय सं० १९ प्रधान के निर्वाचन का विषय पेश हो कर सर्व सम्मति से श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम ए रिटायर्ड चीफ जज प्रधान चुने गये। उनके रिक्त स्थान मे श्री प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम. ए उपप्रधान निर्वाचित हुये। श्री घनश्याम सिंह जी के रिक्त स्थान पर श्री चौ० देशराज जी अन्तरङ्ग सदस्य निर्वाचित हुये।

२५. श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति का पत्र प्रस्तुत हो कर पढ़ा गया कि सार्वदेशिक सभा एक वैदिक कर्म पद्धति का निर्माण कराये। निश्चय हुआ कि यह कार्य महत्व पूर्ण है। इस सम्बन्ध मे पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा से पत्र व्यवहार किया जाय कि वह श्री देवराज जी की सेवाओं से लाभ उठा कर अपने अनुसंधान विभाग के द्वारा इस आवश्यक कार्य को सम्पन्न कराये।

सेवा का व्रत लीजिये

इस वर्ष देश भर में असाधारण रूप से अधिक वृष्टि हुई है। जिससे मौसमी बुखार तथा अन्य बहुत से रोग हर वर्ष की अपेक्षा अधिक मात्रा में प्रजा को सता रहे हैं। चारों ओर से रोग पीड़ितों के हाहाकार का शब्द सुनाई दे रहा है। ऐसे समय मे आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि वह लोगों की सेवा में अपनी पूरी शक्ति लगा दे। ऐसे असाधारण समय में असाधारण उद्योग की

आवश्यकता होती है। आर्यसमाज की सारी संस्थाओं को इस समय असाधारण शक्ति लगा कर देशवासियों की सेवा का प्रयत्न करना चाहिए। हरेक आर्यसमाज को न केवल अपने नगर या ग्राम में प्रत्युत उसके आस पास भी जितनी दूर तक सम्भव हो रोगियों में दवा बांटनी चाहिए। रोगियों की सेवा करनी चाहिए और अच्छे चिकित्सकों की सहायता से रोग को रोकने का प्रयत्न करना चाहिए। इस कार्य में आर्यवीर दल के स्वयंसेवकों को विशेष तत्परता दिखानी चाहिए। मेरा हरेक प्रान्त की आर्य-प्रतिनिधि सभा से आग्रह है कि वह अपने प्रान्त में आर्यसमाजों को और आर्य नर नारियों को प्रेरित करे कि वे इस संकट के समय में जनता की सेवा का श्रेय प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करें।

इन्द्र विद्यावाचस्पति, मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली

अन्तरंग सभा अखिल भारतीय आर्य वीर दल समिति स्थान बलिदान भवन देहली तिथि १-११-४२ के कुछ आवश्यक निर्णय

१. निश्चय हुआ कि—प्रधान शिक्षक की सहायता के लिए प्रचारक के तौर पर एक सज्जन को रखा जाये। इस स्थान की पूर्ति के लिए पं० पूर्णचन्द्रजी को पंजाब प्रतिनिधि सभा से लेने का यत्न किया जाय।

२. प्रधान सेनापति पं० देशबन्धुजी प्रतिमास शाखाओं में से किसी न किसी का निरीक्षण किया करें।

३. प्रधान शिक्षक पं० ओ३म् प्रकाशजी मुख्य सेनापति रहेंगे।

४. आगामी तीन मास में आर्यवीर दल "संगठन के सीधे कार्य को निम्नलिखित जिलों में परिमित किया जाय।

(१) दिल्ली, (२) मुजफ्फरनगर, (३) मेरठ, (४) बुलन्दशहर, (५) गुड़गांव, (६) रोहतक, (७) हिसार, (८) करनाल।

५. स्थानीय तथा प्रान्तीय सभाओं की आय का २५ फी सदी केन्द्रीय समिति में होना चाहिए।

६. आर्यवीर दल के प्रचारकों को चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा भी करनी चाहिए।

आर्य वीर दल शिक्षण शिविर

जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि १५ नवम्बर १६४२ से मुजफ्फरनगर में आर्य वीर शिक्षण शिविर खोला जायेगा जिसमें अखिल भारतीय आर्य वीर दल समिति के स० प्रधान सेनापति श्री ओंप्रकाशजी त्यागी वीरों को उपयुक्त शिक्षण देंगे। यह शिविर लगभग २० दिनों का होगा। इसमें जो सज्जन सम्मिलित होना चाहें वे निम्न पते पर शीघ्र पत्र व्यवहार करें शिक्षार्थियों को १५) मासिक के हिसाब से भोजनादि व्यय देना होगा। शिविर का अन्य व्यय इस समिति के जिम्मे होगा।

मन्त्री—
अखिल भारतीय आर्य वीर दल समिति
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

साहित्य समीक्षा

"सात्विक जीवन" विजयाङ्क—सम्पादक श्री रुलियाराम गुप्त स० सम्पादक प० वेद राज जी वेदालङ्कार "प्रिन्टिङ्ग हाउस" हौज कटरा बनारस। इस अङ्क का मूल्य ६ आना। पत्र का वार्षिक चन्दा ३)

'सात्विक जीवन' नामक मासिक पत्र का यह विशेषाङ्क 'विजयाङ्क' के नाम से विजयदशमी के अवसर पर प्रकाशित हुआ है। इसमें 'सात्विक जीवन' 'मस्ती का चश्मा स्वामी रामतीर्थ' 'मलेरिया' ज्वर 'धर्मों का समन्वय 'मुटापा जा सकता है, धर्मों का समन्वय, शिक्षा का महत्व, उपवास, राष्ट्रभाषा हिन्दी, श्री दयानन्द सरस्वती और ब्रह्मचर्य, विजयगीत इत्यादि विषयक उत्तम लेखों और कविताओं का संग्रह है। सम्पादकीय टिप्पणियों में ऐतिहासिक और पौराणिक दृष्टि से विजयादशमी के महत्व और सन्देश पर अच्छा विचार किया गया है। यद्यपि इस अङ्क प्रकाशित कई लेखों का विजया दशमी आदि से साक्षात् सम्बन्ध नहीं तथापि 'सात्विक जीवन' पत्र के उद्देश्य में साधक और उपयोगी होने के कारण उन्हें स्थान दिया गया है। सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द का 'दुर्गास्तोत्र' विषयक जो लेख इस अङ्क में दिया गया है और जिसमें दुर्गा के लिये पौराणिक 'सिंह धारिणी, त्रिशूल धारणी, काली रूपिणी, नृमुण्ड मालिनी, दिगम्बरी शिवप्रिया इत्यादि विशेषणों का प्रयोग है वह कई वर्ष पूर्व का लिखा प्रतीत होता है। जो पौराणिक भाव भरित है। उस लेख की हम विशेष प्रशंसा नहीं कर सकते और न उसके कई पौराणिक भावों से हम सहमत हैं, हमें उस लेख को पढ़ कर अवश्य कुछ आश्चर्य हुआ। शेष लेख अपनी अपनी दृष्टि से सुन्दर शैली में लिखे गये हैं। सारा अङ्क बड़ा उपयोगी होगा इसमें सन्देह नहीं। 'सात्विक जीवन' के कुछ और अङ्क भी हमने देखे हैं उनके आधार पर हमें यह लिखने में संकोच नहीं कि इस पत्र का सम्पादन अच्छी योग्यता से हो रहा है। आशा है यह पत्र उत्तरोत्तर उन्नति करता जायगा।

"कल्याण" का महाभारताङ्क" गीता प्रेस गोरखपुर पृष्ठ संख्या लगभग १४० इस अङ्क का मूल्य ४≡)

'कल्याण' मासिक पत्र अपने विशेषाङ्कों के कारण काफी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। इस विशेषाङ्क के निकालने में जो परिश्रम किया गया है उस पर कोई भी चकित हुए बिना नहीं रह सकता। महाभारत की प्रायः सारी कथा महाभारतान्तर्गत अनेक आख्यानों सहित इसमें दे दी गई है। भूमिका में महाभारत के सम्बन्ध में श्री प० श्री पाद दामोदर सातवलेकर जी, पं० कृष्णदत्त जी भारद्वाज एम० ए०, पं० गङ्गाशङ्कर जी मिश्र एम. ए. प० जगन्नाथ प्रसाद जी मिश्र एम० ए० बी० एल० इत्यादि के कई विचार पूर्ण लेख भी संगृहीत किये गये हैं। यदि इस अङ्क के सम्पादक महोदय कथा सङ्कलन करते हुए अपने विवेक को अधिक काम में लाते तथा

नवयुग निर्माता महर्षि दयानन्द को श्रद्धाञ्जलि

'सार्वदेशिक' के इस मास (नवम्बर) के अङ्क को 'ऋष्यङ्क' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है क्यों कि यह ऋषि दयानन्द निर्वाणोत्सव (दीपमाला) से दो एक दिन पूर्व निकलेगा और इस में अधिकतर लेख और कविताए ऋषि दयानन्द और उनके कार्य वा सन्देश के साथ सम्बन्ध रखने वाली ही प्रकाशित की गई हैं। इस अङ्क में प्रकाशित लेखों तथा ऋषि दयानन्द की अमरकृतियों के निष्पक्षपात अध्ययन से यह स्पष्ट ज्ञात होगा कि ऋषि दयानन्द सचमुच नवयुग निर्माता थे जिन्होंने धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय सब दृष्टियों से जनता की अवस्था सुधारने और मार्ग भ्रष्ट सन्तप्त जगत् के सन्मुख वैदिक आदर्श उपस्थित करने मे तन मन धन समर्पण कर दिया। धर्म के आदि स्रोत वेद के यथार्थ स्वरूप का (जिसे सर्व साधारण की तो बात ही क्या है बडे-बडे विद्वान् और आचार्य तक भूल गये थे अथवा उपेक्षा की दृष्टि से देख रहे थे) उन्होंने जनता को ज्ञान कराया और उसकी सार्वभौम युक्तियुक्त शिक्षाओं पर चल कर शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय सब प्रकार की उन्नति करने का आदेश दिया। 'मेरी आखें तो उस दिन को देखने के लिये तरस रही हैं जब कश्मीर से कन्या कुमारी तक सब भारतीय एक राष्टभाषा को समझने और बोलने लग जाएगे" इत्यादि स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य वाक्यों का उच्चारण ही ऋषि ने नहीं किया बल्कि गुजराती होते हुए भी अपने सब मुख्य ग्रन्थ आर्य भाषा (हिन्दी) में लिखे और उसे सीखना प्रत्येक आर्य के लिये अनिवार्य बताया। अधिकारियों के पास निवेदन पत्र (Memorial) भिजवा कर इसे राज भाषा बनवाने का भी विशेष प्रयत्न किया। स्वदेशी और स्वराज्य के महत्व को जनता के सामने इस युग में सब से पूर्व रक्खा यहा तक कि स्वर्गीय डा० ऐनीबेसेन्ट को India a nation' नामक पुस्तक में लिखना पड़ा कि "Swami Dayananda was the first to proclaim India for Indians' अर्थात् स्वामी दयानन्द प्रथम थे जिन्होंने यह घोषणा की कि भारत भारतीयों के लिये है। अस्पृश्यता निवारण, राष्ट्र भाषा प्रचार, स्वराज्य सम्पादन, स्वदेशी आन्दोलन आदि प्रत्येक शुभ आन्दोलन के जन्मदाता वैदिक धर्मोद्धारक शिरोमणि आचार्यवर के प्रति हम श्रद्धाञ्जलि अर्पण करते हैं तथा सब आर्यों से निवेदन करते हैं कि महर्षि के आदेशानुसार वेदादि सत्य शास्त्रों के स्वाध्याय और तदनुसार आचरण का ऋषिनिर्वाणोत्सव पर विशेष रूप से व्रत लें।

शुद्धि चक्र—मैसूर में सुशिक्षित ईसाइयों की शुद्धि —

श्री धर्मराज जी आर्य मन्त्री आर्यसमाज मैसूर ने समाचार भेजा है कि गत ११ अक्तूबर को वहा के समाज मन्दिर में डा० विन्सेन्ट डी पॉल और मि० डेविड के परिवारों का जिनमें १३ व्यक्ति थे शुद्धि संस्कार वैदिक रीति से समारोह पूर्वक हुआ। श्री भास्करपन्त सुब्बनरसिंह शास्त्री ने शुद्धि संस्कार कराया। शुद्ध सज्जनों को जो बडे सुशिक्षित ईसाई थे सीताराम और धर्मपाल इत्यादि नाम दिये गये और उनके हाथ से सबने मिठाई इत्यादि प्रेमपूर्वक ग्रहण की। साय न्याय विद्वान् श्री वीरराघवन् Ph D की अध्यक्षता मे मसूर टाउन हाल में सार्वजनिक सभा हुई जिसमे शुद्ध हुए २ सज्जनों और सार्वदेशिक सभा के उत्साही प्रचारक श्री सुन्दरराव आदि के प्रभावशाली भाषण हुए।"

डा० विन्सेन्ट डी पाल और मि० डेविड ने ईसाई मत का परित्याग करके वैदिक धर्म की शरण मे आते हुए 'Back to Arya Home' नामक छोटी पुस्तका भी लिखी है। हम विवेक पूर्वक सपरिवार वैदिक धर्म की शरण में आये हुए इन सज्जनों का हार्दिक स्वागत करते हैं और अपने उत्साही प्रचारक श्री सुन्दरराव जी तथा मैसूर आर्यसमाज के उत्साही कार्यकर्ताओं का अभिनन्दन करते हैं। हमें आशा है कि यह शुद्धि आन्दोलन और भी प्रबल रूप से चलाया जाएगा और सार्व भौम वैदिक धर्म के उत्तम तत्वों से प्रभावित होकर सुशिक्षित सज्जन सपरिवार इसकी शरण में आकर अपना जीवन सुधारेंगे। जाति भेद और अस्पृश्यता का समूल नाश करके आर्यों को शुद्ध व्यक्तियों के साथ समानता और भ्रातृ भाव पूर्ण व्यवहार करना चाहिये तभी शुद्धि आन्दोलन सफल हो सकेगा अन्यथा नहीं।

ग्वालियर में आर्य विवाह की वैधता का विधान :—

ग्वालियर सरकार ने हाल ही में आर्यविवाह की वैधता का विधान (बिल) जनमत के लिये प्रकाशित कराया है जिसकी भूमिका में इस आशय के शब्द हैं कि 'आर्य समाजी हिन्दुओं के ही एक वर्ग हैं। ये लोग वेदों की सर्वोच्चता को स्वीकार करते हैं परन्तु उनका विश्वास है कि जाति व्यवस्था उनके धर्म ग्रन्थों के अनुसार नहीं है। इनमे एक विशेष प्रकार की विवाह प्रथा प्रचलित चली आ रही है जो जातिभेद को स्वीकार नहीं करती। इस विधान का अभिप्राय ऐसी विवाह की प्रथा को वैधानिक स्वीकृति देकर आर्य समाजियों में अन्तर्जातीय विवाह की निश्चयात्मक रूप से वैधता का स्थापित करना है। राज्य मे आर्य समाजियों की बढ़ी तादाद देखते हुए यह अवश्य प्रतीत होता है कि ऐसे विधान की शीघ्र ही व्यवस्था की जाए।"

इस विधान की शेष धाराए लगभग वही हैं जो ब्रिटिश भारत में प्रचलित आर्य विवाह कानून (Arya marriage Act no 19 of 1937) हैं। हम ग्वालियर सरकार के इस स्तुत्य कार्य का अभिनन्दन करते हैं और ग्वालियर राज्य की जनता से अपील करते हैं कि इसका पूर्ण रूप से समर्थन करे जिससे अन्तर्जातीय विवाह की वैधा-

निक कठिनाई दूर हो जाए। वर्तमान विधान में एक परिवर्तन आवश्यक है कि अन्तर्जातीय विवाह (Inter Caste marriages) की जगह पर अन्तर्विवाह (Inter marriages) शब्द रखा जाय जिससे शुद्ध व्यक्तियों के विवाह पर भी यह लागू हो सके जैसे कि उपर्युक्त १९३७ का आर्य विवाह कानून है। साथ ही 'इसका प्रभाव सम्पूर्ण ग्वालियर राज्य में होगा' इसके साथ यह भी जोड़ देना चाहिए कि ग्वालियर महाराज की सारी प्रजा पर चाहे वह कहीं निवास करे यह लागू होगा (It applies also to all subjects of His Highness raiding beyond the limits of the State) इन साधारण परिवर्तनों के साथ हम इस विधान का पूर्ण समर्थन और अभिनन्दन करते हैं। अन्य रियासतों मे भी ऐसे नियम को बनवाने का आर्यों को अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

सभा का स्थिर पुस्तकालयः—विशेष आवश्यकता

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि के स्थिर पुस्तकालय को उन्नत करने का प्रयत्न गत कई मासों से निरन्तर जारी है। इस समय पुस्तकों की सख्या ८०० से ऊपर पहुँच चुकी है। यदि वेदप्रेमी उदार दानियों से १०००) की सहायता पुस्तकालयार्थ शीघ्र प्राप्त हो जाए तो वेद विषयक अनेक उत्तम पुस्तकों को मगवाया जा सकता है। जिन की वेदों के अंग्रेजी आदि मे अनुवाद तथा अनुसन्धानादि कार्यार्थ तुरन्त आवश्यकता है आशा है वह राशि दानी महानुभावों से शीघ्र प्राप्त हो जाएगी। इस के अतिरिक्त सभा पुस्तकालयार्थ सत्यार्थ प्रकाश और सस्कार विधि आदि ऋषि दयानन्द कृत ग्रन्थों के सब सस्करणों की आवश्यकता है। जिन सज्जनों वा आर्य समाजों के पास पुराने सस्करण हों वे एक २ प्रति अवश्य सभा के स्थिर पुस्तकालयार्थ भेजने की कृपा करें।

(पृष्ठ ३९४ का शेष)

अस्वाभाविक, प्रकृति नियम और सदाचार विरुद्ध केवल अन्धविश्वास वर्धक अशो को (जो दुर्भाग्यवश अब महाभारत मे कई जगह पाये जाते हैं और जिन्हें हम प्रक्षिप्त समझते हैं) छोड़ कर वीरों के चरित्रों और राजनीति धर्म नीति इत्यादि विषयक उपदेशों का सग्रह करते तो यह अङ्क और भी अधिक उपयोगी बन जाता तथा सुशिक्षित विवेक शील पुरुष भी इस से अधिक लाभ उठा सकते। उदाहरणार्थ पृ० ६६२ पर महाभारत युद्ध से पूर्व का सजय ने यों वर्णन किया है "आज कल गौओं के पेट से गधे उत्पन्न होते हैं घोड़ी से गौ के बछड़े की उत्पत्ति होती है और कुत्ते गीदड़ पैदा कर रहे हैं।" इत्यादि पृ० ४६१ पर मुकुटादि धारी सूर्य के कुमारी कुन्ती से समागमादि की कथा भी ऐसी असङ्गत सदाचार नाशक बातों का एक उदाहरण है। यदि इस अङ्क के परिश्रमी सम्पादक महोदय ऐसी असङ्गत बातों का समावेश न करते अथवा उनकी कोई बुद्धि सङ्गत व्याख्या करते तो हमारे विचार में अधिक अच्छा होता।

शास्त्रोक्त विधि द्वारा निर्मित

जगत प्रसिद्ध

शुद्ध हवन सामग्री.

धोखे से बचने के लिये आर्य्यों को

बिना वी॰ पी॰ भेजी जाती है।

पहिले पत्र भेज कर ≤- नमूना बिना मूल्य मंगालें

नमूना पसन्द होने पर आर्डर दें

अगर नमूना जैसी सामग्री हो तो मूल्य भेज दें

अन्यथा

कूड़े में फेंक दें

फिर

मूल्य भेजने की आवश्यकता नहीं।

क्या

इससे भी बढ़ कर कोई सचाई की कसौटी हो सकती है ?

भाव ।।) सेर. ८॰ रुपये भर का सेर

थोक ग्राहक को २५) प्रति सैकड़ा कमीशन।

मार्ग-व्यय ग्राहक के जिम्मे

रामेश्वरदयालु आर्य पो॰ अमोली, फतेहपुर (यू॰पी॰)

श्री प॰ रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

विषय-सूची

॥ ओ३म् ॥

* सार्वदेशिक-आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १७ | मार्गशीर्ष १९९९ | दिसम्बर, १९४२ ई० | दयानन्दाब्द ११८ | अङ्क १०

कल्याण मार्ग

ओ स्वस्ति पन्थामनुचरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताऽघ्नता जानता संगमेमहि ॥ ऋ० ५।५१।७

शब्दार्थ —हम (सूर्याचन्द्रमसौ इव) सूर्य और चन्द्र की तरह सदा (स्वस्ति पन्थाम्) कल्याण के मार्ग पर (अनुचरेम) चलते रहें। (पुन) फिर (ददता) दान देने वाले (अघ्नता) अहिंसक और और (जानता) ज्ञानी पुरुष की ही (संगमेमहि) संगति को हम करते रहें।

पद्यानुवाद :—

नाथ हम कल्याण के ही, मार्ग पर चलते रहें
सूर्य चन्द्र समान अपने, नियम का पालन करें।
दानियों के ज्ञानियों के, संग ही में हम रहें
जो अहिंसक सत्यवादी, मेल उनसे ही करें ॥

वेदामृत—

निर्भयता

(लेखक—स्व० धर्मवीर श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज)

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभिप्रणोनुमो जेतारमपराजितम् ॥
ऋक्० १.११ २

पापी मनुष्य का हृदय सदा कम्पायमान रहता है। परमात्मा की दी हुई ठण्डी ठण्डी वायु पर्वतों की वनस्पतियां तथा शान्तिप्रद जल उसे किञ्चिन्मात्र भी आनन्द नहीं दे सकते। ईश्वरीय रचना को देखता हुआ और हर एक दृश्य तथा वृक्षों के पत्तों तक में उस परमपिता की महान् शक्ति को अनुभव करता हुआ भी हर समय वह भयभीत रहता है। सांसारिक सर्वोत्तम, महा-तेजस्वी पदार्थ उसके चित्त को किञ्चिन्मात्र भी प्रसन्न नहीं करते। उपवन में भिन्न भिन्न प्रकार के पुष्पों की सुगन्धि बिल्कुल व्यर्थ है। चन्द्रमा की शोभा युक्त शीतल चांदनी से उसे किञ्चिन्मात्र शीतलता नहीं प्राप्त होती। वह यत्न करता है कि किसी प्रकार प्रसन्नता प्राप्त हो परन्तु सब ओर निराशा पाता है। इतने पदार्थ होते हुए और आनन्द लेने के इतने उपायों की उपस्थिति में भी जीवात्मा की निराशा का एक कारण है और वह यह है कि जिस मन के द्वारा इस सृष्टि को उत्पन्न करने वाले स्वामी की अद्भुत लीला को देख जीवात्मा ने मोहित होकर आनन्द प्राप्त करना था, वह मन पाप के बोझ से इस प्रकार दबा हुआ है कि उसे भयंकर अवस्था में कुछ नहीं सूझता। मन्द कर्मों ने उसको इस योग्य नहीं रहने दिया कि वह किसी समय ईश्वर का चिन्तन कर सके। पाप में फंसा हुआ रात दिन खोटे कर्मों की ओर भागता है और परिणाम यह होता है कि उसकी अवस्था क्षण क्षण नीच दशा को प्राप्त हो जाती है। पाप का मैल और उसका बोझ अधिक से अधिक मन पर पड़ जाता है। इस समय वह अति व्याकुलता अनुभव कर झुंझलाता है और बहुत ही ठोकरें खाता है परन्तु बनता कुछ नहीं। यह अवस्था निःसन्देह दया की पात्र है। पर क्या किया जाय ? कर्मफल अवश्य भोगना ही पड़ता है। सुख के सब साधनों की परीक्षा करके जीवात्मा निराश और थकित होकर बैठ जाता है और संसार के बंधनों में फंसा हुआ ही बेबस कहता है कि हे परमात्मन्! यह अन्तरिक्ष मेरे लिये अभय हो जावे और यह पृथ्वी जिस पर मैं वास कर रहा हूँ और मेरे सिर पर अपने बड़े तेज और प्रकाश से चमकने वाला सूर्य मुझे भय-दायक न हो। और पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशाओं से मुझे किञ्चित् भय न हो। अपने मित्रों और उन मनुष्यों से जो कि मेरे मित्र नहीं मुझे कुछ डर न हो। ज्ञात और अज्ञात दोनों मेरे लिये हानिकारक न हों। रात्रि और

मित्र मुझे आनन्द देने वाले हों। परन्तु यह कैसे हो सकता है? यह सब बड़े शुभ कर्मों का फल है। चित्त की वृत्तियों को दुष्ट भाव से रोका जाय, पाप का मैल मन को किसी प्रकार मैला न करे। अशुभ कामनायें और खोटे विकल्प मन में कदापि पैदा न हों। तन, मन से ईश्वरपरायण हों तब यह गति हो सकती है कि संसार के सारे पदार्थ इस भय के देने वाले न हों। ईश्वरीय रचना के सब पदार्थ जीवात्मा के लिये कल्याणकारी हैं। यह उसकी अविद्या और मूर्खता है कि पाप कर्मों के अन्धकार में फंसकर इन सबसे डरने लग जाता है। जब इन शब्दों का भी फल पापी मनुष्य कुछ नहीं देखता तब और भी व्याकुल हो जाता है और बड़ा ही अव्यवस्थित चित्त होकर विचार करता है कि क्या उपाय करूँ जिससे चित्त को शान्ति प्राप्त हो। इस दुर्दशा से बचकर शान्ति को प्राप्त होऊँ। सोचते सोचते एक परिणाम पर पहुँच जाता है और थोड़ी देर के लिये अपने मन से बुरे विचारों को दूर करके शुद्ध हृदय से ईश्वर की शरण में आ जाता है और कहता है कि "हे परमेश्वर। तेरी मित्रता तथा अनुकूलता में हम अनन्य बल वाले होते हुए किसी से न डरें।"

"हे बल के पति। सबसे जीतने वाले। किसी से पराजित न होने वाले प्रभु। तेरी हम हर प्रकार से स्तुति करते हैं।"

बस इतने में ही चित्त को शान्ति हो जाती है। प्यारे मित्रो। उस परम पिता की अनुकूलता और उसकी आज्ञा का पालन क्या ही आनन्द दायक है। आओ। हम सब मिलकर उस बलपति के द्वार पर चलें जिससे उनसे बल प्राप्त करके हम इस योग्य हो जावें कि संसार मात्र की बुरी भावनाओं का मुकाबिला करते हुए उस सबसे महातेजस्वी और परमपिता की नित्य स्तुति कर सकें। और हमारे लिये सृष्टि के सब पदार्थ सुखदायी हो जावें।

अध्यात्म सुधा

(लेखक—स्व० धर्मवीर श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज)

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
क्रतो स्मर क्लिबेस्मर कृतं स्मर ॥

यजु० ४० १२ ॥

उपदेश

आत्म बोध के बिना मनुष्य इस ससार मे पशु समान विचरता है। जहाँ वह कर्तव्य का ज्ञान न होने से पशुओं की सी आयु व्यतीत करता है वहां यह न जानता हुवा कि मैं क्या हूँ ? कहा से आया हूँ ? किस लिये आया हूँ ? किस तरह आया हूँ ? कौन लाया है ? कहा जाऊगा ? मृत्यु से इस प्रकार डरता है जैसे एक अंधेरी कोठरी में प्रवेश करने से बालक। मृत्यु का नाम सुनते ही उसका दिल काप जाता है। यदि उसको सासारिक धन ऐश्वर्य आदि विशेषता से प्राप्त है तो मृत्यु उसको और भी भयानक प्रतीत होती है। क्योंकि उसे यह मालूम नहीं कि भविष्य में मेरी क्या गति होगी। वह अपनी अज्ञानता से यही समझता है कि इस शरीर के नाश होने के साथ ही मैं भी नष्ट हो जाऊगा। सारा खेल इस शरीर के साथ ही है। शरीर से अतिरिक्त मैं और कुछ नहीं हूँ। शरीर की उन्नति के साथ मेरा प्रादुर्भाव हुवा और शरीर की मृत्यु के बाद मैं सदा के लिये मिट जाऊंगा। पर ज्ञानी की अवस्था इसके सर्वथा ही विपरीत है। वह निश्चय रूप से जानता है कि मैं शरीर नहीं हूँ। शरीर से पृथक् मै आत्मा हू मेरा निज स्वरूप आत्मा ही है जो कि अमर है शरीर तो एक प्रकार का बाह्य वस्त्र है। वर्तमान शरीर के वियोग पर मैं अपने कर्मों की गति अनुसार परमात्मा की न्याय व्यवस्थानुकूल किसी और शरीर को धारण करूगा। ऐसा जानता हुआ वह मृत्यु से किञ्चित् भी भय नहीं करता क्योंकि उसके समीप मृत्यु केवल शरीर का बदलना है। जैसे मनुष्य एक मकान के गिर पड़ने पर दूसरे मकान में निवास कर लेता है या एक वस्त्र के फट जाने पर दूसरा धारण कर लेता है। इसी प्रकार एक शरीर से पृथक् होकर जीवात्मा दूसरे को प्राप्त होता है। इसी ज्ञान, अज्ञान का भेद बतलाने के लिए ऊपर लिखे वेदमन्त्र मे मनुष्य को चेतावनी दी गई है कि वह इस प्राकृतिक शरीर को विनश्वर समझ कर रात दिन इसके पालन-पोषण में ही न लगा रहे। अन्त मे इस शरीर ने भस्म होना है। इस समय इसका जीवात्मा से सम्बन्ध है इसलिए जीवात्मा के लिए उपदेश है कि मृत्यु समय परमात्मा के निज नाम 'ओ३म्' शब्द का अर्थ सहित स्मरण करते हुए अपने कर्मों को भी स्मरण करे क्योंकि कर्मों के अनुसार ही सुख दुःख प्राप्त होता है। कर्मों के ही अनुसार जन्म होता है

आदर्श नेता

(लेखक—श्री पं० गङ्गाप्रसादजी उपाध्याय, एम० ए० प्रधान संयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, प्रयाग)

नेता के दो गुण

स्वामी श्रद्धानन्दजी नेता थे। वे जन्म से ही नेता थे। नेतृत्व उनकी इस जन्म की कमाई नहीं थी। सम्भवतः अनेक पिछले जन्मों की कमाई रही होगी।

नेता के गुणों का विश्लेषण कठिन है। नैपोलियन बोनापार्ट नेता था। किन गुणों के कारण? बता नहीं सकते। जब वह एल्बा टापू से थोड़े से मित्रों के साथ भागकर फ्रांस के तट पर आया तो फ्रांस-नरेश भयभीत हो उठा और उसने नैपोलियन के दमन के लिये बहुत बड़ी सेना भेजी। नैपोलियन के पास कुछ सामान न था। यदि प्रत्येक सिपाही एक-एक मुट्ठी राख नैपोलियन पर डाल देता तो उस राख में दबकर ही नैपोलियन मर जाता। परन्तु हुआ क्या? नैपोलियन को देखते ही राजकीय सेना ने पक्ष-परिवर्तन कर लिया। क्षण भर मे बिना एक गोली चलाये ही नैपोलियन एक भारी सेना का स्वामी बन गया। कैसे? कोई नहीं कह सकता। नेता में एक अमीमांसनीय आकर्षण होता है। स्वामी श्रद्धानन्दजी में भी वही बात थी। जब से वे आर्य-समाज में प्रविष्ट हुये नेता बन कर ही रहे:—

गुलशन में सबे फ़ौज में मिस्ले निशां रहे।
दुनियां में सर्वानन्द रहे हम जहां रहे॥

नेता होने के लिये दो गुण अवश्य चाहिये एक त्याग और दूसरा बुद्धि। बुद्धि-हीन त्यागी नेता नहीं हो सकता और त्याग-हीन बुद्धिमान् अधिक समय तक नेता नहीं रह सकता। जिनका जीवन नेतृत्व में कटा हो उनमें ये दो गुण तो अवश्य होंगे। परन्तु इन दोनों गुणों का अनुपात

(पृष्ठ ४०२ का शेष)

और कर्मों से ही मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस लिए आवश्यक है कि परमात्मा के निज स्वरूप को चिन्तन करते हुवे मनुष्य अपने कर्मों पर विचार करे। क्योंकि ऐसी अवस्था में अपने कर्मों का अनुमान लगाता हुआ वह जान सकेगा कि कहा तक वह बलदाता महाप्रभु की सहायता का पात्र है। जो लोग इस ईश्वरीय शिक्षा का पालन करते हुए, शरीर त्याग करते हैं उनके अन्दर व्याकुलता का नाम तक नहीं रहता। वे जो नित्य विश्वास के साथ शान्त चित्त होकर परमात्मा के स्वरूप का चिन्तन करते हुए और उनकी अटल न्याय-व्यवस्था पर भरोसा रखते हुवे महर्षि दयानन्द और दूसरे महात्माओं की तरह इस प्रकार के भाव प्रगट करते हुए कि "परमात्मन्! तेरी मगल इच्छा पूर्ण हो।" इस असार देह को त्यागते हैं वे महात्माजन जिनकी ऐसी पवित्र मृत्यु होती है मरते-मरते भी औरों के अन्दर जीवन का संचार कर जाते हैं।

क्या-क्या है यह कहना कठिन है। आक्सीजन और हाइड्रोजन मिल कर पानी बनता है। परन्तु हर परिमाण में नहीं। जब तक आक्सीजन का विशेष भाग हाइड्रोजन के विशेष भाग से विशेषरीत्या न मिले उस समय तक पानी न बन सकेगा। नेतृत्व के लिये भी बुद्धि और त्याग का एक विशेष समिश्रण होना चाहिये। परन्तु याद रहे कि जिस प्रकार गन्ने में से शक्कर और दूध में से घी निकालकर हलवा बना सकते हैं, इसी प्रकार कोई मानवी शक्ति नेताओं का निर्माण नहीं कर सकती। यह तो दैवी घटना है।

स्वामी श्रद्धानन्दजी में त्याग और बुद्धि का विचित्र समिश्रण था। यह नहीं कहा जा सकता कि उनसे अधिक विद्वान् समाज मे न थे। यह भी नहीं कहा जा सकता कि उनसे उच्च कोटि के वक्ता न थे। परन्तु यह तो निस्सन्देह बात है कि नेतृत्व करने की शक्ति उनमें विचित्र थी।

स्वामी श्रद्धानन्दजी आर्य समाज के नेता थे। ऋषि दयानन्द के मिशन को सर्व-साधारण तक पहुँचाने का तो सभी यत्न करते हैं। परन्तु असाधारण तक पहुँचाने में स्वामी श्रद्धानन्दजी ने जितनी सफलता प्राप्त की, वह दूसरों को प्राप्त नहीं हुई। उनमें विशेष बात यह थी कि जहा जाते व्यक्तिगत रूपेण जाते परन्तु आर्य-समाज की ख्याति बढ़ जाती। आज मृत्यु के बाद भी उनके द्वारा आर्य समाज का काम कम नहीं हो रहा। अपितु यह कहना चाहिए कि भौतिक-शरीर सम्बन्धी स्थूल-पना कम हो गया है। उनके जीवन में जो उन पर कटाक्ष करते थे वही उनके नाम पर अपीलें करके अपने काम को आगे बढ़ा रहे हैं।

स्वामी श्रद्धानन्दजी में मौलिकता थी। यों तो उन्होंने आर्य-समाज के सभी विभागों की उन्नति के उपाय निकाले परन्तु गुरुकुल उनका विशेष कार्य है। यद्यपि सब से पहला गुरुकुल सिकन्दराबाद में स्वामी दर्शनानन्दजी ने खोला, परन्तु गुरुकुलों की विचार-धारा का आरम्भ स्वामी श्रद्धानन्दजी से ही हुआ और गुरुकुलों की लोक-प्रियता का मूल-कारण वही थे। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी को जनता के सामने इस रूप में उपस्थित किया कि उच्च कोटि का ससार चकित हो गया। यूरोप के बड़े-बड़े शिक्षा-विज्ञान-विशारद आते और गुरुकुल को देख कर दंग रह जाते। वे गुरुकुल प्रणाली के पितामह थे। जब आर्य-समाज जगद्-विख्यात संस्था हो जायगी तो स्वामी श्रद्धानन्दजी इसी नाम से पुकारे जायेंगे।

यदि गुरुकुल कांगड़ी ही एक कार्य होता तो वह स्वामी श्रद्धानन्दजी को चमकाने के लिये पर्याप्त होता। परन्तु उनका कार्य क्षेत्र वहीं तक सीमित नहीं था। स्वामी श्रद्धानन्दजी ने पंडित लेखरामजी के समय से ही शुद्धि में भाग लिया था। परन्तु जब उन्होंने अपनी भरत-मिलाप की विचित्र योजना निकाली तो कांपने वाले कांप गये और शुद्धि संसार भर के आन्दोलनों में से एक हो गया। स्वामीजी की निर्भीकता बला की थी। यद्यपि घातक गोली उनके वक्षःस्थल को एक बार ही आहत कर सकी तथापि वह वक्षःस्थल आयु भर गोलियों के लिये खुला रहा। यदि वह १९२६

के दिसम्बर से पूर्व शहीद नहीं हुये तो इसमें इनका कोई दोष न था। गोलियां इनसे डरती रहीं न कि यह गोलियों से।

जैसा इनका जीवन चमत्कार-पूर्ण था वैसी प्रकार की इनकी मृत्यु भी। १८९७ ई० में पंडित लेखराम की शहादत को देख कर वे क्या जानते थे कि ३० वर्ष के निरन्तर अथक कार्य के पश्चात् उनको भी अपने मित्र आर्य-पथिक की भाँति ही वीर-गति प्राप्त होगी। ऐसे भाग्यशाली कम होते हैं। वे बीमार थे। निमोनिया के कीटाणु ही उनके जीवन का अन्त करने के लिये पर्याप्त थे। यदि वे उस दशा में ही चल बसे होते तो उनका जीवन बिना मुहर के रह जाता। अब्दुलरशीद को मानो इस मुहर को लगाने के लिये भेजा गया था।

जब-जब दिसम्बर आयेगा ससार आर्य-समाज के इस अपूर्व नेता की याद करेगा और ज्यों-ज्यों आर्य-समाज की कीर्ति बढ़ेगी वह स्वामी श्रद्धानन्दजी के यश को देदीप्यमान करेगी।

अमर शहीद स्वा. श्रद्धानन्दजी की स्मृति में श्रद्धा के फूल

(लेखक:—श्री लभ्भूराम जी नैय्यड़, आनन्दाश्रम, लुधियाना)

सामने रखकर सदा उस वीर स्वामी की मिसाल,
धर्म और जाति की सेवा का करें सारे ख्याल।

पंजाब केसरी श्री ला० लाजपतराय ने अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी की मृत्यु के समय में कहा था कि एक बात जो स्वामी श्रद्धानन्दजी को वर्तमान युग के सुधारकों में उच्च स्थान देती थी वह यह है कि "जिन बातों का आपने प्रचार किया उनको अपने जीवन में भी दर्शाया।" यह कहते समय जो पञ्जाब केसरी के विचार थे उनको उन्होंने विशेष रूप से प्रकट किया। ला० लाजपतराय के इस कथन को पढ़ने के पश्चात् अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी के लेख व उपदेश पढ़े बिना भी कोई थोड़ी देर के लिए सम्भवतः उनके कथन से सहमत होने पर बाधित हो जाता है। परन्तु प्रायः मनुष्य दूसरे के विचारों पर विश्वास लाने को अपनी सबसे बड़ी निर्बलता समझता है। यदि किसी के मन में यह विचार उत्पन्न हो कि पञ्जाब केसरी ने जो कुछ कहा उसमें अत्युक्ति है और इस विचार के आधार पर वह अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी के साहित्य के स्वाध्याय को प्रारम्भ करे तो बिना किसी यत्न के वह ला० लाजपतराय के विचारों का समर्थक बन जावगा।

अमर शहीद के भक्त उनको उच्च आत्मा मानते हैं निःसंदेह स्वामीजी का क्रियात्मक जीवन इतना महान् था कि उनको सब अपना नेता मानते थे। स्वामी जी की महत्ता का अनुभव उनके लेखों और उपदेशों से भली भांति मिल सकता है जिनको बार २ पढ़ा जावे तो नए से नया प्रभाव पड़ता है। मुझे यदि कोई लम्बे काल के लिए किसी कारागार में बन्द कर दे और मुझसे कहे कि आर्य सामाजिक साहित्य से अपनी रुचि के अनुसार कोई पुस्तक चुन लो तो मैं बिना झिझक स्वामी श्रद्धानन्दजी के अखबार 'सद्धर्म प्रचारक' की १८ साला फाईल को चुन लूंगा और अपने एकांत के समय उनको बार-बार पढ़ने के पश्चात् भी शायद किसी समय न घबराऊं। वह मेरे अकेलेपन का सबसे अधिक दुःख विनाशक होगा। हो सकता है कि मेरे इस विचार में लोगों को अत्युक्ति की झलक दिखलाई देती हो परन्तु प्रत्येक मनुष्य इसकी परीक्षा इस प्रकार कर सकता है कि अपने खाली समय में वह अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी के लेख तथा उपदेशों का स्वाध्याय करे तो मेरे दावे की सब से बड़ी दलील यह होगी कि उसे स्वामी श्रद्धानन्दजी के लेखों में प्रत्येक बार नया आनन्द और नया आकर्षण अनुभव होगा।

प्रश्न होगा कि नया आनन्द और नया आकर्षण किसलिये है! केवल यह कह देना कि उनके

लेखों और उपदेशों में अमोलापन है पर्याप्त नहीं इसलिये विचारने की आवश्यकता है कि अमर शहीद के लेखों में कौनसी विशेषता है जिसके कारण वे दिलों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। संसार का अनुभव है कि वह प्रत्येक बात जो मनुष्य के विचारों के अनुकूल होती है उसे वह अधिकतर पसन्द करता है। इसलिए वह प्रत्येक लेख या उपदेश जो मनुष्य को यह समझने पर बाधित करे कि नेता ने जो कुछ लिखा है या कहा है उस पर अवूरग्राह्य है। प्रत्येक को पसन्द हो। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी जैसे महापुरुष समय को पलटा देने वाले होते हैं। वे किसी विशेष सन्देश को लेकर ससार में प्रकट हुआ करते हैं। उनका कार्यक्रम सकुचित विचारों की सीमा को लाघ कर सम्पूर्ण देश मे व्याप जाता है और उसके साथ २ उनका व्यक्तित्व भी सर्वव्यापी बन जाता है। महापुरुषों के जीवन पराधीन देश और पददलित देशवासियों में आशा का सचार कर उनको उन्नतिशील बनाने के लिए ज्योतिस्तम्भ (Light house) का काम देते हैं। इस सम्बन्ध में स्वामीजी का दिव्य जीवन सूर्य्य के समान चमकता दीख पड़ता है। कौनसा ऐसा क्षेत्र है जिसमे उन्होंने अपने अलौकिक त्याग, कठोर, तपस्या, महान्, पुरुषार्थ, दृढ सकल्प, अटल विश्वास, अपार श्रद्धा, आत्मत्याग का विलक्षण परिचय नहीं दिया। वकालत करते २ जब यह विचार उत्पन्न हुआ कि इसमे आत्मा का हनन है यह कहते हुए कि "मै किसी की नहीं कहता, न्यून से न्यून मैं ईमानदारी से वकालत नहीं कर सकता और वकालत को तिलाजलि दे दी। स्त्री शिक्षा के व्यापक क्षेत्र में क्रांति का प्रतिष्ठित कार्य करने वाली क० म० वि० जालन्धर नामक सस्था की स्थापना में आपका बड़ा भाग था जो उस समय खोली गई। जबकि स्त्री शिक्षा की ओर किसी का ध्यान भी नहीं गया था।

फिर गु० कु० विश्वविद्यालय कांगड़ी की स्थापना कर इसको अपने ही प्रयत्न द्वारा सफल बना दिया। गुरुकुल की राष्ट्रीय शिक्षा का पुनर्जीवन वास्तव में अमर शहीद के जीवन का मुख्य कार्य है और भारतीय राष्ट्र की यही सबसे ऊंची बड़ी देन है। देश, जाति राष्ट्र और समाज की गुरुकुल जो सेवा कर रहा है उससे स्वामीजी के व्यापक व्यक्तित्व का कुछ आभास आसानी से मिल जाता है। गु० कु० की सम्पूर्ण शिक्षा का हिन्दी को माध्यम बनाकर आपने हिन्दी को अपनाया था जिसका परिणाम यह निकला कि अपने सद्धर्म प्रचारक पत्र को जो १८ वर्ष से उर्दू में निकला करता था हिन्दी में निकालना आरम्भ कर दिया। हिन्दी प्रेम के कारण १९०९ मे भागलपुर मे होने वाले अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति के आसन पर आपको ही सुशोभित किया गया। गु० कु० विश्व विद्यालय के कार्य के कारण भारत की दृष्टि मे स्वामीजी का यह कार्य असाधारण है।

देहली के सत्याग्रह आन्दोलन की घटनाओं को कौन भूल सकता है। घण्टाघर के नीचे गोरखों की नगी तनी हुई किरचों के सामने छाती तान डटकर खड़े होना, जामा मस्जिद के मेम्बर (वेदी) पर से वेदमन्त्र का उच्चारण करते हुए भाषण देना, पचास २ हजार के जलूसों का

नेतृत्व करना, जनता को अगुली के एक इशारे से नियम मे रखना स्वामी श्रद्धानन्द जी के दिव्य जीवन की कुछ ऐसी घटनाएं हैं जिनका उल्लेख देश के इतिहास में स्वर्णीय अक्षरों में अङ्कित किया जावेगा। मार्शल-लॉ के पश्चात् अमृतसर मे उस समय "जबकि सब भयभीत थे" नेशनल कांग्रेस के वार्षिक उत्सव को सफलता के शिखर पर पहुचाने के पुरुषार्थ की कहानी कैसे भुलाई जा सकती है? कांग्रेस के प्लेटफार्म से हिन्दी मे दिया जाने वाला यह पहला भाषण था जिसकी ध्वनि श्रोताओं के कानों में और उसकी गूँज देश के कोने २ मे आज भी गूँज रही है और सदैव गूँजती रहेगी।

सिखों के गुरु बाग में सत्याग्रह कर जेल कोठरी मे इस बुढ़ापे की अवस्था में जाना भी स्वामी श्रद्धानन्दजी का ही कार्य्य था।

कांग्रेस से कुछ मतभेद होने पर अनन्य भाव से दलितोद्धार के कार्य में लगकर स्वामी जी ने दलितोद्धार सभा का जाल चारों ओर फैला दिया। जब स्वामीजी हिन्दू महासभा की ओर झुके उसमें ऐसा प्राण सचार किया कि उसमे शुद्धि सगठन को भारतव्यापी आन्दोलन बना दिया। अन्त में ७२ साल की वृद्ध अवस्था में रोगी होने पर भी अन्तिम श्वास तक कर्मशील जीवन बिताते हुए छाती पर गोलियां खाकर महान् बलिदान का अपूर्व दृश्य उपस्थित किया।

निश्चय ही आपका सर्वव्यापी जीवन सारे देश की सम्पत्ति है। प्रान्त की संकुचित सीमा के दायरे में उसको बन्द नहीं किया जा सकता। स्वामी जी की मृत्यु से हमारी जिम्मेवारियां और भी बढ़ जाती हैं। हम एक क्षण के लिए अपने गरेबान में मुंह डालकर (अन्दर दृष्टिपात करके) विचारें कि स्वामीजी के अमर होने के पश्चात् आज १६ साल तक हमने कर्तव्य का पालन कहां तक किया है। अमर शहीद स्वा० श्रद्धानन्दजी की स्मृति मनाने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि हम स्वामीजी के मिशन को सफलता तक पहुँचाने के लिए पूरे उत्साह और लगन से तत्पर और दृढ़ हों इसी में हमारा कल्याण है।

कर्म क्षेत्र में बढ़े पीरों जवां मर्दाना वार।
वेद जाति धर्म की खातिर खुशी से हों निसार॥

[इस लेख के लेखक श्री लब्भूरामजी नैयड़ स्व० धर्मवीर स्वा० श्रद्धानन्द जी के अत्यन्त प्रिय और विश्वासपात्र सहयोगियों तथा भक्तों में से एक थे। उनके लेख के अन्तिम शब्दों पर सब आर्यों को विशेष रूप से विचार करना चाहिये तथा श्री पूज्य स्वामी जी द्वारा प्रवर्तित आन्दोलनों की प्रगति को बढ़ाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।

—सम्पादक]

'सेवा धर्म का शिक्षक'

(लेखक:—पं० सोमदत्त जी विद्यालङ्कार गुरुकुल काङ्गड़ी)

——(:*:)——

शायद सन् १९१६ की बात है। मैं उस समय गुरुकुल में नवम श्रेणी में पढ़ता था। भोजन भंडार से, सायंकाल का भोजन करके अपना लोटा और कौल गंगा से मांजकर मैं अपने आश्रम में घुसा ही था कि मेरे एक सहपाठी ने कहा " दत्त ?" तुम्हें मालूम हो गया न कि मेरी ड्यूटी ११ से १ बजे तक है ?" मैंने कहा "क्यों क्या बात है कैसी ड्यूटी, मुझे तो अभी तक किसी ने कुछ नहीं बतलाया।" "अरे ? पंचम श्रेणी के ब्रह्मचारी देवदत्त को टाइफाइड हो गया है न, उसकी हालत ठीक नहीं है। डा० सुखदेव जी ने उसकी सेवा के लिये आज हमारी श्रेणी की ड्यूटी लगाई है।"

× × ×

वे दिन गुरुकुल के स्वर्गीय दिन कहे जा सकते हैं। गुरुकुल में छोटे बडे, ब्रह्मचारी कर्मचारी, स्त्री पुरुष सब मिलाकर लगभग ५०० व्यक्ति निवास करते थे। चारों तरफ गंगा, पहाड़ तथा जंगलों से घिरी हुई वह भूमि, दूसरी दुनियां से सर्वथा अलग थी। ये सब व्यक्ति एक कुल की तरह—बल्कि यों कहना अधिक उपयुक्त होगा—एक सजीव शरीर की तरह उस भूमि में रहते थे। महात्मा मुंशीराम जी इस शरीर की आत्मा थे। जिस प्रकार शरीर के किसी भी अंग के दुःखी तथा पीड़ित होने पर सारा शरीर दुःख अनुभव करता है इसी प्रकार कुल के किसी भी व्यक्ति के चाहे वह छोटे से छोटा कर्मचारी ही क्यों न हो, रोगी या कष्टयुक्त होने पर सारे कुल में चिन्ता फैल जाती थी। और सबसे अधिक तड़पन होती थी, इस शरीर की आत्मा, महात्मा मुंशीराम जी को। जब भी कोई व्यक्ति चाहे वह गुरुकुल मे कार्य करने वाला मेहतर ही क्यों न हो, सख्त बीमार पड़ता कुल पिता महात्मा मुंशीरामजी तथा अनन्य सेवक डा० सुखदेव जी की आज्ञानुसार रोगी की सेवा के लिये ब्रह्मचारियों की ड्यूटी लगा दी जाती थी। इसी सेवा भाव को देख कर ही तो सैकड़ों माता पिता अपने लख्ते जिगर बालकों को अपनी प्यारी गोद से अलग करके उस दीवाने (?) के हाथ मे. हिंस्र जंतुओं से आकीर्ण उस जंगल मे निवास करने के लिये निश्चिन्त होकर सौंप देते थे।

× × ×

रात के लगभग १२॥ का समय होगा। मैं रोगी ब्रह्मचारी के सिरहाने के पास एक कुर्सी पर बैठा हुआ पुस्तक पढ़ रहा था सहसा रोगी ब्रह्मचारी के जागने से तथा कराहने की आवाज से मेरा ध्यान किताब से हट गया। मैंने जलदी से पुस्तक एक तरफ रखदी और रोगी के माथे पर हाथ रख कर पूछा "क्यों देव ? क्या बात है।" "उलटी सी आती मालूम होती है" रोगी ने कहा और फिर घबराहट के कारण रोने लगा।

मै नीचे पड़ी हुई चिलमची को उठाने के लिये झुका वह पानी तथा थूक आदि से भरी हुई थी, इसलिये मैं झटपट भगी को—जो चिकित्सालय के सामने वाले बरामदे में पड़ा सो रहा था—बुलाने के लिये चला और थोड़ी देर बाद उसे अपने साथ लेकर रोगी के पास आ गया। वहां आकर मैंने बड़े आश्चर्य के साथ देखा। कुलपिता महात्मा मुशीराम जी रोगी ब्रह्मचारी के पास झुके खड़े थे। वह कै कर रहा था और वे अपने हाथ की अजली मे उसे कै करा रहे थे। रोगी बालक के कै कर चुकने के बाद उन्होंने बाहर जाकर अपने हाथ स्वच्छ किये और फिर बीमार के सिरहाने बैठ कर उसका सिर सहलाने लगे। मैं जमीन की तरफ आखें गड़ाये खड़ा था। वे मेरी तरफ देखकर बोले "तुम कहा चले गये थे ?" "यह कहता था मुझे कै आ रही है। चिलमची भरी पड़ी थी इसलिये मै उसे साफ़ कराने के लिये भगी को बुलाने के लिये गया था।" उन्होंने कहा। "तो तुम जाकर आराम करो, इसकी सेवा के लिये किसी अन्य को भेज दो, तुमसे सेवा हो चुकी" मैं शरम के मारे जमीन मे गड़ा जा रहा था। मेरा क्या कर्त्तव्य था यह तो मेरे गुरु ने मुझे स्वय सेवा करके बता दिया था। वे बोले 'यदि अचानक मैं न आ जाता तो इसका बिस्तरा कै से भर जाता, क्या वह तुम्हारे या भगी के आने तक प्रतीक्षा कर सकता था।" मैं चुपचाप खड़ा फर्श की तरफ देखता रहा, मेरे सिर पर घड़ों पानी पड़ चुका था। मैं कुछ बोलता तो किस मुह से। परन्तु मेरे गुरु ने मुझे कर्त्तव्य का ज्ञान खूब करा दिया था।

× × ×

गुरुकुल से शिक्षा समाप्त करके मुझे भी गुरुकुल मे ही छोटे ब्रह्मचारियों की देख रेख का काम तथा शिक्षा का काम करना पड़ा। सन् १९२५ की बात है मैं ब्रह्म० को लेकर लखनौजी यात्रा के लिये गया हुआ था हम लोग आर्य समाज मन्दिर मे ठहरे हुए थे। एक ब्रह्मचारी को कई दिन से ज्वर आ रहा था। उसे टाइफ़ाइड, हैजा, मलेरिया इसका निर्णय करने के लिये स्थानीय डाक्टर ने ब्रह्मचारी को जुलाब दिया था। रात के लगभग १ बजे का समय होगा। ब्रह्मचारी ने मुझे जगाया और कहा "मुझे शौच आया है।" मैं चिन्ता में पड़ गया कि क्या करना चाहिये—समाज मन्दिर में कोई टट्टी न थी पब्लिक लैटरीन वहा से लगभग २ फर्लांग पर थी। छावनी होने से आस पास गद फैलाने पर सख्त जुरमाना हो सकता है। तो फिर क्या करना चाहिये। क्या रोगी ब्रह्मचारी को उठा कर पब्लिक लैटरीन तक ले जाया जाय। पर एक तो बीमार को इस प्रकार हिलाना ठीक नहीं है—दूसरे उसे ज़ोर से पाखाना आया है वह इतने समय तक हाजत को रोक नहीं सकता—इसी प्रकार की बातें मेरे दिमाग में एकदम घूम गई। पर थोड़ी ही देर बाद मुझे अपने कर्त्तव्य का स्मरण होगया। मैं उठा—पास मे ही एक सिज़र्स सिगरेट का गत्ते का डब्बा पड़ा था, जिसमे पुत्री पाठशाला की कलमें पड़ी थीं—मैंने कलमें फर्श पर उलटा दीं। दो ईंटों के बीच में डब्बे को रखकर बीमार बालक को उस पर बिठा दिया। और फिर बदबूदार मल से भरे हुए उस डब्बे को लेकर २ फर्लांग दूर पब्लिक लैटरीन में फैंक आया। लौटकर आया ही था कि [illegible]

दो-फूल

(कविता—श्री भागीरथ भास्कर जी विशारद शिकोहाबाद)

धर्म—बलिवेदी पर, आर्य ! बलिदान दिया—
तेरे स्वागतार्थ पर्व—उत्सव मनाता हूँ।
सहृदयवान, त्यागी, ध्यानी, वीर था, सुधीर था तू,
तेरा ही अमर गीत, तुझको सुनाता हूँ।
जीवन कलाएँ कला निधि में प्रकाशती हैं—
तेरी सहृदयता पे मस्तक झुकाता हूँ।
श्रद्धानन्द ! श्रद्धाञ्जलि करलो स्वीकार आज,
तेरी मैं समाधि पर फूल-दो चढ़ाता हूँ।

महादान

विद्या दान, भूमि दान, स्वर्णदान, पशुदान,
धन, तिलदान देता कोई स्वाभिमान है।
पिण्डदान, अन्नदान, पुष्पदान, कन्यादान,
अभैदान जीवदान, शास्त्रों में प्रधान है।
आदान-प्रदान, सम्प्रदान, परिधान अरु,
दया-दीप-दान उपादेय उपमान है।
इन सब दानों में से, श्रेष्ठ यही दान है जो—
देश—धर्म पर देता आत्म-बलिदान है।

दान करे क्या दान तू ! तेरा मिथ्या मान।
दानों में इक दान है, जीवन का बलिदान ॥
वहाँ मान गौरव वहाँ, वहीं स्वर्ग का वास।
वीरों का जहँ रक्त से, लिखा जात इतिहास ॥
दीनबन्धु तुम से, सदा, माँगत यह वरदान।
बलि—वेदी पर धर्म हित, मेरा हो बलिदान ॥
रण में सुत के मरत ही रोने लगा समाज।
मां हँसकर बोली बनी वीर-प्रसूती आज ॥

(पृष्ठ ४१० का शेष)

उसे पाखाने की हाजत हुई। फिर उसी प्रकार करना पड़ा। बदबूदार मल को हाथ में लेते हुए संकोच होता था पर मेरे गुरु ने मुझे जो सेवा व्रत का पाठ पढ़ाया था वह मुझे मेरे कर्त्तव्य का ज्ञान करा रहा था। इस घृणित कार्य को करने में भी मुझे ग्लानि एवं लज्जा न प्रतीत होकर विशेष प्रकार का आनन्द तथा संतोष अनुभव होरहा था।

अपने गुरु महात्मा मुंशीराम जी की इन जीवन घटनाओं को तथा कुलपुत्रों के प्रति इस प्रकार के प्रेममय व्यवहार को देखकर हम कुलपुत्र चाहे भगवान् को (आत्मानुभूति न होने कारण) 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' समझ सकते या न समझ सकते पर अपने कुलपिता को तो सच मुच "त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव, त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वं मम देवदेव" इसी रूपमें पाया करतेथे।

हुतात्मा की अन्तिम कामना और एक प्रश्न ?

(लेखक—श्री स्वामी चिदानन्द जी श्रद्धानन्द शुद्धि सभा देहली)

दिसम्बर १६२३ ई० की २२ तारीख का दिन है। दिन के १२॥ बजे हैं। श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के सेवक धर्मसिंह ने आकर कहा—स्वामीजी ने आपको याद किया है।

क्यों ? मैंने पूछा।

इसका उत्तर तो वे ही देंगे। धर्मसिंह ने कहा।

मैंने तुरन्त काम छोड़ा और स्वामी जी के कमरे में पहुंचा। स्वामीजी उस समय अपनी रुग्ण शय्या पर, तकिये के सहारे बैठे हुए थे। मुझे देखकर कुछ मुस्कराये और कहा।

स्वामी चिदानन्दजी। सभा का आवश्यक काम (उन दिनों शुद्धि सभा का चौथा वार्षिक हिसाब चैक किया जा रहा था) छुड़ाकर एक अत्यावश्यक काम के लिए आपको यहां आने के लिए कष्ट दिया गया है।

स्वामी जी कष्ट कैसा ? मैंने कहा। आप उस आवश्यक काम के लिए आज्ञा कीजिए, जिसके लिए मुझे याद किया गया है।

स्वामी जी ने कहा 'सेवा कुछ नहीं। आपकी सभा के सभापति आनरेबल सर राजा रामपाल सिंह जी के० सी० आई० ई० का यह टेलीग्राम आया है। इसमें मेरी बीमारी के सम्बन्ध में पूछा है और सर्वथा नीरोग होने की कामना प्रकट की है। आप उनको मेरी ओर से इस आशय की एक चिट्ठी लिख दीजिए।

"मैं आपकी शुभकामना का बहुत आभारी हूं। इस समय यद्यपि मैं कुछ स्वस्थ हूं, किन्तु मेरा यह शरीर इस योग्य नहीं रहा कि जिससे कोई काम ले सकूं। इसलिए अब तो

मेरी यह कामना है कि—

इस पुराने शरीर को छोड़कर दूसरा शरीर धारण करूं, और फिर भारत में आकर शुद्धि के द्वारा देश व जाति की सेवा करूं।"

स्वामीजी की आज्ञानुसार पत्र लिख दिया और सर राजा साहिब के नाम पर भिजवा दिया गया।

और कोई आज्ञा ? स्वामीजी से मैंने कहा। उत्तर में स्वामी जी बोले कि—

"स्वामी चिदानन्द जी देखो। मैं रहूँ या न रहूँ, किन्तु मेरे पश्चात् शुद्धि का काम बन्द न होने पाये। शुद्धि आर्य हिन्दू जाति के लिए अमर बूटी है—इसे बराबर सींचते रहना।

पता नहीं कल क्या हो—

आप मेरी इस बात को खूब याद रखना कि हिन्दुओं का जोश पानी के बुल-बुले जैसा है। मैंने अमृतसर सिक्ख आन्दोलन में जेल-यात्रा के पश्चात् १६२३ ई० में—जबकि आगरा के आस-पास मुस्लिम मुबल्लिगों ने मलकानों में बड़ा

ऊधम मचा रक्खा था, शुद्धि के काम को बड़े उत्साह के साथ आरम्भ किया था। उस समय आर्य हिन्दुओं का जोश शुद्धि के पक्ष में बेताह उबल पड़ा था, और ऐसा प्रतीत होता था—मानों हिन्दुओं से करोड़ों नौ मुस्लिम बने हुए भाइयों को कुछ दिनों में ही शुद्ध करके, हिन्दू उन्हें अपने में एक रस मिला लेवेंगे। किन्तु वह जोश पानी के क्षणिक बुलबुले जैसा ही साबित हुआ। इसलिए मेरा कहना है कि—

आर्य हिन्दुओं में—

शुद्धि के लिए उस समय तक बराबर जोश भरते रहने की आवश्यकता है, जब तक कि हिन्दुओं से बने करोड़ों नौ-मुस्लिम भाई पुनः अपनी पुरानी आर्य जाति में पूर्ण शामिल नहीं हो जाते।

ओह! बात की बात में १६ वर्ष बीत गये—किन्तु स्वामी जी का आदेश उसी तरह कानों में गूंज रहा है। परन्तु हम और हमारे साथी नहीं? समस्त आर्य जाति? क्या आर्य जाति ने श्रद्धेय श्रद्धानन्द को—नहीं हुतात्मा श्रद्धानन्द के आदेश को पूरा करने के निमित्त कोई कदम आगे बढ़ाया?

यह सोचो!

और फिर इस सोलहवीं श्रद्धानन्द वर्षी के इस अवसर पर अपने हृदय को टटोलो !! उसे जोर से हिलाओ !!! और फिर स्वयं अपने अन्तरात्मा से प्रश्न करो, कि—

क्या हमने उस अमर हुतात्मा के आदेश रूप

शुद्धि को—

१. अपनी अन्तरात्मा की तुष्टि के लिए—

२. आर्य जाति के संगठन व उसकी उन्नति के लिए—

३. भारत देश-हित के लिए और

४. समस्त संसार की सुख शान्ति के लिए—सच्चे हृदय से अपनाया और उसके प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया है?

ऋषि दयानन्द के अप्रकाशित पत्र

(लेखकः—श्री प० हरिदत्त जी वेदालङ्कार)

महापुरुषों को जीवनियों को अच्छी तरह समझने तथा उनके आदर्शों को भली भांति जानने के लिये उनके लिखे पत्रों का बहुत महत्व होता है। कई बार उनके व्याख्यानों तथा लेखों में भी उनके हार्दिक भाव उतने स्पष्ट रूप से नहीं प्रतिबिम्बित होते—जितने उनके पत्रों में प्रकट होते हैं। महान् व्यक्तियों के साथ संभाषण में जो सरलता, स्वाभाविकता और अकृत्रिमता होती है—वही उनके पत्रों में पायी जाती है। इसी लिये इंगलैण्ड के प्रसिद्ध पत्र लेखक कॉपट ने पत्र को संभाषण का दर्पण (Mirror of one's conversation) कहा। साथ ही, इन पत्रों से इतिहास की अनेक अज्ञात बातें प्रकट हो सकती हैं। अतएव एक अंग्रेज लेखक जेम्स हावेल ने पत्रों के सम्बन्ध में यह सत्य ही लिखा है कि कई बार पत्र इतिहास की अपेक्षा अधिक प्रकाश डालने वाले होते हैं तथा उसकी अपेक्षा अधिक शिष्ट व रोचक ढंग से कथा कहने वाले होते हैं।

ऋषि दयान्द के जीवन के संकलन में पत्रों की इस महत्ता सर्व प्रथम अनुभव करने वाले श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी (उस समय महात्मा मुंशीरामजी) थे। उन्होंने १९०९ ई०(१९६६ वि०) में ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार नामसे एक पत्रों का संग्रह प्रकाशित किया। यद्यपि इस पत्र संग्रह में ऋषि को लिखे पत्रों की संख्या, ऋषि के स्वयं लिखे पत्रों से बहुत अधिक थी किन्तु फिर भी, इससे लोगों का ऋषि दयानन्द के पत्रों की खोज तथा सम्पादन की ओर ध्यान गया। १९१८–१९२७ के बीच में लाहौर के रिसर्च स्कालर श्री भगवद्दत्त जी ने स्वामी दयानन्द जी के पत्रों को 'ऋषि दयानन्द के पत्र व विज्ञापन' के नाम से ४ भागों में प्रकाशित किया। इस पत्र संग्रह से स्वामीजी के सम्बन्ध अनेक नयी बातों का ज्ञान हुआ। फिर ··· स्व० पं० चमूपति जी ने १९३५ ई० (१९९२ वि०) में गुरुकुल कांगड़ी से पटियाला के श्री केसरीसिंह जी से प्राप्त पत्रों को, 'ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार' द्वितीय भाग के नाम से प्रकाशित किया। उपर्युक्त ग्रन्थ के बाद स्वा० दयानन्द जी के अप्रकाशित पत्रों को प्रकाशित करने का यह वर्तमान क्षुद्र प्रयास है।

ये सब पत्र मुझे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के उपाध्याय श्री मा० मौलवी महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फाज़िल की कृपा से—जिनका सारा जीवन ऋषि दयानन्द जीवन की बातों का यथार्थ अनुसन्धान एवं गवेषणा में बीत रहा है—प्राप्त हुए हैं। उन्हें ये सब पत्र इलाहाबाद विश्व विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष श्री धीरेन्द्र जी वर्मा से प्राप्त हुए थे। स्वामी जी के शिष्य व प्रसिद्ध देशभक्त श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा की मृत्यु के बाद उन्हें पेरिस में ये पत्र उपलब्ध हुए। इस

दोनों महानुभावों के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हैं जिन्होंने ऋषि दयानन्द के पत्रों को प्रकाशित करने का यह अवसर प्रदान किया है।

इस पत्र संग्रह में कुल २७ पत्र हैं। श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा से यह पत्र संग्रह उपलब्ध होने पर यह स्वाभाविक ही है इसमें अधिकांश पत्र श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को लिखे गये हों। इनमें से १८ पत्र श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा के नाम हैं। इनमें से १६ पत्र तो स्वामी जी ने उन्हें स्वयं लिखे हैं और बाकी दो पत्र स्वामी जी की ओर से श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को लिखे गये हैं। शेष ९ पत्रों में से दो पत्र श्री हरिश्चन्द्र चिन्तामणि को, पांच पत्र श्री गोपालराव हरिदेशमुख को, एक थियोसोफिकल सोसायटी के संस्थापक हेनरी आल्काट को तथा एक लाहौर के लाला मूलराज जी को लिखा गया है।

भाषा की दृष्टि से इनका वर्गीकरण बहुत रोचक है। स्वामी जी अपने अधिकांश पत्र आर्य भाषा (हिन्दी) में ही लिखते थे। स्वयं गुर्जर होते हुए भी वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रथम प्रचारक थे। अत: २७ में से १७ पत्र हिन्दी भाषा में लिखे हुए हैं। स्वामी जी के आदेश से श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को एक पत्र प्राण जीवनदास कहानदास नामक गुजराती सज्जन ने गुजराती में लिखा है। जो व्यक्ति आर्य भाषा या संस्कृत में श्री स्वामी जी के साथ पत्र व्यवहार नहीं कर सकते थे—स्वामी जी उन्हें अंग्रेजी में पत्र लिखवाया करते थे। इस पत्र संग्रह में ६ ऐसे पत्र अंग्रेजी में लिखे हुए हैं। शेष ३ पत्र संस्कृत में हैं। श्री स्वामी जी उन सज्जनों को जो संस्कृत अच्छी तरह समझते हों—बहुधा संस्कृत में ही पत्र लिखते थे। इस पत्र संग्रह में भी ३ पत्र संस्कृत में हैं। इन ३ में से दो तो संस्कृत गद्य में हैं तथा एक संस्कृत पद्य में है। स्वामी जी के पत्रों में नाना छन्दों के श्लोकों से युक्त इस पत्र का विशेष महत्व है। इस पत्र के सिवाय, अब तक उनका कोई दूसरा पद्य बद्ध पत्र प्रकाश में नहीं आया और साथ ही इस पत्र का विषय भी आश्चर्यावह है। स्वामी जी ने राष्ट्रीय महासभा की स्थापना से ५ वर्ष पूर्व, १८८० में श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को अपने कर्त्तव्य का पालन न करनेवाले राजकीय कर्मचारियों के विरुद्ध इंगलैण्ड की राजसभा पार्लियामेंट में आन्दोलन करने की प्रबल प्रेरणा की है। इससे स्पष्ट है कि महर्षि की दृष्टि उस समय के राजनैतिक आन्दोलन कर्ताओं से कितनी आगे बढ़ी हुई थी।

काल क्रम की दृष्टि से ये पत्र १८७७ ई० से १८८०ई०के बीच में लिखे गये हैं। अगले अंक में हम व्यक्तिशः पत्रों का तथा उन व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय देंगे। तथा कुछ पत्र प्रकाशित करेंगे।

सुमन-संचय

नव प्रभात

यह अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के जीवन की एक घटना है जो गृहस्थ जीवन से निराश हुये पतित नवयुवक मुंशी राम को वास्तविक जगत् मे लाने का कारण बनी।

मुंशीराम जी अपने पिता स्व० श्री नानकचन्द्र जी के साथ बरेली मे रहते थे। पिता शहर कोतवाल थे। शहर मे एक-छत्र राजा के समान उनकी स्थिति समझी जाती थी। फिर मुंशी राम तो उनका लाड़ला बेटा था। यदि मुंशी राम जी को बरेली का युवराज कहदें तो कोई अत्युक्ति न होगी। बनारस इत्यादि नगरों के स्वतन्त्र और शाही जीवन मे उसमें वही चारित्रिक दुर्बलतायें घर कर चुकी थीं जो लाड़ में पले सम्पन्न घरानों के नवयुवकों में कुसंगति से पड़ जाया करती हैं। सुतराम् कोतवाल साहब के पुत्र को पतित रईसों का 'आदरणीय' संसर्ग अनायास ही मिल गया। शराब की मात्रा और नाच मुजरों की बैठकों में वृद्धि हुई।

इस समय तक के जीवन में वेश्याओं के साथ उनका सहवास नाच मुजरों तक ही सीमित था। परन्तु एक दिन उनके पतन की सीमा यहाँ तक विस्तृत हुई कि वे कुछ मित्रों के साथ रात के समय एक वेश्या के चौबारे पर अपनी काम पिपासा की संतुष्टि के लिये पहुंच गये। परन्तु जिनके भाग्य चन्द्र को क्षितिज में ऊँचा उठना होता है उनकी ऐसे समय में कोई न कोई सद्-प्रेरणा सहायता करती है। वेश्या के चौबारे पर मुंशी राम जी के हृदय में भी किसी ऐसी ही प्रेरणा से आत्मबोध हुआ और वे नापाक नापाक करते हुये नीचे उतर आये।

उन दिनों नवयुवक मुंशीराम उसी कोटि के नवयुवकों मे थे जो उपन्यासों के कल्पित जीवन के सुख स्वप्न लेते हुए अपनी पृथक् दुनियां में विचरण किया करते हैं। मुंशी राम के दिमाग में स्त्रियों का और अपनी सहधर्मिणी का खास स्टैन्डर्ड ही चक्कर काटा करता था और फिर जो रईस नवयुवक चरित्र हीन हो गया हो और वेश्याओं के नाच मुजरों का प्रेमी हो तो स्त्री के सम्बन्ध में उसका जो स्टैंडर्ड हो सकता है उसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। उन दिनों मुंशी राम के दिमाग मे उपन्यासों की सुन्दरियां और आंखों में वेश्यायें जैसी गौरांगनायें चढ़ी हुई थीं। फिर भला सद्गृहस्थ की सीधी सादी बिना पढ़ी लिखी पत्नी शिवदेवी किस प्रकार रंगीले मुंशी राम के मन पर चढ़ सकती थी। बेचारी अनपढ़ शिवदेवी शैक्सपीयर की नायिकाओं से प्रभावित 'खोसाइटी' वाले मुंशीराम के हृदय का हार न बन सकी।

वेश्या के चौबारे से उतर कर नवयुवक मुंशीराम सीधा अपने घर पहुंचा। तब भी नशा चढ़ा हुआ था। बैठक में जाकर तकिये में सिर देकर

पड़ गया। नौकर ने जूते उतारे और नौकर के सहारे ही सीढ़ियों से ऊपर गये।

बरामदे में पहुँचते ही उल्टी होने लगी। पत्नी ने आकर संभाला, मुंह धुलाया और मैले कपड़े उतारे। बिस्तर पर लिटा कर माथा और सिर दबाना शुरू किया। घृणा, उपेक्षा या तिरस्कार की वहां गन्ध भी न थी। स्नेहमयी माता की ममता, सहोदरा बहिन का प्रेम, आदर्श पत्नी की भक्ति, स्वामी-भक्त सेवक की सेवा परोपकारी पुरुष की उदारता के सब भावों का उस व्यवहार में अनुपम सम्मिश्रण था। मुंशी राम जी की पथराई हुई आँखें गहरी नींद में बन्द हो गईं। रात के १ बजे नींद खुली तो करुणा और क्षमा की सजीव मूर्ति शिवदेवी बैठी पैर दबा रही थी। स्वतन्त्रता और समानता के नाम पर उच्छृंखलता की प्रवृत्तियां शिवदेवी के इस व्यवहार पर खिल खिला कर घृणा से हँस रही थीं और नारीत्व की सम्पदायें शिवदेवी पर बलि जा रही थीं।

पानी मांगने पर गर्म दूध का भरा हुआ गिलास मुंह को लगा दिया। नशा दूर हुआ। शैतान से शिव बने हुये मुंशी राम ने पूछा ० भोजन किया वा नहीं।

देवी ने कोमल स्वर में कहा, "आपके बिना भोजन किये मैं भोजन कैसे खाती। अब इच्छा भी नहीं है।"

इन शब्दों में भरी हुई पतिनिष्ठा और आत्मविस्मृति ने मुंशी राम को विचलित कर दिया। उन्होंने रुंधे हुये कंठ से अपने पतन की समस्त कहानी सुना कर देवी से क्षमा मांगी।

देवी ने तुरन्त कहा "आप मेरे स्वामी हो। यह सब सुना कर मेरे सिर पाप क्यों चढ़ाते हो। मुझे तो माता का उपदेश यही है कि आपकी नित्य सेवा करूँ।

उस दिन रात को बिना भोजन किये दोनों सो गये और दूसरे दिन प्रभात के साथ साथ मुंशी राम के जीवन मे एक नूतन प्रभात का उदय हो गया। स्त्री जाति के प्रति मुंशी राम का दृष्टिकोण बदल गया। उपन्यासों की नायिकाओं के चंचल चरित्र का जो चित्र आंखों के सामने सदा घूमा करता था और जिसके कारण उनको गृहस्थ जीवन से निराशा सी हो गई थी वह सदा के लिये तिरोहित हो गया और मन वास्तविकता की ओर आ गया। हवाई किले बंधने छूट गये और मुंशी राम अपनी दुनियां से इस दुनिया में आ गये।

महान् यज्ञ

यह घटना उस समय की है जब कि गुरुकुल कांगड़ी को स्थापित हुए केवल १० वर्ष ही हुए थे और गुरुकुल की नींव स्थिर आधार पर खड़ी न हो पाई थी। जनता गुरुकुल को एक नया परीक्षण समझती थी और उसकी सफलता मे बहुत सन्देह किया जाता था। उन दिनों गुरुकुल को बन्द किए जाने की चर्चा भी जब तब हो जाया करती थी। उन दिनोंके ऐसे अनिश्चित वातावरण मे गुरुकुल के संस्थापक और संचालक स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की मनोव्यथा और गुरुकुल सचालन की कठिनाइयों को कोई भुक्त भोगी ही समझ सकता है।

महात्मा मुन्शीराम (उन दिनों का स्वामी जी का नाम) जी सयुक्त प्रान्त के एक बडे नगर मे गुरुकुल के लिए भिक्षार्थ गए हुए थे। वहा उन्होंने एक बडे सम्पन्न और धर्म प्रेमी सज्जन से धन की याचना की। २-३ दिन तक बराबर प्रतिदिन उनके दरवाजे पर भिक्षा की झोली लिए फिरते रहे परन्तु वे महाशय दान के लिए जरा भी न पसीजे। जब महात्माजी का गुरुकुल की उपयोगिता के पूर्ण समर्थन और उनकी शकाओं के समाधान पूर्वक बहुत आग्रह बढ़ा तो उन्होंने कहा, "मुझे गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली मे विश्वास नहीं है। आप इस परीक्षण को करके देख लें। मैं तो समझता हूं कि आप व्यर्थ ही इतना परिश्रम और जनता का धन व्यय कर रहे हैं।" इन महाशय से महात्माजी को प्रचुर धन राशि मिलने की आशा थी, परन्तु उनके साफ मना कर देने पर महात्माजी को बड़ा दुःख और निराशा हुई।

❋ ❋ ❋

इस घटना के थोडे दिनों बाद ही गुरुकुल का वार्षिकोत्सव आ पहुंचा। बात की बात में हिमालय के आचल में पवित्र जान्हवी के तट पर तपो भूमि में लाखों व्यक्ति उपस्थित हो गए। महात्माजी यात्रियों की सुविधा का बड़ा ध्यान रखते थे और स्वयं डेरों पर जाकर यात्रियों से उनकी असुविधा को मालूम किया करते थे।

प्रात काल का समय था महात्मा मुन्शीरामजी डेरों के अपने दैनिक भ्रमण पर निकले हुए थे। भ्रमण करते करते उनकी एक वृद्ध सज्जन से भेंट हुई। उनके साथ ४-५ छोटे-छोटे बालक भी थे। पारस्परिक अभिवादन के पश्चात् महात्माजी ने उन्हें प्रेरणा की कि वे अपने बच्चों को गुरुकुल में प्रविष्ट करा दें। इस पर वे वृद्ध महाशय महात्माजी से शका समाधान करने लग गए और २०-२५ व्यक्ति और वहा आकर इकट्ठे हो गए। उनमें से एक सज्जन ने पूछा "प्रधान जी गुरुकुल से निकले हुए स्नातकों की रोजी का हल कैसे होगा?' महात्माजी ने उत्तर दिया। "भगवान् सब को खाने को देते हैं। वे ही इनको देंगे। आप ऐसी चिन्ता क्यों करते हैं।" उन सज्जन ने कहा "महाराज, आपके पास कोठी है, रुपया है आपके बच्चों के लिए तो कोई फ़िकर की बात नहीं है पर हमारे बच्चे क्या खाएंगे?" महात्मा जी इस बात को सुनकर एक दम मौन हो गए और वहां से तुरन्त आगे बढ़ गए।

❋ ❋ ❋

रात्रि के १२ बज चुके थे। वे अकेले अपने ऐतिहासिक बगले के सामने एक तख्त पर बैठे कुछ सोच रहे थे। उनकी मुख-मुद्रा भी बड़ी गम्भीर थी। प्रतीत होता था कि उन महाशय के शब्द उनके हृदय में उद्वेलित हो रहे थे। सहसा ही उनका ध्यान उस दृश्य की ओर खिच गया; जब गुरुवर ऋषि दयानन्द सरस्वती हरिद्वार के कुम्भ पर इच्छित सफलता न मिलने के कारणों पर विचार कर रहे थे। अंधेरे में भटकते हुए महात्मा के हृदय को मानों प्रकाश के दर्शन हो गए। उन्हें अपने कर्त्तव्य का निश्चय करते हुए देर न लगी और वे प्रसन्न मन सो गए।

❋ ❋ ❋

महोत्सव पण्डाल भरा हुआ था। महात्मा मुन्शीराम जी मञ्च पर आकर खड़े हुए और उन्होंने उपस्थित नर नारियों को सम्बोधन करके कहा—

"मुझसे सवाल किया जाता है कि गुरुकुल से निकले हुए स्नातक क्या करेंगे ? उनके लिए मेरा यही उत्तर है कि परम पिता पर विश्वास करके चिन्ता न करें। आज कुछ भाइयों ने वार्तालाप क मध्य मुझ से कहा "आपके पास कोठी है और रुपया है, आपको क्या फिक्र हो सकती है ?" मैंने बड़ी गम्भीरता से इस बात पर विचार करके अपनी सारी सम्पत्ति और कोठी आर्य प्रतिनिधि सभा को दान देने का निश्चय किया है।"

इस निश्चय को बदलने के लिए महात्माजी के अनेक भक्तों और प्रेमियों ने बहुत यत्न किया, परन्तु वे अपने निश्चय को बदलने के लिए तय्यार न हुए।

इस त्याग की सर्वत्र धूम मच गई और अपने कार्य की सफलता के लिए जिस शक्ति की कमी थी वह इस त्याग से महात्माजी को प्राप्त हो गई।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

धर्मवीर आचार्यवर के प्रति श्रद्धाञ्जलि तथा उनका सन्देश

(समर्पक—प्र० स्ना० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति)

श्रद्धानन्द महात्मा की जब, याद मुझे आ जाती है,
देवोपम उन की विशाल वह, मूर्ति सामने आती है।
उस के सम्मुख श्रद्धा से मम, मस्तक नत हो जाता है,
मुख अपने गुरुवर के अनुपम, गुण-गण गाता जाता है॥ १॥

माता से भी बढ कर उन का, प्रेम भरा मीठा व्यवहार
उन का साहस जो करता था, मृत में नवजीवन संचार।
वीर केसरी का वह गर्जन, याद सभी आ जाता है,
मेरे मन में जो कि अलौकिक, दिव्य भाव उपजाता है॥ २॥

धन्य धन्य मैं जिस को ऐसे, धर्म वीर आचार्य मिले,
धन्य धन्य यह आर्य जाति, जिस को नेता सम्मान्य मिले।
तन मन धन सब जिन का निशिदिन, जन सेवा में अर्पित था,
इस से नारायण सेवा में, जिन का अर्पित मित चित था॥३॥

गुरुकुल खोल किया था जिन ने, जनता का सच्चा उद्धार,
जिन की नायकता में होता, था भारत में दलितोद्धार।
सुन दीनों की विधवाओं की, दलितों की अति करुण पुकार,
जिनका द्रवित हुआ दिल निर्मल,उनका किया क्लेश परिहार॥४॥

अतः धन्य उन धर्मवीर को, क्यों नहि निशिदिन याद करूं,
क्यों नहि उन के पावन चरणों में, श्रद्धा के कुसुम धरूं।
कितने ही देखे हैं नेता, किन्तु न उन सा मुझे मिला,
जिन रवि के दर्शन करते ही, मनका मेरा कमल खिला॥५॥

गुर्खों की संगीनों को भी, देख न थे जो जरा डरे,
छाती खोल मुझे मारो, मैं खड़ा हुआ ऐसा उचरे।
दृश्य न वैसे निर्भयता की, किस को याद दिलाते हैं?
किस के मन में पुरुषसिंह पर, नहि श्रद्धा उपजाते हैं? ॥६॥

मेरा तो सौभाग्य परम था, चरणों में आसीन हुआ,
श्रीमुख से उपदेश सुने तब, मन नारायण लीन हुआ।
श्रद्धामयी मूर्ति वह उन की, कभी न मुझ को भूल सके,
मात-पिता वे गुरु मेरे थे, उन को कैसे भूल सके ? ॥ ७ ॥

कर्मयोगिवर सन्यासी ने, धर्म वेदि पर कर बलिदान,
अपनी, आर्य समाज, धर्म की, जग में खूब बढ़ाई शान।
आने दो ये उस यतिवर के, अन्तिम शब्द न भूलो तुम,
आने दो सब को समाज के, द्वार सदा यों खोलो तुम ॥ ८ ॥

श्रद्धा से आनन्दित यतिवर, को हम सारे याद करें,
उन को निज आदर्श बना, जनता का सर्व विषाद हरें।
शुद्धि सगठन से जनता मे, नवजीवन सचार करें,
तेजोहीन जाति मे फिर से, हम नूतन उत्साह भरें ॥ ९ ॥

श्राद्ध यही है सच्चा मित्रो, श्रद्धानन्द महात्मा का,
होवेगा सन्तोष इसी से, सरल विमल उस आत्मा का।
धीर बनो गम्भीर बनो तुम, वीर बनो सब मिल जाओ,
सोती हुई जाति में फिरसे, तुम शुभ जागृति को लाओ ॥१०॥

ब्रह्मचर्य का पालन कर के, तन मन को बलवान करो,
वेद शास्त्र का श्रवण मनन कर, अपने को पवमान करो।
जात पात के किले गिराओ, दलितों का उद्धार करो,
ये सन्देश धर्मवीर के, इन के तुम अनुसार करो ॥ ११ ॥

सच्चे आर्य बनो तुम सारे, जग को भी तब आर्य करो,
वैदिक धर्म सनातन के, अनुसार सभी तुम कार्य करो।
जग पीड़ित है इस की, पीड़ा का मित्रो परिहार करो,
पञ्च यज्ञ को करो शान्ति का, फिर जगमें सचार करो ॥१२॥

गूंज रहे ये शब्द मनोहर अब भी मेरे कानों में,
यतिवर के उपदेश शान्तिमय, भरे रहें अरमानों में।
इन पर हम आचरण करेंगे, जीवन सफल बनाएंगे,
शुद्धि सगठन से समाज को, उन्नत सबल बनाएंगे ॥ १३ ॥

परीक्षाओं की तिथियां

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की सिद्धान्त सरोज, सिद्धान्त भास्कर, सिद्धान्त रत्न और सिद्धान्त शास्त्री की चारों परीक्षाएं २४ व ३१ जनवरी १६४३ को होगीं, प्रश्न पत्रों का समय विभाग निम्न प्रकार होगा—

ता०	नाम परीक्षा	नाम प्रश्न पत्र	समय
२४-१-४३	सिद्धांत-सरोज	प्रथम पत्र	१० से १
,, ,, ,,	,, रत्न	,,	,,
,, ,, ,,	,, भास्कर	,,	,,
,, ,, ,,	,, शास्त्री	,,	,,

ता०	नाम परीक्षा	नाम प्रश्न पत्र	समय
२४-१-४३	सिद्धांत सरोज	द्वितीय पत्र	१॥ से ४॥
,, ,, ,,	,, रत्न	,, ,,	,,
,, ,, ,,	,, भास्कर	,, ,,	,,
,, ,, ,,	,, शास्त्री	,, ,,	,,

ता०	नाम परीक्षा	नाम प्रश्न पत्र	समय
३१-१-४३	सिद्धांत भास्कर	तृतीय पत्र	१० से १
,, ,, ,,	,, शास्त्री	,, ,,	,,
,, ,, ,,	,, भास्कर	चतुर्थ ,,	१॥ से ४॥
,, ,, ,,	,, शास्त्री	,, ,, ,,	,,

जनवरी सन् १६४२ में प्रथम, द्वितीय व तृतीय विद्यार्थी व विद्यार्थिनियां

जनवरी १६४२ में हुई सिद्धान्त शास्त्री आदि चारों परीक्षाओं में जो विद्यार्थी प्रथम, द्वितीय व व तृतीय आए हैं उनके नाम घोषित कर दिए गये हैं जो निम्न प्रकार हैं।

सिद्धान्त सरोज

रोल नं०	नाम विद्यार्थी	श्रेणी	केन्द्र
६८८	शकुन्तलादेवी	प्रथम	आ०स० बुलन्दशहर
६६६	भीष्मदेव	द्वितीय	बलिया
३७२	मनोरमादेवी	तृतीय	बांदा

सिद्धान्त रत्न

रोल नं०	नाम विद्यार्थी	श्रेणी	केन्द्र
६६२	सुरेन्द्र शर्मा	प्रथम	आ० स० लश्कर
१६०	द्रौपदीदेवी	तृतीय	आ०पा०गोरखपुर
५८४	चन्द्रवतीदेवी	तृतीय	हिन्दू स्कूल बदायूं

सिद्धान्त भास्कर

रोल नं०	नाम परीक्षार्थी	श्रेणी	केन्द्र
१०६	कुमारी लीलावती शर्मा	प्रथम	इन्दौर
१०८	श्री मनोहरलाल	द्वितीय	,,
८२	श्री चिमनलाल भाटिया	तृतीय	भखनाल

महिला-जगत्

मातृ शक्ति और स्वामी श्रद्धानन्द जी

(लेखिका—श्रीमती प्रेम सुलभा जी यति—मन्त्रिणी महिला सुधार मण्डल सं॰ प्रा॰ आर्य प्रतिनिधि सभा)

—:()※():—

जगन्नियन्ता प्रभु के रचे हुये इस जगत् का अटल नियम है कि जो वस्तु जिस से उत्पन्न होती है वह उसी के गुणों से युक्त होती है जैसे पंच भूतों में प्रथम आकाश हुआ उसका गुण केवल शब्द है। उस के पश्चात् वायु उत्पन्न हुआ वायु मे शब्द गुण आकाश से आया और स्पर्श गुण उसका अपना है। अग्नि में शब्द और स्पर्शगुण आकाश और वायु का, केवल रूप गुण अपना है। जल में शब्द, स्पर्श और रूप गुण पूर्व के अग्नि आदि भूतों के हैं केवल रस गुण उस का निजका है। पृथिवी में केवल गन्ध गुण अपना है। शेष शब्द, स्पर्श, रूप, रस गुण प्रथम चार भूतों से आये हैं। सम्पूर्ण जगत् इन्हीं पंच भूतों से बना है इस लिये जगत् के प्रत्येक पदार्थ में इन्हीं गुणों का समावेश रहता है।

इसी अटल नियम के अनुसार माता की शारीरिक और मानसिक अवस्थाओं के प्रभाव के अनुसार सन्तान का शरीर, मस्तिष्क और मन बनता है। आत्मा का अपना कर्म फल भी साथ होता है। तन में मन सब से प्रबल है मनुष्य शरीर में यही विशेष दो शक्तियां हैं। इन्हीं के विकसित होने से भावी सन्तान उच्चकोटि की नेता और विचारशील बन सकती है। इन दोनों महान् शक्तियों को गर्भावस्था से ही योग्य माता ही विकसित करने मे सहायक बनती है। प्रकृति के नियमानुसार माता की मानसिक भावनाओं का प्रभाव होता है। गर्भावस्था से लेकर ५ वर्ष की आयु तक बच्चा विशेष कर माता के निकट रहता है। इस लिये माता के

(पृष्ठ ४२२ का शेष)

सिद्धान्त शास्त्री

रोल नं०	नाम परीक्षार्थी	श्रेणी	केन्द्र
५०	श्री निरंजनदेव	प्रथम	अजमेर
६४	श्री सुनहरीलाल शर्मा	द्वितीय	सिरसागंज
४६	श्रीमती चन्द्रावतीदेवी	तृतीय	हरिद्वार

उपरोक्त परीक्षार्थियों का पारितोषिक भेजने की शीघ्र ही व्यवस्था की जाएगी, कृपया पारितोषिक के सम्बन्ध में पत्र व्यवहार न करें।

देवव्रत धर्मेन्दु

[आर्यकुमार परिषद् की इन धार्मिक परीक्षाओं में अच्छे अंक लेकर प्रतिष्ठा सहित उत्तीर्ण आर्य युवकों विशेषतः आर्य देवियों का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं—सम्पादक "सार्वदेशिक"]

विचारों और व्यवहारों का रंग बच्चे के मन और मस्तिष्क पर चढ़ता रहता है। इस से सिद्ध होता है कि माता ही मनुष्य समाज रूपी वृक्ष की जड़ है। जैसे जड़ के सींचने से ही वृक्ष हरा भरा रहता है इसी प्रकार मनुष्य समाज रूपी वृक्ष की जड़ मातृ शक्ति है यदि उसे यथार्थ आदर और विद्या रूपी जल से सींचा जावे तभी श्रेष्ठ सन्तान बन सकती है। आनेवाली श्रेष्ठ सन्तान पर ही देश और राष्ट्र की उन्नति निर्भर है। इस लिये विचार शील नर नारियों का कर्तव्य है कि मातृ शक्ति की उन्नति का विशेष यत्न करें।

मातृ शक्ति और पितृ शक्ति मिल कर तीसरी सन्तान रूपी शक्ति उत्पन्न होती है। इस लिये दोनों को समान योग्य सदाचारी और कर्तव्य निष्ठ होना अति आवश्यक है। जैसे चने के दो दालों के बीच में चने का अंकुर रहता है उस अकुर की रक्षा करने वाली दालें बराबर होती हैं और समान ही उस अंकुर की रक्षा करती हैं। इसी प्रकार माता पिता के बीच में सन्तान रूपी अकुर सुरक्षित रहना चाहिये। इसी हेतु मातृ शक्ति का यथार्थ सम्मान कर के दकियानूसी विचारों का प्रतिकार करना चाहिये जिस से मातृशक्ति का विकास हो सके।

श्री पूज्य स्वामी दयानन्दजी महाराज सब से प्रथम सुधारक हुये हैं जिनके हृदय में मातृ शक्ति के उत्थान की चिन्ता थी। आपने अपने जीवन काल में एक तीन वर्ष की बालिका को श्रद्धा से झुक कर नमस्कार किया। पूछने पर कहा कि मैंने इस बालिका में उस मातृ शक्ति को नमस्कार किया है जो हम सब को जन्म देने वाली है देव दयानन्द स्वामीजी के श्रेष्ठ विचार का प्रभाव उस समय के शुद्ध धर्म प्रेमी आर्यों के हृदय पर पड़ा। उस समय की सुधार धारा सत्य के साथ तीव्र गति से बढ़ रही थी। लाला देवराज जी ने तो मातृ शक्ति की सेवार्थ अपना सारा जीवन लगा दिया। श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना कर के अपना सबकुछ उस में समर्पण कर दिया किन्तु उन्हें केवल बालकों के गुरुकुल से शान्ति नहीं मिली। जब तक वे लाला मुंशीरामजी के रूप में थे तब तक उन्हें बालकों को श्रेष्ठ नागरिक बनाने की विशेष चिन्ता रही किन्तु संन्यासी का रूप धारण करते ही मातृ शक्ति के उत्थान की भावना प्रबल हो कर उन्होंने कन्या गुरुकुल देहरादून की स्थापना कर दी। आप सच्चे संन्यासी राष्ट्र सेवक थे। हृदय में मातृ शक्ति के सुधार की लहर सदा बहती रहती थी। किंतु शोक है कि आज वह महान् आत्मा हमारे बीच में नहीं है। यदि इस समय वे होते तो मातृ शक्ति की उन्नति में अवश्य विशेष सहायक बनते।

कर्मवीर श्रद्धानन्द

(स्नातक—रुद्रदेव शास्त्री, प्रभाकर, सिद्धान्त शिरोमणि)

ऋषि दयानन्द परवर्ती आर्य समाज को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग है ब्रह्म मार्गी एवं उदासीन-पंथ के प्रवर्तकों का तथा दूसरा विशुद्ध वैदिक कर्मामयी धारा के सूत्र धारों का। यह एक स्पष्ट सत्य है: कुछ वर्ष पूर्व मैंने श्री प० नरदेव जी शास्त्री के लिखे आर्यसमाज के इतिहास को पढ़कर यह धारणा बनाई थी। मेरी यह धारणा बिल्कुल सत्य है। पंजाबी आर्यसमाज जगत् में महात्मा मुंशीराम जी, श्री लाला लाजपतराय जी श्री प० गुरुदत्त जी विद्यार्थी, धर्मवीर श्री पं० लेखरामजी व आचार्य रामदेव जी के साहित्य को पढ़कर हमारी यह धारणा बिल्कुल सही सी होती जाती है। इस धारा में आगे-पीछे, दाएं बाएं सर्वत्र स्वामी श्रद्धानन्द जी का ही क्षात्र-तेज प्रधान-भाव से विराजमान है। इसलिए हम इस विचार को अधिक सरल बनाने के लिए यूं कह सकते हैं कि स्वामी दयानन्द की विचार शैली—ब्रह्म शक्ति और क्षात्र शक्ति का समन्वय हो—को स्वामी श्रद्धानन्दजी ने ही आर्य समाज के सामने सच्चे रूप में रखने का पूर्ण प्रयास किया। स्वामी श्रद्धानन्दजी के स्थापित किए गुरुकुल को कभी बड़ी भयानक चीज समझा गया था। गुरुकुल का इतिहास तो कहता है कि उस समय का गुरुकुल तो सरकार की आँखों का कांटा बन रहा था। इस संस्था का मूल ध्येय था, राष्ट्र के लिए आदर्श नागरिक पैदा करना। इस सिलसिले में मैं डी० ए० वी० कालेज पार्टी का विश्लेषण न करूंगा। मेरी दृष्टि में वह तो ब्रह्म समाज के ढंग का ही एक आराम-तलब गिरोह था। मैं तो आज श्रद्धानन्द जयन्ती के अवसर पर पुण्य-धन ऋषिवर श्रद्धानन्द के चरणों पर श्रद्धा के दो सुमन चढ़ाने आया हूँ। उनके गुणानुवाद के प्रसंग में तुलनात्मक दृष्टि से किसी के गुण-दोष का निरपेक्ष निरीक्षण करदूँ तो करदूँ, पर किसीका दोष निरीक्षण न करूंगा। शुद्धि यज्ञ के अध्वर्यु श्रद्धानन्द के इस विराट् कार्य के मुकाबिले मे तो आर्य समाज ने और कोई मौलिक कार्यक्रम हिन्दू सभ्यता और संस्कृति के प्रसार के लिये अभी तक दिया ही नहीं है। मै इसी प्रसंग मे यह बतलाना चाहता हूँ कि आर्य समाज मे क्षात्र धर्म की यहीं विशेष आवश्यकता थी। यही सबसे बड़ा ज़िन्दगी और मौत का सवाल था। उन्होंने इस कार्य मे ही अपने प्यारे प्राण होम दिए। उनकी आत्मा में निर्भीकता और ओजस्विता गजब की थी। श्रद्धानन्द समन्वयवादी न थे, वे सिद्धान्तवादी थे। भारत की सबसे बड़ी राष्ट्रीय सभा कांग्रेस को मत भेद होने पर ठुकरा दिया और हिन्दू महासभा मे अपने आदर्शों की पूर्ति के लिए आ गये। उन्होंने आर्य समाज की आँख से ही तत्कालीन सभी राष्ट्रीय एवं सामाजिक सभा-सोसाइटियों को देखा। आर्य समाज मे केवल श्रद्धानन्द स्वामी जी ने ही यह कार्य किया।

दूसरा पथ तो केवल उपरि वर्णित उदासीन ब्रह्म मार्गियों का है। उसमें हैं स्वामी तुलसीराम जी, प० मुरारीलाल जी शर्मा, प० नन्दकिशोर देव शर्मा, श्री स्वामी दर्शनानन्दजी श्री पं० गगाप्रसाद जी इत्यादि। इसमें सर्वोपरि सत्ता है श्री स्वामी तुलसीराम जी की। उनका साहित्य हमारी उपर्युक्त धारणा की ही पुष्टि करता है। ये दोनों विचार धाराए गगा और यमुना की तरह सदा अलग-अलग बहती रहीं। हमने अधिकतर सयुक्त प्रान्तीय आर्य समाजों के व्याख्यानों मे केवल गार्गी और याज्ञवल्क्य के ब्रह्म वाक्य ही उपदेशकों के मुखों से सुने। यह चीज तो वैरागी, उदासी प्रभृति साधुओं की थी। पहाड़ों पर बैठ कर इसकी साधना काफी हो सकती थी। सयुक्त प्रान्त मे साधारण जनता में इसका कोई प्रभाव न हुआ। यह तो बहुत बारीक चीज थी। और इसके स्थान पर यदि यह वर्ग शुद्धि जैसा कोई जनोपयोगी विशाल आयोजन हाथ मे लेता तो वह काफी आगे बढ जाता।

ईमानदारी से हमें स्वीकार करना चाहिए कि राजर्षि एव ब्रह्मर्षि श्रद्धानन्द के तपोबल से ही पजाब मे आर्य समाज अब तक जीता-जागता एक बड़ा समुदाय है जो विधर्मियों की कड़ी टक्करों को झेल रहा है। सयुक्त प्रान्त के आर्य समाजों मे भी इसी जोशीली भावना को जगाने के लिए श्रद्धानन्द जी महाराज के ग्रन्थों का पारायण होना चाहिए। ऐसा करने से ही आर्य समाज आगे बढ सकता है। मेरा यह निजू विश्वास है कि स्वामी दयानन्द की योजनाओं का पूर्ण हल स्वामी जी के जीवन में किए कार्यों में पूर्ण विद्यमान है। अगर आप हमारी पूज्यास्पद विभूति की विशालता का अनुमान लगाना चाहते हैं तो उनकी की हुई सेवाओं को आर्य समाज से पृथक् कर दें; फिर देखें कि आर्यसमाज में क्या बचता है। इसके बाद यदि आर्यसमाज का पलड़ा भारी रहे तो हम अपने दावे को गलत मान लेंगे। मैं तो कहता हूं कि जैसे पाकिस्तान के लिए पजाब प्रान्त जरूरी माना जाता है, वैसे ही आर्य समाज के लिए पजाब प्रान्त जरूरी है। यह सब किसकी बदौलत ? उत्तर में कहना पड़ता है श्री स्वामी श्रद्धानन्द की बदौलत। अब अगर हमें श्री स्वामी जी के बलिदान को सच्चे रूप में मनाना है, तो उसे स्वामी श्रद्धानन्द की स्पिरिट से मनाना चाहिए। यही तरीका सबसे अच्छा यादगार मनाने का है। वैसे तो गए वर्षोंमें हम उसे मना ही चुके हैं। हमारा निजू अध्ययन तो यही है। उस में हम पूर्ण आस्थावान् हैं।

इन्ही श्रद्धा पूर्ण शब्दों के साथ हम कहते हैं "आर्य समाज के लिए अपने अमूल्य प्राणों की बलि देनेवाले ऋषिवर श्रद्धानन्द की जय। मलकाने भाइयों को आर्य बिरादरी में शुद्ध करके मिलाने की योजना बनाने वाले क्रान्तिकारी ऋषिवर श्रद्धानन्द की जय॥ गुरुकुल सस्था के जन्मदाता त्यागी ब्रह्मर्षि श्रद्धानन्द की जय॥!

अमर धर्मवीर का अमर सन्देश

सारे विश्व को आर्य बनाओ !

(स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज की लेखनी से)

—— ❁ ——
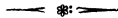
"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" वेद की यह घोषणा इस समय वर्तमान आर्य समाजियों की परिमित परिधि मे गूँज रही है। वर्तमान आर्यसमाजी मैंने इस लिए कहा कि वास्तविक आर्य समाज तो सृष्टि के आदिकाल से चला आता है। आर्य और दस्यु ये दो भेद थोडे बहुत प्रत्येक समय में रहते हैं और रहेंगे। 'आर्य' नाम श्रेष्ठ विद्वानों का है।

स्वामी जी की हस्तलिपि

२२ सितम्बर / १९२०

गुरुकुल
१० आश्विन, १९७७

श्रीमान् लाला रामकृष्ण जी प्रधान
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब,

नमस्ते!

इस समय मेरी सम्मति में 'असहयोग' की व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार पर ही मातृभूमि के भविष्य का निर्भर है। यदि यह आन्दोलन असफल हुआ और महात्मा गान्धी को सफलता न मिली तो देश को स्वतन्त्रता प्राप्त ५० वर्ष पीछे जा पड़ेगा। यह जाति के जीवन मृत्यु का प्रश्न हो रहा है।

वैदिक मर्यादा को उल्लङ्घन न कर रहे धर्म को धारण करने वाले आर्य नाम से सम्बोधित होते हैं और उन से विपरीत वैदिक आज्ञा का तिरस्कार करने वाले अविद्या ग्रस्त पापी दुरात्माओं की संज्ञा दस्यु चली आती है।

'सारे विश्व को आर्य बनाओ'— इस ईश्वराज्ञा का तात्पर्य यह है कि संसार मे एक भी दस्यु न रह जाय जिस से आर्य पुरुषों के गिरने की सम्भावना सर्वथा दूर हो जाय। सारे विश्व को आर्य बनाने का विस्तृत तथा स्पष्ट मार्ग क्या है ? इसका पता लगाना चाहिए। व्यष्टि धर्म का तो प्रत्येक मनुष्य

स्वयं ही पालन कर सकता है परन्तु समष्टि धर्म का पालन करने के लिए समाज शास्त्र की शृंखला में बन्धना पड़ता है। व्यष्टि और समष्टि धर्मों को ऋषि ने वर्ण आश्रम व्यवस्था की विधि में सीमित करदिया है। प्रत्येक आर्य को एक सौ वर्ष का साधारण जीवन व्यतीत करने के लिए चार आश्रमों मे से गुजरना पड़ता है, इस लिये (१) जो विद्यार्थी जीवन व्यतीत कर रहे हैं, उनका मुख्य कर्तव्य वीर्य रक्षा के साथ इन्द्रियों को वशमें करके सामयिक ज्ञान की प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए (२) जो गृहस्थी हैं उन्हें धर्म पूर्वक सन्तान उत्पत्ति ही अपने आश्रम का मुख्य उद्देश्य समझ कर अपने जीवन को पवित्र बनाना चाहिये, ताकि उनकी पितृ ऋण से मुक्ति हो सके, वे अपने जीवन को उच्च बनाकर अन्य सांसारिक जीवों के लिए नमूना पेश करें, और लोक सेवा का व्रत लेकर ऋषि ऋण और देव ऋण से मुक्त हो जायें।

(३) जो वान प्रस्थी हैं वे ज्ञान की वृद्धि करने के लिए गुरुकुलों में अपनी सेवा की भेंट चढ़ावें।

(स्वामी जी की हस्तलिपि का शेष)

[illegible]

आपका
श्रद्धानन्द

(४) संन्यास के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। मनुष्य के आत्मा के अन्दर ज्योतिर्मय का प्रकाश उसे सीधा मार्ग दिखलाता है। जबतक प्रकाशस्वरूप की ओर से उसे बुलावा न आये तब तक सन्यास आश्रम में प्रवेश का साहस न करे। ये तो व्यक्तियों के लिए वे साधन हैं जिनसे बहुत से मनुष्य सम्पन्न होकर समाज की आधार शिला रखते हैं। इसी समाज के निर्माण के लिए वर्णों की व्यवस्था की गई है, इसी वर्ण व्यवस्था के क्रियात्मक प्रचार पर सारे विश्व को आर्य बनाने का प्रयत्न अवलम्बित है। क्या सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाना चाहते हो ? यदि हां,

तो निम्नलिखित प्रतिज्ञाओं को दृढ़ता से पालन करने का संकल्प करो :—

(१) मैं चार वर्णों के अतिरिक्त पांचवां कोई वर्ण नहीं मानता, ब्राह्मण, क्षत्रिय; वैश्य और शूद्र मुख, बाहु, उरु और पांव। इन सब को एक ही समाज की बनावट के अंग समझता हूँ, उनको आश्रम विभाग पर अवलम्बित जान कर किसी से भी घृणा नहीं करूंगा।

(२) गुण कर्म अनुसार जिस वर्ण का मैं अधिकारी हूँ प्रसन्नता पूर्वक उसी वर्ण के अधिकारों से सन्तुष्ट रहूँगा।

(३) वेद मन्त्रों की व्यवस्था से मुझे निश्चय हो चुका है कि कर्म और परमात्मा के नियम अनुसार प्रत्येक पुरुष के लिए उसकी अर्धाङ्गिनी निश्चित हो चुकी है। जब तक उस देवी से भेंट नहीं होती कभी भी अन्य स्वार्थ से प्रेरित होकर विवाह सम्बन्ध नहीं करूंगा।

(४) जो अधिकार और कर्तव्य वान प्रस्थी और संन्यासी के हैं, गृहस्थ आश्रम में ब्राह्मण बन कर भी उनके लिए हाथ पैर मार अनधिकार चेष्टा न करूंगा।

(५) गृहस्थ पालन के लिए अर्थ संचय करने की आवश्यकता है, वह धर्म अनुसार ही करूंगा, अधर्म की कमाई से एक पैसा भी गृहस्थ के अन्दर नहीं आने दूंगा।

(६) अपने वर्ण धर्म पालन करने में कितनी भी हानि हो, यहां तक कि प्राणान्त का भी भय हो तो भी इस धर्म से विचलित नहीं हूंगा।

यदि आर्य पुरुष इस प्रकार की मानसिक प्रतिज्ञा कर उस पर आचरण करने लग जायेंगे तो फिर सम्पूर्ण विश्व को आर्य बनाने की प्रतिज्ञा सर्वथा असम्भव न दिखाई देगी।

आओ तेज स्वरूप से प्रार्थना करें कि वह हम सब को तेज धारण करने का बल दें जिससे हम वीर्यवान् ओजस्वी और सहनशील होकर स्वयं 'आर्य पद' के अधिकारी बन कर सारे विश्व को वैदिक सन्मार्ग में चलाने का साहस करसकें।

हिन्दू कार्य कर्त्ताओं को आह्वान

(लेखक—प० विश्वनाथ शास्त्री, अ० भा० हि० (आर्य) प० सं० संघ, कलकत्ता कार्य्यालय)

——(:o:)——

जिस विशाल हिन्दू जाति ने अपनी संस्कृति, सभ्यता से विश्व को सत्यप्रकाश दिया था, आज उसी जाति के घर में घोर अंधकार छाया हुआ है और वहां ईसाई तथा मुसलमान अपने धर्म और संस्कृति के प्रचारार्थ तुले हुए हैं। ऐसा कौन हिन्दू होगा जिसके हृदय में अपने इस पराभव पर ठेस न लगती हो।

गत जुलाई ४७ को जब मैं अखिल भारतीय हिन्दू सेवा संघ की ओर से प्रचारार्थ एवं हिन्दू स्थिति के निरीक्षणार्थ गया तो सन्थाल परगना तथा छोटा नागपुर के हिन्दुओं की दशा वास्तव में बहुत ही शोचनीय देखने को मिली। सर्वत्र ईसाई मिशनरियों के जाल बिछे हुए हैं। वे नाना प्रलोभनों द्वारा हिन्दुओं को अपने धर्म में दीक्षित करते जा रहे हैं। इधर कुछ दिनों से मुसलमानों ने भी अपने धर्म के प्रचारार्थ कार्य प्रारम्भ किया है। हिन्दुओं की ओर से यद्यपि कार्य कुछ हो रहे हैं, किन्तु उनसे लाभ उतना नहीं हो रहा है जितना कि होना चाहिये था। यद्यपि व्यय इनमें भी कम नहीं हो रहे हैं किन्तु असफलता का कारण जो मुझे दीख पड़ा वह यह है कि प्रत्येक हिन्दू संस्था अपनी ढाई चावल की खिचड़ी अलग ही पकाने में लगी हुई है। यदि सभी हिन्दू संस्थायें एक साथ मिल कर एक एक जिले के लिये अलग २ कार्यक्रम तैयार कर अग्रसर हों तो निश्चय ही इनका कार्य सुसंगठित रूप से आगे बढ़ जाय।

सम्प्रति मैंने संक्षेप में छोटा नागपुर डिवीजन की जो एक तालिका संग्रह की है उसे ही देख कर सरलतया यह समझ में आ जाता है कि ईसाई मिशनरी किस प्रकार कार्य कर रहे हैं। और उन्हें सरकार भी किस प्रकार सहायता पहुँचा रही है। हमें अत्यन्त खेद हुआ जब मैंने वहां के स्थानीय जमीन्दारों से मिल कर उनकी दृष्टि इस ओर आकर्षित करनी चाही। प्रायः सभी जमीन्दार इस कार्य में भाग लेने से विमुख प्रतीत हुए। कारण ढूंढने पर पता चला कि वे समझते हैं कि यदि वे इस काम में हाथ बटायेंगे तो सरकार उनसे नाराज हो जायगी। इस दुर्बलता से हिन्दू संस्थायें स्थानीय सहायता प्राप्ति से वंचित हैं। अभी उन लोगों में जो हिन्दू संस्थायें काम करती हैं, उनकी संक्षिप्त तालिका निम्न प्रकार है।

१. हिन्दू धर्म रक्षक संघ, रांची।
२. ब्रह्मचर्य संघ, रांची।
३. हिन्दू अनाथालय, रांची।
४. हिन्दू मिशन, भागलपुर।
५. आर्य समाज भागलपुर, आदि आदि।

गूंगे, बधिर आश्रम के प्रिन्सिपल श्री केतु बसु की ओर से भी रांची एक सिंहभूमि के

जिलों में हिन्दुत्व भावना का प्रचार होता है। अब इसके बाद मैं छोटा नागपुर विशेषतः रांची जिले में हिन्दू एवं ईसाइयों की स्थिति पर प्रकाश डालने वाली एक संक्षिप्त तालिका दे रहा हूँ... ·

रांची जिला

२. बिहार के कुल आदिम निवासी····३२८८६००
ईसाई··· ··· · ·· ·· · ········ ·३११७२६

इस प्रकार ६.७ प्रतिशत ईसाई ६०.३ प्रतिशत गैर ईसाई या हिन्दू और अन्यान्य जाति के हैं।

३. शिक्षा	ईसाई	गैर ईसाई
हो	३५.६	०.७
सन्थाल	२४.६	०.५
मुण्डा	८.४	१.०
उरांव	८	१.०

४. रांची डिस्ट्रिक्ट बोर्ड रोमन कैथोलिक मिशन को प्राइमरी शिक्षा के लिये २४००० रु० का बैंक ग्रान्ट देता है।

५. युद्ध के कारण बेलजियम तथा फ्रान्स आदि देशों से सहायता न आने के कारण बिहार सरकार ने आर. सी. मिशन रांची को प्राइमरी स्कूलों के लिये १६४०-४१, १६४१-४२ तथा १६४२-४३ के लिये ५५०००, रु० दिये हैं।

६. रांची में ८० थाने हैं। ४ सबडिवीजन हैं। सिमडगा सब डिवीजन में ३० प्रतिशत वे बाशिन्दे हैं जो ईसाई बन गये हैं, उनमें ८० प्रतिशत आदिम निवासी ही ईसाई बने हैं।

७. चैनपुर थाना, गुमला सबडिवीजन में ईसाई बनी आबादी का ५५ प्रतिशत है। यहां पर आर. सी. मिशन के ५१ चर्च तथा जर्मन मिशन के ११ चर्च हैं।

८. प्राईमरी स्कूल रविवार को चर्चों में परिणत हो जाते हैं जहां धर्मोपदेश हुआ करता है।

६. किसी हिन्दू संस्था ने बालिकाओं की शिक्षा समस्या की ओर अपना ध्यान नहीं दिया है जब कि ईसाई मिशनरी प्रत्येक वर्ष सैकड़ों ईसाई लड़कियों को मैट्रिक तथा ग्रेजूएट तक की शिक्षा से शिक्षित कर रहे हैं। रांची के किसी भी हाई स्कूल की ६ वीं तथा १० वीं तथा ११ वीं कक्षा में गैर ईसाई आदिम निवासी एक भी छात्रा नहीं है। सिंहभूमि जिले में जगन्नाथपुर में केवल एक स्कूल है जहां ३५ हिन्दू लड़कियां शिक्षा पा रही हैं। श्री ठक्कर बाबा द्वारा लड़कियों के लिये एक छात्रावास का प्रबन्ध किया गया है। वे १५) रु० प्रतिमास मकान भाड़े के लिये, १५) रु० लेडी सुपरिन्टेन्डेन्ट के लिये तथा १०) रु० छात्राओं की सहायता के लिये जनवरी ४२ से दे रहे हैं। किन्तु यह सहायता की रकम शीघ्र ही चुक जाने वाली है और सम्भव है यह शीघ्र बन्द हो जाय।

श्रद्धाञ्जलिः

१ येषां जीवितमेव सर्वमभवल्लोकोपकारेऽर्पितं,
दातुं वैदिक शिक्षणं गुरुकुलं, संस्थापितं यैः शुभम्।
अस्पृश्यत्वनिवारणार्थमनिशं, यत्नः कृतो यैः सदा,
श्रद्धानन्दमहोदयान् गुरुवरान्, वन्देऽतिभक्त्यायुतः॥

२ येषां निर्भयता हि लोकविदिता-सीदद्वितीया ध्रुवं,
सेनायाः पुरतोऽप्यनावृतमुरो निर्भीकसंन्यासिभिः।
शुद्धयान्दोलनचालकान् धृतिधरांस्तानस्युदाराशयान्,
श्रद्धानन्दमहोदयान् गुरुवरान्, वन्देऽतिभक्त्या युतः॥

३ ऐक्यं स्थापयितुं जनेषु सततं, हृद्योगजं शाश्वतम्,
यत्नो यैर्विहितो दिवानिशमिह, प्रीत्यन्वितेनात्मना।
धर्मार्थं बलिदानतोऽमरपदं, ये धर्मवीरा गताः,
श्रद्धानन्दमहोदयान् गुरुवरान्, वन्देऽतिभक्त्यायुतः॥

४ श्रद्धाया जगदीश्वरे यतिवराः, ये मूर्तिमन्तोऽभवन्,
सत्यस्याविरतं व्रतं हितकरं, यैः सार्वभौमं धृतम्।
भक्तिं ये दधिरे ध्रुवां ध्रुवतमे, ब्रह्मण्यनन्तेऽव्यये,
श्रद्धानन्दमहोदयान् गुरुवरान्, वन्देऽति भक्त्या युतः॥

५ विशुद्धा धर्मज्ञाः, सकलमलहीना बलभृतः,
अहिंसायाः पुण्यं, व्रतमिह धृतं यैर्यतिवरैः।
श्वपाके सद्विप्रे, शुनि करिणि नित्यं समदृशो,
गुरून् श्रद्धानन्दान्, सविनयमहं नौमि सततम्॥

६ सुताः सर्वे तुल्याः, जगति हि यतस्ते भगवतः,
ततः प्रीत्या प्रेम्णा भुवि खलु समस्ता वसुमतः।
इतीमं सद्बोधं, ददत इह नित्यं हितकरं,
गुरून् श्रद्धानन्दान्, सविनयमहं नौमि सततम्॥

"भ्रू. भू."

OM

THE GURUKULA AND ITS FOUNDER

(By Prof LALCHAND JI M A, Vice Principal Gurukula Kangri University)

महात्मा मुन्शीराम जी
(गुरुकुल के आचार्य के वेश में)

Bold was the dream, but bolder was the dreamer than the dream It is impossible to think of the Gurukula Kangri without Mahatma Munshi Ram That great soul caught fire by coming in contact with Rishi Dayanand, a blazing mass of divine energy Mad was the epithet flung against Mahatma Munshi Ram when he declared his seemingly wild project to start a Gurukula But when has anything really great been achieved except by those whom the world called mad ?

This visionary has written in Hindi a very interesting and instructive biography which every aspirant after righteousness should read He was born in Talwan, a village in Jullundhar in the year 1857 His parents were both religiously disposed His father was the chief police officer in different places at different times Regularly and devoutly he worshipped his god and read Tulasi Ramayana several verses of which he had by heart His mother combined tenderness with common sense in an uncommon degree and never fondled her children excessively Two incidents of his student life are well worth recording as they throw a flood of light on the stuff of which he was made He had been bred up as a Sanatanist and an idol worshipper Once while going to enter temple, he was stopped by the policeman on duty and asked to wait till a particular 'Rani' or queen who had gone

in for worship came out. 'What' thought the young devotee, 'Can there be partiality' even in the house of God ? Can this partial idol be the real God?' Questionings like these arose, belief in idol worship vanished and the seeker after truth came away without waiting for the 'Rani' to come out.

The other incident is equally illustrative of his character As his father was in the good books of the Commissioner of Bareilly, the latter to show his favour offered for the son the post of Naib Tahsildar. Munshi Ram accepted the post and discontinued his studies. Once he went to see the Commissioner He was asked to wait outside for some time In the meanwhile an English Merchant came and entered the room without seeking permission. This gave a rude shock to his sense of self-respect and the fallen condition of his country rose vividly before his mind's eye. He returned without seeing the Commissionor, tendered his resignation and never again sought government service. The lion could not be tamed.

But he, who refused to bend the knee before bureaucrats, surrendered himself to the seductive charms of earthly pleasures. Due to his father's great influence in the city, he could do with impunity many things which others feared to do. Endowed with . health, wealth, strength, youth and freedom, he would have been more than human, if he had not succumbed to the pleasures of the senses With his jolly companions, of whom there is never any dearth for a rich young man, he smoked and drank and danced and sang and had his fill of sexual enjoyments.

The meeting with Rishi Dayananda and later a careful perusal of 'Satyarth Prakash', the immortal work of the great Rishi turned the tide and completely revolutionised the life of Munshi Ram. Whatever he did, he did with a characteristic thoroughness. Throughly he had enjoyed, thoroughly he repented, thoroughly he renounced. With him there was no doing things in a wavering half hearted manner. The storm came and swept away all the rubbish. What he left he left for good. He cast no 'longing lingering look' on the life of self-indulgence, he renounced. lustfulness, drinking, meat-eating, smoking all gone for ever and not a sigh of regret expressed. He now bent his energies to his studies, creditably passed examination in law and began to practise as pleader in Jullundhar.

Arya Samaj had just been founded in the Punjab. Mahatma Munshi Ram began to take part in its activities and soon rose; by virtue of his ability, selflessness and character to a position of distinctions. When due to different ideas in education and different views regarding meat eating. a split took place and Arya Samaj was divided into Culture Party and Mahatma Party, Mahatma Munshi Ram began to lead the Mahatma party. He was a very successful pleader, but worldly ambition and social service go ill together, for they go against each other. For some time the struggle continued. The service of the Arya Samaj gradually gained the upper hand and professional practice began to dwindle. A paper 'Sad Dharma Pracharak' was started to carry on the propaganda of Arya Samaj and eradicate social evils. In these days Mahatma Munshi Ram with a party of devotees used to go early in the morning through the streets of Jullundhar with the beggar's bowl in his hand singing songs of devotion and collecting funds for the Arya Samaj. In his autobiography, while recalling the innocent ways and singing service of those days. Mahatma Munshi Ram confesses that those days were the happiest period of his life. Those Arya Samajists who attach too much importance to controversy 'Khandan Mandan' should please note that as in the case of Swami Dayananda, so in the case of Mahatma Munshi Ram, there was another aspect, the aspect of faith, of devotion, manifest in these simple and spontaneous 'Kirtans'—the aspect which was the true cause of their real greatness and tireless activity.

In Jullundhar, Mahatma Munshi Ram not only edited his paper, but took a very prominent part in various kinds of social reform carried on by Arya Samaj. Along with L. Dev Raj Ji he conceived and created the Kanya Maha Vidyalaya Jullundhar, which is the premier institution of its kind in the Punjab at this time.

After earnest meditation over the best means of serving his great guru, his great religion, his great country he came to the conclusion that the Gurukula of Dayanand's dreams should be brought into existence. That way lay the salvation of India. The children of to-day are the nation of to-morrow. But how and where are the children of India being brought up. And what sort of a

nation will they thus grow into Surely the tender buds cannot blossom properly in the foul and contaminated air of the cities Far, far away from the turmoil and tainted air of the towns, take these little saplings and plant them in the free and fresh atmosphere of jungles near a mountain or a river Thus alone can they grow up strong and high, thus alone can they bear fragrant flowers and delicious fruits, thus alone can they furnish cool peaceful shade for troubled souls and restless hearts

Imbued with such ideas Mahatma Munshi Ram made a stern resolve to start a Gurukula in the very lap of nature People laughed Where was the money to come from? Who would send his children to the jungles? But our hero stood firm against ridicule He stuck to his resolve He spent days of toil and nights of vigil to realise the dream of his guru Money came Children came A suitable site between the Nilgiri and Nildhara with Himalayas on one side and Ganges on the other was offered as a free gift by L Amar Singh, a great philanthrophist

Those who had ridiculed began to respect both the dreamer and the dream The jungle was cleared, huts were built and the great soul with a few children began his novel experiment far far away from the din and dirt of cities Tigers roamed freely at night about the place where the Gurukula was started They were angry with the man who had usurped part of their empire They roared and the children trembled but the strong protecting arm and the stout courageous heart of our hero were always with them to comfort and encourage Under his loving guidance they learnt to face with courage the dangers of the forest to bear with equanimity the inclemencies of the weather, to move about bare headed, bare footed in the biting cold of winter and the scorching summer sun

Traditions then established traditions of simplicity, austerity courage are a great asset of the Gurukula and a perennial source of inspiration and life both to its students and its staff As the last Ganges flood swept away most of the buildings of the Gurukula, it was considered prudent to shift the Gurukula to the opposite side of the Ganges along the Ganges canal. Here too the Gurukula has got vast

and beautiful lands and new buildings have been set up in an incredibly short time-thanks to the generosity of the Hindus and the tireless energy of prof. Dev Raj ji Sethi. The Gurukula is not affiliated to any Indian University It has uptil now successfully resisted all temptations to affiliation. Once, asked by a high Government official to get the Gurukula affiliated, Mahatma Munshi Ram replied "Let there remain at least one independent institution in India entirely free from government control and influence."

Boys are admitted here at the age of 7 or 8. They have to live in Gurukula for 14 years, 10 years for the school course and 4 years for the college course. The school course is like the ordinary school course outside, with this difference that special attention is paid to the teaching of Sanskrit and the ancient religious scriptures and that Indian history is taught from the national stand point so that students learn to respect their ancestors for their material, intellectual and spiritual greatness, and not to look down upon them as semi—barbarians.

After the school course, we have three colleges—the Veda College, the Arts College, the Ayurveda College. Most of the subjects in the Veda College and the Arts College are common. Only in the Veda College, the students read a little more about the Vedas and in the Arts College more about Hindi, Sanskrit and English literature. Vedas and Upanishads, Darshans, Sanskrit literature, Hindi literature, English are compulsory subjects, Chemistry, Philosophy. History Econommics are elective subjects.

In the Ayurveda College Allopathy and Surgery are taught along with Charak and Sushrut. In this college also the study of the Veda is compulsory. The graduates of the Arts college are called Vidya Alankar, those of the Veda College, Veda Alankar and those of the Ayurveda College Ayurveda Alankar.

Students perform congregational sandhya and havan both in the morning and in the evening. They get up at 4-30 in the morning and go to sleep before ten at night. Some sort of daily exercise is compulsory for all. Hockey is a favourite Game of the students. In summer they enjoy swimming. Both in All-India hockey tournament and in All-India swimming competitions our students have achieved great distinction. They have also got several debating clubs and

they have more than once achieved very great distinction in the Inter University debate competitions. People marvel both when they speak and when they play. The swiftness of the deer is in their feet and the force of the winds is in their voice. They are really the children of nature, for they are brought up in the midst of the beautiful and the sublime scenes of nature. Unconsciously they imbibe the energy of nature and manifest it in their movements. Speaking of one of our brahmacharis, who stood first in an All-India Inter-university debate, a professor who was present in the debate remarked when Brahmachari Veda Vrat began to speak, it appeared as if a tremendous force of nature that had been spent up was let loose and was carrying everything before it.

In Gurukula, there is a very happy combination of the East and the West. Clinging firmly to all that is essential in our own culture, the Gurukula welcomes and assimilates all that is best in the West. The Gurukula steers clear of Scylla and Charybdis—superstitions adherence to the old on the one hand and wholesale rejection of the new on the other. Passion for truth is its dominant characteristic. It does not take anything for granted. It submits everything to the test of reason, accepts what is true and discards what is false.

Gurukula students have a certain air of independence about them. Hindi—being the medium of instruction even in the college, they thoroughly enjoy and appreciate what they are taught, whether their own scriptures or modern sciences. They are well versed in the poets and the philosophers of the past. They draw inspiration from the noble sayings of their ancestors and freely quote them in their conversation. To them Indian culture is not dead. It is a living thing It lives in them; they live in it.

But there is an even greater advantage of Gurukula education. It is its insistence on brahmacharya or continence. Due to early marriage and other social evils, the nation is rapidly deteriorating. The Gurukula cries halt to this rapid downward movement, gets hold of boys at the age of seven or eight, removes them from the dirty and devitalising atmosphere of the towns, nourishes them with the nectar of knowledge and enables them to grow up strong in body, mind and soul. *(To be continued)*

अमर सन्देश

१७ नया बाजार, देहली
८-२-१९८२

प्रिय धर्मदेव !

नीचे लिखा सन्देश आर्यसमाज ११-५-२५ के वार्षिकोत्सव पर पढ़ देना ।

—श्रद्धानन्द

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

To

Arya brethren assembled in the anniversary celebrations

On this sacred occasion, please do not forget that the Vedic Dharma does not belong to any sect nor is it a religion. It is the Eternal Dharma without which the social fabric of the world can not stand To you was given the key which disclosed untold spiritual treasures in ancient times and it can be your privilege still to give Shanti (शान्ति) to a suffering world
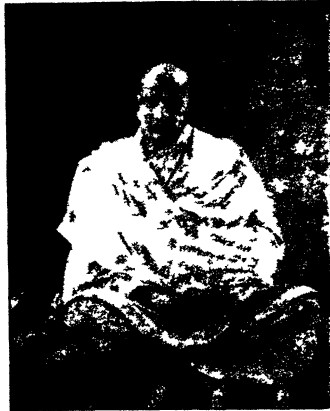
But first you have to purge yourselves of impurities Take a solemn pledge to-day that you will not fail in the discharge of the five great yajnas daily that you will break the fetters of unnatural Caste system and will work the वर्णाश्रम व्यवस्था in your lives that you will root out the curse of untouchability from the land of your birth and that you will throw open the doors of the Aryasamajic Universal Church to mankind without distinction of sect creed colour or nationality

May the Param Purusha help you in the fulfilment of your vows and may He so guide you in your path of duty that during the next visit of the Sanyasi in your midst, he might be able to see visible signs of progress towards the prescribed goal.

Your brother in Faith
Shraddhananda Sanyasi

यह अमर सन्देश स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज ने अपने कर कमलों से लिखकर मेरे द्वारा मंगलौर (दक्षिण कर्णाटक जिला आर्यसमाज के उत्सव के अवसर पर ११-५-२५ को भेजा था। यह सन्देश स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है और मंगलौर ही नहीं प्रत्येक आर्यसमाज की उन्नति के लिये विशुद्ध मार्गदर्शक है इसीलिये मैंने इसे अविकल रूप में ज्यों का त्यों ऊपर उद्धृत किया है। इसका आर्य भाषा (हिन्दी) में अनुवाद इस प्रकार होगा।

आर्य भाइयों के प्रति

'इस पवित्र अवसर पर कृपा करके न भूल जाओ कि वैदिक धर्म का सम्बन्ध किसी सम्प्रदाय के साथ नहीं है, नाही यह मत या मजहब है। यह सनातन (नित्य) धर्म है। जिसके बिना जगत् की सामाजिक स्थिति असम्भव है।

तुम्हें वह चाबी दी गई थी जो प्राचीनकाल में असंख्य आध्यात्मिक कोषों को खोलती थी और अब भी तुम्हारा ही यह अधिकार हो सकता है कि पीड़ित जगत् को तुम शान्ति प्रदान कर सको।

किन्तु सबसे पहले तुम्हें अपनी अपवित्रताओं को दूर करना होगा। आज एक गम्भीर प्रतिज्ञा करो या व्रत लो कि तुम पञ्च महायज्ञों के अनुष्ठान में न चूकोगे कि तुम अस्वाभाविक जातिभेद की जंजीरों को तोड़ डालोगे और वर्णाश्रम व्यवस्था को अपने जीवनों में क्रियात्मक रूप दोगे, कि तुम अपने देश से अस्पृश्यता के अभिशाप का समूलोन्मूलन कर दोगे (जड़ से उखाड़कर फेंक दोगे) और आर्यसमाज रूपी सार्वभौम धर्ममन्दिर के द्वारों को तुम मत, सम्प्रदाय, जाति आदि के भेद के बिना मनुष्यमात्र के लिए खुला रक्खोगे।'

परम पुरुष—परमात्मा इन व्रतों के परिपालन में तुम्हारे सहायक हों और अपने कर्तव्य मार्ग में वे तुम्हें ऐसे प्रेरित करें कि इस संन्यासी की अगली यात्रा में वह निर्दिष्ट उद्देश्य की ओर उन्नति के स्पष्ट चिन्हों को देख सके।

तुम्हारा धर्मबन्धु—
श्रद्धानन्द संन्यासी

[हुतात्मा श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी का यहसन्देश आज भी आर्य जनता के लिए इतना ही स्फूर्तिदायक और उपयोगी है जितना कि उन दिनों था जब यह १९२५ में दिया गया था। प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है कि श्रद्धेय स्वामीजी के इस अमर सन्देश के अनुसार अपने आचरण को बनाते हुए उत्तरोत्तर उन्नति करता जाए और जगत् की सेवा तथा शान्ति के सन्देश देने के लिए अपने को योग्य बनाए।

—धर्मदेव वि० वा०
'सम्पादक सार्वदेशिक']

आदर्श पुरुष स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी

(लेखक—श्री निरंजनलाल गौतम, विशारद)

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का जीवन आदि से अन्त तक लगन, कर्तव्य परायणता, निर्भीकता, सत्यवादिता, विघ्न के ऊपर विजय और नवीन परीक्षण में सफलता प्राप्ति का ज्वाज्वल्यमान उदाहरण है। आदि से अन्त तक स्वामी जी के जीवन में एक ही बात अपरिवर्तित रूप में दीख पड़ती है वह है "जिस कार्य पर लग गये तो लग गये" और उसकी पराकाष्ठा तक जा पहुँचना उनके अदम्य साहस और उनकी लगन का परिचायक है। इसीलिये जहां विद्यार्थी मुंशीराम को हम त्याग, तपस्या, तन्मयता, कर्म-निष्ठता तथा कर्तव्य परायण के उच्चतम पद पर आसीन देखते हैं तो संन्यासी श्रद्धानन्द के रूप में तो आर्य समाज के ऊपर अपने जीवन को बलिदान कर उन्हें अमर पद प्राप्त करते हुए पाते हैं।

प्रारम्भिक पतनमय जीवन मे उपन्यासों, शराब और मांस भक्षण में अपने को विभोर करके भी अपने आपको ऊचा उठा लेने का बल और अन्त तक निभाने की अटल दृढ़ता सर्वथा स्तुत्य है। स्वामी जी का जीवन आत्म निभरता का भी एक उत्कृष्ट उदाहरण है। आर्य समाज जालन्धर के सनातनियों से शास्त्रार्थ ठान लेने और लाहौर आर्य समाज से उन्हें कोई सहायता न मिलने पर अपने तुच्छ साधनों के बल पर ही शास्त्रार्थ में अपूर्व विजय प्राप्ति और उसके बाद ही स्वाध्याय का दृढ़ निश्चय करके वेदाध्ययन तक अपने को लेजाना उनके अटल संकल्प का द्योतक है।

उन्हें सद्धर्म प्रचारक, कन्या महाविद्यालय जालंधर, तथा गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के लिये अनेकों कठिनाइयों और विघ्न बाधाओं में होकर अपना पथ प्रशस्त करना पड़ा, यह एक लम्बा विवरण है परन्तु इन नवीन परीक्षणों में उनकी सफलता आज हमारे सम्मुख है। उन्होंने गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना करके न केवल आर्य समाज का मस्तिष्क ऊंचा किया अपितु आर्यावर्त की उच्चतम पूर्व शिक्षा प्रणाली के सम्मुख देश-देशातरों के अनेकों उच्चतम व्यक्तियों का ध्यान आकर्षित करके भारत माता को गौरवान्वित किया। जिस गुरुकुल को अपने रक्त एवं जीवन सर्वस्व की आहुति से स्थापित करके पोषा उसे ही संघर्ष निवारण, अनुशासन तथा सगठन के हेतु तृणवत् छोड़कर अपने निस्स्वार्थमय जीवन का परिचय दिया।

स्वामी जी ने जो कुछ जनता को उपदेश के रूपमें कहा वही पहले अपने घरसे प्रारम्भ किया। मांस भक्षण, तथा मद्यमय जीवन का त्याग करके लोगों के बड़प्पन के भ्रम को दूर किया। अपनी पुत्रियों को कन्या शिक्षा के लिये, गुरुकुल की शिक्षा के लिये अपने दोनों पुत्रों को और जात-पांत तोड़ने में अपनी छोटी पुत्री के विवाह में

इस संकुचित घेरे से मुक्त होकर क्रियात्मक आदर्श जनता के सम्मुख उपस्थित किया।

जिस काम को श्री स्वामी जी करना शुभ एवं समाज के लिये हितकर समझते थे उसे तुरन्त करना अपना कर्तव्य समझते थे। टालमटोल करना उनके स्वभाव में न था। उदाहरणार्थ जब गुरुकुल खोलने का निश्चय हुआ तो धन संग्रह करने के नाम पर उसे टालने की चेष्टा की गई। परन्तु स्वामी जी की आत्मा इसे स्वीकार न कर सकी और केवल ६ मास में ३० हजार की पुष्कल धन राशि एकत्रित करके अपनी भीष्म प्रतिज्ञा को पूरा किया तथा सर्वथा असम्भव समझे जाने वाले कार्य को केवल १ वर्ष से पूर्व ही कर दिखाया। इसी प्रकार के उदाहरण शुद्धि, संगठन तथा दलितोद्धार आदि के कार्यों में पग पग पर दृष्टि गोचर होते हैं।

स्वामी जी की प्रत्येक व्यक्ति को ऊपर उठाने की भावना का परिचय अपने अनेकों कर्मचारियों और कई सहकारियों को उन्नत करके अपनी उदारता दिखाने में मिलता है।

आर्य समाज और हिन्दू जाति तो स्वामी जी के चिरऋणी हैं ही; साथ ही हिन्दू मुस्लिम एकता के लिये प्रयत्नशील, राष्ट्रीयता के क्षेत्र में गोरखों की संगीनों के सामने छाती खोल कर डटजाने वाले स्वामी श्रद्धानन्द का नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा तथा आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये धार्मिक तथा सामाजिक सेवा, शिक्षा प्रचार, राष्ट्रीयता, निर्भीकता, आत्म-निर्भरता, सच्चरित्रता तथा सिद्धांतों के मामले में किसी प्रकार का समझौता न करनेवाले अपने अपूर्व सद्गुणों के कारण आपका जीवन आदर्श रूप में स्फूर्तिदायक सिद्ध होगा। ऐसे आदर्श महात्मा की बलिदान जयन्ती के पुण्य दिवस पर उस दिवंगत आदर्श पुरुष को हमारा बार बार नमस्कार है।

स्वामी श्रद्धानन्दजी और गुरुकुल

मानव मस्तिष्क ही उसके विचारों और विश्वास का केन्द्र है। उसे आरम्भ में जिस प्रकार की शिक्षा-दीक्षा दी जाती है। उसी की गहरी छाप उसके अन्तरङ्ग पर चिर-काल के लिये अमिट-सी रह जाती है। मनुष्य, अपने उन्हीं सिद्धान्तों के उन्नयन में अपने जीवन की बाजी लगाकर संसार में उत्तम आदर्श स्थापित करता है। श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती ने ऐसे ही हृदगतों से विशेष प्रेरित होकर अपने ग्रन्थों में 'गुरुकुल' स्थापना पर जोर दिया था। स्वामी दयानन्दजी के इस महत्त्वपूर्ण कार्य की पूर्ति सर्व प्रथम हुतात्मा 'श्रद्धानन्द' ने 'गुरुकुल-कांगड़ी की स्थापना द्वारा की। अपने अनथक व बहुल परिश्रम द्वारा आर्य संस्कृति के चिरकालीन अभ्युदय के सदुद्देश्य से ही कांगड़ी गुरुकुल की उन्होंने स्थापना की। जब तक 'गुरुकुल कांगड़ी' रहेगा तब तक उनका नाम अक्षुण्ण रहेगा।

—बालमुकुन्द मिश्र साहित्यालङ्कार दिल्ली

श्रद्धाञ्जलि

(लेखक—कविरत्न पं० सिद्धगोपाल जी साहित्य-वाचस्पति, देहली)

तुम हिन्दू मानस मानसरोवर, के आदर्श मराल रहे !
तुम आरत भारत माता के, प्रिय आज्ञाकारी लाल रहे !
तुम मानव-मण्डल के नभ पर, नित दिव्य दिवाकर हो चमके,
तुम जग जञ्जालों की भट्टी, में भी सोना होकर दमके।

तुम सैनिक थे तुम नायक थे, तुम स्वामी थे तुम वीर रहे,
तुम ध्याता थे तुम ध्यानी थे, तुम ध्येय लिये रणधीर रहे !
तुम निर्धन के धन दीन दुखी, दलितों पतितों के प्यार बने,
तुम विधवा और अनाथों के, रक्षक पोषक आधार बने।

तुम भारत का आदर्श सभ्यता, संस्कृति के शृंगार बने,
गुण आगरि नागरि भाषा के, तुम आभामय उपहार बने।
है याद हमें यतिवर तुमने ही, स्वप्न लिया था गुरुकुल का।
वह पूर्ण हुआ सुन्दरता से, जो स्वप्न लिया था गुरुकुल का।

अब गुरुकुल गौरव गरिमा की, बैठी है धाक जमाने में,
वह आगे है आदर्श सुशिक्षण, के आदर्श दिखाने में।
जग का परिवर्तन कैसा है, क्या से क्या मुंशीराम हुए,
जो विषयों के दीवाने थे, वे ही यतिवर निष्काम हुए !

संगठन किया था शुद्धि चलाई और अछूतोद्धार किया।
मानव को फिर मानवता का तुमने सच्चा अधिकार दिया।
दिल्ली के घन्टाघर पर संगीनों में थी छाती तानी,
शुचि भारतीयता की जामा मस्जिद में बोली थी बानी !

लू के प्यासे को तुमने ही तो शीतल नीर पिलाया था,
फिर नीर पिलाकर जो उसको पीना था वही पिलाया था।
यतिवर, तुम थे ऐसे उदार उसने चाहा जो वही दिया
निज जीवन देने में तुमने नहि कुछ जीवन का मोह किया ॥

इस दुनियां से तुम वहीं गये हो जहँ दुनियां को जाना है,
पर दुनियां का जाना दुनियां में ही आने का बाना है।
हे देव ! तुम्हारा जाना क्या है, है अविचल पद अपनाना,
तुम सुख स्वरूप डाली पर सीखे हो कलिका बन मुसकाना।

तुम गये जाति के जीवन में, जीवन की ज्योति जगा कर के,
कण-कण में निज करुणा से नव, नव जीवन कण बरसा करके !
हैं अनगिनती उपकार आपके कवि "गोपाल" सुनाते हैं।
यति श्रद्धानन्द सु-चरणों में श्रद्धा के सुमन चढ़ाते हैं ॥

अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

की

१६ वीं बलिदान-जयन्ती

विश्वहितैषी वीर संन्यासी की याद

ता० २४ दिसम्बर सन् ४२, बृहस्पतिवार को धूमधाम से मनाइये !
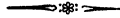
अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज सर्वतोमुखी प्रतिभा, अदम्य उत्साह और आश्चर्य-जनक कार्य-शक्ति से ओत-प्रोत वीर नेता थे। जीवन के सभी भागों एवं कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में, वे एक जीवित, जागृत, मूर्तिमान् उच्चादर्श के रूप में जनता का पथ प्रदर्शन करते रहे। आत्म-बलिदान की पवित्र यज्ञाग्नि प्रज्वलित करने के पश्चात् आज भी वे भूले भटके, अशान्त क्लान्त, दीन हीन, संसार को कर्तव्य का पाठ पढ़ाने और सुख, शान्ति समृद्धि का उपभोग कराने में समर्थ हैं। उनके जीवन की प्रत्येक घटना त्याग, तप और बलिदान का सुन्दर उदाहरण है। उनके बहाये हुये उपदेशामृत का प्रवाह आज भी सन्तप्त हृदयों को शान्त और प्रफुल्ल बनाने की योग्यता रखता है। उनके अमर ग्रन्थ मानव की आँखें खोलने वाले हैं। जरूरत है उन आँखों की, जो उस अमर हुतात्मा के विराट् रूप के दर्शन कर सकें। उन लोगों की जो महाराज के जीवन का मनन करके अनुगामी बनें। उन आर्य नवयुवकों की, जो उस महान् संन्यासी के मिशन को सफल बनाने के लिये सिर पर कफन बांध कर कार्य-क्षेत्र में अग्रसर हों।

२३ दिसम्बर सन् १९२६ को स्वामी जी का बलिदान हुआ था। समस्त आर्य संसार को जीवन, ज्योति, जागृति प्रदान करने वाली इस पवित्र घटना को पौष ९ सौर सम्वत् १९९९ विक्रमी तदनुसार २४ दिसम्बर सन् १९४२, बृहस्पतिवार को सोलह वर्ष हो जायेंगे। इस अवसर पर समस्त आर्य ससार को चाहिये कि स्वामीजी की याद को ताजा रखे। उनके मिशन—शुद्धि, हिन्दू संगठन और दलितोद्धार की पूर्ति के लिये विशेष यत्न करे। इस अवसर पर देहली में ता० १८ दिसम्बर से २४ दिसम्बर सन् १९४२ तक विशेष समारोह से श्रद्धानन्द-सप्ताह मनाने का आयोजन हो रहा है।

मैं समस्त भारतवर्ष की आर्य समाजों, हिन्दू सभाओं, गुरुकुलों तथा समस्त हिन्दू संस्थाओं के अधिकारियों एवं स्वामीजी के मिशन के प्रति अनुराग रखने वाले सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से अनुरोध करता हूँ कि वे अपने अपने स्थान पर,

हो सके तो श्रद्धानन्द सप्ताह मनायें। अन्यथा २४ दिसम्बर को सुविधानुसार बृहद् रूप में प्रभात फेरियां एवं जलूस निकालने और सावजनिक सभाएं करने की योजना बनाएं। सभाओं में स्वामीजी के जीवन और कार्यों पर विशेष प्रकाश डालने वाले भाषणों, कविता आदि का प्रबन्ध करना चाहिये। और इस प्रकार श्रद्धानन्द बलिदान जयन्ती का राष्ट्रीय पर्व समारोह से मनाना चाहिये। सप्ताह के प्रोग्राम में शुद्धि-संगठन और दलितोद्धार की दिशा में क्रियात्मक कदम बढ़ाना चाहिये। अन्तर्जातीय सहभोज, कवि-सम्मेलन, खेलों के मैच, शारीरिक व्यायाम प्रदर्शन और पहलवानों के दंगल आदि कराये जायें तो विशेष उपयोगी होंगे।

श्री श्रद्धानन्द बलिदान जयन्ती और सप्ताह के सम्बन्ध में होने वाले कार्यों की सूचना समाचार-पत्रों को तथा नीचे के पते पर अवश्य भेजने की कृपा करें। नारायण दत्त

—प्रधान मन्त्री

अखिल भारतीय स्वामी श्रद्धानन्द स्मारक ट्रस्ट,
१३ बारह खम्बा रोड, नई, देहली।
नई देहली ता० २६। ११। ५२

वीर शहीद की स्मृति

(लेखक—श्री पं० धर्मवीर जी वेदालङ्कार मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ)

पूरे १६ वर्ष हो चुके। प्रति वर्ष २३ दिसम्बर को हम वीर गति प्राप्त श्रद्धेय स्वामी श्रद्धानन्दजी की पुण्य तिथि मनाते आ रहे हैं। उस दिन-और हो सका तो-पुण्य तिथि के दो चार दिन आगे पीछे भी हम स्वामी जी के गुणों को बखानते रहते हैं। जलसे और जलूसों का अच्छा आयोजन कर लेते हैं। ऐसे प्रदर्शनों से संभव है कि आर्येतर जन समाज हमारे उत्साह की प्रशंसा करता हो, परन्तु हम स्वामी जी की बरसी वास्तव में अब तक नहीं मना सके और कोरे प्रदर्शन से हम अपनी दुर्बलता को छिपाने का प्रयत्न करते रहते हैं। सच तो यह है कि लोकाचार के अनुरोध से हम प्रतिवर्ष एक ढोंग रचते हैं। विजया दशमी (दशहरा) के दिन जिस तरह कागज़ के रावण को जला कर हम बड़े अभिमान से पुरातन एवं तथ्यपूर्ण इतिहास की स्मृति में यह कहने लगते हैं कि देखा! भारत की लक्ष्मी को चुरा ले जाने वाले विदेशी रावण को कैसे मार गिराया। हम बड़े ज़ोर से विजयी राजा रामचन्द्र जी की जय बोलते हैं, परन्तु इस पर कभी ध्यान नहीं देते कि राम की जीती लक्ष्मी अब कहां है? वह तब एक दिन ले जायी गई थी और अब प्रतिदिन जा रही है। आंखों पर पट्टी, कानों में डाट और दिल पर गुलामी का पत्थर है। देखने, सुनने और अनुभव करने का ध्यान ही नहीं। रामलीला के प्रदर्शन में हमें किसी और की लीला या तो दिखाई नहीं देती और यदि दिखाई देती है तो हम नकल के इतने उपासक बन चुके हैं कि असल को समझने की योग्यता ही खो बैठे।

मतलब यह है कि हम वस्तुतः स्वामी जी की बरसी नहीं मना पाते। कायरों को वीरों के स्मरण का अधिकार भी क्या है? स्वामीजी का सारा जीवन ही वीर जीवन था। जिस ओर वे कदम उठाते थे, बढ़ते चले जाते थे। हज़ारों विघ्न बाधाओं को कुचल कर उद्देश्यसिद्धि के लिए आगे ही बढ़ना उनका सहज स्वभाव था। सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक कोई भी क्षेत्र, कैसा ही दुर्गम क्यों न हो स्वामी जी की कर्त्तव्य-निष्ठा उसे सुगम बना लेती थी। उन्हें कार्य करने की धुन में हानि, लाभ, यश, अपयश, सुख दुःख की कभी पर्वाह नहीं थी। "मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्" स्वामी जी इस सूक्ति के नमूने थे।

ऐसे वीर स्वामी जी की बरसी तो तभी सही तौर पर मनाई जा सकती है, जब कि हम उन के बताए हुए किसी भी मार्ग पर उन की तरह वीरता से चल सकें। ओह! स्वामीजी कितने, लोक हितकर मार्गों के सफल पथिक थे। और हम जो चौराहे पर खड़े या पड़े हुए ही समय बिता रहे हैं, टस से मस नहीं होते। हर २३ दिसम्बर को चिल्ला २ कर कह देते हैं कि बोलो स्वामी

कुछ अमर सूक्तियाँ

(स्वामी जी के विचारों और भावनाओं का ठीक ठीक परिचय उनके लेखों एवं भाषणों से ही लग सकता है। इसलिए उनके कुछ अंश हम नीचे दे रहे हैं।)

——(:)※(:)——

कांग्रेस के मंच से

अमृतसर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष के पद से आपने अपने भाषण में कहा था कि "यदि जाति को स्वतन्त्र देखना चाहते हो, तो स्वयं सदाचार की मूर्ति बन कर अपनी सन्तान के सदाचार की बुनियाद रख दो। जब सदाचारी ब्रह्मचारी हों शिक्षक और कौमी हो शिक्षा पद्धति, तभी कौम की जरूरतों को पूरा करने वाले नौजवान निकलेंगे, नहीं तो इसी तरह आपकी सन्तान विदेशी विचारों और विदेशी सभ्यता की गुलाम बनी रहेगी।"

दलितोद्धार

अपने इसी भाषण में आपने कहा था कि "लन्दन नगर में भारत की रिफाम-स्कीम-कमेटी के सामने ईसाई-मुक्ति फौज के बूथ टकर साहब ने कहा था कि भारत के साढ़े छः करोड़ अछूतों को विशेष अधिकार मिलने चाहियें और उसके लिये हेतु दिया था क्योंकि वे भारत में ब्रिटिश गवर्नमैंट रूपी जहाज के लंगर हैं। इन शब्दों पर गहरा विचार कीजिये और सोचिये कि किस प्रकार आपके साढ़े छः करोड़ भाई, आपके जिगर के टुकड़े, जिन्हें आपने काट कर फेंक दिया है, किस प्रकार भारत माता के साढ़े छः करोड़ पुत्र एक विदेशी गवर्नमेन्ट रूपी जहाज के लंगर बनते हैं। मैं आप सब बहिनों और भाइयों से एक याचना करूंगा। इस पवित्र जातीय मन्दिर में बैठे हुये अपने हृदयों को मातृभूमि के प्रेमजल से शुद्ध करके प्रतिज्ञा करो कि आज से वे साढ़े छः करोड़ हमारे लिये अछूत नहीं रहे, बल्कि हमारे बहिन और भाई हैं। उनकी पुत्रियाँ और उनके पुत्र हमारी पाठशालाओं में पढ़ेंगे। उनके गृहस्थ नर-नारी हमारी सभाओं में सम्मिलित होंगे हमारे स्वतन्त्रता प्राप्ति के युद्ध में वे हमारे कन्धे से कन्धा जोड़ेंगे और हम सब एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुये ही अपने जातीय उद्देश्य को पूरा करेंगे। हे देवियो और सज्जन पुरुषो! मुझे आशीर्वाद दो कि परमेश्वर की दया से मेरा यह स्वप्न पूरा हो।"

आर्यसमाज से आशा

कांग्रेस, हिन्दु महासभा और शुद्धि सभा से निराश होने के बाद आपने आर्यसमाज को लक्ष्य करते हुए लिखा कि 'हिन्दू-संगठन के लिए गत ढाई वर्ष काम करते हुए मैंने अनुभव किया कि यदि आर्य-संस्कृति की रक्षा और उसके द्वारा हिन्दू समाज को अधःपतन से बचाना है, तो आर्यसमाज को अपनी त्रुटियां दूर करके इस सेवा के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। जब तक अपनी बिखरी हुई शक्तियों को केन्द्रित करके आर्यसमाज की संस्था लगन से इस काम में नहीं लग जाती, तब तक हिन्दू-समाज के अन्य सम्प्रदायों में भी जान नहीं पड़ सकती।

एक सुन्दर स्मृति

(शास्त्रार्थ महारथी—प० रामचन्द्र जी देहलवी)

स्वर्गीय श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज आर्यसमाज के एक अनुपम रत्न थे। शारीरिक रूप में जिस तरह बड़े और प्रभावशाली थे, वैसे ही अपने कामों में भी थे। जब तक जीवित रहे, आर्यसमाज को बहुत बड़े नेता के होने का अभिमान रहा। उनके स्थान की पूर्ति नहीं हो सकी और समय समय पर उनके अभाव को समाज बड़े उत्कट रूप मे अनुभव करता रहा है। स्वामी जी आर्यसमाज को कोई समुदाय नहीं समझते थे। उनकी दृष्टि विशाल थी। प्रत्येक धर्म की भली बात को भली-समझते थे और आपत्ति आने पर उनकी सहायता के लिये उद्यत हो जाते थे। परन्तु धर्म और सचाई के मामले में किसी से भी समझौता करना नहीं चाहते थे। हमेशा देशकाल के अनुकूल उनका व्यवहार रहा और कभी भी उन्होंने किसी ऐसे मौके को जिससे आर्यसमाज को या सर्व साधारण को लाभ हो, खाली नहीं जाने दिया। वे बड़े कर्मण्य थे। अपने जीवन मे आयुभर आर्यसमाज के सिद्धान्तानुकूल कार्य करके दिखलाते रहे। उनके जीवन की तरह उनकी मृत्यु ने भी सारे भारतवर्ष में बड़ा प्रभाव डाला। वे लोग जो आर्यसमाज से कम सहानुभूति रखते थे या बिल्कुल नहीं रखते थे, उनके दिल में भी नजदीकी और सहानुभूति उत्पन्न कर दी। हिन्दू-धर्म के तमाम सम्प्रदायों में आर्यसमाज के प्रति एक प्रेम की लहर पैदा कर दी। हमें चाहिये कि ऐसे नेताओं की याद उसी तरह करें जैसे कि उन्होंने ऋषि दयानन्द की की थी, अर्थात् अपने जीवन को वेदों के उपदेश और ऋषि दयानन्द के आदेशानुकूल बनावें। एक बार किसी अपने व्याख्यान में उन्होंने अन्य धर्मों के आर्यसमाज से शास्त्रार्थ पर कुछ टीका की। मुझे उसकी सूचना मेरे मित्रों ने दी। मै इस बात को सहन न कर सका और मैंने आर्यसमाज सीताराम बाजार के वार्षिकोत्सव के समय, जो नजदीक ही होने वाला था, एक इश्तिहार द्वारा स्वामी जी को चैलेंज दे दिया कि वे शास्त्रार्थ करने को शास्त्र या युक्ति के विरुद्ध सिद्ध करें। तारीख समय व स्थान इश्तिहार में दे दिया गया था। श्री स्वामी जी महाराज दिये हुए समय पर नहीं पधारे, तो मैंने न्याय शास्त्रानुकूल व युक्ति से शास्त्रार्थ की उपयोगिता जनता के सामने व्याख्यान द्वारा कह सुनाई। पहले तो जनता ने यह समझा कि शायद मैं स्वामी के विरुद्ध कुछ उल्टा-सीधा बोलूंगा। परन्तु जब उन्होंने मेरा व्याख्यान सुना तो सब

(पृष्ठ ४४६ का शेष)

श्रद्धानन्द की जय। अच्छा भाई। खूब बोलो, किन्तु यह समझलो कि इस जयनाद से ही हमारा क्या हित होगा। स्वामीजी की तो जय हो चुकी, पर बिना कुछ किये धरे पराधीन भारत और पीड़ित हिन्दू जाति की जय कैसे होगी, यह समझ में नहीं आया।

प्रसन्न हुए कि मैंने स्वामीजी को अपने व्याख्यान में बड़े आदर से याद किया और कोई बदनीयती का दोष तो उन पर नहीं लगाया। यह चीज़ तो खत्म हो गई परन्तु कुछ दिनों बाद जब कि मलकानों की शुद्धि का दौरदौरा चल रहा था, तो स्वामी जी महाराज घर पर पधारे मेरे दिल को उन्होंने इस तरह आकर मोह लिया और मुझ से कहने लगे कि आप शास्त्रार्थ के लिए आगरा जायें। वहां आपको वह ग्राम बता दिया जायगा, जहां शास्त्रार्थ होना है। मैंने स्वामीजी से कहा कि आप तो शास्त्रार्थ के विरुद्ध हैं। फिर मुझे क्यों शास्त्रार्थ के लिये भेज रहे हैं? स्वामीजी ने हंस कर कहा कि आपके शास्त्रार्थ के विरुद्ध नहीं हूं। मैं तो उनके विरुद्ध हूं, जो शास्त्रार्थ करना नहीं जानते। उन लोगों से लाभ के स्थान पर हानि होती है॥

हुतात्मा के प्रति श्रद्धाञ्जलि

(देश के महान् नेताओं की)

स्वामी श्रद्धानन्द जी संन्यासी

(१९२५ में मद्रास के दौरे पर)

अश्रान्त देश-सेवी

यह पुरानी रीत है कि अपने महात्माओं की स्मृतिसे लाभ उठावें। स्वामीजी ने जिस निष्ठा प्रेम और दृढतापूर्वक अपने धर्म को सारी जिन्दगी में निबाहा वह हम सब के लिये एक अत्यन्त शुभ और उत्साहोत्पादक सन्देश है। मै आशा करता हूँ कि हम उनके पदचिन्हों पर चल कर उनकी स्मृति को कायम रखेंगे और देश सेवा मे प्रवृत्त रह कर उनके उस काम को पूरा करेंगे, जिसे वह पूरा नहीं न कर पाये। —राजेन्द्र प्रसाद

आदर्श-जीवन

मैं स्वामी श्रद्धानन्द जी की पवित्र स्मृति मे सादर श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ और आशा करता हूँ कि उनके उदाहरण को देश सामने रख कर उनके आदर्श जीवन से प्रेरणा लेगा।

जवाहरलाल नेहरू

आर्य संस्कृति का रक्षक

स्वामी श्रद्धानन्दजी की निर्भीकता सत्यप्रेम और अपनी सभ्यता तथा संस्कृति की रक्षार्थ सब कुछ न्यौछावर कर देने के लिए तय्यार रहना, ऐसे गुण हैं कि जिनका प्रत्येक भारतवासी को अनुकरण करना चाहिये। स्वामी श्रद्धानन्द इन्हीं के लिये जिये और इन्हीं के लिये मरे। उनका यह अटल विश्वास अनुकरण करने योग्य ही है। —नारायण स्वामी

पावन-स्मृति

उनकी स्मृति कभी भुलाई नहीं जा सकती। स्वामी श्रद्धानन्द जी की पावन स्मृति में मेरी भी श्रद्धाञ्जलि स्वीकार कीजिये।

—विजयलक्ष्मी पण्डित

अपूर्व सेवाव्रती

हम सब स्वामी जी के जीवन से एक पवित्र पाठ सीख सकते हैं और वह यह कि स्वामी जी सेवा के लिए जिन्दा रहे और सेवा के ही लिए वह मरे। —घनश्यामदास बिड़ला

(प्रधान हरिजन सेवक संघ)

श्रद्धा का आनन्द

(लेखक—श्री आचार्य अभय देव जी संन्यासी)

आर्य समाज के संन्यासी प्रायः अपना नाम आनन्दान्त रखते हैं। आर्यसमाज के प्रवर्त्तक महान् संन्यासी का नाम भी तो ऐसा ही था—दयानन्द। ऐसा लगता है कि मानो संन्यासी होकर मनुष्य आनन्द (आनन्द मग्न, आनन्द रूप हो जाता है। बल्कि अधिक ठीक यह कहना होगा कि जब किसी महानुभाव को एक उच्चतर आनन्द की झांकी मिल जाती है तभी वह उस आनन्द को पा लेने के लिए उसमें बाधक रूप बन्धनों को तोड़ देना चाहता है, त्याग देता है, संन्यास कर देता है अर्थात् संन्यासी होता है। उच्च आनन्द का दर्शन ही मनुष्य को संन्यासी—उच्चतम आश्रमस्थ बनाता है।

ऋषि दयानन्द ने दया के आनन्द को उपलब्ध किया था। 'दयाया आनन्दो विलसति पुरः' ऐसे संस्कृत श्लोक उन्होंने अपना नाम कीर्तन करते हुए लिखे भी हैं। उन्होंने दया के आनन्द को उपलब्ध ही नहीं किया था, सिद्ध भी किया था। दुःख-क्लेश से सताये हुए प्राणियों को, विदेशियों से पादाक्रान्त हुए इस आर्यावर्त देश को अज्ञान, अन्धकार तथा जड़ता से ग्रस्त हुई एवं पक्षपात, राग-द्वेष, भय आदि विकारों से नाना प्रकार से पीड़ित समस्त मानव जाति को ही देखकर उनकी महान् आत्मा सहज भाव से करुणार्द्र हुई, दया युक्त हुई। उनकी इस दिव्य दया का आनन्द ही था जिसके कारण वे जीवन भर विरोधियों के ईंट-पत्थर आदि की मूर्खतापूर्ण मारें सहते रहे और अन्त में हमारे लिए विष-पान तक कर गये, पर सदा अपनी दया के प्रेम में प्रसन्न और आनन्दित रहे।

इसी तरह मुन्शीराम से श्रद्धानन्द होने वाले हमारे कुलपिता ने संन्यासी बनते समय जिस महान् आनन्द की उपलब्धि की वह श्रद्धा का आनन्द था। उन्होंने संन्यासी होने पर लाहौर समाज के उत्सव पर जो 'श्रद्धा' पर व्याख्यान दिया था वह आज भी हमें ऊँचे उठाने को ललकार रहा है, आज भी ज्योतिःस्तम्भ का काम कर रहा है। वह व्याख्यान वस्तुतः फिर फिर पढ़ने लायक है, आज भी ताजा है। उन्होंने उसके बाद जो साप्ताहिक पत्रिका गुरुकुल से निकाली उसका नाम 'श्रद्धा' रखा था। 'अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति' यह गीता का श्लोक वे अक्सर बोला करते थे। ज्ञान युक्त श्रद्धा रखने के कारण वे कभी भी संशयात्मा किंकर्त्तव्य विमूढ़ या डुलमुल यकीन एक क्षण भर के लिए भी नहीं होते थे। अन्दर से हमारा नाश कर देने वाला संशय राक्षस उनके सामने फटक नहीं सकता था। वे सदा श्रद्धापूर्ण थे, अतएव अजेय थे। वे वीर थे। वे बीहड़ जंगलों को चीरकर अपना नया सीधा रास्ता बनाने वाले शेर थे। दुनिया के अश्रद्धालुओं की बनायी हुई लम्बी चौड़ी चक्करदार पगडण्डियों में घूमते हुए सड़ना उन्हें

सह्य न था। दुनियापन उन्हें फुसला नहीं सकता था, उनके सत्य के मार्ग पर कोई रुकावट नहीं खड़ी कर सकता था। जो सत्य होता था, कर्त्तव्य था उसे वे करते ही थे। अतः वे जिनके साम्राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता उन अंग्रेजों की संगीनों के सामने छाती तानकर खड़े हो सकते थे, मार्शल-ला के दिनों में जब पञ्जाब के आसमान मे उड़ने वाले पक्षियों के भी पर जलते थे तब वे पञ्जाब में घूम घूम कर पञ्जाब को होश में लाकर वहां राष्ट्रीय महासभा का अधिवेशन सफलता-पूर्वक करा सकते थे और अन्त में अम्लान चित्त से बल्कि उसकी हित कामना करते हुए अब्दुल रशीद की गोली भी खा सकते थे। सच तो यह है कि उनके लिए कुछ भी 'असम्भव' कहलाने वाला असम्भव नहीं था। यह सब इस लिए था क्यों कि वे श्रद्धा के आनन्द में चूर थे, उन्होंने यह सोम-रस अचा कर पी रक्खा था; फिर इनके सामने दुनिया की कौनसी बाधा ठहर सकती थी।

व्यास जी ने योग्य भाष्य में श्रद्धा के विषय में क्या सुन्दर कहा है 'कल्याणीव जननी योगिनं पाति'। श्रद्धा कल्याणी माता की तरह योगी की रक्षा करती है। आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाले योगी को तो न केवल इस स्थूल जगत् के, किन्तु अन्य जगत् के बड़े भारी भारी शक्तिशाली असुरों से मुकाबिले में आना पड़ता है वहां श्रद्धा शक्ति ही माता की तरह उनकी निरन्तर रक्षा करती है। हमारे इस जगत् में भी उन विकट घड़ियों में जब कि निराशा की घनघोर घटा छा जाती है और कुछ भी नजर नहीं आता; जब कि लगातार आपत्तियों से घबराकर मनुष्य का धैर्य समाप्त हो जाता है; जबकि असुरों के सामने बे दम और परास्त होकर हम अपने दिव्य हथियार छोड़ने को तैयार हो जाते हैं उन विकट घड़ियों में भी वे ही लोग अडिग, अटल और अजेय रहते हैं जो श्रद्धामय दिव्य कवच से परिवेष्टित होते हैं, केवल उन्हीं की शान्ति अक्षुण्ण बनी रहती है जो कि श्रद्धा माता की गोद में शरण पा चुके होते हैं। अतः धन्य है वे लोग जिन्हें श्रद्धा प्राप्त हुई है और जिन्हें श्रद्धा का आनन्द प्राप्त हुआ है।

ऐसे ही धन्य हमारे श्रद्धानन्द जी महाराज थे। ईश्वर करे कि वे श्रद्धा के जिस दिव्य आनन्द की अपने जीवन द्वारा वर्षा कर गये हैं उसके कुछ छींटें पाकर हम भी कुछ अंश में श्रद्धामय और दिव्य सैनिक बन सकें और अपने जीवन को इस आनन्द द्वारा कृतकृत्य कर सकें॥

नई दिल्ली, मार्ग शीर्ष कृष्णा ३

दानवीर श्री सेठ जुगलकिशोर विरला जी का शुभ सन्देश

स्व० स्वामी श्रद्धानन्द जी और शुद्धि

श्रीयुत मंत्री जी,

सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा, देहली।

नमस्ते, आपका पत्र मिला। शुद्धि के कार्य को स्वामीजी ने अपने जीवन का ध्येय बना लिया था। इसलिये इस कार्य को अधिकाधिक अग्रसर करते हुए अथक उद्योग करते रहना ही स्वामीजी महाराज के जीवन तथा बलिदान की सच्ची स्मृति होगी। खेद है कि हम लोगों को (विशेषत आर्य समाजी भाइयों को) जितना प्रयत्न इस कार्य को बढ़ाने मे करना चाहिये अभी तक उतना नहीं हुआ है आशा है आप इस कार्य की ओर उत्साह तथा लगन पूर्वक ध्यान देंगे।

भवदीय—

जुगलकिशोर

[दानवीर सेठ जुगलकिशोर जी बिरला के उपर्युक्त विचार से हम पूर्णतया सहमत हैं और श्री स्वा० श्रद्धानन्द जी द्वारा सचालित शुद्धि कार्य को उत्साह पूर्वक सफल बनाने और बढाने का सबको अवश्य यत्न करना चाहिये]

विज्ञप्ति-विभाग

तुरन्त सहायता की आवश्यकता

बन्धु वर्ग !

सिंध देश के उत्तर और पश्चिम के जिलों में भयंकर जल प्रकोप (बाढ़) आया है। लोगों का सर्वस्व नाश हो गया है। लाखों आदमी गृहविहीन हो कर असहाय अवस्था में इधर उधर भटक रहे हैं। करोड़ों की सम्पत्ति नष्ट हो गई है। इन दुःख पीड़ित लोगों को पूर्ण सहायता मिलने के लिये महान् प्रयत्न की आवश्यकता है स्थानीय अधिकारी, स्वयं सेवक संस्थायें, पंचायतें, और कांग्रेस-स्वयं सेवक इन लोगों के दुःखों को दूर करने का हर संभव यत्न कर रहे हैं। आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध अपने भिन्न भिन्न समाजों तथा अन्य संबन्धित संस्थाओं के द्वारा सहायता का काम यथा शक्ति कर रही है। सभा सेवा का कार्य तीन विभागों में बांटना चाहती है।

(१) जहां जहां मलेरिया ज्वर का प्रकोप हो रहा है वहां औषधि आदि पहुँचाना और वैद्यों डाक्टरों को रख कर थोड़े समय के लिये औषधालय स्थापित करना।

(२) अपर सिन्ध के असह्य जाड़े में इन पीड़ित लोगों को बचाने के लिये कपड़ों का प्रबंध करना।

(३) बाजीगर, भील, बागड़ी आदि दलित जातियों को पैसों की सहायता देकर उनको फिर गांवों में बसने का प्रोत्साहन देना।

श्रीमान् तेजूमल कैनल रिटायर्ड इंजिनीअर जो सभा के प्रधान हैं, इस सेवा के काम को पं० जीवतराम आर्य प्रचारक की सहायता से चला रहे हैं। इस समय तक ११६०) इकट्ठे हुये हैं। कई सज्जनों ने औषधियाँ भी दान में दी हैं।

आप भी कृपा करके उदारता पूर्वक धन, कपड़े तथा दूसरी चीजें दान कर पुण्य के अधिकारी बनें।

सारी सहायता आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध, कराची सदर के पते पर आनी चाहिये।

ताराचन्द गाजरा एम० ए०, मन्त्री,
आर्य प्रतिनिधि सभा सिन्ध।

बंगाल बाढ़ पीड़ितों की सहायता कीजिये

बंगाल प्रान्त के मिदनापुर आदि जिलों में गत अक्टूबर मास में तूफान ने जो विनाशकारी उपद्रव किये हैं उनका किंचित् आभास आर्य जनता को समाचार पत्रों मे प्रकाशित सरकारी और गैर सरकारी बयानों से मिला होगा। सरकारी बयान के अनुसार इस दुर्घटना में ११ हजार मनुष्यों और ७५ प्रतिशतक पशुओं की जानें नष्ट हुई हैं। इस अवसर पर आर्य समाज को भी सरकार की ओर से सहायता कार्य का अवसर प्राप्त हुआ है और आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल अपने तत्त्वावधान में बड़े मनोयोग से इस कार्य को करा रही है।

आर्य समाज की रिलीफ सोसाइटी ने अभी हमारे पास एक वक्तव्य और अपील भेजी है। उससे पता लगता है कि इस दुर्घटना से जान और माल की अपार हानि हुई है। कुछ जानकार और उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तियों का अनुमान है कि मनुष्यों की मृत्यु संख्या ४० हजार से कम नहीं होगी। लाखों मकान धराशायी अथवा जलमग्न हो गये हैं। हरीभरी खेती नष्ट हो गई है। पशुओं के शवों और वृक्षों के गिरे धड़ों से जलाशयों का जल सड़ गया है। इन सब कारणों से १४ लाख स्त्री पुरुष बाल-बच्चे न केवल आश्रय हीन असहाय नंगे और भूखे तड़प रहे हैं बल्कि जल तक का भयंकर कष्ट अनुभव कर रहे हैं। उनकी दुर्दशा देखी नहीं जाती। सरकारी और विभिन्न सार्वजनिक संस्थायें सहायता कार्य में तत्परता से जुटी हुई हैं। परन्तु क्षति को देखते हुये यह सहायता नगण्य देख पड़ती है। आर्य समाज की रिलीफ सोसाइटी ने अपने कार्यकर्ताओं का एक जत्था मेदनीपुर के तमलक सबडिवीजन के ३६ ग्रामों में सहायता कार्य के लिये १००० रु० और चावल आदि खाद्य सामग्री के साथ भेजा हुआ है। यह तो प्रारम्भिक कार्य ही है। इस काय को बहुत विस्तृत करना होगा। आर्य रिलीफ सोसाइटी का प्रोग्राम कई स्थानों पर अपने केन्द्र खोलने का है। इस कार्य के लिये लाखों रुपयों की आवश्यकता है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने अपना भाग आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल को भेज दिया है। आर्य समाजों और आर्य-जनता से निवेदन है कि वे भी अपना भाग जिस से जो बन पड़े अवश्य देवें।

आर्य समाज सदैव इस प्रकार के जन सेवा के कार्यों में अग्रणी रहा है। इस अवसर पर भी आशा है वह पीछे न रहेगा। इस पुण्य कार्य के सफल संचालन से जहां वह अपनी परम्पराओं की रक्षा करेगा वहां बंगाल में आर्य समाज के प्रति बढ़ते हुये प्रेम को भी विस्तृत और जागृत करेगा आशा है सहायता देते समय आर्य नर नारी इस बात को लक्ष्य में रखेंगे।

जो राशि सभा में प्राप्त होगी वह आर्य समाज रिलीफ सोसाइटी को जाती रहेगी। समय समय पर रिलीफ कार्यों विषयक बुलेटिनों के प्रकाशन की भी व्यवस्था की गई है।

सहायतार्थ धन भेजने का पता :—
मन्त्री—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि समान्तर्गत धर्मार्थ सभा की अन्तरंग सभा की कार्यवाही ता० १५।१०।४२

१. गत अधिवेशन की कार्यवाही पढ़ी गई और सम्पुष्ट हुई।

२. विज्ञापन का विषय सं० २ (क) ऋग्वेद १०-८५-४४ में शुद्ध पाठ देवकामा है या देवृकामा है।

(ख) अथर्ववेद १४।२।१७,१८ में शुद्ध पाठ देवृकामा है या देवकामा है प्रस्तुत होकर सार्वदेशिक सभा के स० मन्त्री श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति ने देवकामा देवृकामा विषयक वाद विवाद के दोनों पक्षों के प्रमाणों को सदस्यों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए बताया कि वर्तमान समय में ऋग्वेद के जो मुद्रित संस्करण उपलब्ध होते हैं उनमें

वैदिक यन्त्रालय अजमेर में छपे संस्करणों को छोड़ कर 'अघोरचक्षुरपतिघ्नी·········इस १०।८५।४४ के मन्त्र में 'वीर सूर्देवकामा स्योना' यह पाठ ही पाया जाता है किन्तु ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि के विवाह प्रकरण में इस मन्त्र को दो जगह उद्धृत किया है और वहां इसका पाठ देव कामा दिया और उसी के अनुसार अर्थ किया है जिसे श्री पं० सातवलेकर जी आदि ठीक नहीं मानते। वे इसे वैदिक यन्त्रालय के पण्डितों की भूल सिद्ध करने का यत्न करते हैं। किन्तु संस्कार विधि प्रथम संस्करण को देखने से जो ऋषि दयानन्द के जीवन काल में सन् १८७७ में एशियाटिक प्रेस बम्बई में छपा था, विवाह प्रकरण में पृ० ८४ और ९१ पर यह मन्त्र ऋग्वेद तथा पारस्कर गृह्य सूत्र से और पृ० ९३ पर अथर्व वेद १४।२।१७,१८ से इसके साथ मिलता जुलता पर पृथक् मन्त्र उद्धृत है। यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि ऋषि दयानन्द के विचार में ऋग्वेद का १०।८५।४४ में शुद्ध पाठ देवृकामा ही है न कि देवकामा। यहाँ तक कि पृ० ९१ पर जब छापे की भूल से ऋग्वेद का पाठ 'वीरसूर्देवकामा स्योना' छप गया तो संस्कार विधि प्रथम संस्करण के शुद्धि पत्र में उन्होंने पृ० ५ पर उस ९१ पृष्ठ का उल्लेख करते हुए लिखा।

पृ०	प०	अशुद्धम्	शुद्धम्
९१	९	देवका	देवृका

यह ठीक है कि वैदिक यन्त्रालय अजमेर के ऋग्वेद संहिता के संस्करण को छोड़ कर अन्य किसी संस्करण में जो अब उपलब्ध होते हैं। ऋग्वेद के इस मन्त्र में देवृकामा पाठ नहीं पाया जाता, परन्तु कई पुरानी हस्तलिखित पुस्तकों तथा संस्करणों में पहले यह पाठ पाया जाता था। इसके कई प्रबल प्रमाण दृष्टिगोचर होते हैं। उदाहरणार्थ सन् १८६१ में सेन्ट पीटर्स बर्ग में जो एक विस्तृत संस्कृत शब्द कोष Sanskrit worterbush के नाम के Otto Bohelingk और Rudolph Roth नामक विद्वानों ने सम्पादित किया उसके पृ० ७६६ पर देवृकामा शब्द का पता ऋग्वेद १०।८५।४४ और अथर्व १४।२।१८ दिया है। यह यूरोप में सब से प्राचीन संस्कृत शब्द कोष है। इससे यह स्पष्टतया प्रकाशित होता है कि उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण संस्कृत कोष बनाने के समय में ऋग्वेद का देवृकामा पाठ लिखित व मुद्रित संस्करणों में १०।८५।४४ पर अवश्य रहा होगा। यह संस्कृत कोष पुराना होने के कारण प्रमाननीय है यह श्री पं० सातवलेकर जी आदि का कथन ठीक नहीं। सबसे प्राचीन होने के कारण उसका महत्त्व बढ़ता है, घटता नहीं।

२. सन् १९१२ में प्रो० मैक्डौनेल एम. ए. पी. एच० डी० Boden Professor of Sanskrit in the University of Oxford and Prof. A. B. Keith M. A. D. C. L Acting Deputy Professer of Sanskrit in the University of Oxford ने लन्दन में Vedic Index of names and Subject. नामक पुस्तक छपवाई थी जिसके पृ० ७७८, ७७९ पर देवृ शब्द पर टिप्पणी है और देवृकामा शब्द का पता ऋग्वेद १०।८५।४४ और अथर्व १४।२।१८ दिया है। इससे स्पष्ट है कि १९१२ में भी प्रो० मैक्डौनेल और कीथ के सामने ऋग्वेद के संस्करणों में देवृकामा यह पाठ अवश्य था।

३ ह्विटनी कृत अथर्व वेद के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में भी ऋग्वेद मे पाठ देवृकामा होने का संकेत किया गया है।

(ख) अथर्व वेद के १४।२।१७ और १८ मन्त्रों मे पाठ देवृकामा है इसके प्रमाण तो अत्यधिक हैं। अथर्व वेद सायण भाष्य भाग ३ के जो निर्णय सागर बम्बई म सन् १८९८ मे छपा पृ० ३०७ पर मूल मन्त्र और पद पाठ दोनों मे देवृकामा ही पाठ है।

बर्लिन में सन् १८५५ और फिर १८५६ मे प्रकाशित प्रो० राथ और ह्विटनी द्वारा सम्पादित अथर्व वेद संहिता मे पृ० ३०८ पर अथर्व वेद १४।२।१७,१८ दोनों मन्त्रों मे देवृकामा पाठ है। सन् १८८४ में श्री सवक लाल कर्शनदास द्वारा सत्य नारायण प्रेस बम्बई मे प्रकाशित अथर्ववेद संहिता मे भी दोनों मन्त्रों मे (१४।२।१७,१८) देवृकामा ही पाठ है। श्री स्वामी नित्यानन्द जी विश्वेश्वरानन्द जी कृत अथर्व वेद पदानाम् अकारादि वर्णक्रमानुक्रमणिका जो सन् १९०७ में निर्णय सागर प्रेस बम्बई मे छपी पृ० २१ पर 'देवृकामा' पर १४।२।१७,१८ अथर्व ऐसा ही उल्लेख है। सन् १९३५ में श्री प० सातवलेकर जी ने भी अथर्व वेद के सुबोध भाष्य मे १४ काण्ड के प्रथम सूक्त के १७, १८ दोनों मन्त्रों में देवृकामा ही पाठ लिखा था और उसका देवर की इच्छा या कामना पूर्ण करनेवाली पृ० ३४।३५ यह अर्थ किया था। इस प्रकार अथर्व वेद मे शुद्ध पाठ देवृकामा होने की अनेक प्रबल साक्षिया हैं। श्री प० जयदेव जी शर्मा विद्यालंकार चतुर्वेद भाष्यकार तथा अन्य विद्वानों के पत्र पढे जाने और उपस्थित विद्वानों में विचार विनिमय के पश्चात् सर्व सम्मति से निर्णय हुआ कि ऋषि दयानन्द सम्मत पाठ ऋग्वेद और अथर्व वेद दोनों मे देवृकामा ही है जिसकी पुष्टि में अनेक प्रबल प्रमाण उपलब्ध होते हैं। किन्तु इस विषयक अन्तिम निर्णय देने से पूर्व अभी ऋग्वेद के हस्तलिखित और मुद्रित प्राचीन संस्करणों की अधिक खोज करनी चाहिए।

३. विज्ञापन का विषय सं० ३ पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति के पत्र पढे गये कि धर्मार्य सभा एक विस्तृत और पूर्ण वैदिक कर्म पद्धति का निर्माण कराये। निश्चय हुआ कि यह विषय सार्वदेशिक सभा को विचारार्थ भेजा जाये इस सिफारिश के साथ कि यह कार्य महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। यह भी निश्चय हुआ कि श्री प्रो० ताराचन्द्र जी गाजरा के २५।७।५२ के पत्र म उल्लिखित विधियों के निर्माण का विषय भी वैदिक धर्म पद्धति के निर्माण कार्य के साथ संयोजित किया जाये।

४ विज्ञापन का विषय सं० ४ वैदिक देवता स्वरूप विषयक विचार उपस्थित होकर निश्चय हुआ कि इस विषय मे ऋषि दयानन्दजी का निरुक्तादि सम्मत अभिप्राय स्पष्ट है कि मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय देवता कहाता है। इसी दृष्टि से ऋषि दयानन्द ने बृहद्देवता आदि से भिन्न देवता अनेक मन्त्रों के माने हैं। बृहद्देवतादि को उन्होंने प्रामाणिक नहीं माना प्रतीत होता। ऋषि दयानन्द ने जहाँ वेद भाष्यों में बृहद्देवतादि से भिन्न

देवता लिखे हैं वे किन प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर लिखे हैं इस विषय में अभी अधिक अनुसन्धान करना चाहिये।

५. विज्ञापन का विषय ५ पं० विश्वनाथजी पुरोहित आर्य समाज गुरुकुल विभाग लायलपुर का ८।५।४२ का पत्र पढ़ा गया कि समस्त आर्य जगत् में विवाह की एक जैसी पद्धति के प्रचलन की व्यवस्था की जाय। निश्चय हुआ कि उन्हें लिखा जाय कि लोकाचार की ओर ध्यान न देकर संस्कार विधि की पद्धति को मान्य समझना चाहिए।

(ख) यह भी निश्चय हुआ कि निम्न सज्जनों की एक उपसमिति बनाई जाय जो संस्कार विधि के आधार पर विवाह की एक पद्धति तैयार करे और उस पद्धति को अन्तरंग सदस्यों में सम्मति के लिये भेजा जाय।

१. श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपध्याय एम० ए०
२. श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति
३ श्री प० नारायण दत्तजी सिद्धान्तालंकार

(ह०) इन्द्र विद्यावाचस्पति
मन्त्री—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा।
आर्य समाज स्थापना दिवस निधि में प्राप्त दान
नवम्बर १६४२
संयुक्त प्रान्त

आर्य	समाज	अमरोहा	४)
,,	,,	धौलड़ी (मेरठ)	७)
,,	,,	फतेहपुर	१५)
आर्य	समाज	चन्दौसी मुरादाबाद	५)
,,	,	कांठ ,,	५)

मद्रास प्रान्त

,	,,	सन्यासीगुड्डे मगलौर	७)
,,	,,	आदिप्पा नायक स्ट्रीट सैन्ट्रल आर्य समाज मद्रास	२५)
		योग	६८)
		पिछला जोड़	१०७६॥|≡)
		कुल योग	११४७॥|≡)

अन्यदान

५०) श्रीमती शरण आधारी जी श्री ला० बा० ब्रज बिहारी लाल जी की विधवा पत्नी। दान प्रेषक श्री बा० श्याम बिहारी लाल मुख्तयार सिकन्द्राबाद। स्वामी भवानी दयाल जी संन्यासी को आदर्श नगर अजमेर के पोस्ट मास्टर जवाहर लाल जी द्वारा प्राप्त चिक क्रौस ७६५४३० इम्पी० बैंक अजमेर।

[आर्य समाज स्थापना निम्यर्थ दान देने वाली सब आर्य समाजों और श्रीमती शरण आधारीजीको सार्वदेशिक सभाकी ओर धन्यवाद। जिन आर्य समाजों ने अभी तक इस तथा सत्याग्रह स्मारक निधि का धन सभा कार्यालय में नहीं भेजा उन्हें सदस्यों से संग्रह करके अथवा समाज कोष से एक अच्छी राशि भेज कर अपने कर्तव्य और अनुशासन का पालन अवश्य करना चाहिये।]

धर्मदेव विद्यावाचस्पति
स० मन्त्री सार्वदेशिक
आ० प्र० सभा।

राष्ट्र महा पुरुष स्वामी श्रद्धानन्द जी

[लेखक —श्री प० सत्यदेव जी विद्यालङ्कार सम्पादक "दैनिक विश्वमित्र" देहली]

जो लोग आर्य समाज को एक धर्म किंवा धार्मिक सस्था अथवा सम्प्रदाय तथा साम्प्रदायिक सस्था के रूप मे देखते हैं उनके लिये अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी एक धार्मिक किंवा साम्प्रदायिक नेता थे। लेकिन आर्य समाज और स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज दोनों ही के बारे में ऐसा कहना या मानना वास्तविकता से रहित है। वस्तु स्थिति का यह सही वर्णन नहीं है। आर्य समाज धर्म या सम्प्रदाय नहीं है, बल्कि एक सस्था सगठन, आन्दोलन, क्रान्ति अथवा इनकिलाब है। उसके प्रवर्तक स्वामी दयानन्दजी सरस्वती के बाद उस क्रान्ति या इनकिलाब को यदि किसी ने अपने जीवन में मूर्त रूप दिया है, तो वे अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज हैं। इसलिये स्वामी जी महाराज के जीवन और व्यक्तित्व को यदि सर्वथा उपयुक्त किसी शब्द में व्यक्त किया जा सकता है तो वह शब्द "राष्ट्र महापुरुष है।" आज कल की दुनिया में सार्वभौम भ्रातृभाव के पीछे राष्ट्रवाद को तुच्छ किंवा नगण्य ठहरा कर उसको भीषण अभिशाप कहा जाता है। लेकिन, इस ससार में 'धर्म' और 'ईश्वर' तक को ढोंग और अभिशाप बताने वालों की भी कमी नहीं है। 'राष्ट्रवाद' के नाम पर जैसे रुधिर की नदियां बहाई गई हैं, वैसे ही धर्म के नाम पर भी कुछ कम रक्तपात नहीं किया गया है। श्री कृष्ण महाराज ने

महात्मा मुन्शीराम जी गुरकुल आचार्य के वेष मे

महाभारतके युद्ध क्षेत्रको 'धर्मक्षेत्र' का नाम दिया था और युद्ध से विमुख अर्जुन को "स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्" का धर्मोपदेश देकर ही युद्ध में प्रवेश किया था। अंत में 'सर्व धर्म परित्याग' का उपदेश देते हुए भी सब पापों से मोक्ष दिलाने का दावा उन्होंने किया ही था। मतलब यह है कि राष्ट्रवाद में जो दोष बताये जाते हैं, वे सब धर्म के सिर पर भी मढ़े जा सकते हैं। लेकिन, इस प्रकार धर्म का महत्व कम नहीं होता और न राष्ट्रवाद का ही महत्त्व कम किया जा सकता है सार्वभौमिकता के पीछे राष्ट्रवाद की उपेक्षा नहीं की जा सकती और न आर्य समाज को सार्वभौम संस्था बना कर उसके राष्ट्रवाद की ही उपेक्षा की जा सकती है। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के जीवन मे आर्यसमाज किंवा स्वामी दयानन्द का राष्ट्रवाद पूर्ण रूप मे प्रस्फुटित हुआ था। इसीलिये 'राष्ट्र महा पुरुष' के रूप में ही उनके जीवन का यथार्थ चित्रण किया जा सकता है।

वैसे तो स्वामी श्रद्धानन्द जी के सारे ही जीवन का उत्कर्ष क्रांतिमय जीवन की एक सुन्दर कहानी है। पर्वत की चोटी, ऊंचे मकान की सीढ़ियों अथवा वृक्ष की डालियों पर पैर रखकर उस पर चढ़ने वाले मनुष्य की तरह स्वामी जी के जीवन का हर कदम उत्कर्ष की ओर बढ़ता हुआ नजर आता है। स्वामी जी का प्रारम्भिक जीवन बहुत ही साधारण था। सांसारिक व्यसनों में वह इतना ओतप्रोत था कि पिछले जीवन मे उसकी तुलना करने पर अचरज मालूम होता है। नास्तिकता के गहरे गढ़े में औंधे मुंह गिरने वाला आस्तिकता की इतनी ऊंची चोटी पर जा पहुंचा। जीवन की सारी कमाई को एक क्षण में भावावेश में आकर खो देने वाले ने गुरुकुल की उस शिक्षण प्रणाली का पुनरुद्धार किया, जिसका मूलभूत आधार ब्रह्मचर्य है सरकारी नौकरी के रूप में सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने वाले ने राजनीतिक क्षेत्र में भी अपना सिक्का जमा दिया। ये सब साधारण घटनायें नहीं हैं। आर्य-समाज के वर्तमान संगठन का तो उन्होंने इस प्रकार निर्माण किया है, जैसे कि एक राज एक एक ईंट चुन कर किसी विशाल भवन का निर्माण करता है। प्रतिनिधि सभाओं और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की कल्पना उनके ही दिमाग की उपज हैं। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली को महात्मा गांधी सरीखे निरपेक्ष लोगों ने भी आर्य समाज का सर्वोत्तम काम कहा है। स्वर्गीय रैम्जे मैकडानल्ड ने उसको लार्ड मैकाले द्वारा शुरू की गई अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध प्रकट होने वाले असन्तोष एवं विद्रोह का पूर्ण रूप कहा था। इसके जन्मदाता स्वामी श्रद्धानन्द जी ही थे। उनकी राष्ट्रीय भावनाओं का गुरुकुल कांगड़ी को मूर्त रूप कहा जा सकता है। उनके राष्ट्रवाद राष्ट्रीयता किंवा राष्ट्रीय भावनाओं का जन्म यूरोप के राष्ट्रवाद की कलुषित भूमि पर न होकर उस पवित्र भूमि पर हुआ था, जिस पर खड़े होकर स्वामी दयानन्द ने अपने देश के लिये अखण्ड सार्व भौम चक्र-वर्ती साम्राज्य की कल्पना की थी और स्वदेशीय राज्य को माता-पिता के समान प्रजा पर न्याय करने वाले विदेशी राज्य से भी कहीं अधिक उत्तम सर्वोपरि बताया था। स्वराज्य, स्वदेशी,

स्वभाषा आदि का उपाख्यान कितना सुन्दर 'सत्यार्थ प्रकाश' 'आर्याभिविनय' और 'गो करुणा निधि' में किया गया है। वेद भाष्य में ऋषि ने लिखा है कि "मनुष्यैर्द्वाभ्यां प्रयोजनाभ्यां प्रवर्तितव्यम्। प्रथमं तावत् सर्वो पुरुषार्थं शरीरारोग्याभ्यां चक्रवर्तिराज्य प्राप्ति करणम्। द्वितीयं सर्वा विद्याः पठित्वा तासां सर्वत्र प्रचारो करणम्।" चक्रवर्ती राज्य की प्राप्ति मनुष्य के जीवन का पहिला और सब विद्याओं का प्रचार दूसरा प्रयोजन कहा है। स्वामी श्रद्धानन्द का जीवन ऋषि के इस आदेश का मूर्त रूप था।

दुःखी पंजाब की आर्त्त पुकार पर फौजी हकूमत की तनिक भी परवा न कर सब से पहिले वहां पहुंचने वाले स्वामी श्रद्धानन्द थे। अमृतसर में कांग्रेस के अधिवेशन को सफल बनाने का एकाकी श्रेय उनको ही था। उसके स्वागताध्यक्ष के पद से ठेठ हिन्दी में भाषण देने की कांग्रेस के इतिहास में यह पहिली घटना थी। ब्रह्मचर्य, राष्ट्रीय शिक्षा, हरिजन-सेवा और ऐसे ही अन्य विषयों का उपाख्यान उनके उस भाषण में कांग्रेस के मंच पर से पहिली ही बार दिया गया था। दिल्ली में स्वराज्य का एक चित्र उपस्थित कर घण्टाघर के नीचे गुरखों की किरचों के सामने छाती तान कर खड़े होने वाले वीर संन्यासी के उस चित्र को कौन भूल सकता है? जामा मसजिद के मिम्बर पर से वेद मन्त्र का उच्चारण कर हिन्दू-मुस्लिम-एकता का दिव्य सन्देश सुनाने का सौभाग्य और किसे प्राप्त हुआ है? गुरु का बाग के सत्याग्रह के पीछे जेल जाने वाले स्वामी जी के राष्ट्रीय स्वरूप को सहज में कैसे भुलाया जा सकता है?

ऐसे राष्ट्र महापुरुष के साथ मानो मृत्युने छल किया। एक मुसलमान को रोगशय्या पर उनके देहावसान का निमित्त बना कर मृत्यु ने ऐसे महान् राष्ट्रपुरुष के अलौकिक जीवन पर साम्प्रदायिकता का मैल सा चढ़ा दिया। फिर, हिन्दू समाज में नवजीवन का संचार कर उसे राष्ट्र की वेदी पर न्यौछावर करने की आकांक्षा रख कर हिन्दू महासभा में उनके जाने का भी सर्वथा विपरीत अर्थ लगाया गया। और यह एकाएक भुला ही दिया गया कि जब धारा सभाओं के चुनावों में हिन्दू महासभा के नाम से कांग्रेस का विरोध किया गया, तब संन्यासी ने उसको भी तिलांजलि दे डाली। राष्ट्रीयता के प्रश्न पर उनकी हिन्दू महासभा के साथ भी पट नहीं सकी।

कांग्रेस और हिन्दू महासभा दोनों ही आर्य समाज की तुलना में एकांगी संस्थायें हैं। उनका कार्य क्रम भी एकांगी और सामयिक है। आर्य समाज अथवा स्वामी दयानन्द के राष्ट्रवाद से स्फूर्ति प्राप्त करने वाले और उसी के सांचे में अपने को ढालने वाले स्वामी श्रद्धानन्द जी का दोनों ही में गुजारा न हो सका। दोनों से निराश हो कर उनको वापिस लौट आना पड़ा। उनकी राष्ट्रीयता की यही मौलिकता थी, जिससे उनको राष्ट्र महापुरुष का गौरवास्पद पद प्राप्त है। भारतीय राष्ट्र के जीवन-मरण की इस संगीन घड़ी में आज उनके बलिदान दिवस पर उनके इसी स्वरूप का पुण्य स्मरण किया जाना चाहिये।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की याद में

(श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए०)

जीवन जीवन से आता है और जीवन का बल बलिदान से प्रकट होता है। स्वामी जी ने बलिदान की साधना द्वारा अपनी शक्ति का परिचय दिया, परन्तु उस शक्ति का ग्रहण, उसकी स्फूर्ति और प्रेरणा हम इस समय आर्य समाज में नहीं देखते।

स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन कार्य और जीवन-शक्ति को इतना जल्दी भूल जाना अव्वल दर्जे की कृतघ्नता है। कृतघ्नता से हानि महापुरुषों को नहीं पहुँचती, वे तो अपना कार्य समाप्त करके चल देते हैं। हानि उस सन्तति को होती है जो उसके पीछे आती है और उनके गुणों को भुला कर ठीक मार्ग से विचलित हो जाती है।

स्वामी जी के पीछे आर्य समाज का बगीचा एक उजड़ा हुआ बगीचा दिखाई देता है, जिसमे से विशाल वृक्ष और सुन्दर सुमन या तो काट दिये गये हैं या कट चुके हैं और जिनके स्थान पर दूसरे पौदों को नहीं लगाया गया। इस उजड़े चमन को कौन हरा-भरा करेगा, यह समयाधीन बात है।

मैंने लगभग ११ वर्ष श्री स्वामीजी की अध्यक्षता में, और उनकी सेवा मे कार्य किया। गुरुकुल कांगड़ी उनकी सबसे बड़ी उपज थी। उसी की उन्नति और वृद्धि में वे भारत की उन्नति और वृद्धि मानते थे। जो लगन और तत्परता वे गुरुकुल के कार्यों में दिखाते थे, उसको देख कर आश्चर्य होता था। उनके समय में गुरुकुल के बाहर के जगत् में, सबसे अधिक चर्चा, गुरुकुल संस्था की ही होती थी। प्रतिदिन गुरुकुल में देश-विदेश से महापुरुष आते और अपनी श्रद्धांजलि उस पर चढ़ाते थे। गुरुकुल उस समय जनता की आंखों में बसता था।

स्वामी जी के स्वभाव में जो असीम सरलता थी उसका भी मेरे चित्त पर भारी प्रभाव था। वे एक आदर्शवादी थे। अपनी सरलता से जिस प्रकार आदर्शों के पीछे पड़कर वे उनको अपने जीवन में घटाने की चेष्टा करते थे, उनको देख कर आनन्द होता था। स्वामी जी के साथ रह कर हम लोग जमीन पर नहीं चलते थे, परन्तु आकाश मे उड़ते थे। चलने और उड़ने के आनन्द में कितना भेद होता है?

मै एक बड़ी साधारण स्थिति का व्यक्ति था। उड़ने की अपेक्षा अधिक चलता था। उड़ते समय जब चलने की बात छेड़ देता था तो स्वामीजी को अच्छा नहीं लगता था। वे उड़ना अधिक पसन्द करते थे। चलते मार्ग की कठिनाइयों को न वे देखना पसन्द करते थे और उनका चिन्तन।

स्वामी श्रद्धानन्दजी के जीवन का सबसे बड़ा गुण उनकी निर्भीकता थी। जहां कठिन समय

उपस्थित हुआ, जहां संघर्ष का नाद बजा, स्वामी जी वहां छाती तान, सब से आगे मौजूद होते थे। मानो साहस के कार्यों में ही, उनका उज्ज्वल स्वरूप प्रकट होता था। उनके मित्र और शत्रु उनके इस गुण का लोहा मानते थे। उनकी उभरी हुई छाती, लम्बा कद, चेहरे का नूर और अंगों की स्फूर्ति, ये सब बातें उनको जन समूह में, सब से अलग और सब से श्रेष्ठ प्रकट कर देती थी। स्वामीजी प्रकृति से ही जनता के व्यक्ति थे। वे जनता के 'हीरो' ~~वीर (Hero)~~ थे। जनता उनको जानती थी और वे जनता जो पहचानते थे।

स्वामी जी के नेतृत्व में नम्रता भी कूट-कूट कर भरी थी। यह ठीक है कि जब वे मुकाबिले पर डट जाते थे, तो मार कर या मर कर रहने वाली बात होती थी, लेकिन जब शत्रु को हार मानने की ओर आमादा पाते थे तो दस क़दम आगे बढ़ कर उसको आश्वासन देते थे और अपने मृदु-व्यवहार से उसको जीत लेते थे और पीछे कड़वाहट नहीं रहने देते थे। हां अविनीत शत्रु के साथ अन्त तक क्षात्र-धर्म को नहीं छोड़ते थे।

स्वामी जी की सरलता और श्रद्धा इतनी बढ़ी हुई थी कि इनके कारण वे कई बार दूसरों से धोखा खा बैठते थे। वे धोखा अधिक खाते थे, धोखा देते नहीं थे। सरल-प्रकृति सम्पन्न लोगों का यही हाल होता है। मेरा यह अनुभव है कि स्वामीजी की कमजोरियों के कारण वे लोग थे जो इनकी सरलता और श्रद्धा से नाजायज़ लाभ उठाते थे। सरलता के कारण उनके स्वभाव का सौन्दर्य बच्चों के स्वभाव के सौन्दर्य को भी मात करता था।

स्वामी जी के गुणों को कहाँ तक गिनाया जावे? वे तो प्याज़ की पंखड़ियों के समान खुलते जावेंगे। महापुरुषों के गुणों के बखान से लाभ नहीं होता, उनके अनुकरण से होता है। उनके पद चिन्हों पर चलने से होती है। आर्य समाज के नौजवानों को चेतना चाहिए। उनको स्वामी जी के गुणों को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। तभी आर्य समाज पुनः हरा-भरा दीखेगा। आज की बे रौनकी दूर हो जावेगी। आर्य समाज का उपवन पुनः शोभायमान दीखने लगेगा। क्या मैं आशा कर सकता हूं कि आर्य समाज के नौजवान स्वामी श्रद्धानन्द जैसी उड़ान उड़ कर आर्य समाज कीबलि वेदी पर उनके समान चमकेंगे?

मेरठ में आर्यवीर शिक्षण शिविरः—

आर्य जनता को यह जान कर प्रसन्नता होगी कि आगामी २ जनवरी से मेरठ में आर्य वीर शिक्षणशिविर की आयोजना की जा रही है। शिक्षार्थियों या उनको भेजने वाले आर्य-समाजों या आर्य प्रतिनिधि सभाओं को १५) मासिक की दर से भोजनादि व्यय देना होगा। शिक्षार्थी प्रार्थना पत्र सिफ़ारिश सहित मन्त्री अ० भा० आर्य वीर दल समिति "बलिदान भवन" देहली के पते पर तुरन्त भेजें।

महापुरुषों की दिव्यवाणी

श्री श्रद्धानन्द वचनामृत

(१) गुरु शिष्य सम्बन्धः—

"शिक्षक को परमात्मा से प्रकाश लेना चाहिये तब उस प्रकाश से प्रदीप्त होकर वह अपने शिष्यों को प्रकाश दे सकता है। उस समय उसे बल लगाने की आवश्यकता न होगी। उसका जीवन उसका रोम २ स्वयं बोलेगा और बिना परिश्रम के ही शिष्यों के अन्दर विद्यारूपी सूर्य के प्रकाश का सचार होगा। धन्य है वह जाति और धन्य है वह देश जहां पर इस प्रकार की गुरु शिष्य के सम्बन्ध द्वारा शिक्षा प्राप्त होती है।"

("मुक्ति सोपान" पृ० १५)

(२) आदर्श नेताः—

"प्रथम नेता में सब सौम्य गुणों का निवास होना चाहिये। जिसका स्वभाव सरल नही, जो विपत्तियों को प्रसन्नता पूर्वक सहन नहीं कर सकता, जिसे कष्ट उसके उद्यासन से डिगा सकता है वह नेता होने के योग्य नहीं। नेता का धर्म यही नहीं कि कर्म वीर हो किन्तु उसका यह भी कर्तव्य है कि कर्म हीन पुरुषों को कर्म शील बनाए। तब उसे सब कर्म वीरों से भी आगे चलने वाला होना चाहिये अर्थात् कर्म वीरों मे भी उत्तम कर्म वीर होना चाहिये।"

("मुक्तिसोपान" पृ० ४६)

(३) ईश्वर भक्तिः—

"वही परब्रह्म परमात्मा जो चक्षुओं का चक्षु, श्रोत्र का श्रोत्र, मन का मन और आत्मा का भी आत्मा है। उसी से हम सब कल्याण मार्ग का ज्ञान पाते हैं। ऐसे पिता, ऐसे पालक और रक्षक को भूलना कैसा महापाप है? उसकी आज्ञा पालन से मुँह मोड़ना कैसी भारी अविद्या है? उसी परमात्मा का स्मरण करो। उसी के गुणों का गान करो जिसने उत्कृष्ट विद्याओं के भण्डार 'वेद' का तुम्हारे लिये खोल दिया है।"

("मुक्तिसोपान" पृ० ६१)

(४) जातीय आत्मविचार की आवश्यकताः—

"भारत के नवयुवको। आर्य जाति के पुत्रो। क्या तुमने कभी सोचा है कि तुम अपनी जाति को किस रसातल में पहुँचा रहे हो? विदेशियों से शिक्षा लेकर तुमने अपने स्रोत को ही भुला दिया है। तुम अपने आपको देश भक्त कहते हो, भारत को माता पुकारते हो, 'वन्देमातरम्' के नाम से अन्तरिक्षों को व्याप्त कर देते हो तो क्या तुम्हारी कर्तव्य परायणता की परा काष्ठा हो गई? आय युवको। मै चाहता हूँ कि तुम अपने सगठन को अधिक विस्तृत तथा दृढ़ करो।

("मुक्ति सोपान" पृ० ११७)

(५) कितने अवसर बिसार दिये:—

शुद्धि न करने का भयङ्कर परिणामः—

"यदि अकबर का आर्य जाति मे प्रवेश हो जाता तो इस देश की काया ही पलट जाती। फिर ५ उपनिषदों का फ़ारसी मे अनुवाद कर के उन्हीं के उपदेश को अपने जीवन का आधार मानने वाला और ब्रह्मविद्या (उपनिषद्) के आगे सारे यूरोप का सिर झुकवाने वाला दाराशिकोह ही शायद अकबर की डाली हुई बुनियाद पर एक उदार राष्ट्र का महल खड़ा करता। परन्तु इस अभागे देश-निवासियों ने अभी कर्म-फल भोगना था। हा। कितने अवसर बिसार दिये, आर्य सन्तान। क्या अब भी न चेतेगी? (मुक्ति सोपान पृ० १२७)

(६) पाश्चात्यसभ्यता का दिवाला:—

"जो सभ्यता के ठेकेदार थे और काली जातियों को पशु और असभ्य समझते थे उनका झूठ, उनका अत्याचार; उनका पिशाचत्व संसार में हाहाकार मचवा रहा है। विचारक ऐसी सभ्यता से लज्जित हो रहे हैं। ...... "इन सभ्य देशों की गिरावट का कारण क्या है? मनुष्य शरीर, अन्तःकरण चतुष्टय और आत्मा के संयोग का नाम है। पाश्चात्य जातियों ने आत्मा को बीच में से उड़ा दिया है। जब आत्मा ही न रहा तो सदाचार का क्या काम? जननेन्द्रिय की पवित्रता को भुला दिया गया। राजनैतिक विजय के लिये स्त्रियों ने सतीत्व की कुछ भी परवाह न की। पुरुषों ने ब्रह्मचर्य पालन और वीर्य रक्षा को कुछ न समझा। आज इसी लिये हम 'सभ्यहिंसक पशुओं' का दंगल देख रहे हैं।"

('मुक्ति सोपान' पृ० १२८-१२६)

(७) वैदिकवर्ण व्यवस्था और संसार सुधार:—

'वैदिक वर्णव्यवस्था के पुनरुज्जीवित करने से संसार फिर से हरा भरा बाग बन सकता है। इस वर्णव्यवस्था का पुनरुद्धार जब तक न होगा तब तक विदेशियों के सर्वथा बाहिर निकल जाने से भी भारतवर्ष का वर्तमान दासता से उद्धार नहीं हो सकता। परन्तु संसार में वर्णाश्रम धर्म फिर से स्थापन कौन कर सकता है?

आर्य समाज ही का अधिकार है कि वह वैदिक वर्ण व्यवस्था की पुनः स्थापना करे अधिकार ही क्यों, उस का कर्तव्य है।

('मुक्ति सोपान' पृ० १४०)

(८) कीर्ति और त्याग:—

"जो लोग कीर्ति के पीछे भागते हैं, कीर्ति उनको त्याग देती है। 'परन्तु जो कीर्ति की परवाह नहीं करते, कीर्ति उनके पीछे भागती फिरती है।

('मुक्ति सोपान' पृ० ४८)

श्रद्धेय नेता के चरण चिन्हों पर :—

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के जन्मदाता अमर धर्मवीर श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज की पुण्य स्मृति में 'सार्वदेशिक' का यह विशेषांक पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत है। अमर धर्मवीर विषयक संस्मरणों और श्रद्धांजलियों के अतिरिक्त श्रद्धेय वीर केसरी के स्फूर्तिदायक सन्देशों को यथासम्भव उनके अपने ही शब्दों में रखने का प्रयत्न इस अंक मे किया गया है ताकि पाठक महानुभाव उनकी पवित्र भावनाओं को अपने हृत्पटल पर अंकित करने में विशेष रूप से समर्थ हो सकें। हुतात्मा स्वा० श्रद्धानन्द जी के जीवन में सत्यनिष्ठता, स्पष्टवादिता, निर्भयता, पवित्रता, ममता, सहानुभूति साहस त्याग, प्रेम, परोपकार उज्ज्वल देशभक्ति अदम्यउत्साह, तपस्या तथा अन्य दिव्य गुणों का जैसा उत्तम संमिश्रण था वैसा बहुत ही कम महापुरुषों में पाया जाता है सर्व साधारण की तो बात ही क्या है ? किन्तु यथासम्भव ऐसे महात्मा देवपुरुषों के चरण-चिह्नों पर चलने का प्रयत्न करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। ऐसा प्रयत्न करके ही मनुष्य अपने जीवन को उन्नत और सफल बना सकता है। अमर धर्मवीर का जीवन कल्याण मार्ग के सब पथिकों के लिये सचमुच स्फूर्तिदायक, उत्साह जनक और ज्योतिःस्तम्भ का कार्य देने वाला है जिसके धार्मिक, नैतिक सामाजिक और राष्ट्रीय पहलुओं पर इस अंक के अनेक लेखों और कविताओं मे प्रकाश डाला गया है। श्रद्धेय स्वामी जी ईश्वर भक्तों के लिए श्रद्धामूर्ति आदर्श भक्त, शिक्षकों के लिए प्रेम और सेवा के मूर्त रूप आदर्श आचार्य, सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं के लिए निर्भयता मूर्ति सत्यनिष्ठ आदर्श कर्मयोगी थे। उनके पवित्र जीवन से स्फूर्ति प्राप्त करके हम सबको सच्चा आर्य बनने का प्रयत्न रात दिन करना चाहिये। प्रत्येक आर्य को 'विश्व को आर्य बनाओ' विषयक उनके अत्युत्तम लेख में दिये हुए निर्देशों पर गम्भीर विचार करके तदनुसार आचरण बनाना चाहिए तभी इस अंक में किये गये परिश्रम को हम सफल समझ सकेंगे। श्रद्धेय स्वामीजी के अमर सन्देशानुसार अपने जीवनों को अधिक पवित्र, निर्भय और क्रियात्मक बनाते हुए ही हम उन द्वारा प्रवर्तित अस्पृश्यता निवारण, दलितोद्धार, शुद्धि और सगठन आन्दोलनों को सफल तथा उन्नत बना सकते हैं अन्यथा नहीं। प्रत्येक आर्य समाज और आर्य प्रचारक को अपनी शक्ति इन

पवित्र आन्दोलनों की प्रगति को बढ़ाने की ओर लगा देनी चाहिए जो तभी सम्भव है जब आर्य नर नारी अमर वीर केसरी की निर्भयता को अपने अन्दर धारण करते हुए जातपात की दल-दल से अपने को ऊपर उठा लें जैसे कि इन स्तम्भों में हम कई बार निवेदन कर चुके हैं। प्रेम पूर्वक प्रचार के साथ साथ शुद्धि शुदा भाइयों और बहिनों के प्रति समानता पूर्ण भ्रातृ भाव का क्रियात्मक प्रदर्शन और अपना निष्कलङ्क आचरण ही शुद्धि आन्दोलन की सफलता का एक मात्र उपाय है। हुतात्मा अमर धर्मवीर का पुण्य स्मरण हमारी निर्बलताओं को भस्म करके दिव्य धर्म ज्योति और उत्साह को हमारे हृदयों में परिपूर्ण करे जिससे हम भी उनके पवित्र चरण चिन्हों पर चलने में समर्थ हो सकें यही हमारी प्रार्थना है। इस अङ्क के सुयोग्य लेखकों और कवि महानुभावों को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं जिन्होंने अपने उत्तम विचारों से आर्य जनता को अनुगृहीत किया है।

एक शास्त्रार्थ महारथी का वियोग :—

आर्य जगत के सुप्रसिद्ध विद्वान्, शास्त्रार्थ महारथी पं० देवेन्द्रनाथ जी शास्त्री सांख्य तीर्थ आचार्य गुरुकुल सिकन्दराबाद का गत १३ नवम्बर को नरही (लखनऊ) आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर शंका समाधान करते हुए अकस्मात् हृदयगति के अवरोध से देहावसान हो गया यह समाचार जान कर हमें अत्यन्त दुःख हुआ। स्व० शास्त्रीजी का दर्शन शास्त्रों और पुराणों का पाण्डित्य अत्यन्त अद्भुत था। हैदराबाद में कुछ वर्ष पूर्व उनके साथ रहने और प्रसिद्ध पौराणिक पण्डित माधवाचार्य जी से 'वेद और पुराण पर शास्त्रार्थ सुनने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ था। उन्होंने पुराणों की धज्जियां उड़ाते हुए उनकी वेद विरुद्धता और अश्लीलता का ऐसा नग्न चित्र खींचा था कि उस अवसर पर पौराणिक भाइयों के प्रतिनिधि रूप से सभापति पद पर आसीन स्व० वामननायकजी आदि के अनुरोध पर ८ दिन तक होने वाले शास्त्रार्थ को ३ दिनों में ही बन्द कर देना पड़ा था क्योंकि पुराणों की अश्लील बातों को सुनकर पौराणिक जनता में भी खलबली मच गई थी और वह इससे अधिक सुनने को तय्यार न थी। हैदराबाद आर्य सत्याग्रह को सफल बनाने में भी स्व० शास्त्री जी ने दिन रात एक कर दिया था। ऐसे कर्मवीर सुयोग्य आर्य विद्वान् के आकस्मिक देहावसान पर आर्य जगत् की ओर से दुःख प्रकट करते हुए हम उनके सन्तप्त परिवार से हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं। परमात्मा उनके सब सम्बन्धियों और मित्रों को इस दुःख के सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

स्व० आचार्य रामदेवजी का सच्चा स्मारक :—

९ दिसम्बर को गुरुकुल कांगड़ी के भू० आचार्य कन्या गुरुकुल देहरादून के मुख्याधिष्ठाता "वैदिक मैगज़ीन" नामक सुप्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक पत्रिका के लब्ध प्रतिष्ठ सम्पादक और सार्वदेशिक आ० प्र० सभा के उप प्रधान श्री आचार्य, रामदेवजी को हमसे वियुक्त हुए ३ वर्ष पूरे हो जायेंगे। आचार्य रामदेवजी को वैदिक

धर्म प्रचार की कितनी लगन थी और विविध मत मतान्तरों का उन्होंने कितना उत्तम अनुशीलन किया हुआ था यह बात उनके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक व्यक्ति को भली भांति ज्ञात है। "वैदिक मैगज़ीन" के द्वारा स्व० आचार्यजी देश-देशान्तरों के सुप्रसिद्ध विद्वानों को (जिन में स्व० टालस्टॉय जैसे महान् विचारक भी सम्मिलित थे) वैदिक धर्म की ओर आकर्षित करने का दिन रात प्रयत्न करते थे। गुरुकुल कांगड़ी, कन्या गुरुकुल देहरादून इत्यादि आचार्यजी की प्रिय संस्थाओं को अधिक उन्नत करने के अतिरिक्त जिन्हें आदर्श रूप बनाने की उन्हें दिन रात चिन्ता थी हमारे विचार में 'वैदिक मैगज़ीन' (Vedic Magazine) जैसी उच्च कोटि की अंग्रेज़ी मासिक पत्रिका का पुनरुद्धार उनका सच्चा स्मारक होगा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने वैदिक मैगज़ीन के पुनरुज्जीवन का निश्चय किया है यह जानकर हमें प्रसन्नता हुई है। इसे अतिशीघ्र क्रियात्मक रूप मिले ऐसा प्रयत्न स्व० आचार्य:जी के भक्त सब वैदिक धर्म प्रेमियों को अवश्य करना चाहिये।

सेवा यज्ञ में आहुति :—

इस अंक में अन्यत्र पाठकों ने सिन्ध और मिदनापुर की ओर बाढ़ तथा तूफ़ान के कारण जो अपार क्षति हुई है उसका हृदय द्रावक वर्णन पढ़ा होगा। पीड़ित नर नारियों की सेवा ही सच्ची नारायण सेवा है इस बात को क्रियात्मक आदर्श द्वारा धर्मवीर स्व० श्रद्धानन्दजी महाराज ने जनता के सम्मुख रखा था। इस सेवा यज्ञ में शक्त्यनुसार आहुति देना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है। आर्य समाज रिलीफ सोसाइटी कलकत्ता से प्राप्त तार के आधार पर कि "धन जन सहायता की तुरन्त आवश्यकता है दोनों को भेजिये" सार्वदेशिक सभा ने जनता से आर्थिक सहायता के लिए अपील निकाली है तथा अखिल भारतीय आर्य वीर दल के स० प्रधान सेनापति श्री ओंप्रकाशजी त्यागी के नेतृत्व में सभा आर्यवीरों का एक जत्था मिदनापुर की ओर ६ दिसम्बर को भेज रही है। उत्साही आर्य युवकों को शरीर द्वारा सेवा कार्यार्थ और आर्य जनता को आर्थिक सहायतार्थ तुरन्त आगे बढ़ कर सेवा द्वारा अपने आर्यत्व का परिचय देना चाहिये।

संस्कृत शिक्षा में आवश्यकसुधार—और यू. पी. सरकार का अनुचित कार्य:—

हमें यह जानकर अत्यन्त खेद हुआ है कि गवर्मेंट संस्कृत कालेज बनारस की मध्यमा आचार्य आदि परीक्षाओं में जो उत्तम सुधार डा० भगवान्दास कमेटी के सर्व सम्मत निर्देशानुसार गत ३ वर्षों में विशेष रूप से हुए थे और जिनके कारण परीक्षार्थियों की संख्या में बड़ी सन्तोषजनक वृद्धि हो रही थी कुछ कट्टरपंथियों के आन्दोलन से प्रभावित होकर संयुक्त प्रान्तीय सरकार ने आज्ञा निकाल दी है कि सन् १९३९ के पीछे जो परिवर्तन हुए हैं वे सब बन्द कर दिये जाएं। इन परिवर्तनों से तात्पर्य प्राचीन व्याकरण (अष्टाध्यायी महाभाष्यादि आर्ष ग्रन्थ) वेद नैरुक्त प्रक्रिया, राज शास्त्र, बौद्ध दर्शन, आदि का शास्त्री आचार्यादि परीक्षाओं में, इतिहास तथा भूगोल का प्रथमा परीक्षा में और गणित का मध्यमा

परीक्षा में समावेश से है। ये सब विषय कितने उपयोगी हैं यह लिखने की आवश्यकता नहीं। वेद नैरुक्त प्रक्रिया में ऋषि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका तथा वेद भाष्य के कुछ अंशों का भी समावेश था जिसके कारण आर्य संस्थाओं से भी बहुत से छात्र इन परीक्षाओं में सम्मिलित होने लग गये थे। सरकार की इस आज्ञा से इन आर्य संस्थाओं के छात्रों पर एक वज्रपात हुआ है जिसके विरुद्ध आन्दोलन करना प्रत्येक आर्य समाज आर्य संस्था, आर्य प्रतिनिधि सभा तथा सार्वदेशिक सभा का कर्तव्य है। बौद्ध दर्शन, वल्लभ तथा निम्बार्क मतानुसार वेदान्त आदि विषय वैकल्पिक थे अतः उनसे किसी को कोई हानि न हो सकती थी न कोई उनको पढ़ने के लिये बाधित था। आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन आर्य धर्म और आर्य संस्कृति के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिये अत्यावश्यक है। इतिहास भूगोल और गणित के साधारण ज्ञान के बिना केवल संस्कृतज्ञ लोग सभ्य समाज में कैसे उपहासास्पद बनते हैं यह सब जानते ही हैं अतः संयुक्त प्रान्तीय सरकार से सब को अनुरोध करना चाहिये कि वह अपनी इस अनुचित आज्ञा को वापिस लेकर पूर्ववत् आवश्यक सुधार सहित शिक्षा क्रम को चलने दे। यह प्रसन्नता की बात है कि एक शिष्ट-मण्डल शीघ्र ही इस विषय में युक्त प्रांत के ऐड्वाइज़र और गवर्नर महोदय से मिलने जा रहा है। हमें निश्चय है कि संयुक्त प्रांत की सरकार इस प्रगति विरोधी आदेश को रद्द करके जनता के असन्तोष को दूर करेगी। ध० दे०

ग्राहक महानुभावों से

यदि आप यह अनुभव करते हों कि 'सार्वदेशिक' के द्वारा आपको मानसिक और आत्मिक भोजन की प्राप्ति हो रही है तथा इसे अधिकाधिक बनाया जा रहा है तो आप कम से कम अपने ५ मित्रों को इसका ग्राहक बनाइये जैसे कि आप मे से अनेकों ने किया है जिससे इस पत्र को स्वावलम्बी और अधिक उच्च कोटि का बनाया जा सके। आपसे ऐसे सहयोग की हमें पूर्ण आशा है। —व्यवस्थापक सा० दे०

साहित्य समीक्षा

हितैषी के गीत" रचयिता श्री हितैषी अलावलपुरी भू० सम्पादक "प्रकाश" तथा 'आर्यावर्त' पता मैनेजर 'आर्यावर्त" लाहौर मूल्य ।।) इस पुस्तक मे श्री हितैषी जी के ३२ सुरीले भजनों का सग्रह है। भजन बडे भावपूर्ण और स्वर राग रागिनियों के अनुकूल हैं जैसे कि श्री शिवशङ्कर जी जोशी 'संगीत विवेकी' ने सगीत के इतिहास विषयक १२ पृष्ठ की भूमिका मे बताया है। ३५ से ८४ पृष्ठ तक तालबद्ध स्वर साधन और अलंकारों का विवरण है। इस प्रकार पुस्तक सभी ईश्वर भक्तों और रागियों के लिए उपादेय है। खेद है कि इस उत्तम पुस्तक के रचयिता श्री हितैषी जी पंजाब सरकार का कोप भाजन होकर ५ वर्ष की कड़ी जेल यातना भोग रहे हैं।

'आर्य मित्र' का दर्शनाक—सम्पादक श्री कलिन्द शास्त्री बी० ए०, मूल्य ।=)

आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र आर्य मित्र' का यह विशेषांक ऋषि निर्वाणोत्सव के उपलक्ष्य मे निकाला गया है 'सांख्य दर्शन में अनीश्वरवाद का भ्रम' 'दर्शन' और कला,' 'दर्शन और साहित्य' 'भारतीय और विदेशीय दर्शन' 'स्वामी दयानन्द जी के दार्शनिक सिद्धान्त' इत्यादि विषयक बड़े उत्तम और विचारपूर्ण लेखों का इसमें संग्रह है। अंक सर्वथा उपादेय और प्रशंसनीय है।

श्री प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिये लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित।